

२६५

आरण्यकाण्डम्-३.



श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ दोहा—कटि निपंग कांचे घनुप, माये तिलक त्रियाल ॥ शुक्रगाल सुरपालकर, वंदीं दयास्थलाल ॥ १ ॥
 आत्मवान महादुर्धर्ष श्रीरामचन्द्रजीने दंडकनामक महावनमें प्रवेश करके तपस्वी लोगोंके आश्रममें डल देखे ॥ १ ॥ जिन आश्रमोंमें जगह २ कुग चीर
 जहां ब्रह्मविद्याकी लक्ष्मीका नेत्र अच्छी तरह विराजमान होरहाहै, जैसे सूर्यनारायण आकाशमें रहतेहैं और उनको मारे प्रकाशके कोई नहीं निहार सका,
 बहुत तपस्वियोंके आश्रम ब्रह्मविद्याके प्रभाव करके तेजवान होनेसे वडी कठिनतासे देखने योग्यहैं ॥ २ ॥ वह आश्रम सब जीवोंके आसरा देनेके थलेहैं, उनमें
 महाही झाड़ बुहारकर स्वच्छ किये जाते और चारों ओर अनेक प्रकारके पशु पक्षियोंसे जो सदा पूर्ण रहते ॥ ३ ॥ अप्सराओंके झुण्डके झुण्ड सदा यहां आकर
 ममि नाच गाकर इनकी पूजा करते, जहां बड़े विस्तारकी यज्ञगला बनीहै, जिनमें अत्रिकुंड युव मृगचर्म और कुशादि धरेहैं ॥ ४ ॥ होम करनेका ईथन

श्रीगणेशाय नमः ॥ प्रविश्यतुमहारण्यदंडकारण्यमात्मवान् ॥ रामोददशदुर्धर्षस्तापसाथममण्डलम् ॥ १ ॥ कुशचीरपरिक्षिप्तब्राह्मणालङ्-
 समावृतम् ॥ यथाप्रदीप्तदुर्दंशगनेसूर्यमंडलम् ॥ २ ॥ शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरंसदा ॥ मृगेवहुभिराकीर्णपक्षिसंचैः समावृतम् ॥ ३ ॥
 प्रजितंचोपवृत्तंच नित्यमप्सरसांगणैः ॥ विशालैरग्निशरणैः सुग्भाण्डैरजिनैः कुशैः ॥ ४ ॥ समिद्रिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम् ॥ आरण्ये-
 हावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृतम् ॥ ५ ॥ बलिहोमार्चिः पुण्यं ब्रह्मचोपनिनादितम् ॥ पुण्यैश्चान्यैः परिक्षिप्तं पद्मिनीयाचसपद्मया ॥ ६ ॥ फलमूल-
 नैर्दातृश्रीरः कृष्णाजिनां वरैः ॥ सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्गुप्तम् ॥ ७ ॥ पुण्यैश्च नित्यताहारैः शोभितं परमर्षिभिः ॥ तद्ब्रह्मभवनप्रदयंत्र-
 पनिनादितम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मविद्रिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् ॥ तद्द्वाराववः श्रीमांस्तापसाथममंडलम् ॥ ९ ॥

भरे हुए कला व कंद मूल फल भोजन करनेके लिये रखेहैं, और बडी २ जातके वनेले स्वादयुक्त फल पवित्र २ वृक्षोंके समूहोंमें लग रहेहैं ॥ ५ ॥ इन सब
 मोंमें नित्यही बलि और होम होताहै, प्रतिदिन पुण्यमय वेदध्वनि उठतीहै अनेक प्रकारके फूलभी इधर उधर खिल रहेहैं, और विचित्र कमल जिनमें खिले हु-
 तल्लेयोंभी विराजमान होरही हैं ॥ ६ ॥ इन सब आश्रमोंमें कंद मूल फल खानेवाले चीर मृगचर्म बल्कलादि धारण करनेवाले सूर्य और अग्निके समान प्रका-
 नित्य समपपर बोलने, देखने, सुननेवाले, जितेन्द्रिय, प्राचीन चतुर वृद्ध मुनियोंके समूह वास करतेहैं ॥ ७ ॥ नित्यताहारी पवित्र परमर्षियोंके समूहमें शोभित
 महा वेद पढ़नेका शब्द प्रतिध्वनित होनेमें सब आश्रम ब्रह्मलोकके समान शोभायमानहैं ॥ ८ ॥ महातेजवान् श्रीमान् रामचन्द्रजी महाभाग ब्रह्मको पहुँच

प्रादण्ण्योने शोभित उन तपस्वियोंके आश्रममंडलको देखकर ॥ ९ ॥ अपने महा धनुषकी प्रत्यंचा उतारकर उनकी ओरको चले, दिव्यज्ञानसंपन्न महर्षियोंने राम चन्द्रजीको देखा व जाना ॥ १० ॥ इसकारण प्रसन्नहो सबही श्रीरामचन्द्र व महायशस्विनी श्रीजानकीजीके सन्मुख वे मुनिलोग चले फिर चन्द्रमाके समान धर्मका आवरण करने वाले श्रीरामचन्द्रजीको उदय देख ॥ ११ ॥ व लक्ष्मण जानकीजीको भी निहार सब दृढव्रत मुनियोंने मंगलके आशीर्वाद दिये, और उनका भरीभांति आदर सन्मान किया ॥ १२ ॥ वह सब वनवासी ऋषिलोग विस्मिताकार होकर रामचन्द्रजीके रूपकी सुन्दरता, लावण्यता, सुकुमारता, और सुरेता देखकर विचार करनेलगे कि, ऐसे सुकुमार वनमें क्यों कर आये ॥ १३ ॥ वह सब मुनिलोग अचरजमें आकर रामचन्द्र लक्ष्मण और जानकीजीको विना पलक मारे इकट्ठक देखने लगे ॥ १४ ॥ सर्व जीवोंके ऊपर दयाकरनेवाले बड़े भाग्यशाली ऋषि लोगोंने अपूर्व अतिथि रामचन्द्रजीको पर्णकुटीमें लाय त्रिकाया अभ्यगच्छन्महातेजाविजयंकृत्त्वामहद्भुतः ॥ १० ॥ अभिजगुस्तदाप्रीतावेदेर्होचयशस्विनीम् ॥ तंतुसोममिवोद्यंतं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणम् ॥ ११ ॥ लक्ष्मणंचैव दृष्ट्वा तु वेदेर्होचयशस्विनीम् ॥ मंगलानि प्रयुजानाः प्रत्यगृह्णन् दृढव्रताः ॥ १२ ॥ रूपसंदनं लक्ष्मीसौकुमार्ययुवपताम् ॥ ददृशुर्विस्मिताकारारामस्य वनवासिनः ॥ १३ ॥ वेदेर्हो लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव ॥ आश्चर्यभूतान्दृष्टुः सर्वे ते वनवासिनः ॥ १४ ॥ अत्रैवं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रताः ॥ अतिथिं पर्णशालायां राघवं सन्ध्यवेशयन् ॥ १५ ॥ ततो रामस्य सत्कृत्य विधिता पावकोपमाः ॥ आजहुस्ते महाभागाः सलिलं धर्मचारिणः ॥ १६ ॥ मंगलानि प्रयुजाना मुदा परमया युताः ॥ मूलं पुष्पं फलं सर्वमाश्रमंच महारमनः ॥ १७ ॥ निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ते तु प्रांजलयो बभूवुः ॥ धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यश्च महारायशः ॥ १८ ॥ पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दंडधरो गुरुः ॥ इन्द्रस्यैव चतुर्भोगः प्रजारक्षति राघव ॥ १९ ॥ राजा तस्माद्दरान्भोगान्त्राम्यान्भुंक्ते न मस्कृतः ॥ ते वयं भवतारक्ष्या भवद्विपयवासिनः ॥ २० ॥ १५ ॥ पट्टुचतेही प्रथम भली भीति कुशल मश्रकर सत्कार कर अधिकी सभान तेजवाले धर्मात्मा ऋषि लोगोंने सुन्दर पवित्र जल लाय चरण इत्यादि धोनेको दिया ॥ १६ ॥ अनन्तर उन समस्त धर्मके जाननेवाले ऋषि लोगोंने परम हर्ष युक्तहो मंगल आशीर्वाद प्रयोग करके सुन्दर कंद फलादि खानेको दिया और आश्रम रहनेको दिया ॥ १७ ॥ फिर सब धर्मके जाननेवाले ऋषि लोग हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि, आप हम लोगोंके धर्मपाल शरण्य हैं व परम यशस्वी हैं ॥ १८ ॥ आप परम पूजनीय व मान्यभी हैं ॥ क्योंकि, दंडधारी राजा गुरुके समान होता है राजा इन्द्रका चौथा भाग होता है इस कारण सबही प्रकार आप पूजा करनेके योग्य हैं; क्योंकि, जब आपही प्रजाकी रक्षा करते हैं तो उनके अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ सिद्ध हो जाते हैं ॥ १९ ॥ सब लोगोंके नमस्कार

स्मरणं राज्ञो भद्रं वद श्रेष्ठ स्मृतीय भोगोंको भी भोग करता है ! हे राघव ! हम लोग आपको हमारी रक्षा करनी ॥ २० ॥ हे गजन्त ! नगरमें मंदो या बनमेंही रहो आपही हम लोगोंके राजाहैं सो आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये यदि आप कहें कि, तुम लोगभी तपोबलसे
गया इस मन्त्री ने मो नहीं क्योंकि, हम लोगोंने कोषका त्यागकर इन्द्रियोंको जीत एकबारही दंड देना छोड़ दिया है ॥ २१ ॥ तपस्याके सिवाय हम लं-
छोर मुठ उस नहीं है, अतएव गर्भके बालककी नमान आपको हमारी रक्षा करनी उचितहै, यह कहकर उन सब ऋषि मुनियोंने विविध प्रकारके पुण्य
तत्त्वों का लक्षण व नीति महिन रामचन्द्रजीकी पूजा की ॥ २२ ॥ इसी प्रकारसे औरभी सिद्ध, तापस मुनिलोगोंने अधिकारी समान तेजस्वी उन प्रमु-
रामचन्द्रजीकी यथास्थिताने पूजा की ॥ २३ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

नगरस्थो न स्यात्तन्नो गजाजने धरः ॥ न्यस्तदंडावयं राजशितक्रोधोजितंद्रियाः ॥ २१ ॥ रक्षणीयास्त्वया शत्रुर्भवतास्तपोवनाः ॥ न
मुक्तातेनैर्मूलेः पुच्छेन चैश्चरावचम् ॥ पश्येश्विविधाहारैः सलक्ष्मणमपूजयन् ॥ २२ ॥ तथान्येतापसाः सिद्धारामेवेश्वानरोपमाः ॥ न्यायवृत्ताद्य-
न्यायं न पर्याप्तमासुरीधम् ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ कृतान्तिथयो थग्रामस्तुंग-
स्यादयनंप्रति ॥ आमंत्र्य ममुनीन् सर्वान्विनमेवान्गगाहत ॥ १ ॥ नानामृगगणाकीर्णमृशशार्दूलसेवितम् ॥ ध्वस्तवृक्षलागुल्मदुर्धसिल्लः
यम् ॥ २ ॥ निष्कृजमानशङ्खनिशिहिरागणनादितम् ॥ लक्ष्मणानुचरो रामो वनमध्यंददर्शह ॥ ३ ॥ सीतया सह काकुत्स्थस्तस्मिन् वोरमुग्ध-
ने ॥ ददर्शगिरिशृंगामंपुरुषादमहास्वनम् ॥ ४ ॥ गभीराक्षं महाक्वक्विकटं विकटोदरम् ॥ बीभत्सं विपमदीवं विकृतं वोरदर्शनम् ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार अच्छी गहन जग प्रभात हुआ तब उन आश्रमवासी सब मुनियोंने पूछ पाछकर वनमें विचरण करने लगे ॥ १ ॥ :-
वनमें अनेक भौतिक जीव जन्तु विपमान थे रीछ और शार्दूलभी घूम रहे थे । इस वनके पेड़ व बेलें सब सूख गई थीं और सब ताल तैल्यें सूखकर भय-
रो गई थी ॥ २ ॥ इस वनमें पक्षियोंका चढ़ चढ़ाना नहीं आता था न भौरोंकी गुंजार होरही थी केवल शिष्टीकी झनकार सुनाई आती थी । :-
नगर रामचन्द्रजीने इस क्षत्री दया देखी ॥ ३ ॥ निमके पीछे काकुत्स्थ रामचन्द्रजी सीताजीके साथ उस वोर पशुओं करके नेवित वनमें पह-
शिग्रही नमान मनुष्यों मानंताले बड़े गद्द करनेवाले एक राक्षसको देखते हुये ॥ ४ ॥ इस राक्षसकी आँखें बहुतही गंभीर थीं, बदन अति विशाल
धीरे मन रिक्तथी. उनके शरीरका गरदन अति भयंकर था वह राक्षस ऐसा भयावना था कि, जिसे देखतेही मनुष्य डर जाय, कहीं देखा, कहीं सींचा,

ऊंचा खाली, बराबर अंग कोई न था, उसकी मूरत बड़ी डरावनी थी ॥ ५ ॥ वह राक्षस रुधिरसे भीगा व्याघ्रका चमड़ा ओढ़े था जिस समय वह ठवामी लेताया तो प्रलयकालकी समान सब भूतोंको त्रास उपजानेवाला विदित होताथा ॥ ६ ॥ वह तीन शेर, वारह व्याघ्र, दो भेड़िये, दया चीतल मृग, व दांत सहित चरबी लगा एक हाथीका मस्तक ॥ ७ ॥ जो लोहेके शूलमें बिंथा हुआथा लियेथा औरबड़ाही चिल्ला रहाथा फिर वह रामचन्द्र लक्ष्मण और मैथिली सीताजीको देख ॥ ८ ॥ महाकोपके दया होकर संहारके कालमें लतान्तकी समान उनके ऊपरको दौड़ा व महा भयावनी गर्जना करके पृथ्वीको कंपाता हुआ ॥ ९ ॥ विदेहराजाकी दुहिता सीताजीको गोदमें लेकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि, तुम दोनों जन जटा चीर धारण किये वनमें स्त्री सहित आयेहो इससे अपनेको मराहुआही समजो

वसानंचमैवैयाग्रंवसांद्रुधिरक्षितम् ॥ त्रासनंसर्वभूतानांव्यादितास्यमिवांतकम् ॥ ६ ॥ त्रींस्सिंहांश्चतुरेव्याघ्रान्द्रौवृकोपृपतान्दश ॥ सविपाणंवसा दिग्यंगजस्यचशिरोमहत् ॥ ७ ॥ अवसज्यायसेशूलेविनदंतंमहास्वनम् ॥ सरामंलक्ष्मणंचैवसीतांहृद्वाचमैथिलीम् ॥ ८ ॥ अभ्यधावत्सुसंकु ष्टःप्रजाःकालइवांतकः ॥ सक्त्वाभैरवंनादंचालयन्निवमेदिनीम् ॥ ९ ॥ अंकेनादायवैदेहीमपकम्यतदाव्रवीत् ॥ युवांजटाचीरधरोसभाय्योक्षीण जीवितौ ॥ १० ॥ प्रविष्टौदंडकारण्यंशरचायासिपाणिनौ ॥ कथंतापसयोवांचवासःप्रमदयासह ॥ ११ ॥ अधर्मचारिणोपापौकोयुवांसुनि दूषकौ ॥ अहंवनमिदंदुर्गविराधोनामराक्षसः ॥ १२ ॥ चरामिसायुधोनिन्यमृपिमांसानिभक्षयन् ॥ इयंनारीवरारोहाममभार्याभविष्यति ॥ १३ ॥ युवयोःपापयोश्चाहंपास्यामिरुधिरंमृधे ॥ तस्यैवंवृवतोदुष्टंविराधस्यदुरात्मनः ॥ १४ ॥ श्रुत्वासगर्वितंवाक्यंसंभ्रांताजनकात्मजा ॥ सीताप्रवे पितोद्वेगात्प्रवातेकदलीयथा ॥ १५ ॥ तांहृद्वारावःसीतांविराधांकगतांशुभाम् ॥ अव्रवील्लक्ष्मणंवाक्यमुखेनपरिशुष्यता ॥ १६ ॥

॥ १० ॥ शर, चाप, तलवार हाथमें लेकर इस वनमें आयेहो फिर यह तो मुझसे कहो कि तुम्हारे साथ यह स्त्री क्योंकर है? ॥ ११ ॥ तुम लोग अधर्मका आच रण करनेवाले पापस्वभावी हो, और तुमसे मुनियोंके चरित्रको कलंक लगाई सो तुम लोग कौनहो? हम राक्षस हैं हमारा नाम विराय है हम दुर्गम वनमें रहतेहैं ॥ १२ ॥ हम प्रतिदिन ऋषियोंका मांस खातेहुये हथियार बांधकर इस दुर्गम वनमें फिरा करतेहैं इस वरारोहा स्त्रीको हम अपनी भार्या बनावेंगे ॥ १३ ॥ तुम दोनों महापापी हो इससे शुद्धकर हम तुम्हारा दोनोंका रुधिर पियेंगे जब दुष्टात्मा विराधने ऐसे दुर्बचन कहे ॥ १४ ॥ ऐसे गर्वलि वचन सुनकर जनककुमारी सीताजी बहुतही घबराई जिस प्रकार प्रचंड पवनके वेगसे केला कांप जाय इसी प्रकार उनका शरीर भयसे कांपनेलगा ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी शुभ सीताजीको विराय राक्षसकी

गेदमें गई देखकर उदास हो लक्ष्मणजीने बोले ॥ १६ ॥ हे सीम्य ! राजा जनकजीकी कन्या शुभाचरण करनेवाली हमारी श्री सीताजीका विराधकी गोदीमें स्थित होना देसो ॥ १७ ॥ यह यगारिनी राजपुत्री अत्यंत सुखसे पालन पोषण की गई सो अब यह राक्षसके दया पर्दा सो बरदान मांगनेसे जो कैकेयीकी इच्छा थी वह आज मरुल हुई ॥ १८ ॥ जो कैकेयी अपने पुत्रको राज्यदिलाकरभी संतोषसे न रही उसने बड़ी दुरका आगम देखा कि, यदि यहां रहेंगे तो हमारे पुत्रका राज्य अगल नहीं रहेगा इससे बचना दिलवाया ॥ १९ ॥ समस्त प्राणियोंका प्यारा जानकर हमको बनमें भिजवाया अब उन बिचली माता कैकेयीदेवीका मनोरथ मरुल हुआ ॥ २० ॥ हे लक्ष्मण ! इससे अधिक और दुःख क्या होगा कि राज्य हरा गया पिताजीका मरण हुआ जानकीको राक्षसने छुआ भला इससे बढकर कोई दुःख है ? ॥ २१ ॥ जब रामचंद्रजीने ऐसा कहा तब शोकसे चिरे आंसू भरे हुए, मंत्रसे बंधे सर्पकी समान ऊंचे श्वासले गर्जकर महा क्रोधयुक्तहो लक्ष्मणजी पश्यसीम्यनरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसंभवाम् ॥ ममभार्याशुभाचारविप्राधकिप्रवेशिताम् ॥ १७ ॥ अत्यंतसुखसंबृद्धां राजपुत्रीयशस्विनीम् ॥ यदभिप्रेतमस्मासुप्रियवरवृत्तंचयत् ॥ १८ ॥ कैकेय्यास्तुसुवृत्तंक्षिप्रमद्येवलक्ष्मण ॥ यानतुप्यतिराज्येनपुत्रार्थेदीर्घदर्शिनी ॥ १९ ॥ ययाहं मर्वभूतानांप्रियः प्रस्थापितोवनम् ॥ अवेदानसिकामासायामातामध्यमामम् ॥ २० ॥ परस्पर्शानुवेदेद्वानदुःखतरमस्तिमे ॥ पितुर्विनाशात्सोमित्रेस्वराज्यहरणात्तथा ॥ २१ ॥ इतिवृत्तिकाकुत्स्थेवाप्यशोकपरिप्लुतः ॥ अब्रवील्लक्ष्मणः कुद्रोरुद्धो नागइवध्वसन् ॥ २२ ॥ अनाथइवभूतानानाथस्त्वांसवोपमः ॥ मयाप्रेव्येणकाकुत्स्थकिमर्थपरितप्यसे ॥ २३ ॥ शरेणनिहतस्याद्यमयाकुद्वेनरक्षसः ॥ विराधस्यगतासोहिमहीपास्यतिशोणितम् ॥ २४ ॥ राज्यकामेममक्रोधोभरतेयोवध्ववह ॥ तंविराधेविमोक्ष्यामिवजीवज्जमिवाचले ॥ २५ ॥ ममसुजवलवेगवेगितः पततुशरोस्यमहान्महोरसि ॥ व्यपनयतुतनोश्चजीवितं पततुततश्चमर्दोविघर्णितः ॥ २६ ॥ इत्यापें श्रीम० वा० आ० अर० द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ मोक्षे ॥ २२ ॥ हे काकुत्स्थ ! आप इन्द्रकी समान सब प्राणियोंके स्वामी होकर विशेषतः भुल्ल सरीसे सेवकके विद्यमान रहते इसप्रकारका विलाप क्योंकरतेंहें ? ॥ २३ ॥ तूम मोक्षित होकर इस विराध राक्षसको बाण मारतेंहें, वस बाणके लगतेही यह प्राण छोड़देगा और पृथ्वी इसका रुधिर पीयेगी ॥ २४ ॥ राज्यकी कामना करते हुये भलजीपर जो क्रोध हमको उत्पन्न हुआ था सो वज्र धारण करनेवाले इन्द्रने जिस प्रकार पूर्वोपर वज्र छोड़ा था उसी भांति मैं भी यह क्रोध विराधपर छोड़ताहूं ॥ २५ ॥ हमारी भुजाओंके बलोंके वेगसे वेगपुक्त होकर हमारे छोड़े तीर इसके हृदयमें जाकर गड़ेंगे, इसका जीवन नाराको प्राप्त हो जायगा, और यह धूम २२ ॥ इत्यापें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

फिर वह विराध राक्षस अपने वचनकी ध्वनिते समस्त वनकी पूर्ण करता हुआ यह बोला—जो मैं पृछता हूँ सो बतावो, कि तुम कौन हो और कहाँ से जाओगे ॥
॥ १ ॥ उस अंगारेके समान जलते वदनवाले राक्षसने जब इस प्रकार पूछा तब महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी इन्द्राकुलमें अपना जन्म बताकर कहो लगे ॥
॥ २ ॥ कि हम क्षत्रिय हैं और जो धर्म क्षत्रियोंके हैं वहभी हम सब करते हैं इस समय हम वनमें आये हैं इस बातको तू जान, हम लोगभी तुझको जाननेकी इच्छा करते हैं कि तू कौन है? और किस कारण इस दंडकारण्यमें विचरण करता है ॥ ३ ॥ तिसके पीछे विराध राक्षस उन सत्यपराक्रम करनेवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोला कि, राम ! मैं अपना वृत्तान्त कहता हूँ श्रवण करो ॥ ४ ॥ मैं जबनामक राक्षसका पुत्र हूँ मेरी माताका नाम शतहदा है इस पृथ्वीके बीच सब राक्षस

अथोवाचपुनर्वाक्यं विराधः पूरयन्वनम् ॥ पृच्छतो मम हि श्रुतं कौण्डिकगमिष्यतः ॥ १ ॥ तमुवाच ततो रामो राक्षसं ज्वलिताननम् ॥ पृच्छंतं सुम
हते जाइइवाकुलमात्मनः ॥ २ ॥ क्षत्रियो वृत्तसंपन्नो विद्धि नो धनगोचरो ॥ त्वां तु वेदितुमिच्छावः कस्त्वं चरसि दंडकान् ॥ ३ ॥ तमुवाच विरा
धस्तुरामं सत्यपराक्रमम् ॥ हंतवक्ष्यामि ते राजन्नित्रो धममराधव ॥ ४ ॥ पुत्रः किल जवस्याहं मातामशतहदा ॥ विराध इति मामाहुः पृथिव्यां स
र्वराक्षसाः ॥ ५ ॥ तपसा चाभिसंप्राप्ता ब्रह्मणो हि प्रसादजा ॥ शस्त्रेणावध्यतालोकेऽद्य भेद्यत्वमेव च ॥ ६ ॥ उत्सृज्य प्रमदामेना मनपेक्षीयथा
गतम् ॥ त्वरमाणी पलायेथान्वाजी वितमाददे ॥ ७ ॥ तं रामः प्रत्युवाचेंद्रकोपसंरक्तलोचनः ॥ राक्षसं विवृताकारं विराधं पापचेतसम् ॥ ८ ॥
क्षुद्रधित्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्त्रे पसेध्रुवम् ॥ रणे प्राप्स्यसि संतिष्ठ मे जीवन्निचमोक्ष्यसे ॥ ९ ॥ ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिश्चिताञ्छरान् ॥
सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघानह ॥ १० ॥

हमको विराध नामसे पुकारा करते हैं ॥ ५ ॥ मैंने तपस्या करके ब्रह्माजीके प्रसादसे किसी शस्त्रद्वारा हम न मारे जाय न हमारे अंगही कट नृत्सकें न हम मारे जाय ऐसा वरदान पाया है ॥ ६ ॥ अतएव तुम लोग युद्धकी वासना छोड़ शीघ्रतासे इस स्त्रीको यहीं पर त्याग कर जिस स्थानमें आये हो वहाँको चले जाओ क्योंकि मैं तुम्हारा जीव नहीं लेना चाहता ॥ ७ ॥ तब रामचंद्रजी क्रोधसे डाल २ नेत्र कर उस पाप निरत विकटाकार राक्षसको यह उत्तर देते हुए—
अथम ! तुझको धिक्कार है तेरा आशय और इच्छा बहुत बुरी है तू निश्चयही मृत्युको खोजता है सो अभी उसको प्राप्त होगा सदाही, जबतक तू जीता रहेगा तबतक तेरा निस्तार हमसे नहीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजीने अतिशीघ्र धनुषपर पाण चढ़ाकर बहुत सारे तेज बाण उस राक्षसको लक्ष्य करके छोड़े ॥ १० ॥

उन्होंने धनुषपर रोदा चढ़ाय सुवर्णके पंखे लगे अतिवेगवान् गरुड और पवनकी समान शीघ्रगामी सात तीर चलाये ॥ ११ ॥ वह सातों बाण मोरकी पूंछकी समान चित्र विचित्र विराधकी देहको भेदकर रुधिरमें लिपट अधिकी समान चमकते हुए पृथ्वी पर गिरे ॥ १२ ॥ तब वह राक्षस बाणसे विंधकर विदेहराजकुमारी सीताजीको पृथ्वीपर धँडालकर शूल उठा उसी क्रोधमें भर रामचन्द्र व लक्ष्मणजीकी ओरको दौड़ा ॥ १३ ॥ वह बहुतही चिढ़ाता हुआ इन्द्रध्वजके समान शूल धारणकर मुर फँटाने यमराजकी लमान शोभा धारण करता हुआ ॥ १४ ॥ उस राक्षसको आता देख दोनों भाई उस यमराजकी समान विराधराक्षसपर दीनिमान बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ तब उस अतिभयानक राक्षसने हँस कर खड़े हो जैभाई ली, जब कि; उसने जैभाई ली तब उसके शरीरसे वह सब शीघ्रगामी

धनुषान्यागुणवतासप्तबाणान्मुमोच ॥ रुक्मपुंत्वान्महावंगान्मुपर्णानिलतुल्यगान् ॥ ११ ॥ तेशरीरं विराधस्य भित्त्वा चर्हिणवा ससः ॥ निपेतुः शोणितादिग्धाघरण्यापावकोपमाः ॥ १२ ॥ सविद्धोन्यस्य वैदेहं शूलमुद्यम्य राक्षसः ॥ अभ्यद्रवत्सु संकुद्धस्तदारामं सलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥ सविनयमहानादं शूलं शक्रध्वजोपमम् ॥ प्रगृह्णाशोभततदाव्यात्तान इवांतकः ॥ १४ ॥ अथ तौ भ्रातरौ दीप्तं शरवर्षवर्षतुः ॥ विराधे राक्षसे तस्मिन्कालांतकयमोपमे ॥ १५ ॥ सप्रहस्य महारौद्रः स्थित्वाऽजुंभतराक्षसः ॥ जुंभमाणस्य ते बाणाः कायात्रिण्येतुराशुगाः ॥ १६ ॥ स्पर्शान्चतुर्वदानेन प्राणान्सरोध्य राक्षसः ॥ विराधः शूलमुद्यम्य राघवाभ्यधावत ॥ १७ ॥ तच्छूलं वज्रसंकाशं गनेज्वलनोपमम् ॥ द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शरभृतां वरः ॥ १८ ॥ तद्गाम विशिखे शिखं शूलं तस्यापतद्भुवि ॥ पपाताशनिना च्छिन्नं मेरोरिव शिलातलम् ॥ १९ ॥ तौ खड्गौ क्षिप्रमुद्यम्य कृष्णसर्पावियोद्यतौ ॥ तूर्णमापेतुस्तस्य तदाग्रहरतां वलात ॥ २० ॥

बाण निकलकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १६ ॥ तिसके पीछे वह विराध राक्षस बहुतही दुःखको प्राप्त होकर भी ब्रह्माजीके वरदान देनेसे मरा नहीं और जीता रहा व शूल उठाकर श्रीराम लक्ष्मणके सामनेको दौड़ा ॥ १७ ॥ उस कालमें वह वज्रसमान शूलका अग्रभाग आकाशको छूता अग्निकी समान रूप धारण करता हुआ । तब शत्रु धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजीने दो बाणोंसे उस शूलको काट डाला ॥ १८ ॥ जिस प्रकार वज्रसे कटकर मेरु पर्वतकी बड़ी शिला पृथ्वीपर गिरे 'मेही श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे टुकड़े २ होकर विराध राक्षसका शूल पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १९ ॥ जब उसका शूल कट गया तब राम और लक्ष्मण अति शीघ्र काटनेको तैयार काले नागकी समान दो खड्ग ले उसके सामनेको दौड़े और उसके सामनेको दौड़े और उसके ऊपर प्रहार करने

लो ॥ २० ॥ तत्र यह राक्षस उन दोनों नर श्रेष्ठों करके अधमरासा होकर अपने दोनों हाथोंसे दोनोंको पकड़ यह सोचने लगा कि इनको कहीं दूर ले जाकर पटक कर मारहाटूं ॥ २१ ॥ तत्तत्कभी उस राक्षसका शरीर नहीं कांपा तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी उस राक्षसके मनकी बातको जानकर लक्ष्मणजीसे बोले कि, भला श्रेष्ठा यह राक्षस अपने क्रोधपर चढ़ाकर इस मार्गमें चले ॥ २२ ॥ हे सुमित्रानन्दन ! यह राक्षस जहां हमको ले जानेकी इच्छा करताहै वहां ले जाये । क्योंकि यह जग रास्तेपर हमें लिये जाताहै वही हमारे जानेका मार्गहै ॥ २३ ॥ उस अतिचलवान् विराधराक्षसने अपने बलद्वारा राम और लक्ष्मणको दो बाल सौंसी समान अपने दोनों कंधोंपर उठा लिया ॥ २४ ॥ फिर उन दोनों जनकों कन्धोंपर बैठाल कर भयानक वनकी ओर चिछाता हुआ वह निशाचर रोडने लगा ॥ २५ ॥ फिर वह राक्षस अनेक २ भांतिके वृक्ष लगे विविध प्रकारके पक्षियोंके समूहसे मनोहर शृगालों करके युक्त चीते व्याघ्रों सपैंसे भरे और मध्वमानः सुभ्रशंभुजाभ्यां परिगृह्यतौ ॥ अग्रकं प्यौ न रव्याग्रौ रोद्रः प्रस्थातुमैच्छत ॥ २६ ॥ तस्याभिप्रायमाज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ वहत्वयम लंतावत्पथानेन तुराक्षसः ॥ २७ ॥ यथा चेच्छतिसौ मित्रे तथा बहुराक्षसः ॥ अयमेव हिनः पंथा येन याति निशाचरः ॥ २८ ॥ स तु स्ववलवीर्येण समुत्क्षिप्य निशाचरः ॥ बालाविवस्कंधगतौ चकारातिबलोद्धतः ॥ २९ ॥ तावारोप्यतः स्कंधं राघवौ रजनीचरः ॥ विराधो विनदन् चो रंजगामाभिमुखो वनम् ॥ ३० ॥ वनं महा मेघनिभं प्रविष्टो मे महद्भिर्विविधैरुपेतम् ॥ नानाविधैः पक्षिकुलैर्विचित्रं शिवायुतं व्यालमृगैर्विकीर्णम् ॥ ३१ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ऽरण्यकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३२ ॥ द्वियमाणौ तु काकुत्स्थौ दृष्ट्वा सीतारघूत्तमौ ॥ उच्चैः स्वरेण चुक्रौ शप्रगृह्य सुमहाभुजौ ॥ ३३ ॥ एषदाशरथीरामः सत्यवाञ्छी लवाञ्छुचिः ॥ रक्षसारीद्रूपेण ह्रियते सह लक्ष्मणः ॥ ३४ ॥ मामृक्षा भक्षयिष्यंति शार्दूलद्वीपिनस्तथा ॥ मां हिरोत्सृजकाकुत्स्थानमस्ते राक्षसोत्तम ॥ ३५ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा वेदद्वाराम लक्ष्मणौ ॥ वेगं प्रचक्रतुर्वीरो वधेतस्य दुरात्मनः ॥ ३६ ॥ महा मेघकी समान निविड वनमें प्रवेश करता हुआ ॥ ३७ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ऽरण्यकांडे भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३८ ॥ जय विराध रघुनंदन रामचन्द्र और लक्ष्मणजीको हरण करके ले चला यह देखकर सीताजी अपनी बड़ी २ बांहें उठाकर बड़े जोरसे रोय २ विलाप करने लगीं ॥ ३९ ॥ और बोलीं कि हा ! यह भयंकर आकारवाला राक्षस साधु स्वभाववाले सत्यमें रत, पवित्र, दशरथकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजीको हरे लिये जाताहै ॥ ४० ॥ कोई चीता व व्याघ्र भेडिया इकलौ पाकर हमको खा जायगा तिससे हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! हम तुमको नमस्कार करती हैं कि, तुम इन दोनोंको छोड़ दो हमें सारलो ॥ ४१ ॥ बलवीर्यवाले रामचन्द्र और लक्ष्मणजीने जानकीजीके ऐसे दीनवचन सुनकर उस दुरात्मा विराधके मार डालनेमें बड़ी शीघ्रता की ॥ ४२ ॥

मुनिमनदं दन लक्ष्मणजीने उन भयानक गहनका बांया हाथ और श्रीरामचन्द्रजीने शीघ्रतासे उसका दहना हाथ तोड़ डाला ॥ ५ ॥ जब दोनों हाथ टूट गये तब मेघवर्ण
 विगम भद्रचिन्हो मूच्छाको जान होकर उमी ममय पृथ्वीमें गिर पड़ा तब ऐसा बीच हुआ मानों कोई पर्वत वज्रकी चोटसे फटकर पृथ्वीपर गिरा ॥ ६ ॥ जब वह गिर
 गया तब श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीने ठान दुष्टी धूनोसे उसको मूच मारा और बारंबार पृथ्वीपर उठा २ कर पटकने लगे और फिर बहुतही घसीटा ॥
 ७ ॥ तब विगम पट्टेभी रामचन्द्रजीके बहुत चालोने बिधा और खड्गके प्रहारसे शरीर छिन्न भिन्नभी हुआ था और इस समय बार २ पृथ्वीपर पटकामी गया
 ॥ ८ ॥ दीनको गरणदेने वाले श्रीरामचन्द्रजी पर्वतकी समान विराध राक्षसको सबही प्रकारसे अवध्य देस
 गम्य नोभी नहीं मरा क्योंकि ब्रह्माजीका वरदानथा ॥ ९ ॥ इस गहनने ऐसी तास्या कहै कि गन्धकी सहायतासे बाँधकर इसको कोईभी नहीं जीत सकता, अतएव इसको जीता
 लक्ष्मणजीने चोंडे ॥ १० ॥ हे पुरुषभ्रष्ट ! इस राक्षसने ऐसी तास्या कहै कि गन्धकी सहायतासे बाँधकर इसको कोईभी नहीं जीत सकता, अतएव इसको जीता
 नम्यगंदस्वमीमित्रिः मयं वा द्रुवमंजद ॥ रामस्तुदक्षिणवाहुंतरसातस्य राक्षसः ॥ ५ ॥ सभगवाहुः संविग्रः पपाताशु विमृष्टितः ॥ धरण्यामेव स
 काशं रात्रिभिराचलः ॥ ६ ॥ मुष्टिभिर्वाहुभिः पट्टिः मूदयतो तुराक्षसम् ॥ उद्यम्योद्यम्य चाप्येनं स्थंडिले निष्पिपेतुः ॥ ७ ॥ सविद्रोवहुभि
 र्वाजैः गङ्गाभ्यां न पशितः ॥ निष्पिपेतो बहुधाभूमानममारसराक्षसः ॥ ८ ॥ तं प्रेक्ष्य रामः सुभृशमवध्यमचलोपमम् ॥ भयेष्वभयदः श्रीमानिदं
 तनमन्वरीन् ॥ ९ ॥ तपमापुरुषव्याग्रशशोयंनशक्यते ॥ शस्त्रेण युधिजैतुराक्षसं निखनावहे ॥ १० ॥ कुंजरस्यैव रोद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्म
 ण ॥ तनेष्मिन् गृहच्छ्रं प्रलुप्तं ततो रोद्रवर्गमः ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणरामः प्रदरः खन्यतामिति ॥ तस्थौ विराधमाक्रम्य कंठे पादेन वीर्यवान् ॥ १२ ॥
 न चन्द्रनागयंगोक्तं गणः प्रश्रितं वचः ॥ इदं प्रोवाच काकुत्स्थविराधः पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥ हतो हं पुरुषव्याग्रशक्रतुल्यबलेन वै ॥ मया तु पूर्वत्वमो
 दात्रज्ञातः पुरुषर्षभ ॥ १४ ॥ कौसल्यासुप्रजास्तातरामस्तु च विदितो मया ॥ वेदेही च महाभाग लक्ष्मणश्च महायशः ॥ १५ ॥
 दूताही पृथ्वीमें गादाकर दांच देते हैं ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम इस समय हाथीकी समान प्रचण्ड स्वभाववाले इस राक्षसके लिये वनमें एक अति बड़ा गदा
 मारो ॥ ११ ॥ वीररात्र लक्ष्मणजीको इस प्रकार गदा सोदनेकी आज्ञा देकर श्रीरामचंद्रजी अपने चरणसे इस राक्षसका गला दावकर खंडे रहे ॥ १२ ॥
 इस समय निगानर विगम पुरुषभेद श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके विनय सहित यह बोला ॥ १३ ॥ हे पुरुषसिंह ! मैं आपके इंद्रतुल्य पराक्रमसे ही
 भयमरा हो गया हूँ, हे नरभेद ! मैंने अनेक अज्ञानसे आपको नहीं पहचाना ॥ १४ ॥ हे वात ! इस समय जाना कि, आप श्रीरामचंद्रजी हैं सती कौराल्याजी
 भावको गाकर भेद पुरुषही हुई हैं और इन महाभाग्यनी जानकी और परम कीर्तिमान् लक्ष्मणजीको भी मैंने भली भाँति पहचान लिया ॥ १५ ॥

में पहले तुमरुनाम गंधर्वा; विश्वदेवके पुत्र कुबेरजीने हमको शाप दिया वस उसी शापके वश हम इस पापी निशाचरयोनि को प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ जब उन्होंने हमको शाप दिया तब मैंने बहुत विनय करके प्रसन्न किया तब महाशयबाले वैश्रवणजीने हमसे कहा कि, जब दशरथजीके पुत्र रामचन्द्रजी युद्धमें तुम्हारा वध करेंगे ॥ १७ ॥ तब फिर तुम गंधर्वा शरीर पाकर स्वर्गमें आओगे, और शाप उन्होंने इसकारण दिया था कि मैं समय पर उनकी सेवामें नहीं उपस्थित हुआ था तब उन्होंने अतिशय क्रोधाखंड होकर यह शाप दिया कि राक्षस होजा, ॥ १८ ॥ और उनकी सेवामें न पहुँचनेका यह कारण था कि मैं रंभा अप्सरापर मोहित हो रहा था तब राजा वैश्रवणने मुझको यह शाप दिया, सो अब मैं तुम्हारे प्रसादसे इस घोर शापसे छूट गया ॥ १९ ॥ हे परंतप ! अब मैं अपने स्थानको जाता हूँ आपका भला हो कि हमको इस शापने छुड़ाया अब ऐसा कीजिये कि, यहाँसे कुछ दूर शरभंगका आश्रम है ॥ २० ॥ यहाँसे छःकोसकी दूरीपर महाप्रतापी अभिशापादहंघोरान्त्रविष्टोराक्षसोंतनुम् ॥ तुंवरुनामगंधर्वःशप्तोवैश्रवणेनहि ॥ १६ ॥ प्रसाद्यमानश्चमयासोत्रवीन्महायशाः ॥ यदादाशरथी रामस्त्वांविध्यतिसंयुगे ॥ १७ ॥ तदाप्रकृतिमापन्नोभवान्स्वर्गमिष्यति ॥ अनुपस्थीयमानोमांसकुक्षोव्याजहारह ॥ १८ ॥ इतिवैश्रवणोराजार्भासक्तमुवाचह ॥ तवप्रसादान्मुक्तोहमभिशापात्सुदारुणात् ॥ १९ ॥ भवनंस्वर्गमिष्यामिस्वस्तिवोस्तुपरंतप ॥ इतोवसतिधर्मात्माशरं गःप्रतापवान् ॥ २० ॥ अध्यर्धयोजनेतातमहर्षिःसूर्यसन्निभः ॥ तंक्षिप्रमभिगच्छत्वंसंत्रेयोभिघास्यति ॥ २१ ॥ अवटेचापिमारांरामनिक्षिप्य कुशलीव्रज ॥ रक्षसांगतसत्त्वानामेधर्मःसनातनः ॥ २२ ॥ अवटेयेनिधीयंतेतेपांलोकाःसनातनाः ॥ एवमुक्त्वातुकाकुत्स्थंविराधःशरपीडितः ॥ २३ ॥ यभूत्स्वर्गसंप्राप्तोन्यस्तदेहोमहाबलः ॥ तच्छ्रुत्वारामधोवाक्यंलक्ष्मणंन्यादिदेशह ॥ २४ ॥ कुंजरस्यवरौद्रस्यराक्षसस्यास्यलक्ष्मण ॥ वनेस्मिन्सुमहाब्ध्रःखन्यतारौद्रकर्मणः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणरामःप्रदरःखन्यतामिति ॥ तस्थौविराधमाक्रम्यकंठेपादेनवीर्यवान् ॥ २६ ॥ शरभंग नाम महात्मा रहनेहें उन महर्षिका तेज सूर्यके समानहैं आप उनके पास शीघ्रही जाइये वह आपका कल्याण शीघ्रही करेंगे ॥ २१ ॥ हे रामचन्द्रजी ! अब हमें गडहें डालकर कुशलपूर्वक चले जाइये, गडहें दबनाही मरनेके पीछे राक्षसोंका सनातन धर्म है ॥ २२ ॥ जो कि राक्षस मरनेके पीछे गडहा सोदकर दाव दिये जातेहैं उनको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होतीहै, बाणसे पीडित महाबलवान् विराध रामचन्द्रजीसे यह कह ॥ २३ ॥ देहको त्यागकर स्वर्गको प्राप्त होनेको हुआ, श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजीको आज्ञा दी ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस वनके बीच प्रचंड हाथीकी समान भीम कर्मे फूटने वाले राक्षसके दावनेको एक बहुत बड़ा गडहा खोदो ॥ २५ ॥ लक्ष्मणजीको गडहा खोदनेकी आज्ञा देकर वीर्यवान् रामचन्द्रजी स्वयंभी अपनेदेवैसे विराधका

गला दवाकर सड़े रहे ॥ २६ ॥ फिर लक्ष्मणजीने सन्ता लेकर महात्मा विराधके निकटही एक बड़ा गडहा खोदा ॥ २७ ॥ फिर रामचन्द्रजीने गर्दने कान जिनमें लगे हुए हैं ऐसे विराधके परसे अपना चरण हटालिया और उसको उठाकर उस गडहमें डाल दिया उस समय विराध अति घोर शब्दसे चिढ़ाने लगा ॥ २८ ॥ युद्धमें हटाचिंत और सत्य विक्रम करनेवाले श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी दोनोंने हर्ष सहित विकटाकार उस बड़े राक्षसका संग्राममें पराजय करा, और अपनी भुजाओंके बलसे उठाकर उस रोते हुएको गडहमें डालकर पाट दिया ॥ २९ ॥ सब कुछ जाननेमें चतुर वह दो नरश्रेष्ठ तीखे बाण व सज्जसे असुर विराधका संहार न होते देखकर बुद्धिके प्रभावसे गडहमें उसके मरनेके उपाय जानकर और उसमें ही उसको डालकर बंध करते हुए ॥ ३० ॥ श्रीरामचन्द्रजीने निम्न प्रकार

ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम् ॥ अखनत्पार्थस्तस्य विराधस्य महात्मनः ॥ २७ ॥ तं मुक्तकंठमुक्षिप्य शंकु कर्णमहास्वनम् ॥ विराधं प्राक्षिपच्छ्रेण दंतं भरवस्वनम् ॥ २८ ॥ तमाह वेदारुणमाशु विक्रमो स्थिराबुधो संयतिरामलक्ष्मणो ॥ मुदान्वितो चिक्षिप तु भयावहं न दंतमुत्क्षिप्य बले नराक्षसम् ॥ २९ ॥ अवध्यतां प्रिश्य महासुरस्य तो शितेन शस्त्रेण तदानरपभौ ॥ समर्थं चात्यर्थं विशारदाबुधो बिले विराधस्य बंधं प्रचक्रतुः ॥ ३० ॥ स्वयं विराधेन हि मृत्युमात्मनः प्रसह्य रामेण यथार्थं भीप्सितः ॥ निवेदितः काननचारीणास्वयं न मे वधः शस्त्रकृतो भवेदिति ॥ ३१ ॥ तदेव रामेण निशम्य भाषितं कृतमतिस्तस्य बिलप्रवेशने ॥ बिलं च तेनातिवलेन रक्षसा प्रवेक्ष्य मानेन वनं विनादितम् ॥ ३२ ॥ प्रहृष्टरूपा विद्वरामलक्ष्मणो विराधमुब्यां प्रदरे निपात्यतम् ॥ ननंदतुर्वीतभयो महावनैदिविस्थितो चंद्रदिवाकरादिव ॥ ३३ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकांडे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

अपने प्रयोजननुसार विराधको मृत्युके मुखमें डालनेका अभिलाष किया, काननचारी विराधनेभी वैसेही अपने प्राण त्यागनेकी कामनासे स्वयं रामचन्द्रजीसे कहा था कि तुम शत्रुसे हमको नहीं मार सकोगे ॥ ३१ ॥ रामचन्द्रजीने विराधके ऐसे वचन सुन उसको गडहमें दाबनेका विचार किया, तिसके पीछे उस गडहमें डाल नंगे समय विराध ऐसा घोर चिढ़ाया कि उस शब्दसे सब वन और वह गडहा एक साथही भर गया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार महावनमें श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी उस विराध राक्षसको पृथ्वीमें पाटपूटकर दोनोंही एक प्रकार हर्षसे भर खिलगये और भयहीन होकर उस समय वह दोनों जन आकाशमें उड़य हुए मूर्धे चंद्रमाकी समान दीप्तिमान होने लगे ॥ ३३ ॥ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने भीमबलवाले राक्षसको मारकर सीताजीको प्रेयसहित लपटाय बहुत समझाया हुआ था ॥ १ ॥ और तेजसे दीप्तिमान अपने छोटे भाई लक्ष्मणजीसे बोले कि; यह वन स्वभावसेही दुर्गम और कष्टका देनेवाला है। इससे पहले कभी इस भांतिका वन हम लोगोंने नहीं देखा ॥ २ ॥ जिससे शीघ्रही तपोवन शारभंगजीके आश्रमको चले चलो यह कहकर श्रीराम चन्द्रजी शारभंगजीके आश्रमकी ओरको चले ॥ ३ ॥ वहां पहुँचकर तपोवल्से जिनकी आत्मा शुद्ध हुई है, देवताओंका सा प्रभाव जिनमें है ऐसे महर्षि शारभंगजीके निकट एक बड़े अचरजकी बात रामचन्द्रजीने देखी ॥ ४ ॥ कि, सूर्यकी अग्निकी प्रभाके समान देवराज इन्द्र अपने शरीरकी प्रभासे प्रकाशित देवताओंके साथ श्रेष्ठ स्थिर चढ़े हैं ॥ ५ ॥ उनका रथ पृथ्वीमें न खड़ा होकर आकाश मार्गमेंही टिका है उनके सब गहनोंमेंसे चमक निकल रही और पहरेके वस्त्र बहुतही उजले थे ॥ ६ ॥ वैसेही वस्त्राभूषणोंसे सजे हुए औरभी अनेक महात्मा हत्वातुतभीमवलंविराधराक्षसवंने ॥ ततः सीतांपरिव्रज्यसमाश्वास्यचवीर्यवान् ॥ १ ॥ अत्रवीद्भ्रातरामोलक्ष्मणंदीप्तेतजसम् ॥ कष्टवनमिदं दुर्गं चस्मोवनगोचराः ॥ २ ॥ अभिगच्छामहेशीश्रंशरभंगंतपोवनम् ॥ आश्रमं शरभंगस्य राघवो भिजगामह ॥ ३ ॥ तस्य देवप्रभावस्य तपसाभावितात्मनः ॥ समीपेशरभंगस्य दर्शमिदं द्रुतम् ॥ ४ ॥ विभ्राजमानं वपुः सूर्यवैश्वानरप्रभम् ॥ रथप्रवरमारूढमाकाशविबुधानुगम् ॥ ५ ॥ असंस्पृशतं वसुधाददर्शविबुधेश्वरम् ॥ संप्रभाभरणं देवं विराजो वरधारिणम् ॥ ६ ॥ तद्विधेरेव बहुभिः पूज्यमानं महात्मभिः ॥ हरितैर्वाजिभिर्भुक्तमंतरिक्षगतं रथम् ॥ ७ ॥ ददर्श दूरतस्तत्स्तरुणादित्यसन्निभम् ॥ पांडुराश्रवनप्रख्यं चंद्रमंडलसन्निभम् ॥ ८ ॥ अपश्यद्विमलं चंद्रचित्रमाल्योपशोभितम् ॥ चामरव्यजने चाग्र्यरुक्ममंडमहावने ॥ ९ ॥ गृहीते वरनारीभ्यां धूयमाने च मूर्धनि ॥ गंधर्वा मरसिद्धाश्च बहवः परमर्षयः ॥ १० ॥ अंतरिक्षगतं देवगीर्भिरग्न्याभिरेडयन् ॥ सहसं भाषमाणे तु शरभंगेन वासवे ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा शतकुंतुतत्रामोलक्ष्मणमववीत् ॥ रामो रथमुद्दिश्य भ्रातुर्दशयता द्रुतम् ॥ १२ ॥ उनकी पूजा कर रहे हैं रामचन्द्रजीने दूरसे देखा कि, इन्द्रका सूर्यकी समान प्रभावाला हरितवर्ण व श्यामवर्णके घोड़े जिसमें जुतरहे ऐसा रथ अन्तारिक्षमें खड़ा है ॥ ७ ॥ जिसकी दीप्ति दुपहारियाके सूर्यकी समान पाण्डुरवर्णके बादलकी समान है उज्ज्वल चंद्रमंडलकी समान गोल ऐसे रथको श्रीरामचन्द्रजीने देखा ॥ ८ ॥ उसमेंका छत्र बहुतही उज्ज्वल है उस पर चित्र विचित्र मालाएँ लटक रही हैं फिर चापर व्यजन देखे जिनमें सुवर्णकी दंडी लग रही थी जो बड़े मोलके और बड़े श्रेष्ठ थे ॥ ९ ॥ दो उच्चम क्रिये छत्र और चमरको धारण किये इन्द्रजीके मस्तक पर घुमाती थीं बहुत सारे गंधर्व; देवता, सिद्ध, और परमर्षिगण एक साथ मिलकर ॥ १० ॥ श्रेष्ठ वचनोंसे उन देवराज इन्द्रकी स्तुति कर रहे थे उस कालमें इन्द्रजी महर्षि शारभंगजीके साथ वाचोलाप करनेमें लगे हुये थे ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजी

उन्हें देख उनके रथको घना भाई लक्ष्मणको अचरजके सहित वह दिसाकर कहने लगे ॥ १२ ॥ हे भइया ! देखो परम, दोन्निमान, श्रीयुक्त, सूर्यकी समान देदीप्यमान यह विनिगम्य अन्तरीक्षमें तिराहुआ गोर्षा पा रहा है ॥ १३ ॥ हमने पहले शत यज्ञ करनेवाले इन्द्रजीके घोड़ोंकी जो वात्सो सुनी थी, सो यह अन्तरीक्षमें शिंङ्खुये, निभल बही चोडे होने ॥ १४ ॥ हे पुरुषसिंह ! इस रथके चारों ओर जो मैकड़ों खड्ग हाथमें लिये, कुंडल पहरे युवा पुरुष खडे हैं ॥ १५ ॥ जिन यज्ञकी धी उलती बही चाँदी है, चाहें परीचकी नैमान विशाल हैं, पहरेके कपडे जिनके लाल हैं, जो लोग किं, व्याघ्रकी समान दुर्द्धर्ष हैं, अर्थात् उनके पास कोई नहीं जा सकता ॥ १६ ॥ जिन मर्चोंकी ही गलेमें जलनी हुई अश्विकी समान हार शोभा परहें और पचीस २ वर्षकीहीमी उमर जान पड़ती है ॥ १७ ॥ यह सब पुरुषश्रेष्ठ

अर्णिष्मन्तं श्रियाष्टममृन्तं पश्य लक्ष्मण ॥ प्रतपंतमिवादिपत्यमन्तरिक्षगन्तरथम् ॥ १३ ॥ येहयाः पुरुहूतस्य पुराशक्रस्य नः श्रुताः ॥ अन्तरिक्षगता दिव्यास्तइमे हरयो ध्रुवम् ॥ १४ ॥ इमे च पुरुषव्याघ्रयेतिष्टं यभितो दिशम् ॥ शतं शतं कुंडलिनो युवानः खड्गपाणयः ॥ १५ ॥ विस्तीर्णविपुलो रक्ताः परिचायनवाहवः ॥ शोणांशुवसनाः सर्वे व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥ १६ ॥ उरोदेशे पुसर्वपांहा राज्वलनसंनिभाः ॥ रूपं विप्रतिसोमिप्रपंचविं शतिवार्पिकम् ॥ १७ ॥ एतद्विकिलदेवानां वयोभवति नित्यदा ॥ यथेमे पुरुषव्याघ्रादृश्यं ते प्रियदर्शनाः ॥ १८ ॥ इहेव सहवे देव्यामुहूर्तं तिष्ठलक्ष्मण ॥ यावज्जानाम्यहं व्यक्तं कण्ठपृथुतिमात्रथे ॥ १९ ॥ तमेव मुक्त्वा सोमि त्रिभिर्देवस्थीयतामिति ॥ अभिचक्राम काकुत्स्थः शरभगाश्रमं न नि ॥ २० ॥ ततः समभिगच्छन्तं प्रेक्ष्य रामं शचीपतिः ॥ शरभंगमनुज्ञाप्य विबुधानि दमव्रवीत् ॥ २१ ॥ इहोपयात्यसौ रामो यावन्मानाभिभाषते ॥ निर्घानयतान्वत्तु ततो माद्रुमर्दति ॥ २२ ॥ जितवन्तं कृतार्थं हितदाहमचिरादिमम् ॥ कर्मद्वानेन कर्तव्यं महदन्यः सुदुष्करम् ॥ २३ ॥

जिम प्रकार कि, प्रिय द्रगंन जान पड़ते हैं, वैसेही सब देवतागण ऐसे रूप व उमरवाले जान पडा करते हैं व इनका शरीर सदा ऐसाही रहता है कि, मानों पचीस वर्ष कीभी अवस्था है ॥ १८ ॥ जिसमें हे लक्ष्मण ! वेदहीजीके सहित यहांपर एक मुहुर्न भरतक तुम टिके रहो जबतक कि हम स्पष्ट २ यह न जान आवें कि रथवाले युति मान् यद् गंजरी पुरुष कीन है ? ॥ १९ ॥ लक्ष्मणजीसे यह कह कि तुम यहीं टिके रहो रामचंद्रजी शरभंगजीके आश्रमको गमन करने लगे ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजीसे आने हुए देवकर गचीनाय इन्द्रजी गरभंगजीसे विदाले अनुचर देवताओंसे बोले ॥ २१ ॥ यह रामचंद्रजी इस ओरको चले आते हैं, सो जब तक कि यह हममें कुछ घोटमर्के जिससे पहलेही तुम हमको और जगह ले चलो जिससे यह हमको देख न सकें ॥ २२ ॥ इनको अभी और लोगोंके न करने

योग्य बड़ा कठिन विधि मारी काय करना पड़ेगा । जबकि यह गश्तनको नीयकर अनुकूल्य दोगे तब इनके दर्शन कर्मों न जाने रायण यह हुनान्त जानकर क्या कुछ टटवकर दरावे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वज्रवारी इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीमें आया ते और उनका विशेष मन्मान करके घोडे जुते हुए स्पर्पर बैठकर स्वर्ग चले गये ॥ २४ ॥ जब महायाश इन्द्रजी चलेगये तब गमचन्द्रजी माता और भाया मीताजीके सहित अभिर्वातमें धड़े हुए शरभंगजीके समीप आये ॥ २५ ॥ राय लक्ष्मण और मीताजी मयनही उनके दोनों चरण पकड़े तब शरभंगजीने उनको धिक्कनेके लिये स्थान पता दिया और भोजनादिके लिये निमन्त्रणभी कर दिया और बैठनेको कहा तब श्रीरामचन्द्रजी मीताजी लक्ष्मणजी यहां पर धड़े ॥ २६ ॥ तिसके पीछे सुनंदन रामचंद्र जीने शरभंगजीसे इन्द्रके वहां आनेका कारण पूछा तब शरभंगजीने इन्द्रके आनेका मव नृनान्त कह सुनाया ॥ २७ ॥ और पोलें हे राय ! यह पर

अथवत्रीतमामंन्यमानयित्वाचतापसम् ॥ रथेनहययुक्तेनययोदिवमरिदमः ॥ २४ ॥ प्रयातेतुसहस्राशेराधवःमपरिच्छदः ॥ अग्निहोत्रमुपासी
नंशरभंगमुपागमत् ॥ २५ ॥ तस्यपादौचसंयुद्धारामःसीताचलक्ष्मणः ॥ निपेदुस्तदनुज्ञातालव्यवासानिमंत्रिताः ॥ २६ ॥ ततःशक्नोपयानं
तुपर्यपृच्छतराधवः ॥ शरभंगश्चतत्सर्वराधवायन्यवेदयत् ॥ २७ ॥ मामेपचरदोरामव्रह्मलोकंनिनीपति ॥ जितमुभ्रेणतपसादुःप्रापमभूतारम
भिः ॥ २८ ॥ अहंहात्वानरव्याध्रवर्तमानमदूरतः ॥ ब्रह्मलोकंनगच्छामित्यामहृद्वाप्रियातिथिम् ॥ २९ ॥ त्वयाहंपुरुषव्याध्रयामिकेणमहारमना ॥
समागम्यगमिष्यामित्रिदिवंचावरंपरम् ॥ ३० ॥ अक्षयानरशार्दूलजितालोकामयाशुभाः ॥ ब्राह्मयाश्चनाकपृष्टयाश्रप्रतिगृह्णीष्यमामकान् ॥
॥ ३१ ॥ एवमुक्तेनरव्याध्रःसर्वशास्त्रविशारदः ॥ ऋषिणाशरभेनराधवोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

दाता इन्द्रजी हमको ब्रह्मलोकमें ले जानेकी इच्छासे यहां आयेथे हमने उग्र तप करके उस लोकको जीत लियाहै कि, जिसका जीतना बिना परमात्माके भजन किये बहुत दुर्लभहै ॥ २८ ॥ परन्तु हे पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी ! आप निकटही आगयेहैं यह जानकर आप सरसिधे प्रिय पाहुनेके साथ बिना भिले ब्रह्म लोकको नहीं गया ॥ २९ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! आपही परम धर्मनिष्ठ और महात्माहैं सो हमारे मनमें यहहै कि, आपसे मिलकर फिर स्वर्ग, या ब्रह्मलोक कहींको चले जाँयगे ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ ! हमने स्वर्ग और ब्रह्मलोक इत्यादि जितने भर शुभ और अक्षय लोकहैं सबहीको जप कर लियाहै सो अपनी तपस्यासे जीते हुए वह सब लोकही हम आपके अर्पण करते हैं आप उनको ग्रहण कीजिये ॥ ३१ ॥ महर्षि शरभंजीने जब इस प्रकार कहा तब सब शास्त्रोंके

ज्ञाननेत्रेण पुष्पश्रेष्ठ ममचन्द्रजी उनसे बोले ॥ ३२ ॥ हे महामुने ! यदि आप कहें तो जो लोक आपने जीते हैं, हम उन सबको यहाँ बुलाद परन्तु ३५
 तम आगनी आज्ञा लेकर हम वसना चाहते हैं मो बताइये कि, कौनसे स्थानमें वास करें ॥ ३३ ॥ इन्द्रकी समान वलवान् रुधिरदन श्रीरामचन्द्रजीने जब
 इन प्रकार कहा वन फिर महापंडित शरभंगजी बोले ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस वनमें सुतीक्ष्णनाभक परम तेजस्वी धार्मिक और जितेन्द्रिय एक महर्षि
 शम करतें हैं वन तुम्हारा भटा करेगे और रहनेको स्थानभी बतावेगे ॥ ३५ ॥ और यह जो पुण्यो करके शोभित मन्दाकिनी नदी पूर्वकी ओरको बह रही है सो
 झगड़ किनारों की चले जाइये वन महर्षि सुतीक्ष्णका आश्रम आज्ञाया ॥ ३६ ॥ हे पुरुषोद्दाल ! वहाँ जानेका यह मार्ग दृष्टि आता है हे ताव ! सर्व जिस प्रकार
 पुगनी कंचलीको छोड़कर चला जाता है वैसेही हमभी इस समय यह पुराना देह छोड़ेंगे आप एक मुहूर्तक हमारे ऊपर दृष्टि करके इस स्थानपर खड़े रहिये ॥ ३७ ॥
 अहंमवाहरेव्यामिसर्वालोकात्महामुने ॥ आवासंस्त्वहमिच्छामिप्रदिष्टमिहकानने ॥ ३८ ॥ रावणेन सुक्तस्तुशक्रतुल्यवलंनवे ॥ शरभंगोमहाप्राज्ञः पुन
 र्नात्रवीद्वनः ॥ ३९ ॥ इह राममहातेजाः सुतीक्ष्णो नाम धार्मिकः ॥ वसत्यरण्ये निवतः स ते श्रेयो विधास्यति ॥ ३५ ॥ इमां सदा किं नो राम प्रतिस्रोतामनु
 व्रत ॥ नदीपुष्पे द्वुपवर्हति तत्तावगमिष्यसि ॥ ३६ ॥ एष पंथानख्यावमुहूर्तं पश्यता त माम् ॥ यावज्जहामि गात्राणि जीणांस्त्वचमिवोरगः ॥ ३७ ॥
 ततो म्मिमसमायायदुत्वाचाज्येनमं व्रत ॥ शरभंगो महातेजाः श्रविशहताशनम् ॥ ३८ ॥ तस्य रोमाणिकेशांश्च तदा वह्निर्महात्मनः ॥ जीर्णांस्त्वचं
 तद्वस्त्रीं नियम्य ममं च शोणितम् ॥ ३९ ॥ सच पावक संकाशः कुमारः समपद्यत ॥ उत्थाया श्रिचयात्तरमाच्छरभंगो व्यरोचत ॥ ४० ॥ सलो
 कानाहिताग्नीनामृणीचां च महात्मनाम् ॥ देवानां च व्यतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्यरोहत् ॥ ४१ ॥ सपुण्यकर्मां भुवने द्विजपंथः पितामहं सातु चरंददर्शह ॥
 पितामहश्चापिममीदृयं तं द्विजनं नंदसुस्वागतमित्युवाच ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे पंचमः सर्गः ॥ ५॥
 यत् कहकर भग्न तेजस्वी शरभंगजी क्याविधि अग्निमें ईंधन लगाय मंत्र पढ़ वृत्तसे आहुतिदे उसमें प्रवेश करते हुए ॥ ३८ ॥ भगवान् अधिजीने क्षणमात्रमें ही उन महात्मा
 शरभंगजीके समस्त स्त्री, केग, हड्डी, मांस, रुधिर और पुरानी साल इत्यादि जलाडाली ॥ ३९ ॥ तब शरभंगजी साक्षात् अग्निकी समान मूर्तिमात्र कुमारका रूप धारण
 कर अग्निमें डेरने निकल कर गोभा पाने लगे और उनका पहला रूप जाता रहा ॥ ४० ॥ तिसके पीछे वह अग्निहोत्र करनेवाले महात्मा ऋषिगणोंके और देवताओंके
 मर लोकोसे नांगर दमलोरुको चढ़े गये ॥ ४१ ॥ वहाँ जाकर पुण्यकर्म करनेवाले ब्राह्मणश्रेष्ठ शरभंगजी अनुचरवेष्टित पितामह ब्रह्माजीके दर्शन करते हुये ब्रह्माजीने
 भी उन दिव्यभयंकर दर्शन कर उनको अपने घोर विधाय कुशल प्रश्नकर सब वृत्तोंत पूछा ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा ० वा ० आदि ० अरण्यकांडे भाषाटीकायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

एभंगी जब ब्रह्मलोकको चले गये, तब दंडकवनवासी मुनिगण इकट्ठे होकर तेजसे देदीप्यमान रामचन्द्रजीकी शरणमें आये ॥ १ ॥ उनमें वैश्वानर जो कि, प्रजापतिके नवौंसे उत्पन्न हुए थे, बालखिल्य जो रेतसे उत्पन्न हुए हैं कुछ सम्प्रज्ञाल थे जो परमात्माके चरणोंके घोंतेसे हुये थे कुछ मरीचिप थे जो सूर्य या चन्द्रमाकी किरणकोही पीकर रहते कुछ अश्वकुट्ट थे, जो पत्थरसे कूट २ कर कच्चाही अन्न भक्षण करते, कुछ पत्राहार तापस थे जो केवल पत्तेही भोजन करते ॥ २ ॥ कुछ दन्तोलूखली थे जिनके दांतही ओखलीकी समान थे अर्थात् कच्चा अन्न दातासेही चबा जाते थे, कुछ उन्मज्जक थे जो सदा कंठतक जलमें डूबे रहते, बहुत नारेगात्र शम्प थे जो बिना बिछाये पृथ्वी परही सोते, बहुत अशय्य थे जो सोतेही नहीं कुछ बिछातेही नहीं, वैसेही पृथ्वीपर पड़े रहते थे, बहुत अनवकाशक थे, जिनको वेदाध्ययन और पूजा पाठ करनेसे छुट्टीही नहीं मिलतीथी ॥ ३ ॥ बहुतसे मुनि जलाहारी थे जो जलही पीकर रहते कुछ वायुभोजी थे जो केवल हवाही खाकर जीने, जो

शरभंगेदिवंप्राप्तेमुनिसंवाःसमागताः ॥ अभ्यगच्छंतकाकुत्स्थंरामंज्वलिततेजसम् ॥ १ ॥ वैश्वानसाचालखिल्याःसंप्रज्ञालामरीचिपाः ॥ अश्वकुट्टाश्वहवःपत्राहाराश्वतापसाः ॥ २ ॥ दंतोलूखलिनश्चैवतथैवोन्मज्जकाःपरैः ॥ गात्रशय्याअशय्याश्वतथैवानवकाशिकाः ॥ ३ ॥ मुनयःसलिलाहारावायुभक्षास्तथापरैः ॥ आकाशनिलयाश्चैवतथास्थंडिलशायिनः ॥ ४ ॥ तथोर्ध्ववासिनोदांतास्तथाद्रपट्वाससः ॥ सजपाश्वतपोनिष्ठास्तथापंचतपोन्विताः ॥ ५ ॥ सर्वेब्राह्मयाश्रियायुक्तादृढयोगसमाहिताः ॥ शरभंगाश्रमेराममभिजग्मुश्चतापसाः ॥ ६ ॥ अभिगम्यचथर्मज्ञारामंथर्मभृतांवरम् ॥ ऊचुःपरमथर्मज्ञमृपिसंवाःसमागताः ॥ ७ ॥ त्वमिक्षाकुलस्यास्यपृथिव्याश्वमहारथः ॥ प्रधानश्चापिनाथश्चदेवानामवधानिव ॥ ८ ॥

आकाशनिलय थे जो बिना ऊपर कुछ छायेछुये खुले मैदानमें पड़े रहते कुछ स्थण्डिलयायी जो पृथ्वीपर पड़े रहते ॥ ४ ॥ कुछ ऊर्ध्वबाहु जो कि सदा ऊपरहीको हाथ उठाये रहते, कुछ दान्तये जिनकी इन्द्रिय सदा अपने २ समय परही अपनी २ वासनाको चाहतीं, कुछ ऋषि ऐसे थे जो सदा गीले वस्त्र पहरे रहते ऐसे बहुत जपी जो सदा जप किया करते कुछ तपोनिष्ठ थे जो सदा तपही करके भगवान्का ध्यान किया करते ॥ कुछ पंचतपानुष्ठार्थे जो गरभियोंमें पंचाग्नि तापा करते थे ॥ ५ ॥ यह जितने भर ऋषि लोग थे सत्वर ब्राह्मी श्री विराजमान थी, सबके चिन्त दृढ योगाभ्यासमें लग रहे थे, यह सब तपस्वीगण शरभंगीके आश्रममें आकर रामचन्द्रजीके शरणापन्न हुए ॥ ६ ॥ इस प्रकार धर्मात्मा ऋषिलोग सब वहां आकर धार्मिक श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने कुराल प्रश्न पूछकर बोले ॥ ७ ॥ हे परमथर्मज्ञ ॥ तुम रथी गणोंमें श्रेष्ठहो; इहवाकुलके मध्यमें प्रधानहो, इन्द्रजी जिस प्रकार संसारकी रक्षा करतेहैं वैसेही तमभी सब

निगमे हे गरण्य । हम आश्रय देनेके लिये आपके निकट आये हैं हे श्रीरामचंद्रजी ! आप हम लोगोंकी रक्षा कीजिये । क्योंकि निशाचरगण हम लोगोंका नाश किये देंगे ॥ १९ ॥ हे राजकुमार । इस पृथ्वीपर आपके सिवाय हमारी कोई गति नहीं है हे शुक्लचूड़ामणि ! राक्षसोंके हाथसे हम सबकी आप रक्षा करें ॥ २० ॥ भूमिमा कानुस्थनन्दन श्रीरामचंद्रजी उन तपस्वी ऋषि लोगोंकी ऐसी विपद उनके मुखसे सुनकर सबसे बोले ॥ २१ ॥ कि हमसे इस प्रकार कहनेकी आपको गुण आश्चर्यता नहीं है, हम वो आप लोगोंकी आज्ञाके पालन करनेवाले हैं सो केवल आप अपनेही कार्य करनेको हमें चाहे जिस वनको भेज दीजिये ॥ २२ ॥ जबकि हम इस वनमें आये हैं तब आप लोगोंको जो डर राक्षसोंसे है उसहीको मिटानेके अर्थ व पिताजीकी आज्ञा पालनेके लिये इन दोनों कार्योंके अतिरिक्त और हाथ करनेको हम नहीं आये ॥ २३ ॥ हम जो इस वनमें आये हैं सो आप लोगोंके कार्यको साधन करनेहीके लिये आये हैं क्योंकि जो पिताजीहीकी आज्ञा पालन तत्स्वांशरणार्थचरण्यंसमुपस्थिताः ॥ परिपालयनोरामवध्यमानान्निशाचरैः ॥ १९ ॥ परावृत्तोगतिर्वीरपृथिव्यांनोपपद्यते ॥ परिपालयनःसर्वो ब्रह्मसंभ्यो नृपात्मज ॥ २० ॥ एतच्छ्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानंतपस्विनाम् ॥ इदं प्रोवाच धर्मत्मा सर्वानेव तपस्विनः ॥ २१ ॥ नैवमर्हथ मा वक्तुं मा ज्ञा प्यो हंत पस्विनाम् ॥ केवलं न स्वकायण प्रवेष्टुं व्यवनं मया ॥ २२ ॥ विप्रकारमपाक्रुं राक्षसैर्भवतामिमम् ॥ पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टो हि मदं वनम् ॥ २३ ॥ भवतामर्थसिद्धयर्थमागतो हं यदृच्छया ॥ तस्य मे व्यनवेवासो भविष्यति महाफलः ॥ २४ ॥ तपस्विनां रणे शङ्कन्हंतुमिच्छामि राक्षसान् ॥ पश्यंतु वीर्यं मृपयः स भ्रातुर्मते पोथनाः ॥ २५ ॥ दत्त्वा वरं चापि तपो धनानां धर्मधृतात्मा सह लक्ष्मणेन ॥ तपो धनैश्चापि सहायं दत्तः सुतीक्ष्णमेवाभिजगाम वीरः ॥ २६ ॥ इत्यापे श्रीम० वा० आ० अर० पृष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ रामस्तु संहितो भ्रात्रा सीतया च परंतपः ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः ॥ १ ॥ करती होती तो किसी और ही ओरको चले जाते, अब हमारा वनवास सफल हो जायगा क्योंकि आपका कार्यभी सधैरा ॥ २४ ॥ हमने वनमें तपस्वी लोगोंके शत्रु राक्षसोंके संहार करनेका संकल्प किया है तपोबलसे युक्त ऋषिलोग हमारे और हमारे भ्राताके बाहुबलको देखें ॥ २५ ॥ धर्मधुरन्धर वीर रामचंद्रजी तपस्वी लोगोंको ऐसा वरदान दे उन लोगोंकी पूजा प्राप्तकर और उन्हें साथले लक्ष्मणके सहित सुतीक्ष्ण ऋषिके आश्रमकी ओर चले + ॥ २६ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे भाषाटीकायां पृष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण, सीता और ब्राह्मणोंके साथ

ॐ श्रीगौरी-आगत वपन मुन्यं गुरुनायक । बोले वचन धरे पतुनायक ॥ + दोहा-निरीधर देन करी भक्ति, मुज उटाय प्रण कोन ॥ सकल मुनिके आश्रमन, जाय जाय सुखदीन ॥

मीनाजीके सहित जो कि, हयने तपस्यासे पाये हैं उन सब देवर्षियों करके सेवित लोकोंमें आनन्दसे वस कर काल व्यतीत कीजिये ॥ १२ ॥ पुरन्दर इन्द्रजी जिस प्रकार ग्रमाजीमें घोलने हैं वैसेही आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजी, कठोर तपके तेजसे प्रदीप्यमान सत्यवादी महर्षि सुतीक्ष्णजीसे बोले ॥ १३ ॥ महामुने ! जब हम चाहेंगे तब आपही उन लोकोंको ग्रहण कर लेंगे इस समय हम यह प्रार्थना करते हैं कि, इस समय इस वनमें हमारे रहनेको आप स्थान वतादीजिये ॥ १४ ॥ गीतयंगीय महात्मा शरभंगजीके मुखसे हयने यह बात सुनी है कि, आप सबही कुछ वृत्तान्त जानते हैं; और सब प्राणियोंका हितसाधन करनेमें रत हैं ॥ १५ ॥ जगत्प्रसिद्ध महर्षि सुतीक्ष्णजीसे जब रामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह अतिशय आनन्दित होकर मथुर वचन बोले ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ! यही आश्रम बहुत ही भेद्य है इसमें अनेकानेक ऋषि लोग बसते हैं और कन्द मूल फल भी इस आश्रममें सब समय बहुत सारे मिला करते हैं, अतएव तुम इस स्थानमेंही बसकर तमुग्रतपसं दीप्तं महापिसत्यवादिनम् ॥ प्रत्युवाचात्मवात्रामो ब्रह्माणभिववासवः ॥ १३ ॥ अहमेवाहरिष्यामिस्वयं लोकान् महामुने ॥ आवासं त्व दमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥ १४ ॥ भवान्सर्वत्र कुशलः सर्वभूतहितैरतः ॥ आख्यातं शरभंगेन गौतमेन च हात्मना ॥ १५ ॥ एममुक्तस्तुरामे ण महर्षिलोकं विधुतः ॥ अत्र वीन्मधुरं वाक्यं हर्षेण महता युतः ॥ १६ ॥ अयमेवाश्रमो रामगुणवाञ्छाम्यतामिति ॥ ऋषिसंघानुचरितः स दामूलफले युतः ॥ १७ ॥ इसमाश्रममागम्य मृगसंघामदीयसः ॥ अहत्वा प्रतिगच्छंति लोभयित्वा कुतोभयाः ॥ १८ ॥ नान्यो दोषो भवेदत्र मृगेभ्योन्यत्र विद्धि वै ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य महर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः ॥ १९ ॥ उवाच वचनं धीरो विग्रह्य शरंधनुः ॥ तानहं सुमहाभाग मृगसंघान्समागतान् ॥ २० ॥ हन्यानि शितधारं शरेणानतपर्वणा ॥ भवांस्तत्राभिपज्येत किं स्यात्कृच्छ्रं तं रतः ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नाश्रमे वासं चिरंतुन समर्थये ॥ तमेव मुक्त्वो परमं रामः संध्यामुपागमत् ॥ २२ ॥

वितार करो ॥ १७ ॥ इस आश्रममें अनेक बड़े २ शरीरवाले मृगगण आकर निबर हो इधर उधर सबको अपने रूपसे लुभाते हुए घूमा करते हैं, उनसे कोई नहीं बोलता, और फिर भी लौट जाते हैं ॥ १८ ॥ अतएव आप जानलें कि, कुछ थोड़ा बहुत डर है भी वह केवल पशुगणोंका ही भय है इसके सिवाय इस स्थानमें और कोई भय नहीं है महर्षिके ऐसे वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी ॥ १९ ॥ धनुष और शरग्रहण करके उनसे बोले कि, हे महानुभाव ! उन आये हुए मृगके गुणोंको ॥ २० ॥ अपने पैने धारवाले वाणोंसे हम संहार कर डालेंगे परन्तु ऐसा करनेसे आपको कष्ट होगा सो इससे हमें बड़ा कष्ट होगा ॥ २१ ॥ यह वचन सुन ऋषिराज कुछ न बोले तब रामचन्द्रजीने जाना कि, मुनि मृगोंका वचन नहीं चाहते तब उनसे बोले कि, इस मृगवाधित आश्रमपर बहुत दिनोंतक मरनेकी

इनागी इच्छा नहीं है यह कहकर गमनचन्द्रजी गन्ध्या करनेको गये ॥ २२ ॥ सायंकलकी सन्ध्या करके श्रीरामचन्द्रजी वहीं सुतीक्ष्णजीके आश्रमपर लक्ष्मण
 और ज्ञानरत्नजीके सहित गये ॥ २३ ॥ निमके पीछे गन्ध्या होनेके पश्चात् जब रात्रि हो आई तब महात्मा सुतीक्ष्णजीने, आपही तपस्वियोंके भोजनकरने योग्य
 अन्न इन दो पुरुषश्रेष्ठोंको प्रदान किया और बहुत भोगे आदर भी करने हुए ॥ २४ ॥ इत्यार्ष श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥
 श्रीगमनचन्द्रजी सुतीक्ष्ण करके हम प्रसार पुत्र जाकर लक्ष्मणजीके सहित वह रात्रि इसी आश्रमपर व्यतीत करके प्रभात होतेही जागे ॥ ३ ॥ और सीताजीके सहित
 यदाकालमें उदकर श्रीगमनचन्द्रजीने उन जलमें स्नान करा व हाथ पैर धो जो कि कमलोंकी सुवासने युक्तथा ॥ २॥ फिर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और वैदेहीजी देवताओंके
 अन्त्यार्याश्रिमार्गमें ध्यानव्रताममकल्पयत ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमे गम्ये सीतया लक्ष्मणेन च ॥ २३ ॥ ततः शुभं तापसयोग्यमन्नं स्वंयं सुतीक्ष्णः पुरुष
 पंभन्ध्याम् ॥ ताभ्यामुत्कृत्य ददौ महात्मा संध्या निवृत्तोरजनीं समीक्ष्य ॥ २४ ॥ इत्यार्ष श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आर
 ण्यकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ गमस्तु सहसो मित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः ॥ परिणाम्य निशान्तं तत्र प्रभातं प्रत्युद्ध्यत ॥ १ ॥ उत्थाय च यथा
 कालं गन्ध्याः महसीतया ॥ उपस्पृश्य सुशीतं तोयेनोत्पलमं धिना ॥ २ ॥ अभ्यर्त्ते मिशुरांश्च वैदेहीरामलक्ष्मणौ ॥ कालं विधिवद्भ्यर्चयत्तपस्वि
 भगवतः ॥ ३ ॥ इदं यत्तं दिनकं दृष्ट्वा विगतकल्मषाः ॥ सुतीक्ष्णमभिगम्येदं क्षणं वचनमब्रुवन् ॥ ४ ॥ सुखो पिताः स्मभगवंस्त्वया पूज्येन
 प्रजिनाः ॥ आपृच्छामः प्रयास्यामो मुनयस्त्वर्ग्यं तिनः ॥ ५ ॥ त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममंडलम् ॥ ऋषीणां पुण्यशीलानां दंडकारण्यवासि
 नाम् ॥ ६ ॥ अभ्यनुज्ञातु मिच्छामः सहैभिर्भुनिपुंगवैः ॥ धर्मनित्येस्तपोदातैर्विशिखैरिव पावकैः ॥ ७ ॥ अविषद्या तपोयावत्सूर्यो नातिविरा
 जते ॥ अमार्गं गतान् लक्ष्म्यो प्राप्य वान्ययवर्जितः ॥ ८ ॥
 काव्योक्ति विरानुसार अदि आदि दंडकाश्रमकी पूजा उस तपस्वीभेवित वनमें करते हुए ॥ ३ ॥ और उदय होते हुए सूर्य भगवाचके दर्शन कर निष्पाप वे कुमार सुती
 क्षणके निकट आकर विनीत मनोहर वचनमें बोले ॥ ४ ॥ हे भगवन् । आपके निकट पहुंचई पाकर हम इस रात्रिमें यहां बहुत सुखसे बसे अब हम दण्डकारण्यमें
 जायेंगे हम काण्य आपही अनुमति चाहते हैं क्योंकि यह ऋषि लोग हमको चलनेके अर्थ शीघ्रता करा रहे हैं ॥ ५ ॥ दण्डकारण्यवासी पवित्रस्वभाववाले ऋषि
 योगोंके समस्त आश्रममण्डल दर्शन करनेके लिये हमारी इच्छा हुई है सो हम उनको शीघ्र देखेंगे ॥ ६ ॥ अब इच्छा है कि आप आज्ञा दें तो हम इन सब विना
 धुंधलाही अपि कि गमान मनायुक्त नित्य निरंतर करके निहोने अपनी इन्द्रियोंको जीव लिया है ऐसे मुनिश्रेष्ठोंके साथ चले जायें ॥ ७ ॥ अन्याय करके प्राप्त हुई लक्ष्मीको पाकर

जिम प्रसार पुरुषान् पुरुषोंके मंत्रय छोड मनुष्य असह हो उठता है, सो सूर्यका ताप वैसा असह न होते २ ॥ ८ ॥ हम यहांसे चलनेकी वासना करते हैं श्रीरामचन्द्रजीने यह कहकर लक्ष्मण और सीताजीके साथ सुतीक्ष्णजीके चरणोंकी वन्दना की ॥ ९ ॥ मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्णजीने चरणवन्दन करते हुए उन दोनों राम और लक्ष्मणजीकी उद्भासर गाड आदिङ्गन किया और उनसे स्नेह साने वचन बोले ॥ १० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! लक्ष्मणजी और छायाके समान साथ चलनेवाली इन सीताजीके संग आप निर्विघ्न मार्गमें चल जाय ॥ ११ ॥ हे वीर ! योगमें जिनके चित्त लगे हुए हैं ऐसे दण्डकारण्यवासी इन सब ऋषियोंके रमणीय आश्रम देख आइये ॥ १२ ॥ भोकर प्रसारके बहुत कंद मूल फल सहित फूले हुए वनोंमें जिनमें भले २ श्रेष्ठ मृगगण रहते हैं और पक्षियोंके झुण्डके झुण्ड भरे हैं ॥ १३ ॥ जहां स्वच्छ जल

तावदिच्छामहेतुमित्युक्त्वाचरणौमुनेः ॥ ९ ॥ तौसंस्पृशंतौचरणावुत्थाप्यमुनिपुंगवः ॥ गाढमाह्लि
प्यमस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ अरिष्टगच्छपंथानंरामसौमित्रिणासह ॥ सीतयाचानयासार्धछाययेवानुवृत्तया ॥ ११ ॥ पश्याश्रमपदंरम्यं
दंडकारण्यवासिनाम् ॥ एपांतपस्त्विनवीरतपसाभावितात्मनाम् ॥ १२ ॥ सुप्राज्यफलमूलानिपुष्पितानिवनानिच ॥ प्रशस्तमृगयूथानिशान्तप
क्षिगणानिच ॥ १३ ॥ फुल्लपंकजखंडानिप्रसन्नसलिलानिच ॥ कारंडवविकीर्णानितटाकानिसरांसिच ॥ १४ ॥ द्रक्ष्यसेदृष्टिरम्याणिगिरिप्रस्रवणा
निच ॥ रमणीयान्यरण्यानिमयूराभिरुतानिच ॥ १५ ॥ गम्यतांवत्ससौमित्रभवानपिचगच्छतु ॥ आगतंव्यंचतेहद्वापुनरेवाश्रमंप्रति ॥ १६ ॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वाकाकुत्स्थःसहलक्ष्मणः ॥ प्रदक्षिणंमुनिंकृत्वाप्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ १७ ॥ ततःशुभतरंतूणीधनुपीचायतेक्षणा ॥ ददौसीता
तयोर्भ्रात्रोःखड्गौचविमलौततः ॥ १८ ॥ आवध्यचशुभेतूणीचापेचादायसस्वने ॥ निष्क्रान्तावाश्रमाद्व्रतुभौतौरामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥

वाली ताल तलैयाँमें कमल फूल रहें और उन्हीं तालावों पर हंस और कारंडवादि पक्षी विराज रहे हैं ॥ १४ ॥ और इनके अतिरिक्त देखनेमें अतिमनोहर पर्वतोंके शरत और जहां भी मोर शोर-कर रहे हैं ऐसे वन भी आप देखेंगे ॥ १५ ॥ वत्स सौमित्रे ! गमन करो श्रीरामचन्द्रजी आपभी जाय, परन्तु इन सब आश्रमोंके दर्शन करके फिर भी इस स्थानमें आप लौटकर आवें ॥ १६ ॥ जब सुतीक्ष्णजी यह बोले तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि ऐसाही होगा यह कहकर लक्ष्मणजीके साथ सुतीक्ष्णजीभी पारक्रम कर जानेके लिये तैयार हुये ॥ १७ ॥ अनन्तर वडे २ नेत्रवाली सीताजीने दोनों भादर्योंको श्रेष्ठ तरकस धनुष और दो निर्मल खड्ग दिये जो कि रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीने खोलकर पर दियेये ॥ १८ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी दोनों प्रभ तर न २ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १००० १००१ १००२ १००३ १००४ १००५ १००६ १००७ १००८ १००९ १०१० १०११ १०१२ १०१३ १०१४ १०१५ १०१६ १०१७ १०१८ १०१९ १०२० १०२१ १०२२ १०२३ १०२४ १०२५ १०२६ १०२७ १०२८ १०२९ १०३० १०३१ १०३२ १०३३ १०३४ १०३५ १०३६ १०३७ १०३८ १०३९ १०४० १०४१ १०४२ १०४३ १०४४ १०४५ १०४६ १०४७ १०४८ १०४९ १०५० १०५१ १०५२ १०५३ १०५४ १०५५ १०५६ १०५७ १०५८ १०५९ १०६० १०६१ १०६२ १०६३ १०६४ १०६५ १०६६ १०६७ १०६८ १०६९ १०७० १०७१ १०७२ १०७३ १०७४ १०७५ १०७६ १०७७ १०७८ १०७९ १०८० १०८१ १०८२ १०८३ १०८४ १०८५ १०८६ १०८७ १०८८ १०८९ १०९० १०९१ १०९२ १०९३ १०९४ १०९५ १०९६ १०९७ १०९८ १०९९ ११०० ११०१ ११०२ ११०३ ११०४ ११०५ ११०६ ११०७ ११०८ ११०९ १११० ११११ १११२ १११३ १११४ १११५ १११६ १११७ १११८ १११९ ११२० ११२१ ११२२ ११२३ ११२४ ११२५ ११२६ ११२७ ११२८ ११२९ ११३० ११३१ ११३२ ११३३ ११३४ ११३५ ११३६ ११३७ ११३८ ११३९ ११४० ११४१ ११४२ ११४३ ११४४ ११४५ ११४६ ११४७ ११४८ ११४९ ११५० ११५१ ११५२ ११५३ ११५४ ११५५ ११५६ ११५७ ११५८ ११५९ ११६० ११६१ ११६२ ११६३ ११६४ ११६५ ११६६ ११६७ ११६८ ११६९ ११७० ११७१ ११७२ ११७३ ११७४ ११७५ ११७६ ११७७ ११७८ ११७९ ११८० ११८१ ११८२ ११८३ ११८४ ११८५ ११८६ ११८७ ११८८ ११८९ ११९० ११९१ ११९२ ११९३ ११९४ ११९५ ११९६ ११९७ ११९८ ११९९ १२०० १२०१ १२०२ १२०३ १२०४ १२०५ १२०६ १२०७ १२०८ १२०९ १२१० १२११ १२१२ १२१३ १२१४ १२१५ १२१६ १२१७ १२१८ १२१९ १२२० १२२१ १२२२ १२२३ १२२४ १२२५ १२२६ १२२७ १२२८ १२२९ १२३० १२३१ १२३२ १२३३ १२३४ १२३५ १२३६ १२३७ १२३८ १२३९ १२४० १२४१ १२४२ १२४३ १२४४ १२४५ १२४६ १२४७ १२४८ १२४९ १२५० १२५१ १२५२ १२५३ १२५४ १२५५ १२५६ १२५७ १२५८ १२५९ १२६० १२६१ १२६२ १२६३ १२६४ १२६५ १२६६ १२६७ १२६८ १२६९ १२७० १२७१ १२७२ १२७३ १२७४ १२७५ १२७६ १२७७ १२७८ १२७९ १२८० १२८१ १२८२ १२८३ १२८४ १२८५ १२८६ १२८७ १२८८ १२८९ १२९० १२९१ १२९२ १२९३ १२९४ १२९५ १२९६ १२९७ १२९८ १२९९ १३०० १३०१ १३०२ १३०३ १३०४ १३०५ १३०६ १३०७ १३०८ १३०९ १३१० १३११ १३१२ १३१३ १३१४ १३१५ १३१६ १३१७ १३१८ १३१९ १३२० १३२१ १३२२ १३२३ १३२४ १३२५ १३२६ १३२७ १३२८ १३२९ १३३० १३३१ १३३२ १३३३ १३३४ १३३५ १३३६ १३३७ १३३८ १३३९ १३४० १३४१ १३४२ १३४३ १३४४ १३४५ १३४६ १३४७ १३४८ १३४९ १३५० १३५१ १३५२ १३५३ १३५४ १३५५ १३५६ १३५७ १३५८ १३५९ १३६० १३६१ १३६२ १३६३ १३६४ १३६५ १३६६ १३६७ १३६८ १३६९ १३७० १३७१ १३७२ १३७३ १३७४ १३७५ १३७६ १३७७ १३७८ १३७९ १३८० १३८१ १३८२ १३८३ १३८४ १३८५ १३८६ १३८७ १३८८ १३८९ १३९० १३९१ १३९२ १३९३ १३९४ १३९५ १३९६ १३९७ १३९८ १३९९ १४०० १४०१ १४०२ १४०३ १४०४ १४०५ १४०६ १४०७ १४०८ १४०९ १४१० १४११ १४१२ १४१३ १४१४ १४१५ १४१६ १४१७ १४१८ १४१९ १४२० १४२१ १४२२ १४२३ १४२४ १४२५ १४२६ १४२७ १४२८ १४२९ १४३० १४३१ १४३२ १४३३ १४३४ १४३५ १४३६ १४३७ १४३८ १४३९ १४४० १४४१ १४४२ १४४३ १४४४ १४४५ १४४६ १४४

करनेके लिये आश्रमसे बाहर हुए ॥ १९ ॥ रूपवान् दोनों रघुवीरोंने महर्षि सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा पाकर धनुष बाण और अग्नि धारण करके सीताजीके सहित शीघ्र यात्राकी ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायामध्यः सर्गः ॥ ८ ॥ रघुनन्दन रामचन्द्रजी जब सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा लेकर यात्रा करने लगे तब सीताजी सेह साने मनोहर वचन श्रीरामचन्द्रजीसे बोलीं ॥ १ ॥ यद्यपि आप अतिशय महात्मा हैं परन्तु परमसूक्ष्मरूपसे विचार कर देखनेसे आप अधर्मको संशय करते हैं, इस समय कामजव्यसनसे निवृत्त होतेही यह अधर्म नहीं होगा ॥ २ ॥ कामज व्यसन तीन प्रकारके हैं मिथ्यावाक्य अर्थात् झूठ बोलना व इसमें भी परम भारी और दो पाप हैं ॥ ३ ॥ परस्त्री गमन (पराई स्त्रीसे भोग करना) और विना वरकेही वृथा प्राणीको मार डालना यह पाप बड़े भारी हैं हे रघुनन्दन ।

शीघ्रतोरूपसंपन्नावनुज्ञातौमहर्षिणा ॥ प्रस्थितौधृतचापासीसीतयासहरावधौ ॥ २० ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य आरण्यकाण्डेऽष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातंप्रस्थितंरघुनन्दनम् ॥ हृदयास्निग्धयावाचाभर्तारिमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ अधर्मतुमुद्धमंणविधिनाप्राप्यतेमहान् ॥ निवृत्तेनचशक्योयंव्यसनात्कामजादिह ॥ २ ॥ त्रीण्येवव्यसनान्यद्यकामजानिभवंत्युत ॥ मिथ्यावाक्यंतुपरमंतस्माद्गुरुतरावुभौ ॥ ३ ॥ परदाराभिगमनंविनावेरंचरीद्रता ॥ मिथ्यावाक्यंनतेभूतंनभविष्यतिराघव ॥ ४ ॥ कुतोभिलपणंस्त्रीणांपरंपांधर्मनाशनम् ॥ तवनास्तिमनुष्येन्द्रनचाभूतेकदाचन ॥ ५ ॥ मनस्यपितथारामनचेतद्विद्यतेकचित् ॥ स्वदारनिरतश्चेन्नित्यमेवतृपात्मज ॥ ६ ॥ धर्मिष्ठःसत्यसंधश्चपितुर्निर्देशकारकः ॥ त्वयिधर्मश्चसत्यंचत्वयिसर्वप्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥ तच्चसर्वमहाबाहोसत्यंवोढुंजितेंद्रियैः ॥ तववश्येन्द्रिय त्वंचभूतानांशुभदर्शन ॥ ८ ॥ तृतीयंयदिदरींद्रंरप्राणाभिर्हिसनम् ॥ निर्वरंकियतेमोहात्तच्चैतसमुपस्थितम् ॥ ९ ॥

आपने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा न कभी आप आगेको कहेंगे ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! और आप धर्मका नारा करतेवाला परस्त्रीगमन नहीं करते सो हे नरनाथ ! ना तो यह बात आपमें कभी हुई न होगी ॥ ५ ॥ आपने किसी कारण वश होकर मनके बीचमें भी पराई स्त्रीकी अभिलाषा नहीं की । हे राजकुमार ! आप सदाही अपनी स्त्रीमें अनुरागी रहते हैं ॥ ६ ॥ आप धर्मात्मा और सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले हैं पिताजीकी आज्ञा पालन कर रहे हैं धर्म और सत्य सब आपमेंही टिके हुये हैं ॥ ७ ॥ हे महाबाहो ! जो लोग जितेंद्रिय हैं वह लोगही इन सब बातोंका पालन कर सकते हैं । हे शुभदर्शन ! सब प्राणी आपकी जितेंद्रियताको जानते हैं ॥ ८ ॥ परन्तु विना अपराध प्राणियोंकी हिंसा करनेका जो यह भयानक तीसरा व्यसन है इस समय वही व्यसन आपमें उपस्थित हुआ है ॥ ९ ॥

क्षीर। आपने प्रतिज्ञा की है कि, दंडकारण्यवासी ऋषि लोगोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें हम राक्षसोंके प्राणसंहार करेंगे ॥ १० ॥ इसी कारण आपने धनुष बाण ग्रहण करके लक्ष्मण सहित दण्डक नामसे जो वन विख्यात है उसमें यात्रा की है ॥ ११ ॥ अतएव आपको यात्रा करते हुए देखकर और आपका अंगीकार पालन रूपवत जानकर आपने पारलौकिक और ऐहिक सुखके विषयमें हमारे मनको बड़ी चिन्ता होरही है ॥ १२ ॥ हे वीर ! दंडकारण्यका जाना हमें अच्छा नहीं लगता सो इसका कारण भी कहती हैं आप श्रवण करें ॥ १३ ॥ हे महाराज ! आप धनुष बाण ग्रहण करके भाईके सहित वनको जायेंगे वहां पर जो आप किसी राक्षसको देरा पावेंगे वो कहीं न कहीं अश्वरथही बाण त्याग करेंगे ॥ १४ ॥ निकट रखवा हुआ काठ जैसे अधिक तेजको बढाता है वैसे ही यह धनुष जिसके पास रहता है

प्रतिज्ञातस्त्वयावीरदंडकारण्यवासिनाम् ॥ ऋषीणांरक्षणार्थायवधःसंयतिरक्षसाम् ॥ १० ॥ एतन्निमित्तंचनंदंडकाइतिविश्रुतम् ॥ प्रस्थितस्त्वं सहभ्रात्राधृतयाणशरासनः ॥ ११ ॥ ततस्त्वाग्रस्थितंदृष्ट्वा ममचित्ताकुलमनः ॥ तद्वृत्तंचितयंत्यावेभवेन्निःश्रेयसंहितम् ॥ १२ ॥ नहिमेरोचते वीरगमनंदंडकान्प्रति ॥ कारणंतत्रवक्ष्यामिवदंत्याःश्रूयतांमम ॥ १३ ॥ त्वंहिबाणधनुष्पाणिभ्रात्रासहवनंगतः ॥ दृष्ट्वावनचरान्सर्वान्कञ्चित्कुर्याः शरव्ययम् ॥ १४ ॥ क्षत्रियाणामिहधनुर्हुताशस्येधनानिच ॥ समीपतःस्थितंतेजोबलमुच्छ्रयतेभृशम् ॥ १५ ॥ पुराकिलमहाबाहोतपस्वी सत्यवाञ्छुचिः ॥ कस्मिंश्चिदभवपुण्येवनेरतमृगद्विजे ॥ १६ ॥ तस्यैवतपसोविघ्नं कर्तुमिद्रःशचीपतिः ॥ खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमंभटरू पथृक् ॥ १७ ॥ तस्मिंस्तदाश्रमपदेनिहितःखड्गउत्तमः ॥ संन्यासविधिनादत्तःपुण्येतपसितिष्ठतः ॥ १८ ॥ सतच्छस्त्रमनुप्राप्यन्यासरक्षणत त्परः ॥ वनेतुविचरत्येवरक्षन्प्रत्ययमात्मनः ॥ १९ ॥ यत्रगच्छत्युपादातुंमूलानिचफलानिच ॥ नविनायातितंखड्गंन्यासरक्षणतत्परः ॥ २० ॥

पदभी किसी न किसी पर चलायाही चाहता है क्योंकि क्षत्रियोंके पास रहकर धनुष उनके बलको बढाता है ॥ १५ ॥ हे महाबाहो ! पहले कोई मृग पक्षियों करके पुनः पुण्यमय वनके बीच एक सत्यमें टिके हुए पवित्र आचरण करनेवाले तपस्वी रहतेथे ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्रजी इन ऋषिको तपस्यामें विघ्न करनेके लिये योद्धाका वेष बनाय खड्ग हाथमें लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ और उस आश्रममें उस तपोनिष्ठ पवित्र मुनिके पास धरोहरकी भांति खड्ग रखकर चले गये ॥ १८ ॥ मुनिजी इस अस्रको पाकर इसकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न करने लगे और विश्वासपातक न बनना पडे इस कारण इस अस्रको संगही लेकर वनमें घुमने लगे ॥ १९ ॥ वह धरोहर वस्तुकी रक्षा करनेमें इतना यत्न करते कि जबकि

देवी ! आपने यज्ञ की दे कि, दंडकारण्यरामी अपि लोगोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें हम राक्षसोंके प्राण संहार करेंगे ॥ १० ॥ इसी कारण आपने धनुष बाण ग्रहण करके अश्वमत्त दण्डक नाममें जो वन विख्यात है उसमें यात्रा की है ॥ ११ ॥ अतएव आपको यात्रा करते हुए देखकर और आपका अंगीकार पालन रूपवत् जानकर आपने पाण्डुरांग और ऐन्द्रिक सुरांग हमारे विषयमें हमारे मनको बड़ी चिन्ता होरही है ॥ १२ ॥ हे वीर ! दंडकारण्यका जाना हमें अच्छा नहीं लगता सो इसका कारण भी सहती है आप भयन कर ॥ १३ ॥ हे महाराज ! आप धनुष बाण ग्रहण करके भाईके सहित वनको जायेंगे वहां पर जो आप किसी राक्षसको देखें उसे तो कहीं न कहीं अश्वयज्ञी बाण त्याग करेंगे ॥ १४ ॥ निकट रक्षा हुआ काठ जैसे अधिक तेजको बढ़ाता है वैसे ही यह धनुष जिसके पास रहता है

प्रतिज्ञातस्तत्प्राप्यदंडकारण्यव्यामिनाम् ॥ ऋषीणां रक्षणार्थाय वयः संयतिरक्षसाम् ॥ १० ॥ एतन्निमित्तं वचनं दंडका इति विश्रुतम् ॥ प्रस्थितस्तत्त्वं महाभान्नाश्रुतवाणशरामनः ॥ ११ ॥ ततस्त्वां प्रस्थितं दंडाममर्चिताकुलमनः ॥ तद्वृत्तं चितयंत्यावभवेन्निःश्रेयसं हितम् ॥ १२ ॥ नहि मे रोचते गीर्गमनं दंडान्म्रति ॥ कारणंतत्र वक्ष्यामि वदंत्याः श्रूयतां मम ॥ १३ ॥ त्वं हि बाणधनुष्याणि भ्रात्रा सह नंगतः ॥ दृष्ट्वा वनचरान्सर्वान्कञ्चित्कुर्याः शक्यमपि ॥ १४ ॥ क्षत्रियाणामिह धनुर्दुताः शस्ये वनानि च ॥ समीपतः स्थितं तेजो बलमुच्छ्रयते भृशम् ॥ १५ ॥ पुरा किल महाबाहो तपस्वी मत्पयान्मुनिः ॥ कस्मिंश्चिद्भवपुण्ये वर्नेतमृगद्विजे ॥ १६ ॥ तस्यैव तपसो विघ्नं कर्तुं मिदः शचीपतिः ॥ खड्गपाणि रथागच्छदाश्रमं भटरूपधृक् ॥ १७ ॥ तस्मिंस्तदाश्रमपदे निहितः खड्ग उत्तमः ॥ संन्यासविधिना दत्तः पुण्ये तपसि तिष्ठतः ॥ १८ ॥ स तच्छस्त्रमनुप्राप्य न्यासरक्षणतत्परः ॥ वने तु विचरत्यवगन्तव्यमात्मनः ॥ १९ ॥ यत्र गच्छत्युपादातुं मूलानि च फलानि च ॥ न विनायाति तं स्वङ्गन्यासरक्षणतत्परः ॥ २० ॥

१० की न किसी पर चलाया हो चाहता है क्योंकि क्षत्रियोंके पास रहकर धनुष उनके बलको बढ़ाता है ॥ १५ ॥ हे महाबाहो ! पहले कोई मृग पक्षियों करके पुरुष पुण्यवत् वनके बीच एक नत्यमें टिके हुए पवित्र आचरण करनेवाले तपस्वी रहते थे ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्रजी इन ऋषियोंको तपस्यामें विघ्न करनेके लिये सोचा था ऐस पनाप राक्ष हायमें लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ और उस आश्रममें उस तपोनिष्ठ पवित्र मुनिके पास धरोहरकी भांति खड्ग रखकर चले गये ॥ १८ ॥ मुनिजी इन अश्वमेधोपासक इनकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न करने लगे और विश्वासघातक न बनना पड़े इस कारण इस अश्वको संगही लेकर हमने वनमें लगे ॥ १९ ॥ यह परोक्ष वस्तु ही रक्षा करनेमें इतना यत्न

नहीं करते थे ॥ २० ॥ सदा सन्न संग लिये फिरनेसे सहज २ में मुनिका विवास तप करनेसे हट गया और उनका स्वभाव कठोर हो गया ॥ २१ ॥ तिसके पीछे वह उभी गन्ने प्राणियोंको मारने लगे और मतवालेसे होगये और अधर्मसे धिर शत्रु साथ रखनेसे अंत समय नरक को गये ॥ २२ ॥ शत्रुको पास रखनेसे पहले ऐसा हुआया इसही कारणसे पंडित लोग शत्रुसंयोगको अधिसंयोगकी समान विकारका हेतु कहा करते हैं ॥ २३ ॥ हे प्राणनाथ ! हम आपसे बहुत स्नेह करती हैं इस कारण आपको स्मरण दिलाती हैं कुछ हम आपको शिक्षा नहीं करती ! हे वीर ! आप धनुष धारण करके ऐसा कार्य मत कीजिये ॥ २४ ॥ निरपराध दंडकवासी गधमर्कको मानेका विचार मत कीजिये हे वीर ! विना अपराध किसीको भी बध करना आपको उचित नहीं है ॥ २५ ॥ वनमें विचरते हुए क्षत्रियोंका धनुष गधमर्कको मानेका विचार मत कीजिये हे वीर ! विना अपराध किसीको भी बध करना आपकी उचित नहीं है ॥ २६ ॥ वनवासीको क्या शत्रु धारण करना उचित है तपस्वि धारण करना निरपराध जीवोंको मारनेके लिये नहीं बरन दुःखी लोगोंकी रक्षाही करनेके लिये है ॥ २७ ॥ ततः सरोद्राभिरतः प्रमत्तो धर्मकर्मकर्पितः ॥ तस्य शस्त्रस्य सं नित्यं शत्रुपरिवहनकमेण सतपोधनः ॥ चकार रौद्रीं स्वाधुद्धित्यवत्तातपसि निश्चयम् ॥ २१ ॥ ततः सरोद्राभिरतः प्रमत्तो धर्मकर्मकर्पितः ॥ तस्य शस्त्रस्य सं नित्यं शत्रुपरिवहनकमेण सतपोधनः ॥ चकार रौद्रीं स्वाधुद्धित्यवत्तातपसि निश्चयम् ॥ २३ ॥ स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये वासान्गामनरकं मुनिः ॥ २२ ॥ एवमेतत्परावृत्तं शस्त्रसंयोगकारणम् ॥ अग्नि संयोगवद्धेतुः शस्त्रसंयोग उच्यते ॥ २३ ॥ स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वानशिशये ॥ न कथंचन साकार्या गृहीत धनुषात्पथा ॥ २४ ॥ बुद्धिर्वैरं विना हंतुं राक्षसान् दंडकाश्रिताम् ॥ अपराधं विना हंतुं लोको वीरन्ममं स्यते ॥ २५ ॥ क्षत्रियाणां तु वीराणां यनेषु निपतात्मनाम् ॥ धनुषाकार्ये भेदादातानामभिरक्षणम् ॥ २६ ॥ कचशस्त्रं कचवर्नकं च क्षात्रंतपः क्रच ॥ व्याविद्धमिदमस्मा भिर्दंशधर्मस्तु पूज्यताम् ॥ २७ ॥ कदर्यकलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात् ॥ पुनर्गत्वा त्वयोध्यायां शत्रुधर्मं चरिष्यसि ॥ २८ ॥ अक्षया तु भवेत् प्रीतिः शत्रू शत्रुरयोर्मम ॥ यदिराज्यं हि संन्यस्य भवेत्स्वन्निरतो मुनिः ॥ २९ ॥ धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् ॥ धर्मेण लभते सर्वधर्मसारमिदं जगत् ॥ ३० ॥ आत्मानं नियमे स्तैस्तेः कर्पयित्वा प्रायन्नतः ॥ प्राप्य ते निपुणे धर्ममौनसुखा लभते सुखम् ॥ ३१ ॥ योंमें क्या क्षत्रियोंका स्वभाव गोभा पाता है ? कहां शत्रु ? कहां वन ? कहां क्षत्रियधर्म ? कहां तप ? यह सब कर्म एक दूसरेसे विरुद्ध हैं इससे वनका ही धर्म यहां पर वर्ना चाहिये ॥ २७ ॥ बराबर गयरा व्ययहार करनेसे बुद्धि का दर और मलिन होजाती है जब आप अयोध्याजीको लौट चले तब फिर क्षत्रियोंके धर्मका आचरण कर लेंगा ॥ २८ ॥ आप राज्यपरित्याग करके जो यहां पर ऋषियोंके धर्मका आचरण करेंगे तो हमारे पास और श्वशुर दशरथजीकी प्रीतिभी आपमें अधिक होगी । क्योंकि उन्होंने भी यही आज्ञा दी है कि मुनिवेष धारण कर वनमें वसो ॥ २९ ॥ धर्मसे ही अर्थका लाभ होता है धर्मसे ही सुख उत्पन्न होता है वरन् धर्मसे ही सब कुछ गान होजाता है इन कारण धर्मही मंसारमें एक मात्र सार वस्तु है अतएव आपभी धर्मका ही आचरण कीजिये ॥ ३० ॥ चतुर मनुष्य बहुत यत्नसे शरीरको कष्ट दे दुर्बल

करके धर्मका लाभ करवें, क्योंकि शारीरिक सुखजनक उपायसे धर्म प्राप्त नहीं होता ॥ ३१ ॥ हे प्रियदर्शन ! तुम सदा शुद्धचित्त होकर, तपोवनमें करने योग्य जो धर्मगुणानहैं उनके करनेमें मन लगाओ त्रिभुवनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म सब विषयही आपको विदितहैं तब फिर कौन धर्मविषयमें आपको समझा सकताहै ? ॥ ३२ ॥ हम ने केवल यियोंके स्वभावसे जो चंचलता होतीहै उसकेही वश होकर ऐसा कहा इस समय अनुज लक्ष्मणके साथ विचार करके जो उचित समझा जाय, विलम्ब न लगाकर उसको कीजिये ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

पतिकी भक्ति करनेवाली मैथिली जानकीजीके ऐसे वचन कहनेपर परम धर्मनिष्ठ रामचन्द्रजी उनको सुनकर अपनेको भली भांति समादृत जान उत्तर देतेहुए ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञे देवि जानकी ! तुमने स्नेह वचनसे क्षत्रियकुलका धर्म बताकर जो कुछ कहा वह सबही हितकारी और बहुत अच्छाहै ॥ २ ॥ किन्तु देवी ! कोई नित्यशुचिमतिःसौम्यचरधर्मतपोवने ॥ सर्वतुविदितंतुभ्यत्रैलोक्यमपितत्त्वतः ॥ ३२ ॥ स्त्रीचापलादेतदुदाहृतंमेधर्मचवचुंतवकःसमर्थः ॥ विचार्य बुद्ध्यातुसहानुजेनयद्रोचतेतत्कुरुमाचिरेण ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आरण्यकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ वाक्यमेतत्तुर्वेदेह्याव्याहृतंभर्तृ भक्त्या ॥ श्रुत्वाधर्मेस्थितोरामःप्रत्युवाचाथजानकीम् ॥ १ ॥ हितशुक्तंवायेदविस्निग्धयासदृशंवचः ॥ कुलंव्यपदिशंत्याचयर्मज्ञेजनकात्म जे ॥ २ ॥ किंतुवक्ष्याम्यहंदेवित्वयैवोक्तमिदंवचः ॥ क्षत्रियैर्धार्थेतेचापोनार्तशब्दोभवेदिति ॥ ३ ॥ तेचार्तादंडकारण्येमुनयःसंशितव्रताः ॥ मांसितेस्वयमागम्यशरण्यंशरणंगताः ॥ ४ ॥ वसंतःकालकालेषुवनेमूलफलाशनाः ॥ नलभंतेसुखंभीरुराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥ ५ ॥ भक्ष्यंतेराक्ष सैर्भीमेर्नमांसोपजीविभिः ॥ तेभक्ष्यमाणानुनयोदंडकारण्यवासिनः ॥ ६ ॥ अस्मानभ्यवपद्येतेमामृदुद्रिजसत्तमाः ॥ मयातुवचनंश्रुत्वातेषा मेवंमुखाद्युतम् ॥ ७ ॥ कृत्वावचनशुश्रूषांवाक्यमेतदुदाहृतम् ॥ प्रसीदंतुभवंतोमेद्वीरेयातुममातुला ॥ ८ ॥

दुःखित होकर वचन न सुनावे इसही कारण क्षत्रियलोग धनुष धारण करते हैं सो यह वार्त्ता कहकर तुमने स्वयंही अपने प्रश्नका उत्तर देलियाहै फिर भला हम और क्या उतरें ॥ ३ ॥ दंडकारण्यके रहनेवाले महातपस्वी ऋषि लोग दुःखित होकर स्वयंही यहां आकर हमको सबका शरण देनेवाला समझ हमारी शरण आये ॥ ४ ॥ अपि भीरु ! वह लोग नित्य फल मूल भक्षण करके वनमें वास करवें, परन्तु क्रूरकर्म करनेवाले राक्षसोंके उपद्रव करनेसे वह मुनिगण सुख नहीं पा सकते ॥ ५ ॥ इसके मियाय राक्षस नरमांसभोजी तो होतेही हैं सो वैसे नरमांसोपजीवी भयंकर स्वभाववाले राक्षसोंसे अनेक मुनि लोग भक्षण किये गये हैं ॥ ६ ॥ उनसे पचेरुचे दंडकारण्यवासी मुनि लोगोंने हमारे निकट आ हमसे यह सब दुःखका वृत्तांत कहा तब हम उनके तेसे वचन सुन ॥ ७ ॥ उनकी प्र प्रा दर्शन पर उनसे

बोले कि आप हम पर प्रसन्न हूँजिये हमको बहुतही लज्जा आतीहै कि आपके ऐसे दुःखित वचन सुनै ॥ ८ ॥ क्योंकि आप लोग स्वभावसेही हम लोगोंके पूज्य हैं किन्तु हम ममय आप हमारी शरणमें आये अनन्तर हमने उनके सामनेही कहा कि हमें क्या करना होगा सो आज्ञा कीजिये ॥ ९ ॥ तब सवहीने एकत्रहो मिल कर कहा राम ! दंडकारण्यमें बहुसंख्याक कामरूप निराचरोंने एकत्र होकर अतिशय कष्ट देना आरंभ कियाहै ॥ १० ॥ आप उनके हाथोंने हमारा उद्धार कीजिये । हे अनघ ! होम करनेके काल और पूर्णमासी अमावास्याके दिन जब हम यज्ञ करने लगतेहैं ॥ ११ ॥ तब वह मांसके खानेवाले राक्षस लोग आय २ कर हृत्प्रक्षिति यज्ञविध्वंस करने और हमको मारते हैं अतएव इन राक्षसोंने व्याकुल महातपस्वी लोगोंको ॥ १२ ॥ आप वचाइये उन लोगोंको हम पराजित नहीं कर सकते तबमें रत ऋषिगण इस प्रकार राक्षसोंके दुःख फंदमें फँसकर छुटकारा पानेकी वासनासे आपकी शरण लेतेहैं ।

यदीदृशेन्द्रविप्रेरूपस्थितः ॥ किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसंनिधौ ॥ ९ ॥ सर्वैर्यसमागम्य वाग्विजयं सुदाहता ॥ राक्षसे दंडकारण्ये बहुभिः कामरूपिभिः ॥ १० ॥ अर्दिताः स्मश्रु शंखं भवान्नस्तरक्षतु ॥ होमकाले तु संप्राप्ते पर्वकाले पुचानव ॥ ११ ॥ धर्ययति स्म दुर्धरा राक्षसाः पिशिता शनाः ॥ राक्षसे र्धयितानां च तापसानां तपस्विनाम् ॥ १२ ॥ गतिं मृगयमाणानां भवान्नः परमागतिः ॥ कामंतपः प्रभावेण शक्ता हंतुं निशाचरान् ॥ १३ ॥ चिरार्जितं न चेच्छामस्तपः खंडयितुं वयम् ॥ बहुविघ्नन्तपो नित्यं दुश्चरैश्चैव रावव ॥ २४ ॥ तेन शापं न मुंचामो भक्ष्यमाणाश्च राक्षसैः ॥ तदर्थं मानान्नक्षो भिदंडकारण्यवासिभिः ॥ १५ ॥ रक्षकस्त्वं संच भ्रात्रा त्वन्नाथा हि वयं वने ॥ मया चेत्तद्वचः श्रुत्वा कात्स्न्येन परिपालनम् ॥ १६ ॥ ऋषीणां दंडकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे ॥ संश्रुत्य च न शक्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम् ॥ १७ ॥

आपही हम लोगोंके परम गतिहैं यद्यपि हम तपस्याके प्रभावसे स्वयंभी राक्षसोंका संहार कर सकतेहैं ॥ १३ ॥ तथापि बहुत कालकी बटोरी हुई तपस्याके क्षय करनेको हमारा अभिलाष नहीं होता । हे युधुनन्दन ! तपस्या जैसे कि बहुत कष्टोंसे इकट्ठी होतीहै वैसेही इकट्ठा करनेके समय इसमें अनेक विघ्नभी होतेहैं ॥ १४ ॥ इसी कारणसे राक्षस लोग खाभी लेतेहैं पर हम उनको शाप देकर नहीं मारते, क्योंकि तपका फल शाप देनेसे नहीं रहता विससे दंडकारण्यवासी राक्षसोंसे मलाये हुए हम लोगोंकी ॥ १५ ॥ भ्राता लक्ष्मणके सहित आप रक्षा करें क्योंकि आपही हमारे रक्षाकर्ता हैं जब हमने मुनियोंके ऐसे वचन सुने तब उनसे कहा कि, आप लोगोंका पाटन हम सब प्रकारसे करेंगे ॥ १६ ॥ हे जानकी ! हमने दंडकारण्यवासी तपस्विगणोंकी यह वार्त्ता सुनकर उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की

आदिकों करके युक्त सरोवर देखे ॥ ३ ॥ चीता, बाघ आदिकोंके झुण्डके झुण्डके शींग जिनके ऐसे मदसे उन्पद भैसे वराह और वृद्धोंके घेरी हाथी ॥ ४ ॥
देराने दिखाते चले तिमरे पीछे जब दिवाकर अस्ताचलमम्बदीन हुए तब रामचन्द्र लक्ष्मण व सीताजीने बहुत दूर चलकर एक योजनमें विस्तार जिसका ऐसा एक
तालव देखा ॥ ५ ॥ उस तालाबमें हाथियोंके झुण्डके झुण्ड नहा रहे, बहुत सारे लाल और श्वेत कमलफूल खिल रहे जलपक्षी सारास और हंस कछेलें कर रहेये ॥ ६ ॥
और उसका जल अनिर्गल था श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण व जानकीजीने उस रमणीय सरोवरपर गीत और वाजेका शब्द सुना, परन्तु कोई गाने बजानेवाला दिखाई न
दिया ॥ ७ ॥ ग्रहारथी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी दोनों कौतूहलके बरा होकर धर्मभृत नामक ऋषिसे पूछते हुए ॥ ८ ॥ हे महर्षे ! यह बड़े आश्चर्यका शब्द सुनकर हम
ग्रूथयंत्र्याश्रुपत्तांमदोन्मत्तान्वियपाणिनः ॥ महिषाश्वराहांश्वगजांश्चद्रुमवीरिणः ॥ ४ ॥ तेगत्वादूरमध्वानलंवमानेदिवाकरे ॥ ददद्दुःसहिता
रम्यंतदाकंयोजनायतम् ॥ ५ ॥ पद्मपुष्करसंचांधंजयैरलंकृतम् ॥ सारसैर्हंसकादयैः संकुलंजलजातिभिः ॥ ६ ॥ प्रसन्नसलिलेरभ्येतस्मि
न्सरस्मिश्रशुद्धं ॥ गीतवादित्रनिर्घोषोनतुकश्चनदृश्यते ॥ ७ ॥ ततः कौतूहलाद्रामोलक्ष्मणश्चमहास्थः ॥ मुनिधर्मभृतानामप्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ ८ ॥
इदमत्यद्भुतं श्रुत्वासर्वपांनो महासुने ॥ कौतूहलं महजातं किमिदं साधुकथ्यताम् ॥ ९ ॥ तेनैवमुक्तो यमात्मारावणेण मुनिस्तदा ॥ प्रभावं सरसः
क्षिप्रमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १० ॥ इदंपंचापसरोनामतदाकंसावर्वाकालिकम् ॥ निर्मितं तपसाराममुनिना मांडकर्णिना ॥ ११ ॥ सहिते ते पस्ती
त्रं मांडकर्णिमहासुनिः ॥ दशवर्षसहस्राणि वायुभोजलाशये ॥ १२ ॥ ततः प्रव्यथिताः सर्वदेवाः साग्निपुरोगमाः ॥ अद्भुतवचनं सर्वपरस्परस
मागताः ॥ १३ ॥ अस्माकं कस्यचित्स्थानमेव प्रार्थयते मुनिः ॥ इति सविग्रमनसः सर्वतत्र दिवौकसः ॥ १४ ॥ ततः कटुतपोविग्रं सर्वदेवैर्निजो
जिताः ॥ प्रधानापसरसः पंचविद्यच्चलितवर्चसः ॥ १५ ॥

ममकोही पडा कीतूहल हुआहै ! अतएव इस घटनाका सविशेष समस्त वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा ऋषि तत्क्षण इस सरोवरके प्रभावका वर्णन करने लगे ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे रामचंद्रजी ! इस तडागका नाम पंचाप्सर है इसमें सदा जल रहताहै कभी सूखता नहीं । महर्षि माण्डुक्यजीने तपोबलने इसको बनायाहै ॥ ११ ॥ वह महामुनि माण्डुक्यि दशहजार वर्ष केवल पवन भोजन करते यहाँ रह कठोर तप करते रहे ॥ १२ ॥ इस तपस्यासे अतः देवता सब बहुतही व्यथित होकर परस्पर इकट्ठे होकर कहने लगे ॥ १३ ॥ यह ऋषि हममेंसे किसीका पद पानेके लिये तप कर रहे हैं । हम सब देवताओंके अंतःकरण महाउद्विग्न होगये ॥ १४ ॥ तब उन सब देवताओंने मिलकर उनके तपमें विघ्न करनेकी अभिलाषते, विज

मीसी गमान प्रभावाली पांच मुख्य अप्सराओंको भेजा ॥ १५ ॥ अप्सराओंनेभी देवताओंका कार्य पराये विषयके जाननेवाले महर्षि पाण्डुरर्णिनीको मदनेके पदसे मतवाला कर दिया ॥ १६ ॥ ऋषिजीने उन पांचों अप्सराओंको अपनी स्त्रीकी भांति ग्रहण करके उनके लिये इस सरोवरमें न दीखने वाला तुन्दर पर बनाया ॥ १७ ॥ पांचों अप्सरायें यथासुखसे इस गृहमें वास करके तपके प्रभावसे युवा अवस्थाको प्राप्त हुए उन ऋषिका मन मुदित करनेको उनमें गंगा विहार करने लगीं ॥ १८ ॥ मुनिजीके सहित विहार करती हुई उन अप्सरा गणोंकेही बाजे बजाने और गानेका यह शब्दहै, व उन्होंनेके गहननोंका यह मनोहर शब्द सुनाई देताहै ॥ १९ ॥ महायशस्वी श्रीरामचंद्रजी भाता लक्ष्मणजीके सहित विशुद्ध चित्त महर्षिजीकी इस कथाको सुन बड़ा अचरज पाते हुए ॥

अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः ॥ नीतोमदनवश्यत्वंदेवानांकार्यसिद्ध्ये ॥ १६ ॥ तत्रैवाप्सरसःपंचमुनेःपत्नीत्वमागताः ॥ तटाके निर्मितंतासां तस्मिन्प्रतप्तं गृहम् ॥ १७ ॥ तत्रैवाप्सरसःपंच निवसंत्यो यथासुखम् ॥ रमयंतितपोयोगान्मुनिर्यौवनमास्थितम् ॥ १८ ॥ तासां संक्रीडमानानामेववादित्रनिःस्वनः ॥ श्रूयतेक्ष्णोन्मिश्रो गीतशब्दो मनोहरः ॥ १९ ॥ आश्चर्यमितितस्यैतद्भवनं भावित्तात्मनः ॥ राघवः प्रतिजग्राह सहस्रभ्रात्रामहायशः ॥ २० ॥ एवं कथयमानः सदृशं श्रममंडलम् ॥ कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मणालक्ष्म्या समावृतम् ॥ २१ ॥ प्रविश्य सहचैर्देवालक्ष्मणेन चराचरः ॥ तदा तस्मिन् सकाकुत्स्थः श्रीमत्याश्रममंडले ॥ २२ ॥ उपित्वासुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः ॥ जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्याचणतपस्विनाम् ॥ २३ ॥ येषामुपितवान्पूर्वसकशेसमहास्त्रवित् ॥ क्वचित्परिदृशन्मासानेकं संवत्सरं क्वचित् ॥ २४ ॥ क्वचिच्च न तुरोमासान्पंचपदचपरान्क्वचित् ॥ अपरत्राधिकान्मासान् अध्यर्धमाधिकं क्वचित् ॥ २५ ॥ त्रीन्मासान् एमासांश्च राघवो न्यवसत्सुखम् ॥ तत्र संवत्सतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै ॥ २६ ॥

॥ २० ॥ और कैसे अचरजकी बातहै यह कहते २ चारों ओर कुश चीर जिनमें पड़े, ब्राह्मीशोभासमन्वित आश्रममंडलको श्रीरामचंद्रजी देखते हुए ॥ २१ ॥ वह बहुत गीम भाता लक्ष्मण और भार्यो जानकीजीके सहित वनशोभासम्पन्न आश्रमोंमें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ जब वहां ऋषियोंने कंद मूल फलोंसे उनकी पूजाकी तब रामचंद्रजी यहां सुतसे बसे, फिर वारी २ से रामचंद्रजी सबही ऋषियोंके आश्रमोंपर गये और पूजा पाते हुए ॥ २३ ॥ वह महास्त्रवित् श्रीरामचंद्रजी पहले जिनके आश्रममें योगेय, उम समय फिर उनके आश्रममें जाते हुए । वह किसी आश्रममें पूरे दश महीने, कहीं पूरे वर्षभर ॥ २४ ॥ कहीं चार महीने कहीं पांच महीने कहीं छः महीने कभी एक वर्षभरमें भी अधिक, कहीं परंपरासे केवल क्वचित् ॥ २५ ॥

आठ महीने तक गढ़े कहीं हममें न्यूनाधिक गढ़े ऐसे तिन मुनियों के आश्रमों पर श्रीरामचन्द्रजी वसे ॥ २६ ॥ सबही जगह वह सुखसहित रहे; उन आश्रमोंमें वनमें हूँ। इपिटोंगोंकी अनुकूलनामें सीतासहित दश वर्ष श्रीरामचन्द्रजीने वितादिये ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे धर्मके जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ गढ़ गूँय आश्रमोंमें पूरा काम कर फिर महीं सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये जहाँ मुनिगणोंने उनकी बड़ी पूजाकी ॥ २८ ॥ वहाँ पर शत्रुओंके मारनेवाले भीरामचन्द्रजी कुछदिन रहकर एक दिन विनय सहित उन महापुनि सुतीक्ष्णजीसे ॥ २९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पूछते हुए कि, हे भगवन् ! इस वनमें मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् भीरामचन्द्रजी कुछदिन रहकर एक दिन विनय सहित उन महापुनि सुतीक्ष्णजीसे ॥ २९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पूछते हुए कि, हे भगवन् ! इस वनमें मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यजी ॥ ३० ॥ वनमें, यह बात हमने बहुत कथि लोगोंसे सुनीहै परन्तु यह हमने अवतक न जानपाया कि उन महापुस्वीजीके रहनेका कौन वनहै ? ॥ ३१ ॥ फिर यहभी नहीं जानते कि उन भीमान् महर्षिजीका उस वनमें रमणीक आश्रम कौनसाहै ? उनके प्रसादके लिये लक्ष्मण और जानकीके सहित ॥ ३२ ॥ भगवन् कीकें नाम हम प्रणाम करतेको जाया चाहतेहैं। इस प्रकारका महा मनोरथ हमारे हृदयमें वर्त रहाहै ॥ ३३ ॥ वहाँ पर जाकर हम स्वयं मुनिराजजीकी सेवा करेंगे। हम प्रकार सुतीक्ष्णजी धर्मात्मा रामचन्द्रजीकी वाणी सुन ॥ ३४ ॥ दशरथजीके प्यारे दुलारे पुत्र श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हम लक्ष्मण सहित आपसे यह प्रार्थनाकोही धरे कि ॥ ३५ ॥ आप लक्ष्मण व जनककुमारो भीताजीके सहित अगस्त्यजीके निकट जाइये सो बड़े भाग्यकी बातहै कि, आपनेही अपने मुखसे यह वार्ता सुनी ॥ ३६ ॥ हे भीरामचन्द्रजी ! महर्षि अगस्त्यजी जिस वनमें रहतेहैं उसको हम बताते हैं,—हे तात ! इस आश्रमसे दक्षिण दिशाकी ओर सोलह कोश

मार्ग पंढ जारये, गय अगस्त्यजीके भावाका आश्रम आपकी दृष्टि आवेगा ॥ ३७ ॥ इस आश्रमकी भूमि बड़ी व समान है यहां पिप्पलीके वृक्षोंका वन शोभित हो रहा है श्रीग नागा भौतिके पक्षी शब्द करते हैं । ऐसे परम मनोहर और विविध भौतिके फल पुष्प युक्त वनके देशमें यह आश्रम प्रतिष्ठित है ॥ ३८ ॥ वहांपर स्वच्छ वारिसे भरे बहुत सारे सरोवर हैं, हंस, कराकुल, चक्रवा, चकवी और सारस इत्यादि जलमें खेल किया करते हैं ॥ ३९ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! उस आश्रममें आप एक रात्रि शान करने मनात होते ही उस आश्रमके निकटस्थ वनको करवटमें छोड़ दक्षिणकी ओरको गमन कीजिये ॥ ४० ॥ वस चार कोश मार्ग चलते ही विविध भौतिके वृक्षोंमें पिरा हुआ रमणीय वनमें हर्षित अगस्त्यजीके रहनेका आश्रम देखोगे ॥ ४१ ॥ सीता और लक्ष्मणजी तुम्हारे साथ वहां वास करके परम प्रसन्न होंगे,

स्थलीप्रायवनो देशे पिप्पलीवनशोभिते ॥ बहुपुष्पफलेरग्येनानाविहगनादिते ॥ ३८ ॥ पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः ॥ हंसकारं
डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ३९ ॥ तत्रैकांजनीव्युद्यप्रभाते रामगम्यताम् ॥ दक्षिणां दिशमास्थाय वनखंडस्य पार्श्वतः ॥ ४० ॥ तत्रा
गस्त्याश्रमपदंगत्वा योजनमंतरम् ॥ रमणीये वनो देशे बहुपादपशोभिते ॥ ४१ ॥ रंस्यते तत्र वै देहीलक्ष्मणश्च त्वया सह ॥ सहिरम्यो वनो देशे बहु
पादपसंयुतः ॥ ४२ ॥ यद्विबुद्धिः कृताद्रुमगस्त्यंतं महाशुनिम् ॥ अद्यैव गमने बुद्धिरोचयस्व महामते ॥ ४३ ॥ इति रामो मुनेः श्रुत्वा सहस्रभ्रात्राभि
वाचनम् ॥ प्रतस्थे गस्त्यमुदिश्य सा नुजः सहसीतया ॥ ४४ ॥ पश्यन्वानि चित्राणि पर्वतांश्चाभ्रसन्निभान् ॥ सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान्
॥ ४५ ॥ सुतीक्ष्णो नोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम् ॥ इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ एतदेवाश्रमपदं नूतनं तस्य महात्मनः ॥ अग
स्त्यस्य मुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः ॥ ४७ ॥ यथाहीमे वनस्यास्य ज्ञाताः पथिसहस्रशः ॥ सन्नताः फलभारेण पुष्पभारेण च द्रुमाः ॥ ४८ ॥

इसो कि वह अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त वन अतिरमणीय है ॥ ४२ ॥ हे महामते ! यदि यह पथि अगस्त्यजीके दर्शन करनेका अभिलाष है तो आज ही जानेका विचार कीजिये ॥ ४३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्णभूतिके ऐसे वचन सुन उनको प्रणाम करके माता लक्ष्मण और जानकीजीके सहित अगस्त्यजीके देखनेको प्रस्थान करते हुए ॥ ४४ ॥ मार्गमें जानेके समय बहुत सारे विचित्र वन, वादलोंकी समान ऊँचे २ पहाड़, नदी सरोवर सब ही श्रीरामचन्द्रजी देखते जाते थे ॥ ४५ ॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्णजीके वतारिये हुए मार्गमें यथासुखसे गमन करके परम प्रसन्न और हर्षित हो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४६ ॥ कि निधियही पुण्य कर्म करनेवाले इतना अगस्त्यजीके भगवान् परम आश्रम देखे

मे मुकुन्दः मे कडो हजारों पंड हमने देते हैं ॥ ४८ ॥ यह देखो पके हुए पिप्पलीके फलोंकी कडवी गन्ध पवन वेगसे बही हुई चली आती है ॥ ४९ ॥ स्थान २ म ईक
 ६ किंचे हुए काठके चोत्र और छिन्न वैद्युर्मणिके वर्णकी समान हरे कुशभी यहां देख पड़ते हैं ॥ ५० ॥ आभयमें स्थित हुई अशिकी यह वही धूमशिला, कृष्णमेघयुक्त
 पर्वतकं शिखरकी समान वनके बीच दृष्टि आती है ॥ ५१ ॥ और यह ब्राह्मण लोग स्वच्छ तीर्थके जलमें स्नान करके अपने लगे हुए फूलोंके समूहसे इष्ट देवताओंकी
 पूजा कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ हे सौम्य ! महर्षिहनुमन्जीके मुत्ससे जैसा श्रवण किया था उसीके अनुसार यहांपर सब कुछ देखकर हमको निश्चयही जान पड़ता है कि,
 यही अगस्त्यजीके भाताका आश्रम है ॥ ५३ ॥ जित महर्षिअगस्त्यजीने सब लोकोंको हित करनेकी कामनासे बल सहित साक्षात् मृत्युकी समान दैत्यको मारकर इस
 पिप्पलीनांचपकानांवनादस्मादुपानतः ॥ गंधोयंपवनोत्तिष्ठतः सहसा कटुकोदयः ॥ ४९ ॥ तत्र तत्र च दृश्यं ते संशिताः काष्ठसंचयाः ॥ लुनाश्च परिदृश्यं
 ते द्रुमैर्विद्यूर्वचसः ॥ ५० ॥ एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम् ॥ पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं संप्रदृश्यते ॥ ५१ ॥ विविक्तेषु च तीर्थपुकृत
 क्षानाद्रिजातयः ॥ पुण्योपहारं कुर्वंतिकुसुमैः स्वयमर्जितैः ॥ ५२ ॥ ततः सुतीक्ष्णवचनं यथासौम्यमयाश्रुतम् ॥ अगस्त्यस्याश्रमो भ्रातुर्न मे पम
 विप्यति ॥ ५३ ॥ निगृह्य तस्मात्पुलोकानां हितकाम्यया ॥ यस्य भ्रात्रा कृते यदिकृशण्यापुण्यकर्मणा ॥ ५४ ॥ इहैकदा किल क्रूरवातापिरपि चे
 त्वलः ॥ भ्रातरौ स हिताधास्ता ब्राह्मणघ्नौ महासुरौ ॥ ५५ ॥ धारयन् ब्राह्मणं रूपमिव लवः संस्कृतं वदन् ॥ आमंत्रयति विप्रान्संश्रद्धसुदिश्यनिर्घृणः ॥
 ५६ ॥ भ्रातरं संस्कृतं कृत्वा तत्तत्संभवे परुषिणम् ॥ तान् द्विजान् भोजयामास श्रद्धादृष्टेन कर्मणा ॥ ५७ ॥ ततो भुक्तवतां तेषां विप्राणामिव लोत्रवीत ॥
 वातापे निष्कमस्वन्ति स्वरं मदता वदन् ॥ ५८ ॥ ततो भ्रातुर्वचः श्रुत्वा वातापि मे पवन्नदन् ॥ भित्त्वा भित्त्वा शरीराणि ब्राह्मणानां विनिष्पतत् ॥ ५९ ॥

ब्राह्मणानां सहस्राणितेरैव कामरूपिभिः ॥ विनाशितानि संहत्य नित्यशः पिशिताशनेः ॥ ६० ॥
 दक्षिण दिगाकोभी मयके बत्तने योग्य किया है ॥ ५४ ॥ ऐसा प्रसिद्ध है कि पहले एक समय महा असुर ब्राह्मणोंका घात करनेवाले वातापि और इल्वल नामक दो
 क्रूर कर्म करनेवाले भाई एकद्वे इस वनमें वास करते थे ॥ ५५ ॥ उन दोनोंमेंसे निर्दयी इल्वल जब श्राद्धका समय आवे तौ ब्राह्मणका वेप धर संस्कृत उच्चारण
 करके ब्राह्मणोंको निमंत्रण करे ॥ ५६ ॥ जब सब ब्राह्मण आजार्वे तब अपने भ्राता मेघरूपी वातापिको श्राद्धके कहे अनुष्ठानके अनुसार उत्तम रूपसे ' रांधकर
 सब ब्राह्मणोंको भोजन करादे ॥ ५७ ॥ तिसके पीछे जब ब्राह्मण भोजन कर चुके इल्वल अति ऊंचे स्वसे (वातापि ! निकल आओ) यह वचन कहता
 ॥ ५८ ॥ वातापि भाताका शब्द सुनकर मेंढेकी समान शब्द करता हुआ ब्राह्मणोंके शरीर फाड २ निकल आता ॥ ५९ ॥ यह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मांस

भोभी अगुर इन महारमं प्रतिदिन परस्पर मिलकर सहस्र २ ब्राह्मणोंकी हत्या करते ॥ ६० ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीने देवताओंकी प्रार्थनाके वश हो
 भारमें उम मझा अगुर यातापिको भक्षण कर लिया, ऐसी बात प्रसिद्ध है ॥ ६१ ॥ जब श्राद्ध पूरा होगया इस प्रकारसे कहके ब्राह्मणोंके हाथ धुलानेके लिये जल दे-
 " यथापि । पाहर निकल आओ " यह कहकर इन्वल्ड भाताको पुकारने लगा ॥ ६२ ॥ जब इन्वल्डने बार २ अपने भाईको पुकारा तब यह देखकर मुनिदो-
 भेष अगस्त्यजीने हँसकर विप्रयाती इन्वल्डसे कहा ॥ ६३ ॥ हमने तुम्हारे मेरुरूपी भाता वातापिको पचा डाला; वह यमराजके गृहको चला गया सो अब उस-
 पाहर होनेकी सामर्थ्य कहाँ ? ॥ ६४ ॥ निशाचर इन्वल्ड भाईके मरनेकी वार्त्ता सुन करके क्रोधयुक्तहो महर्षिअगस्त्यजीके मारनेको तैयार हुआ ॥ ६५ ॥
 जेम्ही यह मारनेको दौड़ा कि महर्षिजीने प्रज्वलित अग्निके समान दृष्टिसे एक बार देख दिया, वस देखने मात्रसेही वह भस्म होगया और प्राण त्यागन करदिये ॥ ६६ ॥
 अगस्त्यनतदादेवैः प्रार्थितेन महर्षिणा ॥ अनुभूय किल श्राद्धे भक्षितः समहासुरः ॥ ६७ ॥ ततः संपन्नमित्युक्त्वा दत्त्वा हस्ते वने जनम् ॥ भ्रातरं निष्क्रम
 स्यति इन्वल्डः समभाषत ॥ ६८ ॥ सतदाभाषमाणं तु भ्रातरं विप्रघातिनम् ॥ अत्र वीत्प्रहसन्धीमानगस्त्योऽमुनि सत्तमः ॥ ६९ ॥ कुतो निष्क्रमितुं श
 किर्मया जीर्णस्य रक्षमः ॥ भ्रातुस्तु मे परूपस्य गतस्य यमसादनम् ॥ ६१० ॥ अथ तस्य वचः श्रुत्वा भ्रातुर्निधनसंश्रितम् ॥ प्रथर्पयितुं भारेभे मुनिं कं
 धान्निशानरः ॥ ६११ ॥ सोभ्यद्रवद्विजैर्द्रतं मुनिना दीप्तं जसा ॥ चक्षुषानलकल्पेन निर्दग्धो निधनंगतः ॥ ६१२ ॥ तस्यायमाश्रमो भ्रातुस्तटाकवन
 शोभितः ॥ विप्राणुं कं पयायेन कर्मदुष्करं कृतम् ॥ ६१३ ॥ एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह ॥ रामस्यास्तंगतः सूर्यः संध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥
 ॥ ६१४ ॥ तपस्यपश्चिमां संध्यां सहस्रभ्रात्रा यथाविधि ॥ प्रविवेशाश्रमपदं तृर्षिचाभ्यवा दयत् ॥ ६१५ ॥ सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः ॥
 न्यवसत्तानि शामेकां प्राश्रयमूलफलानि च ॥ ६१६ ॥ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदितैरविमंडले ॥ भ्रातरं तमगस्त्यस्य आमंत्रयत राघवः ॥ ६१७ ॥
 निरहो न ब्राह्मणगणोंके ऊपर दयाके वश होकर इस प्रकारका औरके न करने योग्य अनुष्ठान कियाथा उन अगस्त्यजीके महात्मा भाईकाही यह तडागमय शोभित अ-
 पई ॥ ६१८ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ यह वार्त्ता कहतेही रहे कि इतनेमें भगवान् भास्कर अस्ताचल चूड़ालम्बी हुए और संध्या होआई ॥ ६१९ ॥
 श्रीरामचंद्रजीने भाता लक्ष्मणजीके सहित विधिवत् सायंकालकी संध्या समाप्त करके अगस्त्यजीके भाईके आश्रममें प्रवेश किया और अगस्त्यजीके भाईको प्रणाम दि-
 ॥ ६२० ॥ और अगस्त्यजीके भाईनेभी उनका भली भांति शिष्टाचार किया और कंदमूल फल खानेको दिये सो भोजनकर श्रीरामचंद्रजी एक रात्रि वहाँ पर बसे ॥

कि हे भगवन् । हम आपको प्रणाम करते हैं हमने यहां वडे सुखेंसे यह रात्रि बिताई अब इस समय विदा दीजिये अब आपके वडे भाई गुरुदेव अगस्त्यजीके दर्शन कर
नेको हमारी अभिलाषा हुई है ॥ ७२ ॥ यह कहकर ऋषिकी आज्ञा ले उनके आश्रमका वन देखते भालते सुतीक्ष्णमुनिके वताए हुए आश्रमको जाते हुए ॥ ७३ ॥ जानेंके
समय वनके मध्यमें नीवार, पनस, शाल, वज्जुल, तिनिया, चिरविल्व (नकमाल) मधूक, वेल ॥ ७४ ॥ तिन्दुक इत्यादि परस्पर फूली फली लताओंने गंभीर
सीकड़ों हजारों वृक्ष श्रीरामचंद्रजीने देखे ॥ ७५ ॥ अनेक प्रकारके पक्षीगण मतवाले होकर उन वृक्षोंपर गुंजार कर रहेथे कुसुमित गिरार लता और यानर
गणोंके निकट रहनेसे वहां अतिराग शोभा होरही, और हाथियोंकी शृङ्गेके आघातसे उन वृक्षोंकी दहनियां टूट रहीथीं ॥ ७६ ॥ यह देखकर राजीवलोचन
अभिवादेत्वा भगवन्सुखमस्म्युपितो निशाम ॥ आमंत्रयेत्वांगच्छामि गुरुं तद्रुमग्रजम् ॥ ७७ ॥ गम्यतामितेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः ॥
यथोद्दिष्टेन मार्गेण वनंतच्चावलोकयन् ॥ ७८ ॥ नीवारानपनसान्सालान्वंजुलांस्तिनिशांस्तथा ॥ चिरविल्वान्मधूकांश्च विल्वानथ च त्रिदु
कात् ॥ ७९ ॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिलताभिरुपशोभितान् ॥ ददर्श रामः शतशस्तत्र कांतारपादपान् ॥ ८० ॥ हस्तिहस्तेर्विमृदितान्वानरैरु
पशोभितान् ॥ मत्तैः शकुनैश्चैश्च शतशः प्रतिनादितान् ॥ ८१ ॥ ततो ब्रीत्समीपस्थं रामो राजीवलोचनः ॥ पृष्ठतो जुगंतं वीरलक्ष्मणं लक्ष्मिव
र्धनम् ॥ ८२ ॥ स्निग्धं पत्रायथावृक्षायथाक्षं ताम्रगद्विजाः ॥ आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः ॥ ८३ ॥ अगस्त्य इति विख्यातो लोकं
स्येनैव कर्मणा ॥ आश्रमो हृदयतेतस्य परिश्रान्तश्च मापहः ॥ ८४ ॥ प्राज्यधूमाकुलवनधीरमालापरिष्कृतः ॥ प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिना
दितः ॥ ८५ ॥ निगृह्य तस्मात्पुलंको नार्हितकाम्यया ॥ दक्षिणादिकृतायेन शरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ८६ ॥ तस्येदमाश्रमपदं प्रभावाद्यस्य रा
शमः ॥ दिगिर्यदक्षिणात्रासाहृश्यते नोपभ्रज्यते ॥ ८७ ॥

शस्त्रैः ॥ दिगिर्यदक्षिणात्रासादृश्यतनापशुज्यत ॥ ८२ ॥
 श्रीरामचंद्रजी अपने पीछे आते हुए निकटवर्ती लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७७ ॥ इन सब वृक्षोंके पत्ते जैसे चिकने दिखाई देते हैं और मृगगण जैसे शान्तचिन्त दृष्टि आते हैं तो इन सब बातोंसे ज्ञात होताहै कि उन विषुद्धचित्त महर्षि अगस्त्यजीका आश्रम अब अधिक दूर नहीं है ॥ ७८ ॥ जिन्होंने अनेक कर्म द्वारा लोकमें प्रसिद्ध अगस्त्यनाम पाया है, उनकी महर्षिजीका थके हुए लोगोंके श्रमका हरनेवाला यह आश्रम दिखाई देताहै ॥ ७९ ॥ यज्ञका धुँवाँ वनमें छाया रहाई वृक्षोंकी डालियोंपर चीर वस्त्र टँग रहें, बैरको छोड़े हुए सब मृग इधर उधर घूमरहे हैं । अनेक प्रकारके पक्षी मधुर २ नाद कर रहे हैं ॥ ८० ॥ जिन्होंने मनुष्योंका हित करनेकी कामनासे बलसहित मृत्यु और असुरोंको जीतकर दक्षिण दिशाको सबके वास योग्य कर दियाहै ॥ ८१ ॥ और जिनके नभावसे राक्षस लोक

प्राप्ति होकर इस दक्षिण दिशाकी ओर केवल देखते और आते तो हैं परन्तु किसीको पीडा नही द सकत; उन्हा दुःख भोगे शान्तचित्तहोगे हैं ॥ ८३ ॥ भगवाः आश्रमहे ॥ ८२ ॥ उन पवित्र वेत्ता अगस्त्यजीने जबसे इस आश्रममें आकर वास कियाहै तबसे निशाचरलोग वर छोडकर शान्तचित्तहोगे हैं ॥ ८३ ॥ भगवाः अगस्त्यजीकी यह दक्षिण दिशा आगस्त्यादिकनामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगई है और उनके प्रभावसे क्रूर कर्म करनेवाले निशाचरगणोंके दवजानेसे यह दिश मुनिजोगोंके वास करने योग्य होगई है ॥ ८४ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल उनकी आज्ञाका प्रतिपालनही करता हुआ, सूर्यका मार्ग रोक्नेके लिये और निरन्त नहीं बढ़ता ॥ ८५ ॥ लोकोंके बीचमें विख्यात कर्म करनेवाले दीर्घायु महर्षि अमरंस्त्वजीका विनय युक्त मृगगण सेवित यही आश्रमहै ॥ ८६ ॥ जव फ नान्नाचयंभगवतोदक्षिणादिकप्रदक्षिणा ॥ प्रथिता

यदाप्रभृतिचाक्रांतादिगिर्युण्यकर्मणा ॥ तदाप्रभृतिनिर्वैराः प्रशांता राजनीचराः ॥ ८३ ॥ नाम्नाचयं भगवतोदक्षिणादिवप्रदक्षिणा ॥ प्रथिता
त्रिपुल्लोके पुदुर्धर्पाङ्गरकर्मभिः ॥ ८४ ॥ मार्गनिरोद्धुंसततं भास्करस्याचलोत्तमः ॥ संदेशं पालयंस्तस्य विध्यशैलोनवर्धते ॥ ८५ ॥ अयं दीर्घायु
पस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः ॥ अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥ ८६ ॥ एष लोकाचितः साधुर्हितेनित्यं रतः सताम् ॥ अस्मानधिगतः
नेपथ्ये यसा योजयिष्यति ॥ ८७ ॥ आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यंतं महाशुनिम् ॥ शेषं च न वासस्य सौम्यवत्साम्यहंप्रभो ॥ ८८ ॥ अत्र देवाः सगः
धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ अगस्त्यं नियताहाराः सततं पथ्युपासते ॥ ८९ ॥ नात्र जीवेन्मृपावादीकरो वायदिवशठः ॥ नृशंसः पापवृत्तो वा सुनिरः
॥ तसं विनियताः हागधर्ममाराधयिष्यन्वः ॥ ९१ ॥

तथाविधः ॥ ९० ॥ अन्नदेवाश्व्यक्षाश्वनागाश्वपतंगःसह ॥ वसन्तानपताहासपमनातपान ॥
हम सर्व लोकोंमें पूजित सदा साधुलोगोंका हित चाहनेवाले साधु चरित्र इन महर्षि अगस्त्यजीके आश्रममें जायेंगे, तब वह अवश्यही हमारा मंगल विधान करेंगे ॥
॥ ८७ ॥ हे शुभदर्शन ! हम इसी आश्रममें रहकर महर्षि अगस्त्यजीकी आराधना करेंगे और वनवासका शेष समय यहीं बिता देंगे ॥ ८८ ॥ इस आश्रममें देवता
गन्धर्व, तपस्या करके सिद्ध हुए, महर्षि लोग निराहार रहकर सदाही अगस्त्यजीकी भलीभांति सेवा किया करते हैं ॥ ८९ ॥ महर्षि अगस्त्यजीका प्रभाव ऐसाहै कि
इनके आश्रममें ईश्वर बोलनेवाला, राठ, दुष्ट, निर्लज्ज, पापपरायण पुरुष किसी भांति जीता हुआ नहीं रहसकता ॥ ९० ॥ इस आश्रममें देव, यक्ष, नाग, और

इन्क के अश्रम में धूलगवाला, पाज डुल।

ॐ एक समय अगस्त्यजी सा प्रिय विन्याचलपर्वत मूलका मांग रोकने के लिये अधिकवासे बढने लगा यह देख देवता बहुत भयभीतहो अगस्त्यजीकी शरण जाकर कहने लगे कि, आप अपने शिष्यों को हम दुर्पट कार्य के करनेसे निवाण कीजिये व व अगस्त्यजी विन्याचल के निकट गये पर्वतने इन्हें देश कर प्रणाम किया और चरण पकड़े र पछा गुरु देव । आता कीजिये कैसे आगमन हुआ ? अगस्त्यजी ने बोले जगदक हम छोटकर न आई तबएक तुम मोही पड़े रहो, विन्याने समानु कहा, सबसे अगस्त्यजी दक्षिणदिशा में आकर रहेन लगे और फिर उपर न गये विन्याचल गुरुआसासे आगतक छेड रहादे ॥

पक्षीगण धर्मकी आराधना करनेके लिये प्रियताहारी होकर वास करते हैं ॥ ९१ ॥ महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धही देह त्याग नवीन देह धारण कर मृत्युन्य देदीप्यमान विमानमें सवार हो स्वर्गको गये हैं ॥ ९२ ॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहते हैं वह देवताओंकी उपासना करने देवताओंके प्रसादमें देवत्व, यक्षत्व, और विविध राज्योंको प्राप्त होते हैं ॥ ९३ ॥ हे सुमित्राकुमार ! हम इस समय उसही आश्रममें आय पहुँचे हैं । तुम पहले प्रवेश करने उन मुनिये यह निवेदन करो कि हम मीताके सहित उनके आश्रममें आये हैं ॥ ९४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकादशः सर्गः ॥ १ ॥

तमा जय गमचन्द्रजीने कहा, तब उनके छोटे भइया लक्ष्मणजी आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यके समीप पहुँचकर कहने लगे ॥ १ ॥ कि राजा दशरथ जीके बड़े पुत्र महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजी आपनी श्री मीताजीके साथ महर्षिजीके चरणोंका दर्शन करनेको आये हैं ॥ २ ॥ और हमारा नाम लक्ष्मणहै, हम लक्ष्मण अत्र सिद्धा महात्मानो विमानेः सूर्यसंनिभेः ॥ त्यक्त्वा देहाव्रजो देहः स्वयं ताः परमर्षयः ॥ ९२ ॥ यत्त्वममरत्वं च राज्यानि विविधानि च ॥ अत्र देवाः प्रच्युतिभूते राधिताः शुभेः ॥ ९३ ॥ आगताः स्माश्रमपदं सोमि प्रेष विशयतः ॥ निवेदयेह मां प्रातमृषये सहसीतया ॥ ९४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मी आ० अर्० पञ्चादशः सर्गः ॥ १ ॥ समप्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः ॥ अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ॥ १ ॥ राजादशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य मुनो गतौ ॥ गमः प्रातो मुनिद्रुपुं भार्यया सहसीतया ॥ २ ॥ लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः ॥ अस्य तद्रचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः ॥ तथेत्युक्त्वा शरणं प्रविंशनिचिद्रुतम् ॥ ५ ॥ समप्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रघर्षणम् ॥ कृताञ्जलि रूपाचेन्द्ररामगमनमंजसा ॥ ६ ॥ यथोक्तं लक्ष्मणेन विश्रुत्वा गस्त्यस्य संमतः ॥ पुनर्दशरथस्य मारामो लक्ष्मण एव च ॥ ७ ॥ प्रविष्टा वाश्रमपदं सीतया सह भार्यया ॥ द्रष्टुं भवंतमायातो शुश्रूषार्थमरिंदमौ ॥ ८ ॥ शिवाङ्गी परमभक्त और उनके अनुकूल चलनेवाले उनके छोटे भाई हैं सो कदाचित् आपने हमारी वार्त्ता सुनीही होगी ॥ ३ ॥ हमने पिताजीकी आज्ञाअभिप्रेषण करनेमें प्रवेग कियाई और अब भगवान् अगस्त्यमुनिके दर्शन करनेकी हमको अभिलाषा हुईहै, सो आप उनसे यह वृत्तान्त निवेदन कर दीजिये ॥ ४ ॥ यह गोपेन लक्ष्मणजीके यह वचन श्रवण कर उनमें आपका आना निवेदन करता हूँ यह कह कर इस वार्त्ताको महर्षि अगस्त्यजीसे कहनेके निमित्त अभिगृह्ये मरुता हुआ ॥ ५ ॥ और वहाँ पहुँचकर हाथ जोड़ तपोबलसे प्रदीप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहा ॥ ६ ॥ अगस्त्यजीका लक्ष्मणजीके वचनके अनुसार कहने लगा कि अयोध्याजीके राजा दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ॥ ७ ॥ आपके आश्रममें अपनी भार्या सहित आये हैं, वह शत्रुतः

[illegible]

आपकी सेवा करने व देखनेके लिये यहां आये हैं ॥ ८ ॥ सो इसमें जैसा कर्तव्यहो वही आज्ञा आप कीजिये, शिष्यके मुखसे रामचन्द्र व लक्ष्मणजीका आगमन हुन ॥ ९ ॥ और महा भाग्यवती सीताजीकोभी आगमनकी वार्त्ता सुन करके महीं अगस्त्यजी बोले, कि वडे भाग्यकी बातहै बहुते दिनोपर श्रीरामचन्द्रजी हमारे दर्शन करनेको यहां आये हैं ॥ १० ॥ और मैंनेभी मनसे इनके समागमकी आकांक्षा कीथी तिससे आगे जाकर आदर मान सहित श्रीरामचन्द्रजीको भ्राता और श्री महि ॥ ११ ॥ यहां लिवालाओ और अवतक तुम किस कारणसे उनको यहां नहीं लिवालाये, जब महात्मा धर्मज्ञ अगस्त्यजीने इस प्रकार कहा ॥ १२ ॥ तो शिष्य कर जोड कर जो आज्ञा अभी लिवाये लाताहूं कह और प्रणाम करके तभी वहांसे बाहर आ आदर सहित लक्ष्मणजीसे बोला ॥ १३ ॥ आपमें रामा यद्वानंतंरतत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ततः शिष्यादुपश्रुत्यप्रातरंगमसलक्ष्मणम् ॥ ९ ॥ वैदेहीचमहाभागामिदंवचनमब्रवीत् ॥ द्रिष्ट्यारामश्चिरस्या द्रष्टुमंसमुपागतः ॥ १० ॥ मनसाकांक्षितं ह्यस्य मया व्यागमनं प्रति ॥ गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सह लक्ष्मणः ॥ ११ ॥ प्रवेश्यतां समीपं मे किमयं न प्रवेशितः ॥ एवमुक्तस्तु मुनिना धर्मज्ञेन महात्मना ॥ १२ ॥ अभिवाद्या प्रवीच्छिष्यस्तथेति नियतांजलिः ॥ तदानिष्क्रम्य संभ्रांतः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १३ ॥ कोसरीरामो मुनिद्रुमे तु प्रविशतु स्वयम् ॥ ततो गत्वा श्रमपदं शिष्येण सह लक्ष्मणः ॥ १४ ॥ दर्शयामास काकुस्थं सीतां च जनकात्मजाम् ॥ तं शिष्यः प्रथितं वाक्यमगस्त्यवचनं दृष्ट्वा ॥ १५ ॥ प्रावेशय दधान्यां सत्काराहं सुसत्कृतम् ॥ प्रविवेश ततो रामः सीतया सह लक्ष्मणः ॥ १६ ॥ प्रशांत हरिणा कीर्णमाश्रमं ह्यवलोकयन् ॥ सतत्र ब्रह्मणः स्थानमग्रेः स्थानं तथैव च ॥ १७ ॥ विष्णोः स्थानं महेंद्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः ॥ सोमस्थानं भगस्थानं स्थानं कौशेरमेव च ॥ १८ ॥ धातुर्विधातुः स्थानं च वायोः स्थानं तथैव च ॥ स्थानं च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥ १९ ॥ स्थानं तथैव गायत्र्या वसूनां स्थानं मेव च ॥ स्थानं च नागराजस्य गरुडस्थानमेव च ॥ २० ॥ कार्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति ॥ ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत् ॥ २१ ॥ कौनसे हैं ? वह भगवान् अगस्त्यजीके दर्शन करनेके लिये आये और स्वयं प्रवेश करे अनन्तर लक्ष्मण उस शिष्यके सहित वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजी थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ यः उस शिष्यको जनककुमारी सीता व श्रीरामचन्द्रजीको दिखा दिया, उस शिष्यने बड़ी नरमाईसे अगस्त्यजीके वचन श्रीरामचन्द्रजीसे जाय कहे ॥ १५ ॥ यः नियम भलीभांति आदर सत्कार करके श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्मण व सीताजीके सहित आश्रममें प्रवेश कराया ॥ १६ ॥ उस आश्रममें प्रवेश करनेके समय श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि परम शान्तस्वभाव हरिण चारों ओर बैठे हैं, ब्रह्मा, शिव ॥ १७ ॥ विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, भग, कुबेर ॥ १८ ॥ धाता, विधाता, पवन, पाशहः महान्या वरुण ॥ १९ ॥ गायत्री, वसु, नागराज वासुकी. आदि सर्व, गरुड ॥ २० ॥ कार्तिकेय और धर्म, इन सबकी पूजाके निमित्त अलग २ स्थान धर्म

२३ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी सब तपस्वियोंमें बड़े तेजवान
 भ्रातरजीको मामनेसे आते देखकर दृष्ट्वा युक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण भगवान् अगस्त्यजी ऋषि कुटीसे बाहर निकलते हैं इस समय हम उदा
 ग्ना युक्त होकर उन तपःप्रकाशित ऋषिवरके निकट गमन करेंगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी कुटीसे बाहर आयेहुए सूर्यके समान तेजवान
 महर्षि अगस्त्यजीके चरण छूकर दणाम करते हुए ॥ २४ ॥ धर्मान्ना श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीके सहित ऋषिजीके चरणोंकी वंदना करके करजोड
 उनके आगे गड़े गढ़े ॥ २५ ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीने आदरसहित रामचन्द्रजीको ग्रहण किया चरण पसारनेके लिये जल मँगा दिया, आसन देकर
 धर्मनेत्री अनुमति दी फिर कुशल प्रश्न किया ॥ २६ ॥ तिसके पीछे अगस्त्यजीने अग्रिम आहुति देकर उन आये हुए पाहुनोंको अर्घ्य दिया, और वानप्रस्थ धर्मके
 तन्दृश्याप्रतोगमोमुनीनादीततेजसम् ॥ अश्वीद्रचनंवीरोलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ २२ ॥ वहिलक्ष्मणनिष्कामस्यगस्त्योभगवाचृषिः ॥ औदायै
 णावगच्छामिनिधानंतपसामिदम् ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुरगस्त्यसूर्यवर्चसम् ॥ जग्राहापततस्तस्यपादीचरधुनंदनः ॥ २४ ॥ अभिवाद्यतुभ्यां
 त्मातस्थोगमःकृतांजलिः ॥ सीतयासहदेव्यातदारामःसलक्ष्मणः ॥ २५ ॥ प्रतिगृह्यचकाकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः ॥ कुशलप्रश्नसुक्काचआ
 स्यतामितिमोत्रवीत् ॥ २६ ॥ अग्निदुत्ताप्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्यच ॥ वानप्रस्थेनधर्मैणसतेपांभोजनंददौ ॥ २७ ॥ प्रथमंचोपविश्याथधर्मज्ञोसु
 निपुंगवः ॥ उवाचराममासीनंप्रांजलियर्मकोविदम् ॥ २८ ॥ अन्यथाखलुकाकुत्स्थतपस्वीसमुदाचरन् ॥ दुःसाक्षीवपरेलोकेस्वानिमांसानिभक्षये
 त् ॥ २९ ॥ गजासर्वस्यलोकस्यधर्मचारीमहारथः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चभवान्प्राज्ञःप्रियातिथिः ॥ ३० ॥ एवमुक्ताफलैर्मूलैःपुण्यैश्चान्यैश्चरात्रवम् ॥
 पूजयित्वायथाक्रामंततोगस्त्यस्तम्बवीत् ॥ ३१ ॥ इदं दिव्यमहचापंहेमवज्रविभूषितम् ॥ वेष्णवंपुरुषव्याघ्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ ३२ ॥
 अनुगार आश्रय कर्नेत्री माममी दी ॥ २७ ॥ अनन्तर धर्मके जाननेवाले महर्षि अगस्त्यजी प्रथम स्वयं बैठ पीछे कर जोडकर बैठहुए धर्मपंडित श्रीरामचन्द्रजीसे
 बोले ॥ २८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तपस्वी यदि पाहुनेका मुक्ताकार न करके उसके प्रति और कोई अन्यथा आचरण करे तो वह शूरी गवाही देनेवाले मनुष्यकी समान
 परग्योरूपमें अपना मांस भक्षण करता है ॥ २९ ॥ फिर आप तो महारथी और सब लोकोंके धर्मचारी राजा हैं तिसपर आपने प्रिय अतिथिकी भांति हमारे आश्रममें
 आगमन किया है । अतएव आपकी पूजा और सन्मान करना हमारा सब भांतिसे कर्तव्य है ॥ ३० ॥ यह कहकर महर्षिजी फल, मूल, पुष्प, व औरभी उत्तम २
 वनके पदार्थोंमें यथाभिलषित भांतिसे रामचन्द्रजीकी पूजा करके फिर कहने लगे ॥ ३१ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह विश्वकर्माका बनाया हुआ, स्वर्ण और

वज्र मणिते विधुषित दिव्य और बड़ा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥ और सूर्यके समान प्रभावसम्पन्न उत्तम चाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीने दी हैं और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके चाण कभी नहीं निबडते हमको दिये हैं ॥ ३३ ॥ तीखे चाणोंसे परिपूर्ण और अधिक समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्णमय कोशचन्द्र खड्ग इन्द्रजीने हमको दिये हैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! पहले भगवान् विष्णुजीने इस वैष्णव धनुषकी सहायतासे युद्धमें महाबली छली असुरोंको संहार करके देवताओंको दीप्तिमती लक्ष्मी प्रदान कीथी ॥ ३५ ॥ हे मानद ! वज्रधर इन्द्रजी जिसप्रकार वज्र धारण करते हैं, तुमभी तैसीही पवित्रयश प्राप्त करनेके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ महातेजस्वी भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कहकर महापण्डित मनीष रामचन्द्रजीको

अमोघःसूर्यसंकाशोब्रह्मदत्तःशरोत्तमः ॥ दत्तोमममहेंद्रतूणीचाक्षय्यसायको ॥ ३७ ॥ संपूर्णनिशितैर्वाणिर्ज्वलद्भिरिवपावकैः ॥ महाराजतकोशो यमसिंहमविभूषितः ॥ ३८ ॥ अमेनधनुषारामहत्वासंख्येमहासुराच् ॥ आजहारत्रिदंतांपुराविष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ३९ ॥ तद्धनुस्तौचतूणीचशरं खड्गचमानदः ॥ जयायप्रतिगृह्णांष्ववब्रवब्रबरोयथा ॥ ४० ॥ हवमुक्त्वामहातेजाःसमस्तंतद्वरायुधम् ॥ दत्त्वारामायभगवानगरस्त्यःपुनरब्रवीत् ॥ ४१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अरण्यकण्डि द्वादशःसर्गः ॥ ४२ ॥ रामप्रीतोस्मिभद्रंतेपरितुष्टोस्मिलक्ष्मण ॥ अभिवादयितुंयन्मांप्राप्तोस्त्यः सहसीतया ॥ ४३ ॥ अध्वश्रमेणवांखिदोवाधतेप्रचुरश्रमः ॥ व्यक्तमुक्तंठतेवायिमैथिलीजनकात्मजा ॥ ४४ ॥ एपाचसुकुमारीचखेदेष्वनविमानिता ॥ प्राज्यदोषंपवनंप्राप्ताभर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ४५ ॥ यथैषारमतेरामहसीतातथाकुरु ॥ दुष्करंकृतवत्येपावनेत्त्वामभिगच्छती ॥ ४६ ॥ एपाहिप्रकृतिःस्त्री णामासृष्टेर्घुनंदन ॥ समस्थमनुरज्यंतेविपमस्थंयजंतिच ॥ ४७ ॥

वह समस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषाटीकायां द्वादशः सर्गः ॥ ३८ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! तुम जो सीतासहित हमको प्रणाम करने आये हो इससे हम तुम्हारे प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं, तुम्हारा मंगल होवे ॥ ३९ ॥ यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि, मार्ग चलनेकी थकावटसे तुमको महाकष्ट हुआ है । जनककुमारी सुकुमारी जानकीजीभी विश्राम करना चाहती हैं ॥ ४० ॥ यह वडी ही सुकुमार हैं, इन्होंने भला कभी काहेकोही कष्ट सहा दोगा परन्तु पतिते स्नेहके कारण इस बडे कष्ट देनेवाले वनमें यह आई हैं ॥ ४१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जान कीजीका मन जिसमें प्रसन्न रहे वही तुमको कला चाहिये, क्योंकि तुम्हारे साथ २ वनको आगमन करने

गंगमूही उन्नति हुई है तबसे ब्रियाँका स्वभावही ऐसा है कि, धनवान् पुरुषको ग्रहण करती और दरिद्रको त्याग करती हैं ॥ ७ ॥ ब्रियें विजलीकी चपलता, अग्निकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी ग्रीवताका अनुकरण करती हैं ॥ ८ ॥ परन्तु इन तुम्हारी भायों जानकीजीमें इन सबमेंसे कोई भी दोष नहीं है । यह देवताओंके अग्निकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी ग्रीवताका अनुकरण करती हैं ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें वास करोगे वही देश सीनेमें धरुन्वतीकी समान गगनवीथ और कीर्तिमयी हैं ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें वास करोगे वही देश गगनवीथ की समान गगनवीथ और कीर्तिमयी हैं ॥ ७ ॥ जव कल्पिते इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़ विनीत वचनसे अग्निके समान तेजस्वी उन महर्षि अगस्त्यजीसे गंगाधरमान हो जायगा ॥ ८ ॥ जब कल्पिते इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़ विनीत वचनसे अग्निके समान तेजस्वी उन महर्षि अगस्त्यजीसे कहा कि ॥ ९ ॥ हे मुनिवर ! हमारे, हमारी भायोंके और हमारे प्राताके गुणोंसे जो आप प्रसन्न हुए हैं इससे मैं धन्य और अमुग्रह भाजन हुआ ॥ १० ॥ भिममें आजा कीजिये कि, ऐसा कोई स्थान है जहाँ वनभी बड़ा हो और जलभी सरलतासे प्राप्त होजाया करे और वहाँ हम कुटी बनाकर स्वच्छन्दता शनद्वन्द्वानाओल्लंघनश्रावणतीक्ष्णताया ॥ गरुडानिलयोःशेथ्यमनुगच्छन्तियोपितः ॥ ६ ॥ इयंतुमवतोभार्यादोषैरतेर्विवर्जिता ॥ छाध्याच शनद्वन्द्वानाओल्लंघनश्रावणतीक्ष्णताया ॥ गरुडानिलयोःशेथ्यमनुगच्छन्तियोपितः ॥ ६ ॥ इयंतुमवतोभार्यादोषैरतेर्विवर्जिता ॥ छाध्याच शनद्वन्द्वानाओल्लंघनश्रावणतीक्ष्णताया ॥ गरुडानिलयोःशेथ्यमनुगच्छन्तियोपितः ॥ ६ ॥ इयंतुमवतोभार्यादोषैरतेर्विवर्जिता ॥ छाध्याच

शनद्वन्द्वानाओल्लंघनश्रावणतीक्ष्णताया ॥ गरुडानिलयोःशेथ्यमनुगच्छन्तियोपितः ॥ ६ ॥ इयंतुमवतोभार्यादोषैरतेर्विवर्जिता ॥ छाध्याच शनद्वन्द्वानाओल्लंघनश्रावणतीक्ष्णताया ॥ गरुडानिलयोःशेथ्यमनुगच्छन्तियोपितः ॥ ६ ॥ इयंतुमवतोभार्यादोषैरतेर्विवर्जिता ॥ छाध्याच शनद्वन्द्वानाओल्लंघनश्रावणतीक्ष्णताया ॥ गरुडानिलयोःशेथ्यमनुगच्छन्तियोपितः ॥ ६ ॥ इयंतुमवतोभार्यादोषैरतेर्विवर्जिता ॥ छाध्याच

यत्र मणिसे पिभूषित दिव्य और बड़ा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥ और सूर्यके समान प्रभावसम्पन्न उत्तम बाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीने दी हैं और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके बाण कभी नहीं निबडते हमको दिये हैं ॥ ३३ ॥ तीखे बाणोंसे परिपूर्ण और अधिक समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्णमय कोशवद्ध खड्ग इन्द्रजीने हमको दिये हैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! पहले भगवान् विष्णुजीने इस वैष्णव धनुषकी सहायतासे युद्धमें महाबली उठी असुरोंको संहार करके देवताओंको दीप्तिमयी लक्ष्मी प्रदान कीथी ॥ ३५ ॥ हे मानद ! वज्रधर इन्द्रजी जिसप्रकार वज्र धारण करते हैं, तुमभी तैसेही पवित्रयश प्राप्त करनेके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ महातेजस्वी भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कहकर महापण्डित प्रवीण रामचन्द्रजीको

अमोचःसूर्यसंकाशोब्रह्मदत्तःशरोत्तमः ॥ दत्तोमममहेंद्रेणतूणीचाक्षय्यसायकौ ॥ ३३ ॥ संपूर्णोनिशिबैवोर्ज्वलद्भिरिवपावकैः ॥ महाराजतकोशो यमसिंहमविभूषितः ॥ ३४ ॥ अमेनधनुषारामहत्वासंख्येमहासुरान् ॥ आजहारथ्रियं दीप्तां पुराविष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ३५ ॥ तद्धनुस्तौचतूणीचशरं खड्गचमानदः ॥ जयायप्रतिगृह्णीष्ववब्रवरोयथा ॥ ३६ ॥ एवमुक्त्वामहातेजाःसमस्तंतद्वरायुधम् ॥ दत्त्वारामायभगवानगस्त्यःपुनरब्रवीत् ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आं० अरण्यकाण्डे द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ रामप्रीतोस्मिभद्रेतेपरितुष्टोस्मिलक्ष्मण ॥ अभिवादयितुंयन्मांप्राप्तौस्थः सहसीतया ॥ १ ॥ अद्यश्रमेणवर्खिवोवाचेतप्रचुरश्रमः ॥ व्यक्तमुत्कंठतेवापिमिथीजनकात्मजा ॥ २ ॥ एपाचसुकुमारीचखेदैश्चनविमानिता ॥ प्राज्यदोषंवनंप्राप्ताभर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ३ ॥ यथैषारमतेरामइहसीतातथाकुरु ॥ दुष्करंकृतवत्येषावनेत्वाभिमगच्छती ॥ ४ ॥ एपाहिप्रकृतिःस्त्री णामासृष्टयुनंदन ॥ समस्थमनुरज्यंतेविपमस्थंत्यजंति च ॥ ५ ॥

यह ममस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषाटीकायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! तुम जो मीनामहित हमको श्रणाम करने आये हो इससे हम तुम्हारे और लक्ष्मणके प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं, तुम्हारा मंगल होवे ॥ १ ॥ यह स्पष्ट माल होता है कि, मार्ग चलनेकी थकावटसे तुमको यदाकदा हुआ है । जनककुमारी सुकुमारी जानकीजीभी विश्राम करना चाहती हैं ॥ २ ॥ यह बड़ी ही उजुमार है, इन्होंने भला कभी कान्हेकीही कट सहा सेवा परन्तु पतिसे स्नेहके कारण इस बड़े कष्ट देनेवाले वनमें यह आर्द्र हैं ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जानकीजीरा मन जिनमें प्रमत्त रहे यही तमको कृपा खासिये, क्योंकि तम्हारे माथ ३ वृत्तसे छायाका प्रकीर्ण है ।

और फिर आप जानस्थान की गर्ती क्यों पहुँचते हैं? अर्थात् हमारे निकट राक्षस नहीं आ सकते आग उनको मारना चाहते हैं इस कारण आप यहाँ रहना नहीं चाहते ॥ १६ ॥ इसी कारण हम कहते हैं कि, तुम पंचवटीको चले जाओ, वह वनैला देश अति रमणीय है वहाँ सीताके मनकोभी सन्तोष होगा ॥ १७ ॥ पंचवटी बड़ाई करनेके योग्य है, और बहुत दूरभी नहीं है, इस गोदावरीके निकटही है मिथिलेरादुलारी वहाँपर प्रसन्न होकर रहेंगी ॥ १८ ॥ देवतापादो ! वह बहुत फल मूल करके युक्त अनेक भांतिके विहंगमोंसे परिपूर्ण पुण्यमय और निर्जन देश अति रमणीय है ॥ १९ ॥ तुमभी सदाचारी और रक्षा करनेमें समर्थ हो उस स्थानमें वास करके तपस्वी लोगोंका पालन भली प्रकार कर सकोगे ॥ २० ॥ हे वीर ! यह जो जो महुयेके वृक्षोंका महावन शिखराई देता है उसके ऊपर और होकर तुमको जाना होगा, फिर उसके पीछे तुमको न्यग्रोध वृक्षोंका वन प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ तिसके पीछे विशेष स्थानपर पहुँच अनश्वत्थामहंश्चमिगच्छपंचवटीमिति ॥ सहिरम्योवनोद्देशोमिथिलीतत्रंस्स्यते ॥ १७ ॥ सदशःश्लाघनीयश्चनितिदूरेचराधव ॥ गोदावर्याः समीपेचमिथिलीतत्रंस्स्यते ॥ १८ ॥ प्राज्यमूलफलैश्चैव नानाद्रिजगणेर्युतः ॥ विविक्तश्चमहाबाहोपुण्योरम्यस्तथैवच ॥ १९ ॥ भवानपिसदा चारःशक्तश्चपरिरक्षणे ॥ अपिचात्रवसत्रामतापसान्पालयिष्यसि ॥ २० ॥ एतदालक्ष्यतेवीरमधूकानामहावनम् ॥ उत्तरेणास्यगंतव्यंन्यग्रोधमपिगच्छता ॥ २१ ॥ ततःस्थलमुपारुह्यपर्वतस्याविदूरतः ॥ ख्यातःपंचवटीत्येवनित्यपुष्पितकाननः ॥ २२ ॥ अगस्त्येनैवमुक्तस्तुरामः ॥ २३ ॥ गृहीतचार्योतुनराधिपात्समीपेविपक्षतूणीसमरेष्वकातरौ ॥ यथोपदिष्टेनपथामहर्षिणाप्रजग्मतुःपंचवटीसमाहितौ ॥ २५ ॥ इत्यापे नैमे तुमको एकपर्वत दिखाई देगा, उस पर्वतके कुछ दूरही विख्यात पंचवटीका वन है वह सदाही फूला फला रहता है ॥ २२ ॥ श्री अगस्त्यजीके ऐसे वचन श्रवण करने भीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित सत्यवादी कपिका भली भाँति आदर सत्कार करके उनसे विदा मांगतेहुए ॥ २३ ॥ अगस्त्यजीकी आज्ञा पाकर दोनोंजन उनके चरणोंकी बन्दना करके सीताजीके साथ पंचवटी आश्रमके लिये चले ॥ २४ ॥ समरमें न डरनेवाले दोनों नृपकुमार धनुष धारण कर और तरकस बाँधकर महर्षि अगस्त्यजीने जो मार्ग बताया अतिसावधानीसे उस मार्गके द्वारा पंचवटीकी यात्रा करते हुए ॥ २५ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिसूत्रे आरण्यकांडे भाषाटीकायां चयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने पंचवटीके मार्गमें जाते २ एक भयानक पराक्रमवान् महाशरीरवाले गीधको देखा ॥ १ ॥ महाभाग श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी वनमें इस पक्षीको देख राक्षस समझकर उससे पूछने लगे कि, तुम कौनहो ? ॥ २ ॥ गीध मधुर और प्यारे वचनोंसे उनको प्रसन्न करके बोला, कि—हे वरत ! तुम हमको अपने पिताका मित्र समझो ॥ ३ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने उसको पिताका मित्र जानकर पूजा करते हुए प्रेमाभासे उसका कुल और नाम पूछा ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर गीध सब जीवोंकी उत्पत्तिके वर्णनका प्रसंग वर्णन करके अपना कुल और नाम कहने लगा ॥ ५ ॥ हे महाबाहो ! हे रावव ! पूर्वकालमें जो कि, प्रजापति हुण्ठे, हम क्रमशः उन सबका नाम बतलाते हैं आप श्रवण कीजिये ॥ ६ ॥ कर्दम उन सबमें बड़ेये उनके पीछे विकृत, शेष,

अथपंचवटीगच्छन्तंराराधुनंदनः ॥ आससादमहाकायंग्रंभीमपराक्रमम् ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वातीमहाभागौवनस्थंग्रामलक्ष्मणौ ॥ मेनातेराक्षसंपक्षिद्ववा
र्णोकोभवानिति ॥ २ ॥ ततोमधुरयावाचासौम्ययाप्रीणयन्निव ॥ उवाचवत्समांविद्विवयस्यंपितुरात्मनः ॥ ३ ॥ सतंपितृसखंमत्वापूजयामासराववः ॥
सतस्यकुलमन्यग्रमथप्रच्छन्नामच ॥ ४ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाकुलमात्मानमेवच ॥ आचक्षेद्विजस्तस्मैसर्वभूतसमुद्रवम् ॥ ५ ॥ पूर्वकालेमहावा
होयेप्रजापतयोऽभवन् ॥ तान्मेनिगदतःसर्वानादितःशृणुराचव ॥ ६ ॥ कर्दमःप्रथमस्तेपांविद्वत्तस्तदनंतरम् ॥ शेषश्चसंश्रयश्चैवबहुपुत्रश्चवीर्यवान् ॥ ७ ॥
स्थाणुर्मरीचिरश्विश्चक्रतुश्चैवमहायल ॥ पुलस्त्यश्चांगिराश्चैवप्रचेताःपुलहस्तथा ॥ ८ ॥ दक्षोविवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्चरावव ॥ कश्यपश्चमहाते
जास्तेषामसीचिपश्चिमः ॥ ९ ॥ प्रजापतेस्तुदक्षस्यवभृशुरिति विश्रुताः ॥ पटिंहितरोरामयशस्विन्योमहायशः ॥ १० ॥ कश्यपःप्रतिजग्राहतासामष्टौ
सुमध्यमाः ॥ अदितिंचदितिंचैवदत्तमपिचकालकाम् ॥ ११ ॥ ताम्रांक्रोधवशांचैवमनुंचाप्यनलामपि ॥ तास्तुकन्यास्ततःप्रीतःकश्यपःपुनरत्र
वीत् ॥ १२ ॥ पुत्रांस्त्रिलोक्यभर्तृन्वैजनाप्यिष्यथमतस्मान् ॥ अदितिस्तन्मनारामदितिश्चदत्तुरेवच ॥ १३ ॥

संश्रय, वीर्यवान्, बहुपुत्र ॥ ७ ॥ स्थाणु, मरीचि, अग्नि, महाबलवान् क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह ॥ ८ ॥ दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि यह क्रमसे उत्पन्न हुए महात्मा कश्यप उन सबमें छोटेथे ॥ ९ ॥ हे महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी ! उनमें दक्षप्रजापतिके यशस्विनी लोकमें विख्यात साठ ६० कन्यायें उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ उनमें अतिसुन्दरी आठ कन्याओंका कश्यपजी विवाह करते हुए १ उनके नाम अदिति, दिति, दनु, कालका ॥ ११ ॥ ताम्रा, क्रोधवशा, मनु व अनला, विवाह होजाने पर पसन्नहो कश्यपजी इन दक्षकन्याओंसे बोले ॥ १२ ॥ कि, तुम हमारी समान त्रिलोकीका भरण पोषण करनेवाले पुत्र उत्पन्न करो यह सुन दिति अदिति दनु ॥ १३ ॥

और फाल्गुना यह तो दो पुत्र ग्रान करनेके लिये अपि लापिनी हुई और शेष चारोंने पतिके कहनेमें ध्यान न लगाया अदितिके तैतीस ३३ देवता हुए ॥ १४ ॥ अदितिके गर्भमें १२ आदित्य ८ बह ११ रुद्र २ अश्विनीकुमार उपजे । और दितिने भी बड़े यशस्वी दैत्य उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ पहले वन और समुद्रमहित यह पृथ्वी उनहीकी थी । हे अरिन्दम ! दनुने अश्वीवनामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ और कालकाने नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये कीर्त्तवी, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी ॥ १७ ॥ ताम्रासे यह लोकविख्यात पांच कन्या जन्मी उसमें क्रौञ्चीसे उलूक पैदा हुए भासीसे भास जन्मे ॥ १८ ॥ श्येनीने अति तेजस्वी श्येन और गीर्धको प्रसव किया और धृतराष्ट्रीसे सब हंस ॥ १९ ॥ और चक्रवा चक्रवर्त्योको भी उसीने उत्पन्न किया, शुकीके

कालकाचमहाबाहोशेषास्त्वमनसोभवन् ॥ अदित्यांजशिरेदेवास्त्रयस्त्रिंशदर्दम ॥ १४ ॥ आदित्यावसवोरुद्राअश्विनौचपरंतप ॥ दितिस्त्वजनय त्पुत्रान्देव्यास्तातयशस्विनः ॥ १५ ॥ तेषामियंवसुमतीपुरासीत्सवनार्णवा ॥ दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वीवमारिदम ॥ १६ ॥ नरकंकालकंचैवका लकापिव्यजायत ॥ कीर्त्तवीभासीतथाश्येनीधृतराष्ट्रीतथाशुकीम् ॥ १७ ॥ ताम्रातुसुपुवेकन्याःपंचैतालोकविश्रुताः ॥ उलूकाजनयत्क्रौञ्चीभासी भासान्व्यजायत ॥ १८ ॥ श्येनीश्येनांश्चगुध्रांश्चव्यजायतसुतेजसः ॥ धृतराष्ट्रीतुहंसांश्चकलहंसांश्चसर्वशः ॥ १९ ॥ चक्रवाकांश्चभद्रतेविजज्ञेसापिभा मिनी ॥ शुकीनतांविजज्ञेतुनतायांविनतासुता ॥ २० ॥ दशक्रोधवशारामविजज्ञेप्यात्मसंभवाः ॥ मृगींचमृगमंदांचहरींभद्रमदामपि ॥ २१ ॥ मातंगीमथशार्दूलौश्चेतांचसुरभीतथा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नांसुरसांकट्टकामपि ॥ २२ ॥ अपत्यंतुमृगाःसर्वेमृगानवरौत्तम ॥ ऋक्षाश्चमृगमंदायाः सुमराश्चमरास्तथा ॥ २३ ॥ ततस्त्विवरावर्तानामजज्ञेभद्रमदासुताम् ॥ तस्यास्त्वेवरावतःपुत्रोलोकनाथोमहागजः ॥ २४ ॥ हर्याश्वहरयोपत्यंवा नराश्चतपस्विनः ॥ गोलंगूलाश्चशार्दूलौव्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥ २५ ॥ मातंग्यास्त्वथमातंगाअपत्यंमनुजर्षभ ॥ दिशागजांस्तुकाकुत्स्थश्चेता व्यजनयत्सुतान् ॥ २६ ॥

नता कन्या हुई और नताके विनता उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ हे राम ! क्रोधवशाके दश कन्या उत्पन्न हुई उनके नाम यह हैं यथा—मृगी, मृगमंदा, हरी, भद्रमदा ॥ २१ ॥ मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा, कट्टका यह सब कन्यायें शुभ लक्षण सम्पन्न थीं ॥ २२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! समस्त मृग मृगीसे उत्पन्न हुए और काले व सफेद रीछ मृगर चमरी आदि मृगमन्दोके जन्मे ॥ २३ ॥ भद्रमदाने इरावती नामक कन्या प्रसव की उसका पुत्र लोकपाल महागज ऐरावत हुआ ॥ २४ ॥ सिंह वानर और गोपुच्छगण हरीके उत्पन्न हुए, शार्दूलीने व्याघ्रोंको प्रसव किया ॥ २५ ॥ हे पुरुषवर श्रीरामचंद्रजी ! सब दायी मातङ्गीके पुत्र हुए । श्वेताने

[illegible]

प्रकारामान भाता लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य ! महर्षि अगस्त्यजीने जिसको वतायाथा अब हम उसी सदा फूले वन करके गोभायमान पंचवटीमें आगये हैं ॥ २ ॥ आश्रम बनानेके योग्य स्थान निर्णय करनेमें तुम भलीभाँति चतुरहो तिससे इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि, कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बन सकताहै ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! जिस स्थानमें तुम हम और जानकीजी विशेष प्रसन्नता सहित रह सकें और जलभी जहाँ निकटही हो ऐसे स्थानको तुम खोजो ॥ ४ ॥ जिस जगह वन और जल दोनोंही रमणीय और पावनहों व ईधन, पुष्प, कुशा, जल जहाँ निकटही पाया जावे ऐसा स्थान देखो ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने जब इन प्रकार कहा तब लक्ष्मणजीने कर जोड़कर सीताजीके सामने रामचन्द्रजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भाई साहब ! हम आपके विषयमान रहते मैकड़ों वर्षतकभी स्वार्थीन नहीं हूँ न कुछ विचारही सकतेहूँ और हमारा विचार ठीक भी नहीं है तिससे अब आप स्वयंही मनोहर स्थान देख भाल हमको वहाँ आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये आगताः स्मयथोद्दिष्ट्यंदेशं मुनिव्रवीत् ॥ अयंपंचवटीदेशः सौम्यपुष्पितकाननः ॥ २ ॥ सर्वतश्चार्थतांदृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि ॥ आश्रमः कतर स्मिन्नो देशो भवतिसंमतः ॥ ३ ॥ रमते यत्र वेदेही त्वमहं च लक्ष्मण ॥ तादृशो दृश्यतां देशः सन्निकृष्टजलाशयः ॥ ४ ॥ वनरामण्यकं यत्र जलराम ण्यकं तथा ॥ सन्निकृष्टं च यस्मिन्स्तु सन्ति पुष्पकुशोदकम् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तुरामेण लक्ष्मणः संयतांजलिः ॥ सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनम ब्रवीत् ॥ ६ ॥ परवानस्मि काकुत्स्थ त्वचयि वरपशंतं स्थिते ॥ स्वयंतुरुचिरे देशे क्रियतामिति भाविद ॥ ७ ॥ सुप्रीतस्तेन चास्येन लक्ष्मणस्य मन्त्राद्युतिः ॥ विमृशन्नोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥ सतरुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि ॥ हस्ते गृह्णात्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमव्रवीत् ॥ ९ ॥ अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पिते स्तरुभिर्वृतः ॥ इहाश्रमपदं रम्यं यथावत्कृतुमर्हसि ॥ १० ॥ इयमादित्यसंकाशः पद्मेः सुरभिर्गंधिभिः ॥ अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनीपद्मशोभिता ॥ ११ ॥ यथाख्यातमगस्त्येन सुनिनाभा वित्तात्मना ॥ इयंगोदावरीरम्यापुष्पिते स्तरुभिर्वृता ॥ १२ ॥ हंसकारं डवाकीर्णां च कवाकोपशोभिता ॥ नातिदूरेन चासन्नेष्टुगयूथनिपीडिता ॥ १३ ॥

॥ ७ ॥ महाद्युतिमान् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो विचारकरके सर्व गुणों करके पुनः एक मनोहर स्थान खोज छेने हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान स्थान सब भाँतिसे मनोहर और आश्रम बनानेके योग्य था वहाँ श्रीरामचन्द्रजी पदार्पण कर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ पकड़कर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरही हैं ऐसे कमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहाँसे निकटही चरही है ॥ १० ॥ मूर्धके नमान उज्ज्यल जिसप्रकार कहा था यह देवो केमही फूलाने वृक्षोंसे शोभित गोदावरी दृष्टि आती है ॥ ११ ॥ यहाँ रंग और कर्णप्रसन्न करनेवाले हैं ॥ १२ ॥ हंसकारं डवाकीर्णां

1952, 1953, 1954, 1955, 1956, 1957, 1958, 1959, 1960, 1961, 1962, 1963, 1964, 1965, 1966, 1967, 1968, 1969, 1970, 1971, 1972, 1973, 1974, 1975, 1976, 1977, 1978, 1979, 1980, 1981, 1982, 1983, 1984, 1985, 1986, 1987, 1988, 1989, 1990, 1991, 1992, 1993, 1994, 1995, 1996, 1997, 1998, 1999, 2000, 2001, 2002, 2003, 2004, 2005, 2006, 2007, 2008, 2009, 2010, 2011, 2012, 2013, 2014, 2015, 2016, 2017, 2018, 2019, 2020, 2021, 2022, 2023, 2024, 2025, 2026, 2027, 2028, 2029, 2030, 2031, 2032, 2033, 2034, 2035, 2036, 2037, 2038, 2039, 2040, 2041, 2042, 2043, 2044, 2045, 2046, 2047, 2048, 2049, 2050, 2051, 2052, 2053, 2054, 2055, 2056, 2057, 2058, 2059, 2060, 2061, 2062, 2063, 2064, 2065, 2066, 2067, 2068, 2069, 2070, 2071, 2072, 2073, 2074, 2075, 2076, 2077, 2078, 2079, 2080, 2081, 2082, 2083, 2084, 2085, 2086, 2087, 2088, 2089, 2090, 2091, 2092, 2093, 2094, 2095, 2096, 2097, 2098, 2099, 2100, 2101, 2102, 2103, 2104, 2105, 2106, 2107, 2108, 2109, 2110, 2111, 2112, 2113, 2114, 2115, 2116, 2117, 2118, 2119, 2120, 2121, 2122, 2123, 2124, 2125, 2126, 2127, 2128, 2129, 2130, 2131, 2132, 2133, 2134, 2135, 2136, 2137, 2138, 2139, 2140, 2141, 2142, 2143, 2144, 2145, 2146, 2147, 2148, 2149, 2150, 2151, 2152, 2153, 2154, 2155, 2156, 2157, 2158, 2159, 2160, 2161, 2162, 2163, 2164, 2165, 2166, 2167, 2168, 2169, 2170, 2171, 2172, 2173, 2174, 2175, 2176, 2177, 2178, 2179, 2180, 2181, 2182, 2183, 2184, 2185, 2186, 2187, 2188, 2189, 2190, 2191, 2192, 2193, 2194, 2195, 2196, 2197, 2198, 2199, 2200, 2201, 2202, 2203, 2204, 2205, 2206, 2207, 2208, 2209, 2210, 2211, 2212, 2213, 2214, 2215, 2216, 2217, 2218, 2219, 2220, 2221, 2222, 2223, 2224, 2225, 2226, 2227, 2228, 2229, 2230, 2231, 2232, 2233, 2234, 2235, 2236, 2237, 2238, 2239, 2240, 2241, 2242, 2243, 2244, 2245, 2246, 2247, 2248, 2249, 2250, 2251, 2252, 2253, 2254, 2255, 2256, 2257, 2258, 2259, 2260, 2261, 2262, 2263, 2264, 2265, 2266, 2267, 2268, 2269, 2270, 2271, 2272, 2273, 2274, 2275, 2276, 2277, 2278, 2279, 2280, 2281, 2282, 2283, 2284, 2285, 2286, 2287, 2288, 2289, 2290, 2291, 2292, 2293, 2294, 2295, 2296, 2297, 2298, 2299, 2300, 2301, 2302, 2303, 2304, 2305, 2306, 2307, 2308, 2309, 2310, 2311, 2312, 2313, 2314, 2315, 2316, 2317, 2318, 2319, 2320, 2321, 2322, 2323, 2324, 2325, 2326, 2327, 2328, 2329, 2330, 2331, 2332, 2333, 2334, 2335, 2336, 2337, 2338, 2339, 2340, 2341, 2342, 2343, 2344, 2345, 2346, 2347, 2348, 2349, 2350, 2351, 2352, 2353, 2354, 2355, 2356, 2357, 2358, 2359, 2360, 2361, 2362, 2363, 2364, 2365, 2366, 2367, 2368, 2369, 2370, 2371, 2372, 2373, 2374, 2375, 2376, 2377, 2378, 2379, 2380, 2381, 2382, 2383, 2384, 2385, 2386, 2387, 2388, 2389, 2390, 2391, 2392, 2393, 2394, 2395, 2396, 2397, 2398, 2399, 2400, 2401, 2402, 2403, 2404, 2405, 2406, 2407, 2408, 2409, 2410, 2411, 2412, 2413, 2414, 2415, 2416, 2417, 2418, 2419, 2420, 2421, 2422, 2423, 2424, 2425, 2426, 2427, 2428, 2429, 2430, 2431, 2432, 2433, 2434, 2435, 2436, 2437, 2438, 2439, 2440, 2441, 2442, 2443, 2444, 2445, 2446, 2447, 2448, 2449, 2450, 2451, 2452, 2453, 2454, 2455, 2456, 2457, 2458, 2459, 2460, 2461, 2462, 2463, 2464, 2465, 2466, 2467, 2468, 2469, 2470, 2471, 2472, 2473, 2474, 2475, 2476, 2477, 2478, 2479, 2480, 2481, 2482, 2483, 2484, 2485, 2486, 2487, 2488, 2489, 2490, 2491, 2492, 2493, 2494, 2495, 2496, 2497, 2498, 2499, 2500, 2501, 2502, 2503, 2504, 2505, 2506, 2507, 2508, 2509, 2510, 2511, 2512, 2513, 2514, 2515, 2516, 2517, 2518, 2519, 2520, 2521, 2522, 2523, 2524, 2525, 2526, 2527, 2528, 2529, 2530, 2531, 2532, 2533, 2534, 2535, 2536, 2537, 2538, 2539, 2540, 2541, 2542, 2543, 2544, 2545, 2546, 2547, 2548, 2549, 2550, 2551, 2552, 2553, 2554, 2555, 2556, 2557, 2558, 2559, 2560, 2561, 2562, 2563, 2564, 2565, 2566, 2567, 2568, 2569, 2570, 2571, 2572, 2573, 2574, 2575, 2576, 2577, 2578, 2579, 2580, 2581, 2582, 2583, 2584, 2585, 2586, 2587, 2588, 2589, 2590, 2591, 2592, 2593, 2594, 2595, 2596, 2597, 2598, 2599, 2600, 2601, 2602, 2603, 2604, 2605, 2606, 2607, 2608, 2609, 2610, 2611, 2612, 2613, 2614, 2615, 2616, 2617, 2618, 2619, 2620, 2621, 2622, 2623, 2624, 2625, 2626, 2627, 2628, 2629, 2630, 2631, 2632, 2633, 26

यद् नदी न यदानी चरी दूर है न बहुत निकटही है मृगोंके शूयके गूथ जहां घूम रहे हैं ॥ १३ ॥ खिले हुये वृक्षोंसे शोभित मोर गण जहां नाद कर रहे हैं न
गुला जिनमें विद्यमान एम मनोहर देगनोंमें दिव्य बड़े २ ऊँचे यह सब पहाड दिखाई देते हैं ॥ १४ ॥ उन सब पहाडोंके स्थान सुखर्ण चांदी और अन
बनकी विचित्र रचनामें मंजहुए दाधियोंके समान गोधा पा रहे हैं ॥ १५ ॥ साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, निवार तिनिया, पुन्नागसे शोभित ॥ १६ ॥
धाम, अंगोक, तिटक, केतकी और चंसा आदि पुष्प, गुल्म, लता इत्यादि वृक्षोंसे शोभायमान ॥ १७ ॥ स्रन्दन, चन्दन, कदंब, लकुच, धव, अवकर्ण, नः
शमी, डाक भ्रांग फूल इन तरुवर्गोंने भी बिरे दुपे हैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! यह स्थान अतिशय पवित्र, अतिशय मनोहर, अनेक प्रकारके मृग, और पक्षियोंसे नः

मयूनादितारम्याः प्रांशोवदुकंदराः ॥ दृश्यंते गिरयः सीम्याः फुल्लेस्तरुभिरावृताः ॥ १४ ॥ सोवर्णराजतेस्ताम्रैर्देशदेशे तथाशुभेः ॥ गवाक्षिताद्
गर्भातिगजाः परमभक्तिभिः ॥ १५ ॥ सालेस्तालेस्तमालेश्च खर्जूरैः पनसेद्रुमैः ॥ नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुत्रागेश्वोपशोभिताः ॥ १६ ॥ चूतेशोऽन
स्ति लकैः केनैरपि च ॥ पुष्पगुरुमलतोपेतैस्ते स्ते स्तरुभिरावृताः ॥ १७ ॥ स्पंदनैश्चंदनेर्नीपैः पनसैर्लकुचैरपि ॥ धवाश्वकर्णखदिरेः शर्णी
किंजुर्कपाटलैः ॥ १८ ॥ इदं पुण्यमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम् ॥ इह वत्स्यामसौ मित्रे सार्धं मे तेन पक्षिणा ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुरामेण लक्ष्मणः परां
गदा ॥ अचिरंणाश्रमं भ्रातृश्वकारसुमहाचलः ॥ २० ॥ पर्णशालां सुविपुलांतत्र संघातमृत्तिकां ॥ सुस्तंभं अमस्करोद्दीर्घः कृतवंशं सुशोभनाम् ॥
॥ २१ ॥ शमीशालाभिगस्तीर्य दृढपाशावपाशिताम् ॥ कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा ॥ २२ ॥ समीकृततलारं रम्यांचकार सुमहा
तनुः ॥ निर्यामंगयवस्यार्थं प्रेक्षणं यमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ सगत्वालक्ष्मणः श्रीमान्नदगोदावरोत्तदा ॥ स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः ॥ २४ ॥

पुर्ण है, जो जगत्पुरुष महिम्न इस स्थानपर हम प्राप्त करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीराम चन्द्रजीने ऐसा कहा तब श्रीलक्ष्मणजीने बहुत शीघ्र रामचन्द्रजीके रहनेके प्रथम भेद एक स्थान बनाया ॥ २० ॥ उसमें बड़ी भारी पर्णशाला बनाई भीतें भिट्टीसे उठादीं सुन्दर खंभ गाड़ दिये, ऊपर लंबे २ बांस धरे ॥ २१ ॥ उन निगट पामोंपर गभीकी डालिये काट २ कर छादीं फिर उन शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढ़ता सहित बांध दिया, कुरा, और शरपत्रसे आँध्रि उमरो ठारूर सगावर करदिया ॥ २२ ॥ निसपर गभीकी डालियोंकी बांचियें छा कसकर बांधदीं, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीके निहारे बनवाया ॥ २३ ॥ जब स्थान बन चुका तो श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहाँसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लाँटे ॥ २४ ॥

१ लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य ! महर्षि अगस्त्यजीने जिसको बतायाथा अब हम उसी सदा फूले फले वन करके शोभायमान पंचवटीमें आगये आश्रम बनानेके योग्य स्थान निर्णय करनेमें तुम मलीभाँति चतुरहो तिससे इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि, कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बन है ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! जिस स्थानमें तुम हम और जानकीजी विशेष प्रसन्नता सहित रह सकें और जलभी जहाँ निकटही हो ऐसे स्थानको तुम खोजो ॥ ४ ॥ जिस जगह वन और जल दोनोंही रमणीय और पावनहों व ईधन, पुष्प, कुशा, जल जहाँ निकटही पाया जावे ऐसा स्थान देखो ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने जब इस प्रकार कहा तब लक्ष्मणजीने कर जोड़कर सीताजीके सामने रामचन्द्रजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भाई साहब ! हम आपके वियमान रहते सैकड़ों वर्षतकभी स्वाधीन नहीं हैं न कुछ विचारही सकतेहैं और हमारा विचार ठीक भी नहीं है तिससे अब आप स्वयंही मनोहर स्थान देख भाल हमको वहाँ आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये आगताः स्मयथोद्दिष्ट्यंदेशं सुनिब्रवीत् ॥ अयंपंचवटीदेशः सौम्यपुष्पितकाननः ॥ २ ॥ सर्वतश्चार्थतांदृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि ॥ आश्रमः कतर स्मिन्नो देशो भवति समतः ॥ ३ ॥ रमते यत्र वैदेही त्वमहंच लक्ष्मण ॥ तादृशो दृश्यतां दिशः सन्निकृष्टजलाशयः ॥ ४ ॥ वनरामण्यकं यत्र जलराम ण्यकं तथा ॥ सन्निकृष्टं च यस्मिन्स्तु सन्निपुष्पकुशोदकम् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तुरामेण लक्ष्मणः संयतांजलिः ॥ सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनम ब्रवीत् ॥ ६ ॥ परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते ॥ स्वयंतुरुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद ॥ ७ ॥ सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य मन्त्रमहाधुतिः ॥ विमृशन्नोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥ सतरुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि ॥ हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पिते स्तरुभिर्वृतः ॥ इहाश्रमपदरम्यं यथावक्तुं महसि ॥ १० ॥ इयमादित्यसंकाशः पद्मोः सुरभिर्गंधिभिः ॥ अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता ॥ ११ ॥ यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना ॥ इयंगोदावरीरम्या पुष्पिते स्तरुभिर्वृता ॥ १२ ॥ हंसकारंडाचार्कीर्णा चक्रवाकोपशोभिता ॥ नातिदूरे नचासन्ने मृगयूथनिपीडिता ॥ १३ ॥

७ ॥ महायुतिमान् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो विचारकरके सर्व गुणों करके युक्त एक मनोहर स्थान खोज लेते हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान सब भाँतिसे मनोहर और आश्रम बनानेके योग्य था वहाँ श्रीरामचन्द्रजी पदार्पण कर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ एकडकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान परम श्रीसम्यक् है भूमि यहांकी बराबर है और फूले हुए वृक्षोंसे घिरा हुआ है तिससे तुम इस स्थानमें योग्य पर्णकुट्टी बनाओ ॥ १० ॥ सूर्यके समान उज्ज्वल चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरही हैं ऐसे कमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहांसे निकटही बहरही है ॥ ११ ॥ विशुद्धात्मा महर्षि अगस्त्यजीने जिसप्रकार कहा था यह देखो वैसेही फूलाने वृक्षोंमें शोभित गोदावरी दृष्टि आती है ॥ १२ ॥ यहाँ हंस और कारंडक बोव स्ते हैं चक्रवाक मलीभाँति वृक्षोंमें शोभते हैं

मोर गण जहां नाद कर रहे हैं बहुत
 स्थान २ सुवर्ण चांदी और ताम्र
 तिनिया, पुत्रागसे गोभित ॥ ३६ ॥
 कंद, लकुर, धव, अश्वकर्ण, रौर,
 नेक प्रकारके मृग, और पक्षियोंसे परि
 शेदेशेतथाशुभे ॥ गवाक्षिताइ
 शोभिताः ॥ ३७ ॥ चूतेशोकै
 पि ॥ धवाश्वकर्णखदिरःशमी
 एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपरवी
 करेर्द्वैवैःकृतवंशसुशोभनाम् ॥
 रमीकृततलारम्यांचकारसुमहान्
 गादायसफलःपुनरागतः ॥ २४ ॥
 त शीघ्र रामचन्द्रजीके रहनेके लिये
 ऊपर छंदे २ वांस धरे ॥ २३ ॥
 कुरा, कारा, और शरपत्रसे भली
 यान लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीके रह
 फल लेकर आश्रमको लौटे ॥ २४ ॥

मद्रूनादितारम्याः प्रांशवोयहुकंदराः ॥ दृश्यंते गिरयः सोम्याः फुल्लेस्तरुभिरावृताः ॥ १३ ॥ सोवर्णराजतेस्ताम्रेदेशे शतथाशुभेः ॥ गवाक्षिताइ
चाभतिगजाः परमभक्तिभिः ॥ १५ ॥ सालेस्तालेस्तमालेश्च खजूरैः पनसैर्दुभैः ॥ नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुत्रागोक्षोपशोभिताः ॥ १६ ॥ चूतैरशोकै
स्तिलकैः केतकैरपि च पंकैः ॥ पुष्पगुह्मलतोपेतैस्सैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥ १७ ॥ स्यंदनेश्चंदनेर्नीपैः पनसैर्लकुचैरपि ॥ यवाश्च कर्णखदिरैः शमी
किंशुकपाटलैः ॥ १८ ॥ इदं पुण्यमिदं रम्यामिदं बहुमृगद्विजम् ॥ इह वत्स्यामसौ मित्रे सार्धं मे तेन पक्षिणा ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुरामेण लक्ष्मणः परवी
रहा ॥ अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥ २० ॥ पर्णशालां सुविपुलं तत्र संघातमृत्तिकाम् ॥ सुस्तंभं अमरैर्दोवं कृतवंशं सुशोभनाम् ॥
॥ २१ ॥ शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढया शावपाशिताम् ॥ कुशकाशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा ॥ २२ ॥ समीकृततलारं रम्यांचकार सुमहान
लः ॥ निवासं राघवस्यार्थं प्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ सगत्वा लक्ष्मणः श्रीमात्रदगोदावरोतदा ॥ ह्यात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः ॥ २४ ॥

पूर्ण है, सो जगज्युके सहित इस स्थानपर हम वास करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीराम चन्द्रजीने ऐसा कहा तब श्रीलक्ष्मणजीने बहुत शीघ्र रामचन्द्रजीके रहनेके लिये परम श्रेष्ठ एक स्थान बनाया ॥ २० ॥ उसमें बड़ी भारी पर्णशाला बनाई भीतें भिट्टीसे उठादीं सुन्दर खंभ गाड़ दिये, ऊपर लंबे २ बांस धरे ॥ २१ ॥ उन तिरछे बांसोंपर शमीकी डालियें काट २ कर छादीं फिर उन शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढ़ता सहित बांध दिया, कुश, काश, और शरपत्रसे भली भांति उसको छाकर बराबर करा दिया ॥ २२ ॥ तिसपर शमीकी डालियोंकी चचियें छा कसकर बांधदीं, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीके रहनेके लिये बनाया ॥ २३ ॥ जब स्थान बन चुका तौ श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहाँसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लौटे ॥ २४ ॥

भिर लक्ष्मणीनें फूलोंमें पथाविधि वास्तुशान्ति करके उस कुटीको पवित्रकर श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया ॥ २५ ॥ श्रीधनुर्नन्दन रामचन्द्रजी सीताके सहित लक्ष्मण जीभी पनाई यह शुभदर्शन कुटी देखकर परमप्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ और बहुतही हर्षमें भरकर दोनों बाँहोंसे लक्ष्मणजीको स्नेह सहित अपनी छातीसे लगा लिया और पड़े मनोहर प्रेमसने वचन बोले ॥ २७ ॥ हे कार्यकरनेमें चतुर । हम तुम पर बहुतही प्रसन्न हुए हैं तुमने यह बड़ा भारी कार्य किया सो इस कार्यका तुमको पुरस्कार देना चाहिये अतएव इसके बदलेहीमें हमने तुमसे भेंटकी ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मणजी । तुम्हारी समान विचारवान् सबका भाव जाननेवाले, उपकार माननेवाले, और धर्मके जाननेवाले पुत्रके रहते राजा दशरथजीकी मृत्यु नहीं हुई ॥ २९ ॥ लक्ष्मीके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे ऐसा कहकर परम सुख भोगमय बहुत तनःपुष्पचलितकृत्वाशान्तिचसयथाविधि ॥ दर्शयामास रामायतदाश्रमपदं कृतम् ॥ २९ ॥ सतद्वद्धाकृतं सोम्यमाश्रमं सहसीतया ॥ राघवः पर्णशाला योदपमाहारयत्परम् ॥ २६ ॥ सुसंहृतः परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा ॥ अतिस्निग्धं च गण्डं च वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥ प्रीतोस्मि ते महत्कर्म तया कृतमिदं प्रभो ॥ प्रदेयोयन्निमित्ते परिष्वङ्गो मया कृतः ॥ २८ ॥ भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन चलः क्षमण ॥ त्वया पुत्रेण धर्मात्मानसंबृत्तः पितामहम् ॥ २९ ॥ एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तुरागवोलहिमवर्धनः ॥ तस्मिन्देशे बहुफलेन्यवसत्सखं सुखी ॥ ३० ॥ कंचित्कालं स धर्मात्मा सीतया लक्ष्मणेन च ॥ अनास्यमानो न्यवसत्स्वर्गलोके यथा मरः ॥ ३१ ॥ इत्यापे श्रीम० वा० आ० अर० पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥ वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य म हात्मनः ॥ शरद्वृषपाये हेमन्तऋतुरिष्टः प्रवर्तत ॥ १ ॥ सकदा चित्रभातायां शर्वर्या धनुर्नन्दनः ॥ प्रययावभियेकार्थं रम्यगोदावरीनदीम् ॥ २ ॥ प्रह्वः कलशहस्तस्तु सीतया सह वीर्यवान् ॥ घृष्टो तनुजन्त्राता सोमि त्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अयं सकालः संग्रातः प्रियो यस्ते प्रियंवद ॥ अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥ ४ ॥ नीहारपरुषोलोकः पृथिवीसस्यमालिनी ॥ जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥ ५ ॥

फल पुत्र उम आभनपदमें वास करते लगे ॥ ३० ॥ वह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण करके सेवित होनेपर देवलोकमें देवताकी समान वहां कुछ दिन वास करत हुए ॥ ३१ ॥ इत्यापे श्रीमद्रा० वा० आदि० आर० भाषाटीकायां पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥ महात्मा रामचन्द्रजीके वहां सुखसे वास करते २ शरत्काल बीता और समयका प्यारा हेमन्त समय आया ॥ १ ॥ एक समय रात्रि बीतकर प्रभात हुआ तो उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्नान करनेके लिये रमणीक गोदावरी नदीपर जाते हुए ॥ २ ॥ वीर्यवान् भाता लक्ष्मणजी सीताजीके साथ जलका कलश हाथमें लेकर उनके पीछे २ चलते हुए नम्रतासे बोले ॥ ३ ॥ हे प्रिय बोलनेवाले । जो इस समय आपकी प्यारसे, यह यही हेमन्तकाल उपस्थित हुआ है । इस हेमन्तके समागमसेही शुभ संवत्सर मानो सजकरही मनोहर हुआ है ॥ ४ ॥ शरदीके प्रभावसे सबही लोकोके

गरि रूचे होगये, और पृथ्वी अनाजोंसे भरपूर होरही है और अग्निही इस समय लोगोंको प्रिय लगती है शरीरसे पानी नहीं छुआ जाता ॥ १५ ॥ इस समय मन्
 गण नये अनाजसे देवता और पितरोंकी विशेष भांतिसे पूजा करके नवसस्य निमित्त यज्ञ करते हुए निष्पाप हुए हैं ॥ ६ ॥ इस समय सब देशोंमें काम्ययस्तु, दही, दूध
 गोरन आदि बहुत प्राप्त होता है, इस समय विजयकी इच्छा किये हुए राजा लोग देशोंमें धूमनेके लिये यात्रा करते हैं ॥ ७ ॥ दक्षिण दिशामें सूर्य भगवान्का अर्च
 अनुराग होनेसे उत्तर दिशा तिलरहीन ग्रीकी नई शोभाग्रहित होगई है ॥ ८ ॥ एक तो हिमालयपर स्वभावसेही बहुत पाला पड़ता है तिमपर अच सूर्य भगवान् उ
 चहुत दूर होगये हैं; तिससे हिमवानका हिमालय (पालेका घर) नाम ठीक २ होरहा है ॥ ९ ॥ इस समय दुपहरियामें धूमना अच्छा लगता है धूप लगनेन स
 होता है, इस समय सूर्य सवके सुख देनेवाले, और छाया तथा जल एकत्रही नहीं सेवन किया जाता ॥ १० ॥ अच सूर्य नारायणका वह पहलासा तेज नह
 नवाग्रयणपूजाभिरन्यच्यपितृदेवताः ॥ कृताग्रयणकाः काले संतो विगतकल्मषाः ॥ ६ ॥ ग्राज्यकामाजनपदाः संपन्नतरंगोरसाः ॥ विचरन्ति महीप
 लायात्रार्थं विजिगीषवः ॥ ७ ॥ सेवमाने दृढं सूर्ये दिशं त कसे विताम् ॥ विहीन तिलके वस्त्रीनोत्तरादिव प्रकाशते ॥ ८ ॥ प्रकृत्या हिमकोशादच्योदूरमुः
 श्रसां प्रतम् ॥ यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान्गिरिः ॥ ९ ॥ अत्यंत सुखसंचारामध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः ॥ दिवसाः सुभगादित्याभ्यासासलिलः
 भेगाः ॥ १० ॥ मृदुसूर्याः सुनीदाराः पटुशीताः समाहिताः ॥ जून्यारण्या हिमध्वस्तादिवसाभांति सां प्रतम् ॥ ११ ॥ निवृत्ताकाशशयनाः पुष्पनीताः
 मारुणाः ॥ शीतवृद्धतरायामास्त्रियामायति सां प्रतम् ॥ १२ ॥ रविसंक्रांतसी भाग्यस्तु पारारुणमंडलः ॥ निःश्वासां यद्वादर्शश्चंद्रमानप्रकाशते ॥
 ॥ १३ ॥ ज्योत्स्ना तु परमलिना पर्णमास्यां न राजते ॥ सीतेव चातपश्यामालक्ष्यते न च शोभते ॥ १४ ॥ प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमचिद्भ्रमसां प्रतम् ॥
 प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः ॥ १५ ॥

कुहरा पढ़ने व पवन चलनेसे जाड़ा बहुतही अधिक पड़ता है तिस जाड़ेके पड़नेसे जीवमात्रही जड़ीभूत होगये, तिससे सबही वन सूनेसे जान पड़ते हैं प्रभातक
 हिममस्त होकर प्रकाशित होता है ॥ ११ ॥ पुण्य नक्षत्र युक्त इस पुण्यमासमें और पाला पड़ती हुई धूसर वर्ण इन दिनोंकी रात्रिमें बिना छाये हुए स्थानमें नहीं मी
 जाता अच रात्रियों में शीत अधिक पड़ता है ॥ १२ ॥ जिसप्रकार आसकी वाफ लगनेसे दूषण अंथासा होजाता है, वैसेही सुप्तसे च्यतादि सबही सौभाग्य
 गमय सूर्यसे दबजाने और वर्षके द्वारा किरणोंके टुक जाने और धूसर वर्ण होजानेसे चंद्रमाकाभी अब प्रकाश नहीं है ॥ १३ ॥ गुप्तर करके मलीन होनेसे
 दूनी अच पूर्णमासीकी रात्रिमेंभी नहीं खिलती केवल दीखती है, जैसे सीताजी धूमके लगनेसे रथाम होगई हैं और शोभित नहीं होती ॥ १४ ॥ स्वभावतः शीतलता दू

पछादिया पवन अब हिमसे आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चल रहा है ॥ १५ ॥ यव और गेहूँओं करके पूर्ण ओस जिनमें पड़ी हुई ऐसे समस्त वन सूर्यके उदय होनेपर शब्द करते हुए सारस और कौंचादिक पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा विस्तार करते हैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके वर्णवाले शालिसमूह, खजूरके फूलकी समान तन्दुल भरी हुई चालोंके लगनेसे कुछएक झुके हुए विराज रहे हैं ॥ १७ ॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाके समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आते हैं क्योंकि इधर उधर फैली हुई उनकी किरणें पालेसे ढक रही हैं ॥ १८ ॥ धूपका तेज सबेरे २ तो कुछ होताही नहीं दुपहर को कुछ एक सुखका देनेवाला होता है और उसी समय वर्ण कुछ पीला पड़जानेसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥ १९ ॥ प्रभातमें ओसकी बूँदोंके गिरनेसे हरी २ घास गीली हो रही है उस घासपर सूर्यकी किरणें पड़नेसे वनभूमिकी सीमा नहीं रहती ॥ २० ॥ वनला हाथी अधिक व्यासा होनेपरभी शीतल जल छूतेही उसी समय शूँड खेंच लेता है ॥ २१ ॥ डरपोक आवापछन्नान्यरण्यानियवगोधूमवन्ति च ॥ शोभन्तेभ्युदितेसूर्येनदद्भिः कौंचसारसैः ॥ १६ ॥ खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतंडुलैः ॥ शोभन्ते किं निदालंघ्याः शालयः कनकप्रभाः ॥ १७ ॥ मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः ॥ दूरमप्युदितः सूर्यः शशांक इवलक्ष्यते ॥ १८ ॥ आग्राह्यवीर्यैः पूर्वोद्धे मध्याह्ने स्पशतः सुखः ॥ संसक्तः किंचिदापांडुरातपः शोभते क्षितौ ॥ १९ ॥ अवश्याय निपतेन किंचित्पङ्क्तिन्नशाद्रला ॥ वनानां शोभते भूमिर्नि विस्तरुणातपा ॥ २० ॥ स्पृशन्सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम् ॥ अत्यंततुषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥ २१ ॥ एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः ॥ नावगाहंति सलिलमग्रत्नभा इवाहवम् ॥ २२ ॥ अवश्याय तमो नद्धानीहार तमसावृताः ॥ प्रसुप्ता इवलक्ष्यंते विपुष्पावनराजयः ॥ २३ ॥ वाप्यसंछन्नसलिलारुत विज्ञेय सारसाः ॥ हिमार्द्रां चालुकास्तीरैः सरितो भांति सांप्रतम् ॥ २४ ॥ तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद्वाद्वा स्करस्य च ॥ शैत्यादाग्नस्त्यमपि प्रायेण रसवज्जलम् ॥ २५ ॥ जराद्वाद्वास्तीरैः पत्रैः शीर्णैकै सरकणिकैः ॥ नालशेषा हि मध्वस्तान भांति कमलाकराः ॥ २६ ॥ दमी क्षिप्त प्रकार युद्धमें नहीं जाने, वैसेही यह जलचर पक्षीण जलके समीप बैठ रहकरभी किसी प्रकारसे जलमें डुबकी नहीं मारते ॥ २२ ॥ प्रसून शून्य वन भेगी रात्रिमें ओस और अंधकारसे ढकजाने, और प्रभातको कुहरके अंधेरेसे छिप जानेपर ऐसी लगती है मानों सोय रही है ॥ २३ ॥ अब समस्त नदियें बाफसे ढकी नई हैं, और उनके तीरका रेतभी पालेके पड़नेसे गीला हो रहा है, और शब्द करते हुए सारसोंके घूमनेसे सब नदियें बहुताही शोभायुक्त हुई हैं ॥ २४ ॥ बर्फके ढाने और सूर्यका तेज मंद होनेसे, शीतके वशाहो पर्वतोंके अग्रभागका जलभी मापः स्वादिष्ट हो गया है ॥ २५ ॥ अब जराके वय होजानेसे पत्तोंके गिर जाने और पौतुवियोंके गूट जाने व हिममस्त होजानेसे कमल फूलमें केवल इंदी मात्र रह गई है अब कमलाकर सरोवर शोभा नहीं पाते ॥ २६

हे पुरुषभ्रष्ट ! इस दारुण हेमन्त कालमें धर्मात्मा भरतजी आपकी भक्तिके वशहो नगरमें रहकरभी दुःखका बोझ सहन करते हुए तपस्या करते होंगे ॥ २७ ॥ और राज्य मान और अनेक प्रसारके राज्योद्धित सुख छोड़कर नियत समयपर आहार करके तपस्वी हो शीतल पृथ्वीपर गयन करते होंगे ॥ २८ ॥ वह निश्चय प्रतिदिन हम समय निरालस्यहो मंत्री आदिकोंके साथ सरयू नदीमें नहानेके लिये जाते होंगे ॥ २९ ॥ भरतजी स्वभावसेही सुकुमार हैं और परमसुखसे पलकर इतने वडे हुए हैं । नो अथ यह किम प्रकारसे पाटा पडते हुये प्रभात कालमें सरयूके जलसे स्नान करते होंगे ? ॥ ३० ॥ आर्य ! वह कमलनेत्र, श्यामवर्ण, वडाई करके युक्त गोभावात्र, मूढमोदर, धर्मज्ञ, सत्यवादी, श्रीमान्, परम्विमुख, जितेन्द्रिय ॥ ३१ ॥ श्रियवचन बोलनेवाले शत्रुओंका दमन करनेवाले लंबी भुजाओंवाले लज्जागील

अस्मिस्तु पुरुषव्याघ्रकाले दुःखसमन्वितः ॥ तपश्चरति र्मात्मा त्वद्गत्या भरतः पुरे ॥ २७ ॥ त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान्वहून् ॥ तपस्वी नियताहारः शतैश्चिति महीतले ॥ २८ ॥ सोऽपि वला मिमां नूनमभिपेकार्थमुद्यतः ॥ वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयातिसरयूं नदीम् ॥ २९ ॥ अत्यंत सुखसंपृद्धः सुकुमारो हि मार्दितः ॥ कथं त्वपररात्रे पुंस्रयू मया गहते ॥ ३० ॥ पद्मपत्रे शणः श्यामः श्रीमान् निरुदरो महात्मा ॥ धर्मज्ञः सत्यवादी च द्वी निपयो जितेन्द्रियः ॥ ३१ ॥ प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घवाहुरिंदमः ॥ संत्यज्य विविचयान् सोऽख्यानार्यसर्वात्मना श्रितः ॥ ३२ ॥ जितः स्वर्गस्तत्रात्रा भरतेन महात्मना ॥ वनस्थमपि तापस्येयस्त्वा मनुविधीयते ॥ ३३ ॥ न पित्र्यमनुवर्तते मातृकं द्विपदा इति ॥ ख्यातो लोके प्रवादो यं भर्ते नान्यथा कृतः ॥ ३४ ॥ भर्ता दशरथो यस्याः सा धुश्च भरतः सुतः ॥ कथं नु सांवाक्ये कीं तादृशीं कूरदर्शिनी ॥ ३५ ॥ इत्येवं लक्ष्मणेन वाक्यमब्रवीद्वा दतिथामिके ॥ परिवादं जनन्यास्तमसह्राववोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥

श्रीमान् भरतजी सच सुत भोगको जलांजलि देकर अंतःकरणसे आपकोही आश्रय किये हुए हैं ॥ ३२ ॥ हे वनवासिन् ! यद्यपि आपके भ्राता महात्मा भरतजी तापस धर्मका आश्रय करके वनवासी नहीं हुए हैं तथापि उन्होंने आपके अनुरूप कार्यकर स्वर्गको जीत लिया है ॥ ३३ ॥ जगत्में जो यह कहावत चली आती है कि, मनुष्योंमें पिताका भाव नहीं आता चरन् माताहीका स्वभाव आता है सो भरतजीने इस कहावतके विरुद्ध कर दिखाया, क्योंकि उनमें कैकेयीका स्वभाव नहीं है ॥ ३४ ॥ परन्तु श्रीराजाधिराज महाराज दशरथजी जिसके स्वामी और साधु भरतजी जिसके पुत्र वह जननी कैकेयी किस प्रकारसे ऐसी क्रूर बुद्धिवाली हुई ? ॥ ३५ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीने जब भाईके स्नेहके वश हो इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजी माता कैकेयीको वह विन्दा न सहते हुए कहने लगे ॥ ३६ ॥

दिपा पवन अच हिमसे आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चरहा है ॥ १५ ॥ यव और गेहूँओं करके पूर्ण ओस जिनमें पड़ी हुई ऐसे समस्त वन सूर्यके प होनेपर शुद्ध करते हुए सारस और कौचादिक पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा विस्तार करते हैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके वर्णवाले शालिसमूह, खजूरके फूलकी समान मूल भरी हुई घालोंके लगनेसे कुछएक झुके हुए विराज रहे हैं ॥ १७ ॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाके समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आते हैं कि इसर इसर फैली हुई उनकी किरणें पालेसे टक रही हैं ॥ १८ ॥ घूपका तेज सवेरे २ तो कुछ होताही नहीं दुपहर को कुछ एक सुसका देनेवाला होता है

१ ममय वर्ण कुछ पीला पड़जानेसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥ १९ ॥ प्रभातमें ओसकी बूँदोंके गिरनेसे हरी २ घास गीली होरही है उस घासपर सूर्यकी अभिमिकी सीमा नहीं रहती ॥ २० ॥ वनला हाथी अधिक प्यासा होनेपरभी शीतल जल छूतेही उसी समय शूंड खेंच लेता है ॥ २१ ॥ इरपोक आ

गोधूमवन्ति च ॥ शोभन्तेभ्युदितेसूर्येनदद्भिः कौचसारसैः ॥ १६ ॥ खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतंडुलैः ॥ शोभन्ते किं मयूलेरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः ॥ दूरमप्युदितः सूर्यः शशांक इवलक्ष्यते ॥ १८ ॥ आग्राह्यवीर्यैः पूर्वोक्तेभिः ॥ अत्यंतुपितो वन्यः प्रतिसंहरते कर्म ॥ २१ ॥ एते हि समुपासीना विहाज

प्रसुप्ता इवलक्ष्यन्ते विपुष्पावनराजयः ॥ २२ ॥ तपारपतनाच्चेव मुदुत्वाद्वास्करस्य च ॥

॥ २३ ॥

बानाँ कहनेमें लगे हुये हैं कि, इतनेहीमें कोई राक्षसी अपनी इच्छासे घूमती हुई वहाँ आई ॥ ५ ॥ यह राक्षसी दशवदन रावणकी बहन थी नाम इसका शूर्पणखा
 था वह देवताओंकी समान रामचन्द्रजीके निकट आकर उनको देखती हुई ॥ ६ ॥ उसने देखा कि, रामचन्द्रजीका वदन प्रदीपमान है, बाँहें कुटुनोतक आती हैं, दोनों
 नेत्र कमलदलकी समान बड़े हैं, चाल हाथीकी समान है, शिरपर जटा धारण किये हुये हैं ॥ ७ ॥ अंग प्रत्यंग अतिकोमल हैं, बल विक्रम अपार है, शरीर राज
 लक्षणों करके युक्त है, वर्ण नीले कमलकी समान श्यामता लिये हुये है, कोटि मदनकी समान सुन्दर है ॥ ८ ॥ इसप्रकार साक्षात् इन्द्रकी समान श्रीराम
 चन्द्रजीको देखकर राक्षसी कामसे मोहित हुई । श्रीरामचन्द्रजीका वदनमण्डल भेष था, राक्षसीका मुख खराब था। रामचन्द्रजीका मध्य देश गोलाकार व
 राक्षसीका उदर अति बृहत् था ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके दोनों नेत्र अति विराल व राक्षसीकी आंखें अति बुरी थीं। रामचन्द्रके अतिश्रेष्ठ दूधवाले बाल थे
 सातुशूर्पणखानामदशग्रीवस्वरत्नसः ॥ भगिनीराममासाद्यदर्शत्रिदशोपमम् ॥ ६ ॥ दीप्तास्यंचमहाबाहुं प्रपन्नप्रायतेक्षणम् ॥ गजत्रिक्रान्तगमनं
 जटामंडलधारिणम् ॥ ७ ॥ सुकुमारं महासत्त्वपार्थिवव्यंजनान्वितम् ॥ राममिंदीव श्यामकंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ८ ॥ बभूवेंद्रोपमद्वंद्वाराक्षसीकाममो
 हिता ॥ सुमुखं दुर्मुखीरामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥ ९ ॥ विशालाक्षं विरूपाक्षीसुकेशं ताम्रमूर्वजा ॥ प्रियरूपं विरूपासासुस्वरं भैरवस्त्वना ॥ १० ॥ तरुणं
 दारुणावृद्धादक्षिणं वामभाषिणी ॥ न्यायवृत्तं सुदुर्बुत्तां प्रियमप्रियदर्शना ॥ ११ ॥ शरीरजसमाविष्टाराक्षसीराममवब्रीत् ॥ जटितापसत्रेपेणसभायः
 शरचापधृक् ॥ १२ ॥ आगतस्त्वमिमांशं राक्षससेवितम् ॥ किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ १३ ॥ एवमुक्तस्तुराक्षसस्याशूर्पणख्यापरं
 तपः ॥ ऋशुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १४ ॥ आसीदशशयोनाम राजा त्रिदशविक्रमः ॥ तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥ १५ ॥
 और राक्षसीके कंग ताम्रवर्ण थे। श्रीरामचन्द्रजी प्रिय रूपवान् और राक्षसी महाभयानक रूपथी। श्रीरामचन्द्रजीका अतिमधुर स्वर था और राक्षसीका स्वर
 निवान्तकर्कश भीषण और भयंकर था ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रजी युवा थे, व राक्षसी महावृद्धा थी। श्रीरामचन्द्रजी अतिमधुर वचन बोलनेवाले, व राक्षसी
 अत्यन्त कर्कशभाषिणी थी। श्रीरामचन्द्रजी न्यायवृत्त और राक्षसी दुर्बुत्ता थी। श्रीरामचन्द्रजी देखनेमें जैसे प्यारे थे, वह राक्षसी देखनेमें वैसीही कुप्यारी थी ॥
 ११ ॥ ऐसी शूर्पणखा महाकामातुर होकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोली कि, तुम जटा रस्ताये तपस्वीका वेश धारे धनुष बाण लिये श्री सहित ॥ १२ ॥ किंतु कारणसे
 राक्षसोंने नेत्रिन दिया मैं आयेहो तुम्हारे यहांपर आनेका क्या प्रयोजन है ? सो यथार्थ कहो ॥ १३ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचन्द्रजी राक्षसी शूर्पणखाकी
 यह बातों सुनकर सरलता महित कुछ न छिपातेहुए सब वर्णन करनेलगे ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि, देवताओंकी समान विक्रमवान् दशरथजी नामक एक

हे भद्र्या ! मँझली माता कँकेयीकी निन्दा मत करो, तुम केवल इक्ष्वाकुनाथ भरतजीकेही गुणगणोंका वखान करो ॥ ३७ ॥ यद्यपि हमारी बुद्धि एक मात्र वनवासमें निश्चित और दृढवत् हुई है, तथापि भरतजीके स्नेहके वश होकर चावरीसी होगई है ॥ ३८ ॥ भरतजीकी प्रिय मथुर हृदयको अमृतकी नाई निंचन करनेवाली मनको आह्लाद देनेवाली वार्त्ता वार २ हमारे मनमें स्मरण हो रही है ॥ ३९ ॥ नहीं जानते कि, कितने दिनोंमें फिर महात्मा भरतजी और शत्रुत्र जीसे तुम्हारे सहित हम मिलेंगे ॥ ४० ॥ रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे विलाप करते २ भ्राता लक्ष्मण और सीताके सहित गोदावरी नदीपर पहुँचकर स्नान करते हुए ॥ ४१ ॥ फिर सबने गोदावरीके जलसे पितृगणोंको देवर्त्तोंको तर्पण करके उदित सूर्य व और दूसरे देवताओंका स्तोत्र किया ॥ ४२ ॥ नतेंड्यामध्यमातातर्गतव्याकदाचन ॥ तामेवैक्ष्वाकुनाथस्यभरतस्यकथांकुरु ॥ ३७ ॥ निश्चितैवाहिमेबुद्धिर्वनवासेदृढवत्ता ॥ भरतस्नेहसंततावा लिशीक्रियतेपुनः ॥ ३८ ॥ संस्मराम्यस्यवाक्यानिप्रियाणिमधुराणिच ॥ हृद्यान्यमृतकल्पानिमनःश्रद्धादनानिच ॥ ३९ ॥ कदाह्यहंसमेप्यामिभरते नमहात्मना ॥ शत्रुघ्नेनचवीरेणत्वयाचरघुनंदन ॥ ४० ॥ इत्येवंविलपंस्तत्राप्यगोदावरीनदीम् ॥ चक्रेभिपेकंकाकुस्थःसानुजःसहसीतया ॥ ४१ ॥ तर्पयित्वाथसलिलैस्तेःपितृन्देवतानपि ॥ स्तुवंतिस्मोदितंमूर्यदेवताश्वतथानवाः ॥ ४२ ॥ कृताभिपेकःसरराजराजःसीताद्वितीयःसहलक्ष्मणेन ॥ कृताभिपेकस्त्वगराजपुत्र्यारुद्रःसर्पदिर्भगवानिवेशः ॥ ४३ ॥ इत्यापें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकान्येऽरण्यकांडे षोडशःसर्गः ॥ १६ ॥ कृताभिपेकोरामस्तुसीतासौमित्रिरेवच ॥ तस्माद्गोदावरीतीरात्ततोऽजमुःस्वमाश्रमम् ॥ १ ॥ आश्रमतदुपागम्यराघवःसहलक्ष्मणः ॥ कृत्वापौर्वाहिकं कर्मपणशालामुपागमत् ॥ २ ॥ उवाससुखितस्तत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ सरामःपर्णशालायामासीनःसहसीतया ॥ ३ ॥ विरराजमहाबाहुश्चित्र याचंद्रमाइव ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचकारविविधाःकथाः ॥ ४ ॥ तदासीनस्यरामस्यकथासंसृक्चेतसः ॥ तंदेशंराक्षसीकाचिदाजगामयदृच्छया ॥ ५ ॥ भगवान् भृतनाथ पार्वती और नन्दीके सहित स्नान करके जिस प्रकारसे शोभाको प्राप्त होते हैं सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित नहाकर श्रीरामचन्द्रजीने भी वैसेही शोभा धारण की ॥ ४३ ॥ इत्यापें श्रीमद्रामायण आदि० वा० आदि० आर० भा० टी० षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी, व लक्ष्मणजी तीनोंजन स्नान करके गोदावरीके तीरसे आश्रमको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीने आश्रममें पहुँचकर लक्ष्मणजीके साथ ग्रथमकालकी सव क्रिया कर पर्णशालामें प्रवेश किया ॥ २ ॥ और महर्षि लोगोंने पूजे जाकर वहाँ सुखसे वास करने लगे. उस काल सीताजीके सहित पर्णशालामें आसीन होनेसे ॥ ३ ॥ महाबाहु रामचन्द्रजी, चित्रा नक्षत्र युक्त चन्द्र माकी समान शोभा पाने लगे । तिसके पीछे भ्राता लक्ष्मणजीके मन्त्रित रामचन्द्रजीने अनेक प्रकारकी कथा पार्त्ता आरंभ करदी ॥ ४ ॥ इन प्रकारसे घंटे रहकर कथा

हम तुम्हारे इस भाताके सहित इस मानवी, कुरुषा, अस्ती कराला और नतोदरी सीताको भक्षण करजायगी ॥ २७ ॥ तुम कामभोगमें तत्पर होकर हमारे सहित
 और पर्वतोंके शृंगोंको देखते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे ॥ २८ ॥ वचनबोलनेमें चतुर स्थुनंदन श्रीरामचन्द्रजी यह वचन सुन ऊंचे स्वरसे हँसकर क्रूरनयना
 शूर्पणखासे बोले ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने उपहास करनेके लिये हँसकर मधुर वचनसे उस
 कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अगि कल्याणी ! हमारा विवाह होगयाहै यह सीताजी हमारी स्त्री हैं । सो तुम सरीखी स्त्रियोंको सौतका होना बहुतही
 दुःसका विषय है ॥ २ ॥ परन्तु हमारे यह छोटे भाता लक्ष्मणजी सच्चार श्रीमान् वीर्यावान् और प्रिय दर्शन हैं । इनका विवाह अभी नहीं हुआहै अथवा अकृतदार इनके
 इमां विरूपायसर्तोंकरालानिर्णतोदरीम् ॥ अनेन सहते भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम् ॥ २७ ॥ ततः पर्वतशृंगाणि वनानि विविधानि च ॥ पश्यन्सह
 मया कामी दंडकान्विचरिष्यसि ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्तः काकुत्स्थः प्रहस्य मदिरेक्षणम् ॥ इदं वचनमारभे वक्तुं वाक्यविशारदः ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीम०
 वा० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ ॥ तांतु शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम् ॥ स्वेच्छया दृष्ट्वा यथा चास्मितपूर्वम्
 थात्र वीत् ॥ १ ॥ कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयितामम ॥ त्वद्विधानांतु नारीणां सुदुःखास सपत्नता ॥ २ ॥ अनुजस्त्वपे मे भ्राता शीलवान् प्रियद
 र्शनः ॥ श्रीमान् कृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ ३ ॥ अपूर्वा भार्याया चार्थोत्तरुणः प्रियदर्शनः ॥ अतुरुपश्चते भर्तारूपस्यास्य भविष्यति ॥ ४ ॥
 एनं भगविशालाक्षि भर्तारि भ्रातरं मम ॥ असपत्नावारो हे मे रूमर्कप्रभायथा ॥ ५ ॥ इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता ॥ विसृज्य रामं सहसा ततो
 लक्ष्मणमव्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्या हं व्रवर्णिनी ॥ मया सह सुखं सर्वान्दंडकान्विचरिष्यसि ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तु सीमित्रा राक्षस्यावाक्यको
 विदः ॥ ततः शूर्पणखी स्मिन्त्वालक्ष्मणो युक्तमव्रवीत् ॥ ८ ॥ कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि ॥ सोहमयं एण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनी ॥ ९ ॥
 निकट ग्री नहीं है अथवा इन्होंने धी पारिमह नहीं कियाहै ॥ ३ ॥ इन्होंने पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण यह विवाहार्थी हुए हैं और विशेष करके यह
 युवा हैं तिससे यह सब प्रकारसे तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बड़े नेत्रवाली ! सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार सुमेरुकी भजना करती है, तुमभी वैसेही सौतरहित
 होकर हमारे इन भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जाकर कहने
 लगी ॥ ६ ॥ मैं सब स्त्रियोंसे अधिक सुन्दर हूँ तिससे तुम्हारे इस रूप लायकही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वक समस्त वनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्ष
 सीने ऐसा नुन वचन बोलनेमें चतुर सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी मन्द मन्द हँसकर उससे यह बुकियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अगि कमलवर्णिनि ! हम दास हैं फिर किस

राजा थे हम उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं लोक में हमारा नाम राम है ॥ १५ ॥ और इनका नाम लक्ष्मण है, यह हमारे आज्ञाकारी छोटे भाता हैं, और यह विदेहकुमारी हमारी भार्या हैं इनका सीता ऐसा नाम है ॥ १६ ॥ पिता और माता कैकेयी के कहने से धर्म के लाभ की आशा और धर्म की रक्षा करने के कारण वन में वास करने के लिये हम इस स्थान में आये हैं ॥ १७ ॥ इस समय यह हमारी इच्छा तुमको जानने की हुई है, तुम कौन हो किसकी बेटी हो, और किसकी स्त्री हो ? हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि, तुम राक्षसों का मन मोहने वाली राक्षसी हो ॥ १८ ॥ और तुम किस लिये यहां आई हो सो सत्य ही सत्य कहो ? यह वचन सुनकर वह मदन से आतुर हुई राक्षसी बोली ॥ १९ ॥ हे रामचंद्र ! तुम ठीक २ हमारा परिचय सुनो हम कहती हैं, हम शूर्पणखा नामक कामरूपा राक्षसी ॥ २० ॥ सबको भय उपजाती हुई अकेली इस वन में घूमा करती हैं, हमारे भइयाका नाम रावण है सो कदाचित् तुमने इसका वृत्तान्त व नाम सुना ही होगा ॥ २१ ॥ हमारे और दो भ्रातायुलक्ष्मणोनामयवीयान्नामामनुव्रतः ॥ इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता ॥ १६ ॥ नियोगाच नरेन्द्रस्य पितुर्मतुश्च यंत्रितः ॥ धर्मार्थधर्मकांक्षी च वनं वस्तुमिहागतः ॥ १७ ॥ त्वां तु वेदितुमिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा ॥ त्वं हि तावन्मनोज्ञां गीराक्षसी प्रतिभासि मे ॥ १८ ॥ इह वा किं निमित्तं त्वमागता वृंहितं त्वतः ॥ सा ब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनादिता ॥ १९ ॥ श्रूयतां रामतत्त्वाथ क्षयाभिवचनं मम ॥ अहं शूर्पणखानामराक्षसी कामरूपिणी ॥ २० ॥ अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयंकरा ॥ रावणो नाम मे भ्राता यदिते श्रोत्रमागतः ॥ २१ ॥ प्रवृद्धनिद्रश्च सदकुंभकर्णो महाबलः ॥ विभीषणस्तु च मां त्मानतुराक्षसचेष्टितः ॥ २२ ॥ प्रख्यातवीर्यो चरणे भ्रातरौ खरद्रुपणौ ॥ २३ ॥ तानहं समतिक्रान्तां ताराभवा पूर्वदर्शनात् ॥ समुपेतास्मि भावेन भर्तां पुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥ अहं प्रभावसंपन्नास्वच्छंदबलगामिनी ॥ चिराय भवभर्ता मे सीतया किं करिष्यसि ॥ २५ ॥ विवृता च विरूपाचनचेयं सदृशी तव ॥ अहमेवानुरूपा ते भार्या रूपेण यथ्यमाम् ॥ २६ ॥

भाइयों का नाम कुम्भकर्ण और विभीषण है, कुम्भकर्ण अति बलवान् है और सदा सोता ही रहता है, और विभीषण परम धार्मिक है राक्षसों के चरित्र उसमें नहीं है ॥ २२ ॥ खर और द्रुपण यह दोनों भी हमारे भ्राता रण में बड़े वीरवान् और बलशाली लोक में प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ हे पुरुष भेष्ट श्रीरामचंद्रजी ! तुमको प्रथम देखने ही हम उन सबको छोड़ छाँड़ तुम्हारा अपूर्व रूप देख पुरुषोत्तम जान प्रेम के मारे अपना पति बनाने के लिये यहां आई हैं ॥ २४ ॥ हमें बड़ा पराक्रम है, और बल होने के कारण जहां इच्छा होती है वहीं स्वच्छन्दता से घूमती रहती हूँ । सो तुम सदा के लिये हमारे स्वामी होना । इस सीताको लेकर क्या करोगे ॥ २५ ॥ यह सीता विस्मयकार और कुरूप है, किन्ती भोति भी यह तुम्हारे योग्य नहीं है रूपको देखो, क्षय ही रूप के हेतु तुम्हारी भार्या बनने के योग्य है ॥ २६ ॥

हम तुम्हारे इस भाताके सहित इस मानवी, कुरुषा, अस्ती कराळा और नवोदरी सीताको भक्षण करजाँयगी ॥ २७ ॥ तुम कामभोगमें तत्पर होकर हमारे सहित और पर्वतोंके शृंगोंकी देरते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे ॥ २८ ॥ वचन बोलनेमें चतुर खुनंदन श्रीरामचन्द्रजी यह वचन सुन ऊँचे स्वस्ते हँसकर दूरनयना शूर्पणखासे बोले ॥ २९ ॥ इत्यार्ये श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने उपहास करनेके लिये हँसकर मथुर वचनसे उस कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अगि कल्याणी ! हमारा विवाह होगयाहै यह सीताजी हमारी स्त्री हैं । सो तुम सरीखी हमारी स्त्री हैं । सो तुम सरीखी त्रियोंको सीतका होना बहुतही दुःसखा विषय है ॥ २ ॥ परन्तु हमारे यह छोटे भाता लक्ष्मणजी सचारेत्र श्रीमान् वीरवान् और प्रिय दर्शनहैं । इनका विवाह अभी नहीं हुआहै अथवा अकृतदार इनके इमां विरूपामसत्करालानिर्णतोदरीम् ॥ अनेन सहते भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम् ॥ २७ ॥ ततः पर्वतशृंगाणि वनानि विविधानि च ॥ पश्यन्सह मया कामी दंडकान्विचरिष्यसि ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्तः काकुत्स्थः ग्रहस्थमदिरेक्षणम् ॥ इदं वचनमारभे वल्लुं वाक्यविशारदः ॥ २९ ॥ इत्यार्ये श्रीम० वा० आदिकाव्येऽरण्यकांडे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ ॥ तांतु शूर्पणखारामः कामपाशावपाशिताम् ॥ स्वेच्छया शृङ्गययावाचास्मितपूर्वम् थाव्रवीत् ॥ १ ॥ कृतदारोऽस्मि भवति भार्ययं दयितामम ॥ त्वद्विधानांतु नारीणां सुदुःखाससपन्नता ॥ २ ॥ अनुजस्त्वपे मे भ्राता शीलवान्निप्रयदर्शनः ॥ श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीरवान् ॥ ३ ॥ अपूर्वा भार्याया चार्थतरुणः प्रियदर्शनः ॥ अनुरूपश्च ते भर्तारूपस्यास्य भविष्यति ॥ ४ ॥ एनं भज विशालाक्षि भर्तारि भ्रातरं मम ॥ असपत्नाय गरो हे मे रुमर्कप्रभायथा ॥ ५ ॥ इति रामेण सा भोक्ता राक्षसी काममोहिता ॥ विमृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमवब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्या हं वरवर्णिनी ॥ मया सह सुखं सर्वान्दंडकान्विचरिष्यसि ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तु सोऽभित्रीराक्षस्यावाययको विदः ॥ ततः शूर्पणखी स्मिन्वा लक्ष्मणो युक्तमवब्रवीत् ॥ ८ ॥ कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि ॥ सोऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनी ॥ ९ ॥ निकट ग्री नहीं है अथवा इन्होंने स्त्रीं पारंग्रह नहीं किया है ॥ ३ ॥ इन्होंने पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण यह विवाहार्थी हुए हैं और विशेष करके यह युवा हैं विससे यह सब प्रकारसे तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बड़े नेत्रवाली ! सूर्यकी प्रभा जिसप्रकार सुमेरुकी भजना करती है, तुमभी वैसेही सौतरहित होकर हमारे इन भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जाकर कहने लगी ॥ ६ ॥ मैं सब धियोंसे अधिक सुन्दर हूँ विससे तुम्हारे इस रूप लायक ही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वक समयस्त यनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्षसीसे ऐसा मुन वचन बोलनेमें चतुर सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी मन्द मन्द हँसकर उससे यह युक्तियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अगि कमलवर्णिनि ! हम दासहैं फिर किस

कारण तुम हमारी स्त्री बनकर दासी बननेकी अभिलाषिणी हुईहो ? हम इन बड़े भ्राता रामचन्द्रजीके दासहैं ॥ ९ ॥ हे विशालनेत्रवाली ! तुम सिद्धकामा, और आनन्दिता होकर सर्वभावसे संपन्नमान् हमारे बड़े भ्राता आर्य श्रीरामचन्द्रजीकी दूसरी स्त्री बनो. क्योंकि उनसे विवाह करनेमें तुम्हारी विधि भली मिलेगी । उबका श्यामरंग तुम्हारे वर्णसे कुछ २ मिलताहुआहै । परन्तु हमारा तुम्हारा रंग कुछभी नहीं मिलता ॥ १० ॥ फिर जब इनसे विवाह कर लोगी तो यह कुरूप, असती, (या जिनके सामने और कोई सती नहीं) भय उपजानेवाली, कुरोदरी, और वृद्धा भार्याको त्याग करके तुममेंही अनुरागी हो जायेंगे ॥ ११ ॥ अयि वरवर्णिनि ! अयि वरातोह ! कौन चतुर पुरुष है जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ रूपका अनादर करके मानुषीमें अनुरागीहो ? ॥ १२ ॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहा तो बड़े पेटवाली सब लोकोंको डरावनेवाली निशाचरी शूर्पणखा उस हैसीकी बातको न समझकर लक्ष्मणजीकी बातको सत्यही समझी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे यह मोहित होकर पर्णकुटीमें सीता समृद्धार्थस्यसिद्धार्थसुदितामलवर्णिनी ॥ आर्यस्यत्वंविशालाक्षिभार्याभवयवीयसी ॥ १० ॥ एतां विरूपामसतीं करालानिर्णतोदरीम् ॥ भार्या वृद्धांपरित्यज्यत्त्वामेवैष भजिष्यति ॥ ११ ॥ कोहिरूपमिदं श्रेष्ठसंत्यज्य वरवर्णिनि ॥ मानुषीपुवरा रोहेकुर्याद्भ्रावं विचक्षणः ॥ १२ ॥ इतिसाल क्षमणेनोक्ता करालानिर्णतोदरी ॥ मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासाविचक्षणा ॥ १३ ॥ सारामं पर्णशालायामुपविष्टपंतपम् ॥ सीताया सह दुर्धर्मव्रवीत्काममोहिता ॥ १४ ॥ इमां विरूपामसतीं करालानिर्णतोदरीम् ॥ वृद्धां भार्यामिव पृथग्नमां त्वं बहु मन्यसे ॥ १५ ॥ अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्य तत्सवमानुषीम् ॥ त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्नायथा सुखम् ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमला तस्य शोषणा ॥ अभ्यगच्छत्सु संकुद्धामहोल्का रोहिणीमिव ॥ १७ ॥ तामृत्युपाशप्रतिमामापतन्ती महाबलः ॥ निगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १८ ॥ क्रूरनार्यैः सोमित्रे परिहासः कथंचन ॥ नकार्यैः पश्य वैदेही कथंचित्सोम्यजीवतीम् ॥ १९ ॥

जीके साथ वैदेह्ये शत्रुओंके तपानेवाले अजेय श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगी ॥ १४ ॥ कि तुम इस बुद्धिया कुरूप कुरोदरी, भय उपजानेवाली असती स्त्रीमें अनुरागी होकर हमारा आदर सम्मान नहीं करते ॥ १५ ॥ तिससे तुम्हारे सामने ही इसी सुहृत्में हम इस मानुषीको भक्षण करेंगी और सौतहीन होकर यथा सुसती घूमा करेंगी ॥ १६ ॥ यह कहकर जलते अंगारेकी समान चमकते हुये नेत्रोंवाली निशाचरी महाकोपमें भरकर हारणके बचोंकी समान नेत्रवाली सीताजीके सामनेको दीडी जैसे रोहिणीकी ओर उल्का यावमानहो ॥ १७ ॥ उस यमकी फांसीकी समान राक्षसीको सामने आते देखकर भीरामचन्द्रजी क्रोधमें भर उसको रोक लक्ष्मणजीने बोले ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! क्रूरस्वभावाले दूतोंके माध्यम से इसी करुणाभी किसी भी प्रकार से न भक्षण करनी चाहिए ॥ १९ ॥

होनेमंदी जानकीजीको अपने जीवनमें संदेह हुआ है ॥ १९ ॥ हे पुरुषोत्तम ! इस समय तुम इस कामसे मत दुई वड़े पेड़वाली कुरुपिणी अमती राक्षसोंका औरभी कुरूप करो ॥ २० ॥ महाबलवान् श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामचंद्रजीके यह बचन सुनकर महाक्रोधित हो तलवार उठाकर उनके सामनेही राक्षसी शूर्पणसाके नाक कान काट डाले ॥ २१ ॥ नाक कान कटाये हुये घोर स्वभाववाली वह राक्षसी उस समय विकट शब्दसे चिंछातीहुई जहांसे आई थी उमी वनकी ओर ग्रीष्मतासे दौड़ी ॥ २२ ॥ अति भयंकर शरीरवाली कुरुपा वह राक्षसी शरीरमें रुधिर लगायेहुये बर्षाकालीन बादरकी समान विविध प्रकारके शब्द करने लगी ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वह बाहें उठाकर बावोंसे रुधिर बहाती गर्जती हुई महावनमें प्रवेश कर गई ॥ २४ ॥ वहां प्रवेश करके उसी कुरूप रूपसे राक्षस इमविरूपाप्रसतीमतिमत्तामहोदरीम् ॥ राक्षसोंपुरुषव्याघ्रविरूपयितुमर्हसि ॥ २० ॥ इत्युक्तोलक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धोरामस्यपश्यतः ॥ उद्धृत्य खड्गं निच्छेदकर्णनासेमहाबलः ॥ २१ ॥ निष्कृतकर्णनासातुविस्वरेसाविनद्यच ॥ तथागतंप्रदुद्राववोराशूर्पणखावनम् ॥ २२ ॥ साविरूपा मद्वाचोराक्षसीशोणितोक्षिता ॥ ननादविवाद्वादान्यथाप्रावृपितोयदः ॥ २३ ॥ साविशरंतरिक्षिंधुधुधोघोरदर्शना ॥ प्रयुद्धवाद्भूगर्जतीप्रवि देशमद्वावनम् ॥ २४ ॥ ततस्तुसाराक्षससंघसंधृतं स्वरं जनस्थानगतं विरूपिता ॥ उपेत्यंतं भ्रातरमुग्रतेजसंपातधूमोगगनाद्यथाशनिः ॥ २५ ॥ ततः सभायं भयमोहमूर्च्छितासलक्ष्मणं राघवभागंतवनम् ॥ विरूपणं चात्मनि शोणितोक्षिताशशंससंबभगिनीस्वरस्यसा ॥ २६ ॥ इत्यापै श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ तां यथापतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम् ॥ भगिनीं क्रोयसं ततः स्वरः पप्रच्छ राक्षसः ॥ १ ॥ उत्तिष्ठतावदाख्याहिप्रमोहं जहिसंभ्रमम् ॥ व्यक्तमाख्याहिकेन त्वमेवरूपाविरूपिता ॥ २ ॥ कः कृष्णसर्पमासी नमशीविपमनागसम् ॥ तुदत्यभिसमापन्नमंथुल्यग्रेणलीलया ॥ ३ ॥

गणोंसे घेरेहुए जनस्थानवासी उग्रतेजवान् अपने भाई स्वरके निकट जाकर आकाशसे वज्रपातकी समान पृथ्वीमें गिरी ॥ २५ ॥ रुधिर जिसके सब अंगोंमें लगा हुआ भय और मोहसे जिसका चित ठिकाने नहीं ऐसी उस स्वरकी बहिन राक्षसी शूर्पणखाने स्वरसे स्त्री और भ्राताके सहित श्रीरामचंद्रजीका वनमें आना और उनसे अपने नाक कान कोटे जानेका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २६ ॥ इत्यापै श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्य० भाषाटीकायामष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ ॥ राक्षस स्वर अपनी बहनको कुरुपा शरीरमें रुधिर लगाएहुई और पृथ्वीमें पड़ीहुई देखकर क्रोधसे संतापित हो दूझने लगा ॥ १ ॥ स्वरने कहा, उठकर धोके, वृत्तान्त तो कहो, मूर्च्छा और चित्तकी चपलताको छोड़ो, स्पष्ट २ कहो कि, किसने तुमको ऐसा विरूप किया ? ॥ २ ॥ किसने सामने घेरे हुए, कुण्डली

सांसे हुए निरसरास रिपरास फाड़े गांपको रेतमेंही उंगलीकें पोरुएसे छेड़कर जगायाहै ? ॥ ३ ॥ उसने तेरेसाथ कुत्सित व्यापार कर अब भयंकर विप पिपा,
अपने गंडमें फाटसी फांसी बाली भों यह अलानी इस चातको जो विपनि उसके ऊपर पड़ेगी उसको नहीं समझा है ॥ ४ ॥ बल विक्रम सम्पन्न यमराजकी समान चलने
शरीर समरूपिणी यमनमान मुय किमके पास गईथी, कि जिसने तुम्हारी यह दशा की है ? ॥ ५ ॥ देव गन्धर्व भूत और महात्मा ऋषि लोगमें कौन ऐसा वीर्यवान् है
कि जिसने तुमसे रिपरास किया है ॥ ६ ॥ देवताओंमें पाकथासन सहस्रलोचन इन्द्रके सिवाय ब्रह्माण्डमें हम ऐसा और किसीको नहीं देखते जो हमारा अप्रिय
कार्य करे ॥ ७ ॥ हम जिन प्रकार जलमें मिलेहुए दूधको अलग कर पीलैताहै आज हम भी प्राणहरणकारी तीरोंके समूहसे उसके शरीरसे प्राण अलग
फालपाशंमामान्यकंठमोहात्रधुयते ॥ यस्त्वामद्यसमासाद्यपीतवान्विचपमुत्तमम् ॥ ८ ॥ बलविक्रमसंपन्नाकाभगाकामरूपिणी ॥ इमामव
रार्थनीतिरुक्तिर्नान्तरममागता ॥ ९ ॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ कोयमेवंमहावीर्यस्त्वां विरूपांचकारह ॥ १० ॥ नहिपश्याम्यहं
लोकान्ः कुर्यान्ममविधियम् ॥ अमरेषुसदस्त्राक्षंमहेंद्रपाकशासनम् ॥ ११ ॥ अद्याहंमार्गणेः प्राणानादास्येजीवितान्तमैः ॥ सलिलेक्षीरमासक्तंनिष्पिब
न्निरमासः ॥ १२ ॥ निहतस्यमयासंख्येशरसंकृतमर्मणः ॥ सफेनंरुधिरंकस्यमेदिनीपातुमिच्छति ॥ १३ ॥ कस्यपत्ररथाः कायान्मांसमुत्कृत्य
मंगताः ॥ प्रन्वष्टाभक्षयिष्यंतिनिहतस्यमयारणे ॥ १४ ॥ तंनदेवानगंधर्वानिपिशाचानराक्षसाः ॥ मयापकृष्टकृपणंशक्तास्त्रातुंमहाहवे ॥ १५ ॥
उपलभ्यराजैः संग्रान्तंमेशंसितुमर्हसि ॥ येनत्वंदुर्विनीतनवनेविक्रम्यनिर्जिता ॥ १६ ॥ इतिभ्रातुर्वचः श्रुत्वाक्रुद्धस्यचविशेषतः ॥ ततःशूर्पणखावा
यंपन्नाप्यभिदमव्रवीत् ॥ १७ ॥ तरुणोरूपसंपन्नोसुकुमारोमहाबलौ ॥ पुंडरीकविशालाक्षौचौरकृष्णाजिनान्वरौ ॥ १८ ॥ फलमूलाशनौदांतौ
तापमोत्रज्वरारिणौ ॥ पुत्रौदशरथस्यास्तांभ्रातरोरामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥

हमने कि, जिसने तुमको विरूप किया है ॥ ८ ॥ समझें मुझ करके शरजालद्वारा छिन्नमर्म किस परेहुए पुरुषका फेन सहित रुधिर पृथ्वीने पीनेकी इच्छाकीहै ?
॥ ९ ॥ टडाईये मुझ करके मांरुप किम पुरुषके देहसे मांस नोच २ कर आनंद सहित चील गिद्धादि पक्षी खाँयेंगे ॥ १० ॥ हम संग्राममें जिसके ऊपर चढाई करेंगे उस हत
नागोंसे रसा देसला, रसा गन्धर्व, क्या पिशाच, क्या राक्षस, कोईभी उच्चार करनेको समर्थ नहीं होगा ॥ ११ ॥ इस समय तुम सहज २ सावधान होकर हमसे कहो कि,
स्मिन् इह प्यजिने वनमें पराक्रम प्रकाश करके तुमको पराजित किया है ? ॥ १२ ॥ महाकोपित हुए अपने भाई स्वर्णके यह वचन सुनकर शूर्पणखा आंसू
सेजगी हुई सोझी ॥ १३ ॥ कि गरुज, रूपसम्पन्न, सुकुमार, महाबलवान्, कमलजन्यन चीर व युगचर्म धारण किये ॥ १४ ॥ कन्द मूल फलके खानेवाले, जितेन्द्रिय,

तपस्वी, बलचारी, राजा दयारथके दो पुत्र राम लक्ष्मण ॥ १५ ॥ वह देखतेमें गन्धर्वराजकी समान और राजलक्ष्णोंकरके युक्त जान पड़तहै । यह दोनों देव हैं, अथवा दानव इसका कुछ निश्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखा है कि, वहाँपर उन दोनों जनोंके साथ एक रूपवती सब भूषण धारण किये हुई हैं । अन्धकारको भान ग्रीभी है ॥ १७ ॥ उन दोनों भाइयोंने भिलकर उस स्त्रीके कहनेसे, जैसे कोई अनाथ कुलटा स्त्रीकी दुर्दशा करताहै, वही दया हमारे अर्थात् नाक कान काट डाले ॥ १८ ॥ हम कुटिल चरित्रवाली उस स्त्रीका और उन दोनोंजनोंका ज्ञान सहित रुधिर समरमें फान करनेकी इच्छा करते हैं ॥ १९ ॥ तुम हमारी यह पहली अभिलाषा पूर्ण करो, हम संग्राममें उस स्त्रीका और उन दोनोंका खून पिपेगी ॥ २० ॥ जब शूर्पणखाने यह वचन कहे तब कोषित होकर महाबलवान् यमकी समान १४ राक्षसोंको आज्ञादी कि ॥ २१ ॥ शत्रुलगण हुए चीर व सृगचर्म पहरे हुए दो मनुष्य शेर दत्त गन्धर्वराजप्रतिमोंपार्थिववर्जनान्वितों ॥ देवोवादानवावतोनतर्कयितुमुत्सहे ॥ १६ ॥ तरुणीरूपसंपन्नासर्वाभरणभूषिता ॥ दृष्टान्तवयमानां तयोर्मध्येसुमध्यमा ॥ १७ ॥ तान्यामुभान्यासंधयप्रमदमधिकृत्यताम् ॥ इमामवस्थानीताहंयथाऽनाथाऽसतीतिथा ॥ १८ ॥ तस्याश्चानुजुवृत्तायान्न योश्नहत्तयोरहम् ॥ सप्रेनपातुमिच्छामिरुधिरंरणमूर्धनि ॥ १९ ॥ एवमेप्रथमः कामः कृतस्तत्रत्वयाभवेत् ॥ तस्यास्तयोश्चरुधिरं पिबेयमहं हवे ॥ २० ॥ इतितस्यद्विवाणार्याचतुर्दशमहाबलान् ॥ व्यादिदेशखरः कुब्जोराक्षसानंतकोपमान् ॥ २१ ॥ मातुषीशस्त्रसंपन्नोचीरकुण्णजिनः रौ ॥ प्रविष्टादंडकारण्यंचोरप्रमदयासह ॥ २२ ॥ तोहत्वातांचदुवृत्तापुपावर्तितुमर्हथ ॥ इयंचभगिनीनेपांरुधिरंममपास्यति ॥ २३ ॥ मन्त रथेयमिष्टोस्त्याभिन्याममराक्षसाः ॥ शीघ्रसंपाद्यतांगत्वातोप्रमथ्यस्वतेजसा ॥ २४ ॥ गुप्ताभिर्निहतोद्वहताबुभौघातरौरणे ॥ इयंप्रह्लादः सुदितारुधिरंयुधिपास्यति ॥ २५ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ तत्रजग्मुस्त्यासाधवनावातेरिताइव ॥ २६ ॥ इत्यापे श्रीम वा० आ० अर० एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥ ततःशूर्पणखाघोरागंधवाश्रममागता ॥ राक्षसानाचक्षतेतोघातरासहसीतया ॥ १ ॥ रणमें सीसहित आये हैं ॥ २२ ॥ सो तुम उन दोनों जनोंको और दुष्टाक्षीको मार करके लौट आओ, क्योंकि हमारी बहन उनका रुधिर पिबेगी ॥ २३ ॥ हे राक्षसों ! तुम लोग शीघ्र जाकर बलमें उन दोनों जनोंको संहार करके हमारी बहनका यह अभीष्ट मनोरथ पूरा करो ॥ २४ ॥ युद्धमें उन दोनों भाइयोंको मार डालो है सो देखकर हमारी यह बहन अतिशय संतोषित और हर्षित होकर युद्धके स्थलमें उनका रुधिर पिबेगी ॥ २५ ॥ इन प्रकारकी आज्ञा पाकर यह चौदह राक्षस वायुसे चलायमान मेघकी समान शूर्पणखाके साथ जहाँ श्रीरामचन्द्रजीथे, उस स्थानकी यात्रा करते हुए ॥ २६ ॥ इत्यापे श्रीमदा० वा० आ० आरण्य० भाषाटीकाशमेकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥ विसर्गके पीछे शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आई, और राक्षसोंके

“जीने सहित उन दोनों भाताओंको दिखा दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसोंने पर्णशालमें महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे त देता ॥ २ ॥ श्रीमान् धनुनन्दन रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आयाहुआ देखकर दीप्तिसे तेजवान् भावा लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! एक परीभर तुम मीनाजीके निकट रहो । इतनेमें हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन मन्त्र राक्षसोंको मार डालें ॥ ४ ॥ तब विदितात्मा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके “तथास्तु” कह उनकी बात शिरमाथे चढ़ाते हुए ॥ ५ ॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रभी सुवर्णभूषित महाधनुषमें रोदा चढ़ाय इन सब राक्षसोंसे बोले ॥ ६ ॥ हम दो भाता हैं, नाम हमारा राम व लक्ष्मण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं हम सीतासहित इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आये हैं ॥ ७ ॥ हम फल मूल

तेरामं पर्णशालायामुपविष्टं महाबलम् ॥ ददशुः सीतया सार्धं लक्ष्मणेनापि सेवितम् ॥ २ ॥ तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतां स्तां श्वराक्षसान् ॥ अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्तिजे सम् ॥ ३ ॥ मुहूर्तं भवसो मित्रे सीतायाः प्रत्यन्तरः ॥ इमानस्यावधिष्यामि पदवीमागतानिह ॥ ४ ॥ वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः ॥ तथेति लक्ष्मणो वाक्यं राघवस्य प्रपूजयन् ॥ ५ ॥ राघवोऽपि महत्पापं चामीकरविभूषितम् ॥ चकार सज्यं चर्माम्मातानिर शसिचाव्रवीत् ॥ ६ ॥ पुत्रो दशरथस्यावां भ्रातरो रामलक्ष्मणौ ॥ प्रविष्टौ सीतया सार्धं दुश्चरं दंडकावनम् ॥ ७ ॥ फलमूलाशनी दांतौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ॥ वसंतौ दंडकारण्ये किमर्थमुपहिंसय ॥ ८ ॥ युष्मान्पापात्मकान्हं विप्रकारान्महाहवे ॥ ऋषीणां तु नियोगेन संप्राप्तः सशरासनः ॥ ९ ॥ तिष्ठतैवावसंतुष्टानो पावर्तितुर्मर्ध ॥ यदि प्राणैरिहा रथो निवर्तध्वनिशाचराः ॥ १० ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश ॥ ऊर्ध्वोच्चसुसंक्रुद्धा ब्रह्मभ्राः शूलपाणयः ॥ ११ ॥ संरक्तयना घोरा रामं संरक्तलोचनम् ॥ परुषामधुरामां पृष्ट्वा दृष्टपराक्रमम् ॥ १२ ॥

सर्नाले अपनी इन्द्रियोंको जीते हुए हैं तपस्वी और ब्रह्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करत हैं, सो, तुम किस कारण हमारे ऊपर चढ़ाई करते हो ॥ ८ ॥ यदि कहो कि तुम तपस्वी होकर धनुष क्यों धारण किये हो तो इसका उत्तर यह है कि तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके लिये धनुष धारण कर यहाँ आये हैं ॥ ९ ॥ सन्तुष्ट होकर इसी स्थानमें खड़े रहो, आगे न बढ़ो; हे नियाचरण ! यदि प्राणोंका मोह होवे, और तुम इसका प्रयोजन समझते हो तो यहाँसे लौट जाओ हम किसीको नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ ब्रह्मघाती, शूलधारी; भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन श्रवण करके महाक्रोधित हो बोले ॥ ११ ॥ सबही लाल २ नेत्र कर रामचंद्रके प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमको नहीं जानते थे

इनने हर्षयुक्त हो, मगुर वचन बोलनेवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ तुमने हमारे प्रभु महात्मा सरको काध उपजायाहै, इस कारण अभी युद्धम हे-
 रायने मारे जाकर तुमको गीबही प्राण छोड़ने पड़ेगे ॥ १३ ॥ तुम इकले हो और हम बहुतहैं, इसलिये लडाईमें युद्ध करना तो दूर है हमारे सामने भी
 मंडे नहीं दो मरोगे ॥ १४ ॥ हमारे इन चाहोंमें परिच, शूल और पदासे घायल होकर तुमको प्राण, वीर्य और हाथमें धारण किया हुआ धनुष त्याग करना पड़ेगा ॥
 ॥ १५ ॥ यह चौदह गक्षम हम भोगिसे कहकर महा क्रोधित हो आयुष और सङ्ग उठाकर श्रीरामचंद्रजीके सम्मुख दीडे ॥ १६ ॥ और यह
 इंजैय अग्न शस्त्रादि श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलनेलगे । उन चौदह राक्षसोंके चलाये हुए शूल आदि श्रीरामचंद्रजीने ॥ १७ ॥ चौदहही स्वर्णभू-

क्रोधमुत्पाद्यनोभर्तुः सरस्वमुमहात्मनः ॥ त्वमेवहास्यसेप्राणान्सद्योस्माभिर्हर्तोयुधि ॥ १३ ॥ काहितेशक्तिरेकस्यवहूनांरणमूर्धनि ॥ अस्मान्
 मयनःस्थानुंकिपुनर्योद्धुमाहवे ॥ १४ ॥ एभिर्बाहुभयुक्तैश्चपरिवेःशूलपटिशोः ॥ प्राणास्त्यक्ष्यसिर्वीर्यचयनुश्चकरपीडितम् ॥ १५ ॥ इत्येवमुक्त्वानं
 रत्नगण्डमास्तेननुदंश ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिशाराममेवाभिदुद्रुवुः ॥ १६ ॥ चिक्षिपुस्तानिशूलानिराधवंप्रतिदुर्जयम् ॥ तानिशूलानिकाकुत्स्थः
 गमस्तानिगुदंश ॥ १७ ॥ तावद्विरेवचिच्छेदशरेःकांचनभूयितैः ॥ ततःपश्यन्महातेजानाराचान्मूर्यसन्निभान् ॥ १८ ॥ जग्राहपरमकुद्धश्चतुर्दंश
 शिख्यशिनान् ॥ गृहीत्याधुगयम्यलक्ष्यानुद्दिश्यराक्षसान् ॥ १९ ॥ मुमोचराधवोवाणान्वब्रानिवशतक्रतुः ॥ तेभिस्त्वारक्षसांविगाद्रक्षसिहरि-
 गृणाः ॥ २० ॥ विनिप्येनुस्तदाभूमौवलमीकादिवपन्नाः ॥ तेर्भग्नहृदयाभूमौभिन्नमूलाइवद्रुमाः ॥ २१ ॥ निपेतुःशोणितस्नाताविकृताविगतासवः ॥
 तानभूमौपतितान्द्रुमागक्षमीकोयमृष्टिता ॥ २२ ॥ उपगम्यखरंसातुर्किंचित्संशुष्कशोणिता ॥ पपातुपुनरेवातसिनिर्योसेवच्छरी ॥ २३ ॥

राणोंने काटकर फेंक दिने । तत्प्रभात् महातेजवान् श्रीरामचंद्रजीने सूर्यके समान प्रभाववाले बाण ग्रहणकर ॥ १८ ॥ उनको धनुष पर चढाय महा क्रोधवान् हो च-
 राक्षसोंकी तारुकर गिद्धा पर पैनाये बाण ॥ १९ ॥ छोड़े, जिसप्रकार इन्द्र वज्र छोड़ते हैं । यह सब नाराच अति वेगसे राक्षसोंकी छातियोंमें प्रवेश
 करिमें गये ॥ २० ॥ पृथ्वीमें गिरे जिम प्रकार वंदर्मसे सांप निकला करते हैं, राक्षसभी इन सब बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदयहो पृथ्वीमें गिरे जैसे जड कटे
 राक्षसोंमें गिर पड़ते हैं ॥ २१ ॥ यह राक्षस कटेजोंमें बाण लगनेके कारण रुधिरमें सराबोर हो रहे थे, प्राण जाते रहे थे उनकी सूरतें बिगड गई थीं
 उन राक्षसोंको गिरा हुआ देतार राक्षसी गर्पणरा कोधने अधीरा होकर ॥ २२ ॥ अपने भाई सरके पास जा फिर कातरहो गिर पड़ी । उस समय उन-

जीके मल्लि उन दोनों भालाओंको दिखा दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसोंने पर्णशालामें महावलवान् श्रीरामचन्द्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे ता ॥ २ ॥ श्रीमाव् एगुनन्दन रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आयाहुआ देखकर दीप्तिसे तेजवान् भाता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! एक मीनजीके निकट रहो । इतनेमें हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन सब राक्षसोंको मार डालें ॥ ४ ॥ तब विदितत्वा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके रके "तथास्तु" कह उनकी बात शिरमाथे चढाते हुए ॥ ५ ॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रभी सुवर्णभूषित महाधनुषमें रोदा चढाय इन सब राक्षसोंसे दो भाला हैं, नाम हमारा राम व लक्ष्मण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं हम सीतासहित इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आये हैं ॥ ७ ॥ हम फल मूल

यामुपविष्टमहावलम् ॥ ददशुःसीतयासार्धलक्ष्मणेनापिसेवितम् ॥ २ ॥ तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमानगतां स्तांश्च राक्षसान् ॥ अब्रवीद्भ्रातरं
भित्तजसम् ॥ ३ ॥ मुहूर्तभवसां मित्रेसीतायाः प्रत्यनंतरः ॥ इमानस्यावधिप्यामि पदवीमागतानिह ॥ ४ ॥ वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा
त्मनः ॥ तथेतिलक्ष्मणो वाक्यं राघवस्य प्रपूजयन् ॥ ५ ॥ राघवोऽपि महत्त्वापं चामीकरविभूषितम् ॥ चकार सज्यं धर्मात्मा तानिर
द्व ॥ पुत्रो दशरथस्यावां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ प्रविष्टौ सीतया सार्धं दुश्शरं दंडकावनम् ॥ ७ ॥ फलमूलाशनौ दातौ तापसी
दंडकारण्ये किमर्थमुपहिंसथ ॥ ८ ॥ युष्मान्पापात्मकान्हं तु विप्रकारान्महाहवे ॥ ऋषीणां तु नियोगेन संप्राप्तः सशरासनः ॥ ९ ॥
चमर्हथ ॥ यदि ग्राणेरिहाथो विनिवर्तध्वं निशाचराः ॥ १० ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश ॥ ऊचुर्वचंसुसंकु
॥ संरक्तयनाधोरारामं संरक्तलोचनम् ॥ परुषामधुराभापंहृष्टादृष्टपराक्रमम् ॥ १२ ॥

और ब्रह्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करते हैं; सो, तुम किसकारण हमारे ऊपर चढाई करते हो ॥ ८ ॥ यदि कहो
मका उत्तर यह है कि तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके
श्री स्थानमें खड़े रहो, आगे न बढ़ो; हे निशाचरगण ! यदि प्राणोंका मोह होवे, और तुम इसका प्रयोजन
॥ ब्रह्मचारी, शूलधारी, भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन श्रवण करके
प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमको नहीं जानते थे

कि, राक्षस मर पाते हैं
भक्ति निमित्त आर्द्र हो जाते हैं
नाम गानेवाले, शौनद राक्षसों को
नातुन्मनोपेयों के नागों को मार
वचन सुननेवाले, नागों को मार
इतने पुनः

शरीरका रक्त कुछेक सूख गया था इस कारण वह गोंद लगी लवाके समान दृष्टि आती थी ॥ २३ ॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकट गोकसे पीडितहो घोर चिछाने लगी और उदासीन मुख व विकट शब्दसे रोने लगी ॥ २४ ॥ खरकी वहन शूर्पणखा राक्षसी युद्धमें राक्षसोंको मराहुआ देख वेगसे दौडआकर खरसे बोली कि, राक्षस सब मारे गये ॥ २५ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ ॥ अनर्थके निमित्त आईहुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पड़ी हुई देखकर क्रोधमें भर खर फिर जोरसे कहने लगा ॥ ३ ॥ कि, हमने तुम्हारा प्रिय कार्य करनेके लिये मांस खानेवाले, चौदह राक्षसोंको आज्ञादी है सो अब फिर तुम किस कारणसे रो रही हो ? ॥ २ ॥ वह राक्षस जो कि, हमने भेजे हैं सब हमारे अनुरागी

भ्रातुः समीपेशो कर्ता ससर्जनिनन्दमहत् ॥ सस्वरंसुमुखे चाप्यं विवर्णवदना तदा ॥ २४ ॥ निपातितान् प्रेक्ष्य खरनेतुराक्षसान् प्रयाविता शूर्पणखा पुनस्ततः ॥ वधंचते पांनिखिलेन रक्षसां शशंस सर्वभगिनी खरस्य सा ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अर० विशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ सुपुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां पुनः ॥ उवाच ब्यक्तया वाचा तामनर्थमागताम् ॥ १ ॥ मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसाः पिशिताशनाः ॥ त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः ॥ २ ॥ भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्रममनित्यशः ॥ हन्यमानानहन्त्येतेन नु कुर्वुर्वचो मम ॥ ३ ॥ किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः ॥ हानार्थं विनिर्दत्ती सर्पचक्षुषेक्षितो ॥ ४ ॥ अनाथवद्विलपसि किं नुनाथेमयि स्थिते ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मामेवं वक्छ्वं त्यज्यतामिति ॥ ५ ॥ इत्येवमुक्ता दुर्धर्पा खरेण परिसंत्विता ॥ विमृज्य नयने सा खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्मीदानीमहं प्रोप्ता हतधवणनासिका ॥ शोणितोच्चपरिक्लिन्ना त्वया च परिसंत्विता ॥ ७ ॥ प्रेपिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश ॥ निहतुरावचो रमं त्विप्रयार्थं सलक्ष्मणम् ॥ ८ ॥

भक्त और सदाही हित करनेवाले हैं वह किसीके भारसे परनेवाले नहीं हैं और सधही अंतःकरणसे हमारी आज्ञाका पालन करते रहते हैं ॥ ३ ॥ फिर तुम कित्त कारण हा नाथ २ कह बार २ चिह्नाकर सर्पके समान लोट रही हो, सो इसका क्या कारण है ? उसको मैं जानना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ हमेना रक्षक होनेपर भी तुम किस कारण अनाथके समान विलाप करती हो ? उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरने जब इस प्रकार कहकर विषेप भांतिसे शूर्पणखाको समझाया बुझाया तब दुर्द्धर्प शूर्पणखा आँसुभरे नेत्रोंको पोंछ बोली ॥ ६ ॥ कि, हमारे नाक कान दोनोंही गये हैं और मैं खुनसे भीज गई हूँ इस अवस्थामें पहलेके समान फिर तुम्हारे पास आई हूँ और तुमने इसको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमने हमारा प्रिय कार्य करनेकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक राम

चन्द्रको मार डालने के लिये जो वीर चौदह राक्षस भेजे थे ॥ ८ ॥ रामचन्द्रने मर्मदेही चाणोंको छोड़कर शूल, पटा आदि हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण, उन सबही राक्षसोंको बुझमें मार डाला ॥ ९ ॥ अतिशय तेजस्वी राक्षसोंको क्षणभरमेंही पृथ्वी पर पड़ा हुआ देख और रामचन्द्रका यह भारी कार्य देख मुझको महाभय लगता है ॥ १० ॥ मैं डरी हुई हूँ, उत्कण्ठित हूँ, और विषादित होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आई हूँ ॥ ११ ॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते हय विषाद रूप मगर और गोदोंसे भरे हुए तरंग उठते हुए गंभीर शोकसागरमें डूब रही हैं ॥ १२ ॥ जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमने भेजे थे उन सबको रामचन्द्रने तीखे चाणोंसे मार डाला ॥ १३ ॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसोंकी सन्तानोंके ऊपर तुमको दया हो, यदि रामचन्द्रसे युद्ध करनेकी शक्ति

तेतुरायेणसामर्याः शूलपट्टिशपाणयः ॥ समरेनिहताः सर्वेसायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ९ ॥ तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाक्षणेनैवमहाजवान् ॥ रामस्यचमहत्कर्ममहास्त्रासोभवन्मम ॥ १० ॥ सास्त्रिभीतासमुद्भिन्नाविषण्णाचनिशाचर ॥ शरणंत्वापुनःप्राप्तमर्चतोभयदर्शिनी ॥ ११ ॥ विषादनक्राधुपितेपरित्रासोर्मिमालिनि ॥ किमान्त्रायसेसम्माविपुलेशोकसागरे ॥ १२ ॥ एतेचनिहताभूमौरामेणनिशितैःशरैः ॥ येचमेषदर्वीप्राप्ताराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ १३ ॥ मयितेयद्यनुकोशोयदिरक्षःसुतेपुत्र ॥ रामेणयदिशक्तिस्तेतेजोवास्तिनिशाचर ॥ १४ ॥ दंडकारण्यनिलयंजहिराक्षसकंदकम् ॥ यदिरामममित्रघ्नंनत्वमद्यधिष्यसि ॥ १५ ॥ तवचेवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामिनिरपत्रपा ॥ बुद्ध्याहमनुपश्यामिनत्वंरामस्यसंयुगे ॥ १६ ॥ स्थातुंभ्रंतिमुलेशक्तःसचलोपिमहारणे ॥ शूरमानीनशूरस्त्वमित्यारोपितविक्रमः ॥ १७ ॥ अपयाहिजनस्थानात्चरितःसहवांयवः ॥ जहत्तंसमर्ममृदान्यथातुकुलपांसन ॥ १८ ॥ मानुषोतानशक्रोपिहंतुवैरामलक्ष्मणी ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्यवासस्तेकीदृशस्त्विह ॥ १९ ॥

और वेज तुममें हो ॥ १४ ॥ तब तो राक्षसकुलके कण्टकरूप दंडकारण्यवासी रामचन्द्रको आजही मार डालो यदि शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रको तुम आजभी संहार न कर डालोगे ॥ १५ ॥ तौ हम लाजरहित होकर तुम्हारे सामनेही प्राण त्याग करंगी, क्योंकि हमें अपनी बुद्धिमें जान पड़ता है कि तुम संग्राममें ॥ १६ ॥ रामचन्द्रके सामने खड़े न हो सकोगे, यद्यपि तुम्हारे साथ चतुरंगिनी सेनाभी भारी है और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमानभी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं हो और तुम्हारा विक्रमभी भिन्नया कहनेकेही लियेहै ॥ १७ ॥ हे मूढ़ ! हे कुलाधम ! तुम इस मुहूर्त्तमेंही वन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानमें भाग जाओ, नहीं तौ राम और लक्ष्मणको संग्राममें संहार करो ॥ १८ ॥ राम लक्ष्मण मनुष्य हैं यदि उनको मारनेकीभी सामर्थ्य तुममें नहीं है तौ हीनवीर्य दुर्बल होकर किस प्रकार

शरीरका रक्त कुछेक सूख गया था इस कारण वह गोंद लगी लटाके समान दृष्टि आती थी ॥ २३ ॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकट शोकसे पीड़ित हो घोर चिन्ताने लगी और उदासीन मुख व विकट शब्दसे रोने लगी ॥ २४ ॥ खरकी बहन शूर्पणखा राक्षसी युद्धमें राक्षसोंको मराहुआ देख वेगसे दौड़ाकर खरसे बोली कि, राक्षस सब मारे गये ॥ २५ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ ॥
अनर्थके निमिन् आईहुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पड़ी हुई देखकर कोधमें भर खर फिर जोरसे कहने लगा ॥ १ ॥ कि, हमने तुम्हारा प्रिय कार्य करनेके लिये मांस खानेवाले, चौदह राक्षसोंको आज्ञादी है सो अब फिर तुम किस कारणसे रो रही हो ? ॥ २ ॥ वह राक्षस जो कि, हमने भेजे हैं सब हमारे अनुरागी

भ्रातुः समीपे शोकात्तसिर्जनिनदंमहत् ॥ सस्वर्गमुच्चेवाप्यविषण्वदनातदा ॥ २४ ॥ निपातितान्प्रेक्ष्यरणेतुराक्षसान्प्रथाविताशूर्पणखापुनस्ततः ॥
वधंचतेपानिखिलेनरक्षसांशंसर्वभगिनीखरस्यसा ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अर० विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ सपुनः पतितां दृष्ट्वा क्रो
धाच्छूर्पणखांपुनः ॥ उवाचव्यक्तयावाचातामनर्थथमागताम् ॥ १ ॥ मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसाः पिशिताशनाः ॥ त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं
रुद्धते पुनः ॥ २ ॥ भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः ॥ हन्यमानानहन्त्येतेन कुर्वुर्वचोमम ॥ ३ ॥ किमेतच्छ्रेतुमिच्छामि कारणं यत्कृते
पुनः ॥ हानार्थेति विनर्दती सर्पवचेष्टसेक्षितौ ॥ ४ ॥ अनाथवद्विलपसि किं नुनाथेमयि स्थिते ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मामेवं कृष्वन्यज्यतामिति ॥ ५ ॥
इत्येवमुक्तादुर्धर्पाखरेण परिसात्त्विता ॥ विमृज्य नयने साक्षे खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्मीदानीमहं ग्राप्ताहतश्रवणनासिका ॥ शोणितौघपरि
क्षिन्नात्वयाचपरिसात्त्विता ॥ ७ ॥ प्रेषिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश ॥ निहंतुराघवं घोरं मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम् ॥ ८ ॥

भक्त और सदाही हित करनेवाले हैं वह किसीके मारसे मरनेवाले नहीं हैं और सबही अंतःकरणसे हमारी आज्ञाका पालन करते रहते हैं ॥ ३ ॥ फिर तुम किस कारण हा नाथ २ कह बार २ चिन्ताकर सर्पके समान लोट रही हो, सो इसका क्या कारण है ? उसको मैं जानना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ हमेशा रक्त होनेपर भी तुम किस कारण अनाथके समान विलाप करती हो ? उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरने जब इस प्रकार कहकर विषेय भांतिसे शूर्पणखाको समझाया बुझाया तब दुर्धर्प शूर्पणखा आँसुभरे नेत्रोंको पोंछ बोली ॥ ६ ॥ कि, हमारे नाक कान दोनोंही गये हैं और मैं खरनेसे भीज गई हूँ इस अपस्थायी पहेलेके समान फिर तुम्हारे पास आई हूँ और तुमने हमको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमने हमारा प्रिय कार्य करनेकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक राम

१९ ॥ रामचन्द्रके तेजमे निन्दितहो थोडेही समयमें तुम्हारा नाश हो जायगा । दशरथकुमार रामचन्द्र स्वभावसेही अतिशय तेजस्वी हैं ॥ २० ॥
 और उनके भाई लक्ष्मणभी महावीरवान् हैं, कि जिन्होंने हमारे नाक कान काट डाले हैं इस प्रकारसे वह बड़े उदरवाली राक्षसी बहुत भौंतिसे विलाप कर ॥ २१ ॥
 अपने भागा सरके निकट शोकके मारे व्याकुलहो अचेत होगई और दुःखसे व्याकुलहो दोनों हाथोंसे छाती पीट २ कर रोने लगी ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०
 पानीभीय आदिकाल्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायमेकविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ ॥ शूर्पणखाने जब क्रोधमें भरकर इस प्रकार स्वरका तिरस्कार किया तब तेजस्व
 भाग्यला शूरवीर सर राक्षसीकी समाके बीचमें उससे कठोर वचन कहने लगा ॥ १ ॥ कि तुम्हारा अपमान होनेसे जो क्रोध हमको हुआ है उसकी तुलना नहीं है
 पापमें छोटे हुए नमस्कीन जलके ममान इस क्रोधको धारण करनेकी हममें शक्ति नहीं है ॥ २ ॥ रामचन्द्र और लक्ष्मण तो मनुष्य हैं हममें जो पराक्रम है उससे हम
 रामतेजोभिभूतौ हित्वंक्षिप्रं विनिशियसि ॥ सहितेजः समायुक्तो रामो दशरथात्मजः ॥ २० ॥ आताचास्य महावीर्येन चास्मि विरूपिता ॥ एवं
 रिलप्यदुःशोराक्षसीप्रदोदरी ॥ २१ ॥ भ्रातुः समीपे शोकातीन एतस्मादभवह ॥ कराभ्यामुदरं हत्वा रुरोदभृशदुःखिता ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्री०
 रा० आ० अर० एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥ एवमार्थपितः शूरः शूर्पणख्यास्वरस्ततः ॥ उवाच रक्षसां मध्ये स्वरः स्वरतरंगवचः ॥ १ ॥ तवापमानप्रभवः
 कोभोयमलोलोमम ॥ न शक्यते धारयितुं लवणां भद्रं बोल्वणम् ॥ २ ॥ न रामं गणये वीर्यान्मानुपंक्षीणजीवितम् ॥ आत्मदुश्चरितैः प्राणान्दहो योद्य विमो
 क्षते ॥ ३ ॥ याप्यः संधार्यतामेपसंभ्रमश्च विमुच्यताम् ॥ अहं रामं सह भ्रात्रानयाभियमसादनम् ॥ ४ ॥ परश्वधहतस्याद्यमदं प्राणस्य भूतले ॥ रामस्य रु
 धिरं कमुष्णं पास्यसि राक्षसि ॥ ५ ॥ संग्रहं प्रावचः श्रुत्वा स्वरस्य वदनाच्छ्रुतम् ॥ प्रशंसं पुनर्मूर्ख्यार्द्रातरं रक्षसां वरम् ॥ ६ ॥ तया पररूपितः पूर्वपुनरेव प्र
 शंसितः ॥ अत्र वीरपुण्यानां मखरः सेनापतिरितदा ॥ ७ ॥ चतुर्दशसहस्राणि मम चित्तानुवर्तिनाम् ॥ रक्षसां भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ८ ॥
 रामसे कुछ नहीं गिनते उस रामने जो कुकर्म किया है उसके पापसे वह आजही निहत होकर प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ इस कारण तुम रोना थोना छोड डरका
 त्याग करो हम अवश्यही रामके सहित लक्ष्मणको यमपुरीमें पठावेंगे ॥ ४ ॥ अयि राक्षसि ! अब मरणोन्मुख रामचन्द्रजी जब हमारे शरसे घायल होकर मर
 जावेंगे तब तुम उनका लाल २ गरम २ रुधिर पान करना ॥ ५ ॥ शूर्पणखा स्वरके मुखसे निकले हुए यह वचन सुन मुदतासे अधिक हर्षमें भर फिर उस राक्षस
 भेद गरती पडाई करने लगी ॥ ६ ॥ जब निगाचरी शूर्पणखाने प्रथम निन्द्य की और फिर प्रशंसा की तब तत्क्षण स्वर, दूषणनामः अपने सेनापतिते बोला ॥ ७ ॥
 कि हे मरणरत्न ! जो मय भौंतिसे दसागर प्रिय अनप्राप्त प्रिय अनप्राप्त करनेपाछे जो कभी मुझमें पीट नहीं दिखाने अनियोगपात्र प्र कर्त = कर्त १ ३ ३ ३

जो लोगोंकी हत्या करके सदा सेला करते हैं जिनका पराक्रम भयानक और जिनका वर्ण नीले चादरके समान है ऐसे राक्षसोंको सब प्रकारसे मजाकर हमारे सामने लाओ ॥ ९ ॥ इसके सिवाय शीघ्र चलनेवाला रथ, धनुष, विचित्र बाणसमूह तेजधारवाली अनेक भाँतिकी शक्तियें और खड्गभी ले आओ ॥ १० ॥ हे रणवीर महाभूव ! राक्षसोंके प्रथमही महात्मा पुलस्त्यवंशसे उत्पन्न हम, जो रामचन्द्र राक्षसोंको मारनेके लिये आये हैं उन दुर्विनीत रामचन्द्रके वधार्थ मंग्राममें आगे जानेकी इच्छा करते हैं ॥ ११ ॥ खरने जब इस प्रकार कहा तो द्रुपण नुरन्तही विचित्र वर्णवाले श्रेष्ठ घोड़े जिसमें जुतेहुए सूर्यके समान चमकते हुए रथको खरके समीप ले आया ॥ १२ ॥ इस रथका आकार मेरु पर्वतकी समान सब गहने इसमें तपाये हुए सुवर्णके लगेये पहिये सुवर्णके बनेये और दोनों

नीलजीमूतवर्णानालोकहिंसाविहारिणाम् ॥ सर्वाद्योगमुदीर्णानारक्षसांसौम्यकारय ॥ ९ ॥ उपस्थापय मेक्षिप्रथमसौम्यचनूपिच ॥ शरंश्च त्रिजान्खड्गान्श्च शक्तीश्च विचित्राः शिताः ॥ १० ॥ अग्रेनिर्यातुमिच्छामि पीलस्त्यानामहात्मनाम् ॥ वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविद ॥ ११ ॥ इति तस्य द्रुवाणस्य सूर्यवर्णमहारथम् ॥ सदश्वैः शर्वैर्युक्तमाचचक्षेथ द्रुपणः ॥ १२ ॥ तमेरुशिखराकारं तसकांचनभूषणम् ॥ हेमचक्रमसंघातैर्दूर्यमयकूबरम् ॥ १३ ॥ मत्स्यैः पुण्यैर्द्रुमैः शैलैश्चन्द्रकांतिश्च कांचनैः ॥ मांगल्यैः पक्षिसेवैश्च ताराभिश्च समावृतम् ॥ १४ ॥ ध्वजनिस्त्रिशंशं पद्मं किंकिणीं वरभूषितम् ॥ सदश्वयुक्तं सोमर्षादारुरोहिलरस्तदा ॥ १५ ॥ खरस्तु तन्महत्सैन्यं रथचर्मयुधध्वजम् ॥ निर्यातस्य ब्रवीत्येक्ष्य द्रुपणः सर्वराक्षसान् ॥ १६ ॥ ततस्तद्वाक्षसं सैन्यं चोरचर्मयुधध्वजम् ॥ निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम् ॥ १७ ॥ मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः ॥ खड्गैश्चैरथस्थैश्च भ्राजमानैः सतोमरैः ॥ १८ ॥ शक्तिभिः परिवेद्यो रैरतिमानैश्च कार्मुकैः ॥ गदासिमुसलैर्वज्रैर्हतिर्भामिदर्शनैः ॥ १९ ॥

गुग्मजभी वैदूर्य मणिके बनेये ॥ १३ ॥ जिसमें मछली पुष्प, द्रुम, शैल, यह चन्द्रकांत मणि व सुवर्णके लगे हुएये और सुवर्णकेही पक्षी और तारागणभी इस रथमें जड़ रहेये ॥ १४ ॥ छोटी २ पेटियाँ इसमें लगी हुईरथीं, खर क्रोधमें भराहुआ कुछभी बिलम्ब न करके ध्वजा पताका युक्त अच्छे घोड़ों करके चलाये जाते हुए रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ खरको सवारहुआ देखकर द्रुपणने रथ चर्म आदि हथियार लिये, ध्वजा युक्त बड़ी सेनाको युद्धके लिये पद्यान करनेकी आज्ञा दी। उमने जब सब राक्षसोंसे इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥ तब भयंकर चर्म ध्वजा युक्त वह राक्षसोंकी सेना महावेगसे महाकुलहल मचाती हुई जनस्थानसे चली ॥ १७ ॥ उस सेनामें राक्षस मुद्गर, पटा, तेज शूल, फरसे, खड्ग, चक्र, व तोपरादि शस्त्र धारण किये शोभायमानये ॥ १८ ॥ शक्ति, पारिच, महाभयंकर धनुष,

गदा, तलवार, मूसल और भयंकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर राक्षस जनस्थानसे निकले ॥ १९ ॥ इस प्रकार खरके मनकी बात करनेवाले बड़े भयंकर स्वरूप चीदह हजार राक्षस जनस्थानसे बाहर हुए ॥ २० ॥ वह भयंकर राक्षस जब महावेगसे धावमान हुये तब इसको देखकर खरका रथभी कुछ तिनके निकटही पहुँचा ॥ २१ ॥ सारथीने खरकी आज्ञा जानकर विचित्र वर्णवाले सुवर्णके गहने पहने घोड़ोंको शीघ्रतासे चलाया ॥ २२ ॥ उस समय रिरुचाती राखला चलगा हुआ रथ अपने शब्दसे सहसा दिशा विदियाओंको भर देता हुआ ॥ २३ ॥ अतिबलवान् वह बड़े स्वरवाला खर क्रोधमें भर यमराजकी समान शत्रु संहार करनेमें विशेष शीघ्रता युक्त हो ओले वर्षाने वाले महादेवकी समान गर्जता हुआ सारथीसे बोला कि, रथ जलदी जलदी चलाओ ॥ २४ ॥

राक्षसानासुचोराणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ निर्यातानिजनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तांस्तुनिर्धानतोद्वाराक्षसान्भीमदर्शनान् ॥ खरस्याथरथः किञ्चिज्जगामतदनंतरम् ॥ २१ ॥ ततस्ताञ्छवलान्धांस्तसकांचनभूषितान् ॥ खरस्यमतमाज्ञायसारथिः पर्यचोदयत् ॥ २२ ॥ संचोदि तोरथः शीघ्रं खरस्यरिपुचातिनः ॥ शब्देनापूरयामासदिशः सप्रदिशस्तथा ॥ २३ ॥ प्रवृद्धमन्युस्तु खरः खरस्वरोरिपोर्वधार्थत्वरितो यथांतकः ॥ अवृषु दत्सारथिमुन्नदन्पुनर्महाबलेमेव ह्वाशमवर्षवान् ॥ २४ ॥ इत्यपि श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥ तत्प्रयातंव लंघोरमशिशोणितादकम् ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलोगर्दभारुणः ॥ १ ॥ निपेतुस्तुरगास्तस्य रथयुक्तामहाजवाः ॥ समेपुष्पचित्तिदेशे राजमार्गे यदृच्छया ॥ २ ॥ श्यामं रुधिरपर्यंतं कभूषपरिवेपणम् ॥ अलातचक्रप्रतिमं प्रतिगृह्णादिवाकरम् ॥ ३ ॥ ततो ध्वजमुपागम्य हेमदंडं समुच्छृतम् ॥ समाक्र म्यमहाकायस्तस्थौ गृध्रः सुदारुणः ॥ ४ ॥ जनस्थानसमीपे च समाक्रम्य खरस्वनाः ॥ विस्वरान्विविधान्नादान्मांसादान्मृगपक्षिणः ॥ ५ ॥

इत्यपि धीमद्रा० या० आदि० अरण्यकांडे भाषाटीकायां द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥ जब इस प्रकारके वह भयंकर राक्षसोंकी सेना युद्ध करनेके लिये चली, तब गर्द भकी समान धूसरवर्ण महा डरावने मेघ आकारमें उठकर कड़ा शब्द करके रुधिर मिला हुआ जल वर्षाने लगे ॥ १ ॥ खरके रथमें जो तेज चलनेवाले घोड़े जुत रहेये, वह राजमार्गमें चलनेके समय सहसा फूल बिछी हुई बराबर हुई पृथ्वीमेंभी गिर पड़े ॥ २ ॥ सूर्यमंडलके चारों ओर श्यामवर्णका घेरा बन गया, इस घेरेका बाहरी भाग अरुण वर्ण और आकार अंगारचककी समान गोलया ॥ ३ ॥ इसके पीछे बड़े आकारवाला भयंकर गिद्ध बड़ी ऊँची सुवर्णकी रथकी ध्वजके निकट आकर पैर उठाकर उमके ऊपर बैठ गया ॥ ४ ॥ विकट शब्दकारी, मोंग ग्यानेवाले गजपुष्टीगण जलस्थानके समीप आकर भयंकर शब्द करनेके थिलाने लगे ॥ ५ ॥

भयंकर विचार पूर्व दिगामें राक्षसोंका अंगलदाक भयंकर घोर शब्द करने लगे ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान भयंकर मूतिवाल मध जलकी समान शायर भयंकर करके वहाँके मय आकाशमें एकवारही छाटेले हुए ॥ ७ ॥ रुँवे खड़ा करनेवाला ऐसा घोर अंधकार छाया कि दिया विदिया समस्त एक साथही उगरे ॥ ८ ॥ मध्या रुधिरसे भीगे वस्त्रकी समान वर्ण धारण करके अकालमेंही प्रकाशित होगई भयंकर पशुपक्षीगणोंने खरके सम्मं रंरुगई, फिर मृच्छी दृष्टि न आया ॥ ९ ॥ श्वेत चील सियार और गिद्धगण खरको भय उपजाते हुए ऊँचे स्तरसे शब्द करने लगे, और युद्धमें जिन नून करके कयार मगने चिदाजा आरम्भ किया ॥ १० ॥ तेनाके सामने मुखसे अग्नि निकालतीहुई घोर शोर करने लगीं सूँदरे चोखना मद्दा अंगलदा उजानेवाली, नेनी शृगालियोंभी भय उपजाती हुई ॥ ११ ॥

व्याजदुग्धिदीप्तायादिशिवैरेवस्वनम् ॥ अशिवंयातुधानानां शिवाचोरामहास्वनाः ॥ ६ ॥ प्रभिव्रगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः ॥ आकाशं तदनाकाशं नृभोंमांबुवाहकाः ॥ ७ ॥ ब्रह्मवृत्तिमिरचोयुद्धतरं मेहर्षणम् ॥ दिशोवाप्रदिशोवापि सुव्यक्तं न च काशिरं ॥ ८ ॥ क्षतजार्द्रसवर्णाभास्तं ध्याकालं विनायभौ ॥ तारं चाभिसुखं नेदुस्तदाघोरा मृगाः खगाः ॥ ९ ॥ कंकगोमायुग्राश्च कुशुभयशंसिनः ॥ नित्याशिवकरा बुद्धेशिवाघोरानि दर्शनाः ॥ १० ॥ नेदुर्बलस्याभिमुखं जालोद्गारिभिराननेः ॥ कबंधः परिघाभासो दृश्यते भास्करांतिके ॥ ११ ॥ जग्राहसूर्यस्वर्भानुरपर्वणिमहाग्रहः ॥ प्रमातिमारुतः शीघ्रं निप्रभोभूद्विवाकरः ॥ १२ ॥ उत्पेतुश्च विनारात्रिताराः खद्योतसप्रभाः ॥ संलीनमीनविहगानलिन्यः शुष्कपंकजाः ॥ १३ ॥ तस्मिन्क्षणे नृभुश्च विनापुष्पफलदुग्धाः ॥ उद्धृतश्च विनावातं गुणजलधरारुणः ॥ १४ ॥ चीचीकूचीतिवाश्यं तोवभुस्तत्र सारिकाः ॥ उल्काश्चापिसनि चोपातिपंतुर्योर्दशनाः ॥ १५ ॥ प्रचचालमहीचापिसशैलजनकानना ॥ तस्य चरथस्य नर्दमानस्य धीमतः ॥ १६ ॥

निरुद्ध पारंगार कबंध दिगामें दौरेलगा ॥ १३ ॥ महाग्रह राहुने बिना अमावस्या और पर्वकालकेही सूर्यको ग्रस्त लिया पवन प्रचंड चलने लगी सूर्यकी दीप्ति जा रही ॥ १४ ॥ और गति न होनेपरभी तारागण पृथ्वीजनेकी समान चमककर उदय हुए, तालाओंके कमल मुखगये मछलीभी सागर सरोवरमें ही लीन हो गई और पक्षीभी नागकों प्रात होगये ॥ १५ ॥ उस समय सब वृक्ष फल फूलों करके रहित होगये और बिना पवनके चलनेपरभी महा धार उडने लगी चांदल ला होगये ॥ १६ ॥ उस काल मेंना पक्षी भित्तये हुये राक्षसोंको त्याग करके (चीची कूचि इत्यादि) अर्थ रहित शब्द करने लगे, घोर भयावनी उल्कायें बगदने कां करके पृथ्वीपर गिरने लगीं ॥ १७ ॥ और वन उपवन और पर्वत सहित पृथ्वी कांपने लगी थीमान खर रथमें बैठकर गर्जन करने लगा ॥ १८ ॥

माभी पाई भुजा यदुनही सोनो लगी, स्वर बिगड गया, इम प्रकार इधर उधर देखते २ उसके दोनों नेत्रोंमें आंसू भर आये ॥ १७ ॥ उस खरके शिरमें वारंवार गीर हो-ने लगी, गथापि मोरकें मारे यह मंगममें जानेसे नहीं लीया, इन सब रोमहर्षण महाउत्पातोंको उपस्थित हुवा देख ॥ १८ ॥ खर हँसता २ सब राक्षसोंसे बोला कि, यह तो पोर-दिगाई देनवाले महाउपात इस समय हो रहे हैं इनको देखकर मैं ॥ १९ ॥ ऐसे कुछ नहीं समझता कि, बलवान् जिस प्रकार दुर्बलोंको नहीं भिगवा धीमेही इसारे पराक्रम इन उत्पातोंको मनमें स्थान नहीं देते जो हम बुद्ध होवें तो तीसरे वाणोंसे आकाशमंडलसे तारागणोंको भी पृथ्वीपर गिरा दें ॥ २० ॥ इस वशिष्ठ हैं जो यमराजकीभी मृत्यु शोष लावें, इससे हम बलसे दण्डित रामचन्द्रको उसके भाई लक्ष्मण सहित ॥ २१ ॥ तीसरे वाणोंके आघातसे विना

प्राकंपतभुजःमध्यःस्वरश्चास्यावसज्जत ॥ साक्षासंपद्यतेदृष्टिःपथ्यमानस्यसर्वतः ॥ १७ ॥ ललाटेचरुजोजातानचमोहान्यवर्तत ॥ तान्समीक्ष्य महोत्पातानुत्थितान्त्रोमहर्षणान् ॥ १८ ॥ अत्रवीद्वाक्षसान्सर्वान्ग्रहसन्सखरस्तदा ॥ महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्घोरदर्शनान् ॥ १९ ॥ नचि तयाम्यदंभीर्याद्वलयान्दुर्वलानिव ॥ ताराअपिशरैस्तीक्ष्णैःपातयेयंनभस्तलात् ॥ २० ॥ मृत्युमरणधर्मेणसंकुद्धोयोजयाम्यहम् ॥ राघवंतंबलोत्सिक्तंभातरंनापिलक्ष्मणम् ॥ २१ ॥ अहत्वासायैकेस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुसह ॥ यन्निमित्तंतुरामस्यलक्ष्मणस्यविपर्ययः ॥ २२ ॥ सकामाभगिनीमेस्तुपीत्नानुरुधिरंतयोः ॥ नकचित्राप्तपूर्वोमेसंगेपुपराजयः ॥ २३ ॥ युष्माकमेतत्प्रत्यक्षंनानृतंकथयाम्यहम् ॥ देवराजमपिकुद्धोमत्तैरावतगामिनम् ॥ २४ ॥ यत्रहस्तंरणेहन्यांकिंपुनस्तोचमानवौ ॥ सातस्यगर्जितंश्रुत्वाराक्षसानांमहाचभूः ॥ २५ ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमृत्युपाशावपाशिता ॥ ममेषुभ्रमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षिणः ॥ २६ ॥ ऋषयोदेवगंधर्वासिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेऽन्योन्यपुण्यकर्मणः ॥ २७ ॥

मार डाँटे हुए नहीं लाँटेंगे । जिसके लिये रामचन्द्र व लक्ष्मणकी विपरीत बुद्धि हुई और उन्होंने उसके नाक कान काट डाले ॥ २२ ॥ ऐसी हमारी वहन शर्पणखा भ्राताके महित रामका रुधिर पीकर सफल मनोरथ होवे । और हमें पराजय होनेका कुछ डरही नहीं, क्योंकि आजतक हम किसी संशयमें पहले नहीं हारे हैं ॥ २३ ॥ सो तुम लोगों को ज्ञानही है इस कारण हम भिय्या नहीं कहते जो हम बुद्ध हो जायें तो मन ऐसावत हाथीपर सवार इन्द्रको ॥ २४ ॥ यद्यपि रणके मध्य उसके हाथमें वज्रभी हो गयापि मार डाँटें फिर राम लक्ष्मणके मारनेमें क्या बड़ी बात है? वह तो मृत्यु है यह कहकर खर गर्जने लगा जिसे श्रवणकर राक्षसोंकी बड़ी भारी सेना ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ यद्यपि यमके कंटमें कैसीभी । इस ओर मुख्यके देखनेकी सामनामें महात्मा लोग आये ॥ २६ ॥ उनमें ऋषिगण देवगण आने लगे ॥ २७ ॥

लाग सवही आये । वह पुण्य कर्म करनेवाले वहां सवही एकत्र होकर परस्पर कहने लगे ॥ २७ ॥ कि गौ, जालण, सुसमे रहें इसके मियाय औरभी मव
 लोकसम्मत प्राणियोंका मंगल होवे और श्रीरघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको जीतें ॥ २८ ॥ जैसे चक्रवर्ती विष्णुजीने समस्त अमुरश्रेणोंको
 जीताया । परमर्षिगण ऐसे, व औरभी अनेक प्रकारके वचन परस्पर कहने लगे ॥ २९ ॥ विमानोंमें बैठे हुए देवतालोग कौतूहलके वग होकर मृत्यु जिनकी
 निकट आई है ऐसे राक्षसोंकी चडी सेनाको देखने लगे ॥ ३० ॥ इस समय सारथपर चढा हुआ सेनाके अगले भागमें हुआ तब उसके अगल वगल श्वेनगामी,
 पृथुश्याम, यज्ञशत्रु, विहङ्गय, ॥ ३१ ॥ दुर्जय, परवीराक्ष, गुरुप, कलिकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्वास्य, और रुधिरान । यह चारह महावीर राक्षस सरको
 स्वस्तिगोब्राह्मणेभ्यस्तुलोकानां येचसंमताः ॥ जयताराघवोयुद्धेपौलस्त्याव्रजनीचरान् ॥ २८ ॥ चक्रहस्तोयथाविष्णुःसर्वानसुरसत्तमान् ॥
 एतच्चान्यच्चदुशोब्रुवाणाःपरमर्षयः ॥ २९ ॥ जातकौतूहलास्तत्रविमानस्थाश्चदेवताः ॥ ददृशुर्वाहिनींतेपाराक्षसानांगतायुषाम् ॥ ३० ॥ रथेन
 तुखरोवेगास्तेन्यस्याग्राद्दिनिःसृतः ॥ श्वेनगामीपृथुवीर्योयज्ञशत्रुर्विहङ्गमः ॥ ३१ ॥ दुर्जयःकस्वीराक्षःपुरुषःकालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामाली
 सर्पास्योरुधिराशनः ॥ ३२ ॥ द्वादशैतेमहावीर्योःप्रतस्थुरभितःखरम् ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ॥ चत्वारण्यतेसेनाश्रेदूपणं
 पृष्ठतोन्वयुः ॥ ३३ ॥ साभीमवेगासमराभिकांक्षिणीसुदारुणाराक्षसवीरसेना ॥ तीराजपुत्रोसहस्राभ्युपेतामालाग्रहाणामिवचंद्रसूर्यौ ॥ ३४ ॥
 इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे त्रयोविंशःसर्गः ॥ २३ ॥ आश्रमप्रतिपातेतुलखरेखरपराक्रमे ॥ तानेवौत्पतिका
 व्रातःसहभ्रात्रादर्शह ॥ १ ॥ तानुत्पातान्महान्धोरात्रामोदृष्ट्वात्यमर्षणः ॥ प्रजानामहितान्दृष्ट्वाक्वचंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ इमानपश्यमहा
 वाहोसर्वभूतापहारिणः ॥ समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुंसर्वराक्षसान् ॥ ३ ॥
 चेरे हुए जाते थे ॥ ३२ ॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा, यह चार राक्षस दूपण मेनापतिके पीछे २ चले जाते थे ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार ग्रहजाल
 चन्द्र और सूर्यको ग्राम होता है, वैसेही भीमवेग सुदारुण महाबलवान् राक्षसगण संश्रामकी अभिलाषा किये हुये सहसा राजपुत्र रामचन्द्र और लक्ष्मणजीके निकट पहुँचे
 ॥ ३४ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे आरण्यकांडे भाषाटीकायां त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ इस भाँति तीक्ष्ण पराक्रमवाला खर जब रामचन्द्रजीके आश्रमकी ओर चला,
 तब श्रीरामचन्द्रजीने भाता लक्ष्मणके सहित वह उत्पात जो कि खरके चलनेके समय हुये थे सब देखे ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी प्रजागणोंके अमंगलकारी महाघोर
 इन सब उत्पातोंको देखकर अस्वस्थ चित्ते लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! सब प्राणियोंके प्राणनाश करनेवाले यह बड़े भारी उत्पात राक्षसकुलका

हमारे करनके लिये हो रहे हैं गो तुम देगो ॥ ३ ॥ गर्दभही ममान धूमर वर्णवाले वादलोंका समूह इस आकाशमें इधर उधर दौडकर बड़े शब्दसे गर्ज २ रुधिर स्तंभाई ॥ ४ ॥ हे पतुर ! हमारे मय पाणोंमें धुआं निकलताहै, सो यह युद्ध होनेका आनंद मना रहे हैं; और स्वर्ण जिनकी पीठमें लगा हुआ है ऐसे धनुषभी विचरि हो रहे हैं ॥ ५ ॥ रणरत्न पक्षीगण जिस वक्राग्ने गब्द करते हैं इससे राक्षसोंको भय और प्राणसंशय आकर उपस्थित हुआ है ॥ ६ ॥ अब शीघ्रही मरानुब होना हममें उठभी मंदह नहीं है । परन्तु हे वीर ! हमारा यह दहना हाथ चार २ फडककर हमारे जयकी सूचना करता है ॥ ७ ॥ हे शूर ! हमारी जय और गुरगोही वराजप निकट आय पहुँची है, गुहारा वदनभी वसन्न और प्रभायुक्त देख पड़ता है ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! युद्ध करनेके लिये तैयार हुए जिन पुरुषोंका

अर्भीरुशिखागस्तुचिमृजंतेत्वरस्वनाः ॥ व्योमिमेघाविवर्ततेपरुपागर्दभारुणाः ॥ ४ ॥ सधूमाश्चशराःसर्वेममयुद्धाभिर्नंदिताः ॥ रुक्मपृष्ठानि नापानिचिंतंतेविचक्षण ॥ ५ ॥ यादृशाइहकूजंतिपक्षिणोवनचारिणः ॥ अग्रतोभोभयग्रातंसंशयोजीवितस्यच ॥ ६ ॥ संप्रहारस्तुसुमहा न्भविष्यनिमंशयः ॥ अयमाख्यातिमेयाहुःस्फुरमाणोमुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥ सन्निकर्षेतुनःशूरजयंशत्रोःपराजयम् ॥ सुप्रभंचप्रसन्नंचतववक्रंहिलक्ष्य ते ॥ ८ ॥ उद्यतानादियुद्धार्थयपंभवतिलक्ष्मण ॥ निष्प्रभंवदन्तेपांभवत्यायुःपरिक्षयः ॥ ९ ॥ रक्षसांनर्दतांवोपःश्रूयतेयंमहाध्वनिः ॥ आहता नांभेरीणांगसैःकर्मभिः ॥ १० ॥ अनागतवियानंतुर्कतंघ्यंशुभमिच्छता ॥ आपदाशंकमानेनपुरुषेणविपश्चिता ॥ ११ ॥ तस्माद्ब्रह्मी तांवेदेशरस्पाणिर्धनुर्धरः ॥ गुहामाश्रयशैलस्यदुर्गापादपसंकुलम् ॥ १२ ॥ प्रतिकूलितुमिच्छामिनिहिवाक्यमिदंव्या ॥ शापितोममपादाभ्यागम्यतांस्तस्मान्निरम् ॥ १३ ॥ त्वंहिशूरश्चक्रवान्हन्याएतान्नसंशयः ॥ स्वयंनिहंतुमिच्छामिसर्वानेवनिशाचरान् ॥ १४ ॥

दुग्ध मलीन रंजाता हैं, हमने उन लोगोंकी आयुका क्षय होता है ॥ ९ ॥ राक्षसोंके घोर और गंभीर गर्जेनका यह शब्द भी अब सुनाई आता है । व उन क्रूर स्पर्भ करनेवाले राक्षसोंकी भेरीकी घामिभी अब सुनाई आती है ॥ १० ॥ इस कारण कल्याणके चाहनेवाले पंडित पुरुष विपत्तिकी शंका रहनेसे प्रथमही उस आनेवाली विपत्तिसे ऐसा उपाय करते हैं कि, जिसमे वह विपत्ति निकट न आवे ॥ ११ ॥ इस कारण तुम धनुष धारण करके जानकीजीको ले वृक्षों परके पुनः दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ ॥ १२ ॥ तुम हमारे इन वचनोंके प्रतिकूल आचरण मत करना । वत्स ! हम तुमको अपने चरणोंकी भीरण दे रहे हैं कि, तू मभीपक्षी जानकीसे निकर निभिशुद्धमें चले जाओ ॥ १३ ॥ तुम शूर और कठ्यान्त्र हो, निश्चय इन राक्षसोंकी पाप

हममें मन्देह नहीं है परन्तु हम आपही इन सर्व निराचरोंके मार डालनेकी इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी सीत-
 मलिन गर और चाप ग्रहण करके दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले गये ॥ १५ ॥ जब जानकीजीके साथ लक्ष्मणजी पर्वतकी कन्दरामें चले गये तब श्री-
 द्रजी चडे दर्पित हुए और कवच व बाण खुन्दनजीने ग्रहण किया ॥ १६ ॥ अश्विर्वाले कवचके धारण करनेसे श्रीरामचन्द्रजी अन्धकारमध्यमेंसे उ-
 पदाश्रितिके नयान जान पड़ने लगे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी धनुषको उठाय, बाणोंको ग्रहण कर प्रत्यंवाकी टंकारके शब्दसे
 शिवाओंको पूर्ण करने हुए भली भाँतिसे दृढ़हो वहाँ खडे होगये ॥ १८ ॥ उस समय महात्मा देवगण, गन्धर्वगण, सिद्धगण, और चारणगण संग्राम दे-
 अभिलाषामें वहाँ आये ॥ १९ ॥ लोकमें जो ब्रह्मर्षि प्रसिद्ध हैं वह सब महापिपी वहाँ आये वह सब पुण्यकर्म कस्तेवाले एकत्र होकर परस्पर मिल कहने लगे ।
 एषमुत्तुरामेणलक्ष्मणःसहसीतया ॥ शरानादायचापंचगुहादुर्गसमाश्रयत ॥ १५ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेगुहालक्ष्मणेसहसीतया ॥ हंतनिर्युक्तमित्यु-
 गमःकवचमाविशत् ॥ १६ ॥ सतेनाग्निनाकाशेनकवचेनविभूषितः ॥ बभूवरामस्तिमिरमहानग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥ सचापमुब्रुवन्महच्छनानां
 दायवीर्यवान् ॥ संगभूवास्थितस्तत्रज्यास्वनेःपूरयन्दिशः ॥ १८ ॥ ततोदेवाःसंगंधवाःसिद्धाश्चसहचारणेः ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षनाः ॥
 ॥ १९ ॥ ऋषयश्चमहात्मानोलोकैर्ब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥ २० ॥ स्वस्तिगोत्राह्वयानांचलोकानांचेत्तिसं-
 ताः ॥ जयतांगययुद्धंयुद्धंलक्ष्म्यान्नजनीचरान् ॥ २१ ॥ वक्रहस्तोयथायुद्धेसर्वानसुरंगवान् ॥ एवमुक्त्वापुनःप्रोचुरालोक्यचपरस्परम् ॥ २२ ॥
 चतुर्दशमदत्ताग्निरदसाभिर्मकर्मणाम् ॥ एकश्चरामोयमात्माकथंयुद्धंभविष्यति ॥ २३ ॥ इतिराजर्षयःसिद्धाःसगणाश्चद्विजर्षभाः ॥ जातकौतू-
 स्तस्तुर्षिमानस्तथाश्रदेवताः ॥ २४ ॥ आविष्टंतेजसारामंसंग्रामशिरसिस्थितम् ॥ दृष्ट्वासर्वाणिभूतानिभयाद्विव्यथिरंतदा ॥ २५ ॥
 ॥ २० ॥ गौ, ब्राह्मण व और सब लोकोंका सब प्रकारसे भंगलहो और श्रीरामचन्द्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशीय निराचरोंको जीते ॥ २१ ॥ जिस प्रकार श्रीवि-
 रक्त हाथमें लेकर असुरभैरवोंको हरायाथा हमें रामचन्द्रजी जीते । इस प्रकार कहकर वह फिर परस्पर अवलोकन करते हुए कहने लगे ॥ २२ ॥ कि भयंकर
 करनेवाले राक्षस ती चौदह हजार (१४०००) हैं और धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इकले हैं, सो इससे कह नहीं सकते कि किस प्रकार युद्ध होगा ॥ २३ ॥ इस प्रकार
 राजर्षिगण, सिद्धगण, विद्याधरादि समस्त देवयोनिगण प्रधान २ ब्रह्मर्षिगण कौतूहलाक्रांत चिन्त किये विमानोंपर स्थित हुए वहाँ खडे थे ॥ २४ ॥ महान-
 भीमरामचन्द्रजीको नेजमें नविष्ट हुए समस्तयलमें अकेला खडा देव, प्राणिमात्रही भयंके मारे दुःखी हुए कि न जाने महाराजको आज कैसा परिश्रम पड़ेगा अ-

इन १४००० हजार दुष्टों से लड़ेंगे ? ॥ २५ ॥ महात्मा रुद्रजी जब क्रोध करते हैं और उनका रूप जैसा होजाताहै, वैसाही क्लेशाहित कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका रूप होगया जिसके समान विकराल रूप और नहींथा ॥ २६ ॥ आकाशमें देव गन्धर्व और चारण लोग ऐसा कहही रहे हैं कि इतनेमें महागंभीर शब्द करती, अति घोर ढाल खड्गादि हथियार लिये ॥ २७ ॥ चारोंओरसे राक्षसोंकी अनी (सेना) बनी ठनी आपहुँची, जो वीरपनेकी वार्ता आपसमें करहीथी ॥ २८ ॥ उस सेनाके कोई २ लोग धनुषकी मृत्यंवा खेंच २ वजाते कोई बार २ जैभाई लेते कोई ऊंचे स्वरसे चिछाते और कोई नगाडोंकोही वजातेथे ॥ २९ ॥ इस सब सेनाके राक्षसों का ऐसा घोर शब्द हुआ कि जिससे वह बन भर गया, और उस शब्दसे बनचारी पशु पक्षीभी घबडा गये ॥ ३० ॥ और लौटकर पीछेको न देखतेहुए जिस जगह

रूपमप्रतिमंतस्यरामस्याच्छिष्टकर्मणः ॥ वध्ववरूपंकुङ्कुरस्यरुद्रस्येवमहात्मनः ॥ २६ ॥ इतिसंभाव्यमाणेतुदेवगंधर्वचारणैः ॥ ततो गंभीरनिह्वंदिबोरचर्मण्युधध्वजम् ॥ २७ ॥ अनीकंयातुधानानांसंतात्प्रत्यपद्यत ॥ वीरालापान्विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम् ॥ २८ ॥ चापानिचिस्फारय तांजृभतांचाप्यभीक्ष्णशः ॥ विप्रघुष्टस्वनानांचदुंदुभीश्चाभिनिघ्नताम् ॥ २९ ॥ तेषांसुविपुलःशब्दःपूरयामासतद्वनम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्तास्त्रासितावनचारिणः ॥ ३० ॥ दुद्रुवुर्यत्रनिःशब्दंपृष्टतोनावलोकयन् ॥ तच्चानीकंमहाविंगरामंसमनुवर्तत ॥ ३१ ॥ धृतनानाप्रहरणंगंभीरंसागरोपमम् ॥ रामोपिचार्यंश्चक्षुःसर्वतोरणपंडितः ॥ ३२ ॥ ददर्शस्वसेन्यंतद्युद्धायाभिमुखोगतः ॥ वितत्यचधनुर्भीमंतूण्याश्चोद्धृत्यसायकान् ॥ ३३ ॥ क्रोधमाहारयत्तीव्रवार्थसर्वरक्षसाम् ॥ दुप्रेक्ष्यश्चाभवत्कुद्धोयुगांताग्निरिवज्वलन् ॥ ३४ ॥ तंदृष्ट्वातेजसाविष्टप्राव्यथन्वनदेवताः ॥ तस्यरुष्टस्यरूपंतुरामस्यददृशेतदा ॥ दक्षस्येवक्रतुंहंतुमुद्यतस्यपिनाकिनः ॥ ३५ ॥

वह शब्द श्रवणगोचर न होवै वहांको भागे । व इस ओर राक्षसी सेना धूम धामसे श्रीरामचंद्रजीके निकट आय पहुँची ॥ ३१ ॥ उस सेनाके वीरगण अनेक प्रकारके हथियार धारण कियेये, वह सेना समुद्रसमान उफनती चली आतीथी, समरपंडित श्रीघुनंदन रामचन्द्रजीने नेत्र डाल चारों ओर निहारा वो ॥ ३२ ॥ युद्ध करनेको सरकी सेना, उनके सौही चली आतीहै, तब श्रीरामचन्द्रजीने धनुषको उढाय, और तरकसमेंसे बाणसमूहको ग्रहणकर ॥ ३३ ॥ राक्षसकुलका संहार करनेके लिये महाक्रोध किया, उस समय श्रीरामचंद्रजीका ऐसा विकट स्वरूप होगया मानों मलयकालकी अग्नि है ॥ ३४ ॥ वन वता लोग उनका यह तेजसमयन स्वरूप देखकर भड़े । सम्यित रूप क्योंकि उनकीने वह प्रयाणकर प्रत्यक्षकीका जगह कादेनेने देखकर ॥ ३५ ॥

[illegible]

श्रीरामचन्द्रजीको युद्धमें मार डालनेके लिये आये, इस कारण वह सब रामचंद्रजीपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ १० ॥ जैसे मेघमाला पर्वोंपर वर्षा करतीहै, वैसेही
 बाणवर्षा उन निशाचरोंने श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की, सब राक्षसोंके मध्य जानकीजीवन कैसे शोभित होतेथे ॥ ११ ॥ जैसे प्रदोषकी यामिनियोंमें पार्षदोंके मध्य
 महादेवजी शोभित होतेहैं । राक्षसोंके चलये अब राक्ष शत्रु लगेथे पर इससे उनको कुछ व्यथा न हुई ॥ १२ ॥ अपने बाणोंसे ग्रहण किये, जैसे नदियोंकी धाराओंको महोदधि ग्रहण करता
 है ययसि श्रीरामचंद्रजीके अंगमें अतिघोर वह अब शत्रु लगेथे पर इससे उनको कुछ व्यथा न हुई ॥ १३ ॥ जैसे प्रकाशमान बहुतेसे वज्रोंने हिमालय पर्वतको
 पीडा नहीं होती । सर्व शरीरमें बाणोंके लगनेसे रुधिर बहनेसे श्रीरामचंद्र ऐसे शोभित हुए ॥ १४ ॥ जैसे सन्ध्याकालीन बादरोंके बीचमें होनेसे मूर्य भगवान् शोभित
 होतेहैं । रुधुनदनजीकी यह अवस्था देख देव, गन्धर्व और सिद्ध व परमपिण बड़े विपादित हुए ॥ १५ ॥ कारण कि, अकेले रामचंद्रजीको सहस्रों निगाचर
 शैलद्रुमिवधाराभिर्वर्षमाणामहाघनाः ॥ सर्वैः परिधृतो रामो राक्षसैः क्रूरदर्शनैः ॥ ११ ॥ तिथिष्विवमहादेवो वृतः पारिपदांगणैः ॥ तानिमुक्तानि
 शस्त्राणि यातुधानैः सरावतः ॥ १२ ॥ प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योवा निवसागरः ॥ सतैः प्रहरणैर्घोरैर्भग्नगात्रो न विव्यधे ॥ १३ ॥ रामः प्रदीर्घदु
 भिवर्जैरिव महाचलः ॥ सविद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रे पुराघवः ॥ १४ ॥ वधूवरामः संध्यात्रैर्दिवाकरइवावृतः ॥ विपेदुर्देवगंधर्वाः सिद्धाश्च परमप
 यः ॥ १५ ॥ एकं सहस्रैर्वहुभिस्तदा दृष्ट्वा समावृतम् ॥ ततो रामस्तु संकुद्धो मंडलीकृतकार्मुकः ॥ १६ ॥ ससर्जनि शितान्वाणाञ्छत शोथसहस्र
 शः ॥ दुरावारान्दुर्विपहान्कालपाशोपमात्रणैः ॥ १७ ॥ मुमोचलीलायां कंकपत्रान्कांचनभूषणान् ॥ तेशराः शत्रुसेन्युमुक्तारामेण लीलया ॥ १८ ॥
 आदूरक्षसांग्रान्पान्पाशाः कालकृताश्च ॥ गिन्वाराक्षसदेहांस्तांस्ते शराधिराभुताः ॥ १९ ॥ अंतरिक्षगतारेखुर्दोताग्निमतेजसः ॥ असंख्येया
 स्तुरामस्य सायकाश्चापमंडलात् ॥ २० ॥ विनिर्णयेतु रतीवो ग्रारक्षः प्राणापहारिणः ॥ तेर्धनुषि च्चजग्राणि चर्मणि कवचा निच ॥ २१ ॥

शयनं नदनी करं युद्ध नादु दायिनीकी शुण्डके ममान जंवाये भेकडो हजारो काट डाली ॥ २२ ॥ इनके अतिरिक्त सुवर्णके कवच धारण किय धाड रं-
 माग्दी दहावन व दवागमदित दायी बुडनवागमदित घोडे ॥ २३ ॥ इन मन्त्रको प्रत्यंचासे छूटे हुए श्रीरामचंद्रजीके बाणोंने छिन्न भिन्न किया, और पैदल
 मंनर करके नगजंके भइने पड़ेवाया ॥ २४ ॥ राजमगल, अथभाग जिनका महातीर्यदे तेसे नालीक, नाराच, और विकर्ण समूहसे कट कुट कर भयंकर
 कर अलग दुकावे लगे ॥ २५ ॥ शुक्कवनधनी जिस प्रकार अग्निको पाकर भली प्रकार धूम २ कर जलतीहै, वैसेही राक्षससेनाभी श्रीरामचंद्रजीके मर्मभेदी
 निहित हीकर मुग नान करनेको मनय नहीं होमकी ॥ २६ ॥ उस मेनाके कोई २ महाबलवान् शरवीर राक्षस महाकोपित होकर श्रीरामचंद्रजीके

नाहूनमदस्तामरणावृत्तुनकरिकरोपमान् ॥ चिच्छेदरामः समरेशतशोथमहस्रशः ॥ २२ ॥ हयान्कांचनसन्नाहाव्रथयुक्तान्ससारथीन् ॥ गर्जोद्ध-
 त्तगेहान्महयान्मादिनम्नदा ॥ २३ ॥ चिच्छिदुर्विभिदुश्चेवरागमाणागुणच्युताः ॥ पदातीन्समरेहन्वाअनयन्यमसादनम् ॥ २४ ॥ ततोनात्-
 नागचैस्त्रीङ्गाग्रेऽश्वक्रिर्मिभिः ॥ भीमयातंस्वचकुष्ठिछद्यमानानिशाचराः ॥ २५ ॥ तत्सेन्यंविचिवेद्याणेरदितंमर्मभेदिभिः ॥ नरामेणसुखं
 गृह्णन्ममिमाप्रिना ॥ २६ ॥ कंचिद्रीमवलाः शूराः प्रामाञ्जूलान्परश्वधान् ॥ चिक्षिपुः परमकुद्धारामायरजनीचराः ॥ २७ ॥ तेषांवाणे-
 नादुःशम्राग्यासायंरीयवान् ॥ जह्वाग्ममंग्रणांश्चिच्छेदचक्षिणेधरान् ॥ २८ ॥ तेछिन्नशिरसःपेतुश्छिन्नचर्मशरासनाः ॥ सुपर्णवातविक्षिप्तः
 न्यापादपायथा ॥ २९ ॥ अमगिष्टाश्चयनत्रविपण्णास्तेनिशाचराः ॥ खरमेवाभ्यधावंतशरणार्थशराहताः ॥ ३० ॥ तान्सर्वान्धनुरादायसमाश्व-
 चरगताः ॥ अभ्यगान्गुगंकुलःकुल्लुङ्कद्वानकः ॥ ३१ ॥ निवृत्तास्तपुनःसर्वेदूपाश्चयनिर्भयाः ॥ राममेवाभ्यधावंतसालतालशिलायुधाः ॥ ३२ ॥

राम, पतने और शल इत्यादि चलावे लगे ॥ २७ ॥ महाबाहु वीरवान् श्रीरामचंद्रजी अपने बाणोंसे राक्षसोंके चलाये हुए अत्र शशोंको रोक इनके प्राण
 करके उनके पगरुभी उड़ा देंगे हुए ॥ २८ ॥ गरुडजीके उड़नेके समय जो उनके पंखोंसे पवन निकलतीहै जिस प्रकारसे उससे वृक्षसमूह पृथ्वीपर गिर जाते हैं
 शशमगल छिन्नमग्न राक्षों पृथ्वीपर गिरने लगे उनका धनुष और डाल तलवारभी टूट याट गई ॥ २९ ॥ वचे वचाये राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे घायल
 बाराण प्यारुल्लों पलीनभावन गरुडी शरणमें गये ॥ ३० ॥ यह देगरुड दूषण महाकोपित होकर धनुष सँभाल भागे हुए राक्षसोंको धीर बंधात
 पोशित राखे ममान गंगरगरण भीगमचंद्रजीके मम्मग दीडा ॥ ३१ ॥ तब रणमें भागे हुए नियाचरण दूषणका आसरा पाय लौटकर शाल,

गिरी, पाय, मुद्र, और शूल इन सब आयुधोंको धारण कर श्रीरामचन्द्रजीके सामने धावे ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंने संग्राममें आतेही शूल, मुद्र, पाशादि अस्र भयोंकी रीतों भीगमचन्द्रजीके ऊपर की ॥ ३३ ॥ फिर वृक्षोंकी वर्षा और शिलाकी वृष्टि शरारंभ होनेपर तिस समय भयानक और घोर लोमहर्षण संग्राम होने लगा ॥ ३४ ॥ उग्रमें राक्षसगण भीगमचन्द्रजी पर अस्र शय्र चला रहे थे इधरसे श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंपर बाण वर्षा करते थे, यह देखकर राक्षसोंने फिर अस्र भयोंमें भीगमचन्द्रजीको पीड़ित किया ॥ ३५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि, सर्व दिशा विदिशा राक्षसोंसे भर गई हैं और हमभी उनके बाणोंसे ढक गये हैं ॥ ३६ ॥ यह देख भीगमचन्द्रजीने पडा गच्छकर भयंकर राक्षसगणोंके ऊपर परम देदीप्यमान गान्धर्वीय चलाया ॥ ३७ ॥ इस गान्धर्वीयके चलानेके पीछे श्रीरामचन्द्र

नूतनमुद्रदस्ताभ्याशरहस्तामहाचलाः ॥ सृजंतःशरवर्षाणिशस्त्रवर्षाणिसंयुगे ॥ ३३ ॥ द्रुमवर्षाणिमुंचंतःशिलावर्षाणिराक्षसाः ॥ तद्भूवाद्भुतंयुद्धं तु नुदंरामहर्षणम् ॥ ३४ ॥ रामस्यास्यमहाघोरं पुनस्तेषांचरक्षसाम् ॥ तेसमंतादभिक्षुद्राराघवंपुनरादयन् ॥ ३५ ॥ ततःसर्वोदिशोद्वाम्रदिश क्षममावृताः ॥ राक्षसैःसर्वतःप्राप्तैःशरवर्षाभिरावृतः ॥ ३६ ॥ सकृत्त्वभैरवंनादमह्यं परमभास्वरम् ॥ समयोजयद्गंधर्वराक्षसेषुमहाबलः ॥ ३७ ॥ ततःशरमहस्याणिनिययुध्वापमंडलात् ॥ सर्वोदिशोवाणेरापूयंतसमागतेः ॥ ३८ ॥ नाददानंशरान्वोरान्विमुंचंतंशरोत्तमान् ॥ विकर्पमाणंपश्य मानैर्भयुगपचक्रेर्भूशम् ॥ युगपत्पतितैश्चैवविकीर्णविषुवाभवत् ॥ ३९ ॥ शरांयकारमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् ॥ वभूवाचस्थितोरामःप्रक्षिपन्निवताञ्छरान् ॥ ४० ॥ युगपत्पत क्षमात्तमहद्यशः ॥ ४१ ॥ शरान्पतितैश्चैवविकीर्णविषुवाभवत् ॥ ४२ ॥ निहताःपतिताःक्षीणाश्छिन्नाभिन्नाविदारिताः ॥ तत्रतत्रस्मदृश्यंतेरा

जीके धनुषने हजार २ बाण निकलने लगे; उन निकलते हुए बाणोंसे समस्त दिशाएँ भर गई ॥ ३८ ॥ राक्षसगण इस समय यह नहीं देख सके कि, कब श्रीरामचन्द्रजी

भेठ और भयंकर गर ग्रहण करने कब छोड़ते और कब धनुषको आकर्षण करते हैं परन्तु केवल उनके बाणोंसे महा व्यथित होने लगे ॥ ३९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे अग्निकार उत्पन्न होकर दियाकर महित आकाश में ढलको ढक छेता हुआ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी बराबर शरधारा छोड़ते चले जाते थे ॥ ४० ॥ उस बाण धारासे शरीर २ गतसम महा गायल हुए कोई २ गिरे हुए कोई २ गिरे हुए किसीदि देते थे जैसे राक्षसोंसे मूल १ २ ३ ॥ अग्न्याग्निविषे धर्मका

पाँदे व अनेक ॥ भांतिके गहने ॥ ४३ ॥ अथ, हस्ती, रथ, चमर, व्यजन, छत्र, व नाना प्रकारकी ध्वजाओंसे ॥ ४४ ॥ व शूल पटादि शस्त्रोंसे जोकि रामचन्द्रजी के बाणोंसे कूट २ टूट गये थे यह पृथ्वी अति भयंकर होगई ॥ ४५ ॥ इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंको मारे हुए व पृथ्वीमें पड़े देख वचे वचाये राक्षसगण अतिशय कातर होकर शत्रुओंके जीतने वाले श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख जानेको समर्थ नहीं हुए ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामचन्द्रजी ० आदि ० आरण्यकांडे भाषाटीकायां पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥ महाबाहु दूषणने अपनी मेनाको श्रीरामचन्द्रजीसे मारी हुई देख भयंकर वेपवाले आक्रमण करनेके अयोग्य ॥ १ ॥ पांच हजार राक्षसोंको जो कि समरसे छोड़नाही नहीं चाहैये और महायोगवानथे उनको युद्ध करनेके लिये आज्ञा दी ॥ २ ॥ वह सब राक्षस समरमें जाय शूल, पटा, खड्ग, और वृक्षादिक व बाणोंकी द्वयेन्द्रियमुख्यैश्चर्यैर्भित्तनेकशः ॥ चामरव्यजने च्छत्रैर्ध्वजेर्नानाविधैरपि ॥ ४४ ॥ रामेणवाणाभिहतैर्विच्छिन्नेः शूलपट्टिशैः ॥ विच्छिन्नेः सम रंश्चर्मिस्तीर्णाधृद्रयंकरा ॥ ४५ ॥ तान्दृष्ट्वा निहतान्सर्वराक्षसाः परमातुराः ॥ नतत्रचलितुं शक्तारामं परंजयम् ॥ ४६ ॥ इत्यायं श्रीमद्रामचन्द्रजी ० आ ० अर ० पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥ दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं विलोक्य च ॥ संदिशमन्वावाहुर्भवेगान्दुरासदान् ॥ राक्षसान्पंचसाह स्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ १ ॥ ते शूलैः पट्टिशैः खड्गैः शिलावर्षैर्दुमैरपि ॥ २ ॥ शत्रवर्षैर्विच्छिन्नैर्वचपुस्तं समंततः ॥ तद्गुमाणां शिलानां च वपुःप्राण दंरमहत् ॥ ३ ॥ प्रतिजग्राह यमात्मा राघवस्तीक्ष्णसायकैः ॥ प्रतिगृह्य च तद्रूपं निमीलित इव र्पभः ॥ ४ ॥ रामः क्रोधं परलेभे वचा र्थं सर्वराक्षसाम् ॥ ततः क्रोधसमाविष्टः प्रदीप्त इव तेजसा ॥ ५ ॥ शरैर्भ्यक्तिरस्तेन्यं सर्वतः सह दूषणम् ॥ ततः सेनापतिः क्रुद्धो दूषणः शत्रु दूषणः ॥ ६ ॥ शरैश्च निःकल्पे स्तं राघवं समचारयत् ॥ ततो रामः सुसंकुद्धः क्षुरेणास्य महद्धनुः ॥ ७ ॥ विच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ हत्वा चाश्वाञ्च शरैस्तीक्ष्णैरघं चंद्रे णमारयैः ॥ ८ ॥ शिरो जह्नात् तद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि ॥ सच्छिन्नघन्या विरथो हताशो हतसारथिः ॥ ९ ॥

वर्षों लगातार श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर करने लगे, वह वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा पर्वतोंकी वर्षा फाणोंकी हरण करनेवाली थी ॥ ३ ॥ धर्मोत्तमा श्रीरामचंद्रजीने अपने तीखे बाणोंपरही उस वर्षाका ग्रहण किया और उसे ग्रहण करके नेत्र बंद कर लिये ॥ ४ ॥ फिर बड़ा क्रोध किया और सब राक्षसोंके संहार करनेका संकल्प किया उस समय क्रोध और तेजसे प्रकाशमान होतहुए श्रीरामचंद्रजीने ५ ॥ दूषण सहित सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा की । फिर शत्रुदूषण सेनापति दूषण को धित होकर ॥ ६ ॥ राघवी ममान बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको निवारण करने लगा । तब श्रीरामचंद्रजीने महाक्रोधकर क्रुद्धके समान तेज बाणोंसे दूषणका धनुष ॥ ७ ॥ काटकर चार बाणोंसे उसके रथमें जो घोड़े नथेये उनको मारडाला । अश्वोंको तीक्ष्णबाणोंसे वधकर अर्धचंद्र बाणसे उसके सारथीका ॥ ८ ॥ शिर काटडाला । और तीन

घाण राक्षस सरकी छातीमें मारे । तब दूषणका धनुषभी टूटा रथभी चूर्ण हुआ और वोडे व सारथीभी उसके मारे गये ॥ ९ ॥ तब उसने जिसके देवनेसे संनाटे हों, रुं सड़े हो जायें ऐसा पहाडके शृंग समान एक पारिघ ग्रहण किया वह सुवर्णके बन्धोंसे वैधा देवताओंकी सेनाको मर्दन करनेवाला ॥ १० ॥ लोहेकी कीलोंसे जडा शत्रुओंकी चरवी जिसमें लगी हुई वज्रके समान कठोर व शत्रुपुरके द्वारका विदारण करनेवाला ॥ ११ ॥ ऐसे महासर्पके समान उस पारिघको टे संघाममें क्रूरकर्मकारी दूषण राक्षस श्रीरामचंद्रजीकी ओर धाया ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजीने उस दौड़े आतेहुए दूषणके भूषणसहित दोनों कर काटडाले ॥ १३ ॥ हाथोंके कटे जानेपर उसका वह बृहदाकार पारिघ स्थानभट्ट होकर इन्द्रध्वजाकी समान समर्थ गिरा ॥ १४ ॥ हाथ कटजानेसे मुँहके बल दूषणभी इसभंति पृथ्वीमें

जग्राहगिरिशृंगभंपरिघंलोलमहर्षणम् ॥ वेष्टितंकांचनेःपट्टेद्वैसेन्याभिमर्दनम् ॥ १० ॥ आयसेःशंकुभिस्तीक्ष्णैःकीर्णपरवसोक्षितम् ॥ चत्राश
निसमस्पर्शपरगोपुरदारणम् ॥ ११ ॥ तंमहोरगसंकाशंमृग्यपरिघंरणे ॥ दूषणोभ्यपतद्रामंक्रूरकर्मनिशाचरः ॥ १२ ॥ तस्याभिपतमानस्य
दूषणस्यचराधवः ॥ द्वाभ्यांशराभ्यांचिच्छेदसहस्ताभरणोभुजौ ॥ १३ ॥ अष्टस्तस्यमहाकायःपपातरणमूर्धनि ॥ परिचश्छिन्नहस्तस्यशक्रध्वज
निहतंरणे ॥ साधुसाध्वितिकाकुत्स्थसर्वभूतान्यपूजयन् ॥ १४ ॥ कराभ्यांचविकीर्णाभ्यांपपातभुविदूषणः ॥ विपाणाभ्यांविशीर्णाभ्यांमनस्वीवमहागजः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वातंपतितंभूमौदूषणं
शवपाशिताः ॥ १७ ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथीचमहाबलः ॥ महाकपालोविपुलंशूलमुद्यम्यराक्षसः ॥ १८ ॥ स्थूलाक्षःपटिशृङ्खप्रमाथीचपरश्च
धम् ॥ दृष्ट्वापततस्तांस्तुराधवःसायकैःशितैः ॥ १९ ॥ तीक्ष्णाग्रैःप्रतिजग्राहसंप्राप्तानतिथीनिव ॥ महाकपालस्यशिरश्चिच्छेदरधुनंदनः ॥ २० ॥

गिरा जैसे दांत टूट जानेपर महामनस्वी गजराज पृथ्वीमें गिरताहै ॥ १५ ॥ दूषणको संघाममें मराहुआ और पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर सवही प्राणी साधु २ कहकर श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसा करनेलगे ॥ १६ ॥ इसीसमय उस सरके तीन सेनापति जो निशाचर सेनाके आगेही चलेथे परस्पर मिलकर मृत्युकी फाँसीसे बँधकर क्रोधमें भरकर श्रीरामचंद्रजीके सम्मुख धाये ॥ १७ ॥ इन तीनोंके नाम महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबलयाच प्रमाथी थे, इनमें महाकपाल विशाल शूल, उठाया ॥ १८ ॥ स्थूलाक्ष पटा लेकर, व प्रमाथी फारशा ग्रहण करके श्रीरामचन्द्रजीकी ओर चले, इन तीनोंके अपने ऊपर आपाहुआ देख श्रीरामचन्द्रजीने तीक्ष्णबाणोंसे ॥ १९ ॥ इनकी अस्त्रधानी की जैसे पशुपुत्र आगे व पी पीछे ॥ २० ॥

महाकाण्डका नो सुनंदनजीने गिर ही उडादिया ॥ २० ॥ व अगणित बाणोंसे प्रमाथीका माया, और स्थूलाक्षकी मोटी आत्माका पूरण करादया ॥
 ॥ २१ ॥ यह नीनों कटे हुये वृक्षोंकी नाई पृथ्वीमें गिर पड़े । इसके पीछे पांचहजार जो दूषणके अनुयायी राक्षसथे उन सबको अति क्रोधकर एक क्षणभरमें ॥
 ॥ २२ ॥ मंहार कर उन सबको भीदगरफकुनारने यमपुरको पठादिया, तब दूषण व उसके अनुयायी सैन्यको मारा गयाहुआ सुन ॥ २३ ॥ खरने क्रोधित होकर
 महाबलवान और हुमरे देनातियोंको इस प्रकारसे आक्रादी कि, सेनापति लोगो ! दूषण तोअपने अनुगामियों समेत मारागया ॥ २४ ॥ बस अबतुम सब राक्षस
 एन एकजो बड़ी भारी देनाकों माय टेकर विविध आकारके अन्न शन्न छोडकर मनुष्याध्यय रामचन्द्रको मारडालो ॥ २५ ॥ खर सेनापतियोंसे इस प्रकार कहकर
 अमर्ययेस्तुबाणोंवैः प्रममाथप्रमाथिनम् ॥ स्थूलाक्षस्याशिणीस्थूलपूरयामाससायकैः ॥ २१ ॥ सपपातहतोभूमौविटपीवमहाद्रुमः ॥ दूषण
 स्यानुगान्पंचमाहस्वान्दुपितः क्षणात् ॥ २२ ॥ हत्वातुपंचसाहसैन्यद्यमसादनम् ॥ दूषणंनिहतंश्रुत्वातस्यचेषपदानुगान् ॥ २३ ॥ व्यादिदे
 भस्वरः क्रुद्धः सेनाध्यक्षान्महाबलात् ॥ अयंविनिहतः संस्यंदूषणः सपदानुगः ॥ २४ ॥ महत्यासेनयासायंयुद्धारामंकुमानुपम् ॥ शस्त्रैर्नानावि
 धाकारैर्हैनध्वंमंचंगक्षमाः ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वाखरः क्रुद्धोराममंवाभिदुवै ॥ श्येनगामीपृथुमीवोयज्ञशश्विहंगमः ॥ २६ ॥ दुर्जयः करवीराक्षः
 पश्यः कालकां मुकः ॥ हेममालीमहामार्गसिर्पत्योरुधिराशनः ॥ २७ ॥ द्वादशेतेमहावीर्यावलाभ्यक्षाः ससेनिकाः ॥ राममेवाभ्यधावन्तविसृ
 ज्नः अंगेत्तमान् ॥ २८ ॥ ततः पावकः संक्रांशं हेंमवव्रविभृपिते ॥ जवानशेपतेजस्वीतस्यसैन्यस्यसायकैः ॥ २९ ॥ तेरुक्रमपुंखाविशिखाः सधूमा
 इरावकाः ॥ निजघ्नुस्तानिरशांसिचव्राडवमहाद्रुमान् ॥ ३० ॥ रक्षसांतुशंतंरामः शतेनैकेनकर्णिना ॥ सहस्रंतुसहस्रेणजवानरणमूर्धनि ॥ ३१ ॥

तैर्भिन्नयर्माभरणादिभिन्नभित्रशगसनाः ॥ निपंतुः शोणितादिग्धाधरण्यारंजनीचराः ॥ ३२ ॥
 त्रैपमे पर आपसी भीगमचन्द्रजीके मग्गुव दीडा । श्येनगामी, पृथुमीव, यज्ञशश्व, विहङ्गम ॥ २६ ॥ दुर्जय, परवीराक्ष, परुष, कालकांमुक, हेममाली, सर्पांस्य, महामाली,
 रविशगन ॥ २७ ॥ यह बारह महावीर सेनापति अपनी सेनाके साथ भेष्ट बाण बपोंतेहुए श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख धाये ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंको तेजस्वी
 भीगमचन्द्रजीने अपने ऊपर आगाहुआ दंगरूर हेंमवव्रविभृपित अश्रितुल्य बाणोंसे रारकी इस बची बचाई सेनापर प्रहार करना आरंभकिया ॥ २९ ॥ वज्रपडनेसे
 भिगमरार बड़े २ वृक्ष गिर जाते हैं धेंमही भीरामचन्द्रजीके सुवर्ण पंत वाले सधूम अधिके समान बाणोंसे राक्षसोंका संहार होनेलगा ॥ ३० ॥ श्रीरामचन्द्रजीने
 एक शत्रु बाण चलाकर एकशत्रु राक्षसोंका संहार चलाकर हजार राक्षसोंका प्राण लेलिया ॥ ३१ ॥ राक्षसगण रुधिरमें सनेहुए पृथ्वीमें गिरे

उनके कवच भूषण और धनुष छिन्नभिन्न और विदीर्ण होने ॥ ३२ ॥ यज्ञकी वेदीपर जिसप्रकार कुश विछे होते हैं वैसेही संग्रामकी समस्त पृथ्वी रुधिरसे सरा-
वाल खुले हुए राक्षसोंसे व्याप्त होरही थी ॥ ३३ ॥ सब राक्षसोंके मारेजानेसे वनभूमि उनके मांस व रुधिरकी कीचसे ढककर क्षणभरमेंही महाभयंकर नरक-
समान होगई ॥ ३४ ॥ मनुष्यशरीरधारी रामचन्द्रने इकलेही विना रथपर चढेचौदह हजार भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसोंको मारडाला ॥ ३५ ॥ सब नेना-
चीचमें महारथी खर, विशिरा और शत्रुओंके हनन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीकेवल यह तीव्रजन शेषरहे ॥ ३६ ॥ वचे वचाये राक्षस सयही लक्ष्मणजीके बडे-
श्रीरामचन्द्रजीसे मारेगये, यह समस्त राक्षस अतिशय बलवान्, भयंकर, व बडे दुःखसे सहनेके योग्यथे ॥ ३७ ॥ इसप्रकार महासंग्राममें समस्त भयंकर वल्गु-
तैर्मुक्तकेशैः समरेपतितैः शोणितोक्षितैः ॥ विस्तीर्णविषुधाकृत्स्नामहावेदिः कुशैरिव ॥ ३३ ॥ तत्क्षणे तु महाधोरं वनं निहत राक्षसम् ॥ वधूवनिरद-
प्रख्यं मांसशोणितकर्दमम् ॥ ३४ ॥ चतुर्दशसहस्राणि राक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ हतान्येके नरामेणमानुषेण पदातिना ॥ ३५ ॥ तस्यैतेन्यस्यस-
स्यखरः शेषो महारथः ॥ राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्चरिषु सूदनः ॥ ३६ ॥ शेषाहता महावीर्यराक्षसा रणमूर्धनि ॥ वीरादुर्विपहाः सर्वैलक्ष्मणस्य-
ग्रजेन ते ॥ ३७ ॥ ततस्तु तद्भीमबलं महाहवे समीक्ष्य धर्मेण हतं वलीयसा ॥ रथेन रामं महातावरस्ततः समाससादेन्द्रइवोद्यताशनिः ॥ ३८ ॥ इत्या-
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पट्टिशः सर्गः ॥ २६ ॥ खरं तुरामाभिमुखं प्रयातं ताहिनीपतिः ॥ राक्षसस्त्रिशिरानामसनि-
पत्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ मां नियोजय विक्रांतं त्वं निवर्तस्व साहसात् ॥ पथ्य रामं महाबाहुं संगुणे विनिपातितम् ॥ २ ॥ प्रतिजानामि ते सत्यमायुधं चा-
मालभे ॥ यथारामं वधिष्यामि वधाहं सर्वरक्षसाम् ॥ ३ ॥ अहं वास्यरणे मृत्युरे पवासमरे मम ॥ विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तं प्राश्रिको भव ॥ ४ ॥

राक्षसोंको श्रीरामचन्द्रजीसे माराहुआ देखकर खर बडे भारी रथपर सवार होकर वज्र उठाये हुये इन्द्रके समान रामचन्द्रजीके मारेको चला ॥ ३८ ॥ इत्या-
श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भापाटीकायां पट्टविंशः सर्गः ॥ २६ ॥ इसके पीछे खर जब श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख थाया, तब सेनापति त्रि-
राक्षस उसके समीप आकर कहने लगा ॥ १ ॥ मैं विक्रमवान् हूँ आप यह साहस त्याग करके मुझको रामचन्द्रको मार डालनेके छिये नियत करके समरमें मर-
रामचन्द्रको मुझकरके माराहुआही देखिये ॥ २ ॥ मैं आपके समीप इधियार छूकर सत्यही प्रतिज्ञा करताहूँ कि, समस्त राक्षसोंके मारने योग्य रामचन्द्रको भ-
निरागरी मार डालूंगा ॥ ३ ॥ या तो मेरापनेमें ही मरूंगा, अथवा इस रामचन्द्रको छिये नष्टकरके उत्तराष्ट्रकी ओर बकर मो- ॥ ४ ॥

॥ ४१ ॥

जिमके देसनमे रोम खेहे होजातेथे ॥ १० ॥ अनन्तर क्रोध न करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी त्रिशिरा करके तीन बाणोंके द्वारा वाडित होकर जो उनके माथेमें लगे ॥ उनके लगनमें रोपयुक्तहो गर्वित वचन कहने लगे ॥ ११ ॥ कि, अरे ! विक्रमशूर निशाचर ! बस तेरा इतनाही बल है कि, तेरे चलाये हुए बहुत सारे बाण हम माथेमें फूलोंकी ममान लगे मानो हमारी परीक्षा ली, हम तो जानते थे कि, तुममें कुछ विक्रम होगा; सो कुछभी नहीं ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्यहै ! अब तू हम धनुषके रोदेमें छूटे हुए बाणोंके समूहको ग्रहण कर । यह कह बड़ा क्रोधकर विषघर सपोंकी समान ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने चौदह बाण त्रिशिरा हृदयमें मारे और चार घोड़ोंको सन्नतपर्व बाणोंसे ॥ १४ ॥ महातेजवान् श्रीरामचन्द्रजीने मार डाला और आठ बाणोंसे रथपरही उसके सारथीको म

गिराया ॥ १५ ॥ व एक बाणसे अति ऊँची उसकी ध्वजाको काटडाला जब सारथी और घोड़े उसके मारे गये तब त्रिशिरा रथसे कूदनेको हुआ ॥ १६
तो उसी बीचमें महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधसे अनेक बाण उसके हृदयमें मारे जिनके लगनेसे वह फिर शस्त्र ग्रहण करनेको समर्थ नहीं हुआ ॥ १७
फिर अग्नेयात्मा श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधमें भरकर वेगवान् तीन बाणोंकी सहायतासे उसके तीनों शिर काट डाले, तिसके पीछे धुर्वेके समान रुधिर गिर
श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे पीड़ित त्रिशिरा ॥ १८ ॥ समर्थ गिरा, जिसके शिर पहलेही गिर गयेथे । त्रिशिराके मारे जानेके पीछे शेष राक्षस भागकर लव
शरणमें गये ॥ १९ ॥ और वहाँभी खड़े न होकर सिंह करके भय पाये हुए मृगयूथकी समान भागेही चले गये तिनको भागे हुए देख खर रोपमें भर तिनको लौ :

रामश्चिच्छेदबाणेनध्वजं चास्यसमुच्छिन्नम् ॥ ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम् ॥ १६ ॥ चिच्छेदुरामस्तंवाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः ॥ साः
कैश्चाप्रमेयात्मासामर्पितस्य राक्षसः ॥ १७ ॥ शिरांस्यपातयन्त्रीणि वेगवद्विभिः शरैः ॥ सधूमशोणितोद्गारा रामबाणाभिपीडितः ॥ १८ ॥
न्यपतत्पतितैः पूर्वसमरस्थो निशाचरः ॥ हतशेषास्ततो भग्नाराक्षसाः खरसंश्रयाः ॥ १९ ॥ द्रवंति स्म नतिष्ठन्ति व्याघ्रस्तामृगा इव ॥ तान् खरः
द्रवतो दृष्ट्वा निवर्त्यरुपितस्त्वन ॥ राममेवाभिदुद्रावराहुश्चंद्रमसंश्रया ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्यकण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥
निहतं दूषणं द्वारणे त्रिशिरसा सह ॥ खरस्याप्यभवद्वासोद्वारामस्य विक्रमम् ॥ १ ॥ सहद्वाराक्षसं सैन्यमविप्लवं महाबलम् ॥ हतमेकेन रामेण दूषणः
स्त्रिशिरा अपि ॥ २ ॥ तद्वलं हतभूयिष्ठं विमनाः प्रेक्ष्य राक्षसः ॥ आससाद खरो रामं नमुचिर्वासं वयथा ॥ ३ ॥ विह्वलवच्चार्पणं नाराचा व्रक्तभोजनान् ।
खरश्चिक्षेप रामाय कुद्धानां शीविपानिव ॥ ४ ॥ ज्यां विधुन्वन्मुवदुशः शिक्षया ह्याग्निदर्शयन् ॥ चचार समरमार्गं ज्शरैरथगतः खरः ॥ ५ ॥

शीघ्रतासे श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दौड़ा जैसे राहु चंद्रमाकी ओर दौड़ता है ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकण्डे भाषाटीकायां सप्तविंशः सर्गः ॥ २७
दूषण और त्रिशिरा राक्षसको मरा हुआ देख संग्राममें श्रीरामचंद्रजीकी शूरता निहार खरके मनमें भी भयका संचार हुआ ॥ १ ॥ खर विचार करने लगा कि दु
और त्रिशिराको, सहनेके अयोग्य पराक्रमवान् महाबलवान् राक्षसी सेनाके सहित अकेले रामचंद्रने संग्राममें मार डाला ॥ २ ॥ ऐसा विचार करता हुआ वह रा
खर उदास होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर दौड़ा, जैसे नमुचि दैत्य इन्द्रके ऊपर धाया था ॥ ३ ॥ और बड़े जोरसे धनुष खंचकर भीरामचंद्रजीके ऊपर, क्रोशित संपंक
समान रुपि पान करनेवाले बाण छोड़े ॥ ४ ॥ फिर वह प्रत्यंचाको चारोंपार टेंकार देता, अपनी निशाना और अग्रोको विज्याता हुआ अनेक भौतिके बाण

जेने २. मंगाननूमिने गयर घुमनेउगा ॥ ५ ॥ और सब दिया विदग्गाआका उस महारथा खरन बाणात दूर पिया त पिया ॥ ६ ॥ जे मेवमंडल वृष्टि
 दंग बरा भारी पनुद हाथमें लिया ॥ ६ ॥ व अधिके अंगारोंकी समान सहन करनेके अयोग्य सायक समूहसे आकाशको पूर्ण कर दिया जैसे मेवमंडल वृष्टि
 फने ॥ ७ ॥ आकाश गर और श्रीरामचंद्रजीने छूटे हुए बाणोंसे अवकाशराहित होगया अर्थात् पृथ्वी आकाशके बीच २ में सबही जगह
 यानही बान भरे ॥ ८ ॥ तब परसर एक दूसरेकी मार डालनेकी इच्छासे छोडे हुए बाणोंके जाल करके आकाशके छा जा से सूर्य भगवान्भी छिप गये ॥ ९ ॥
 हमें किंउ महाबल महागजके त्रिम प्रकार अंकुश मारताहै वैसेही खर तीसे नालीक नाराच और विकीर्ण अत्र शत्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीको घायल करने लगा ॥ १० ॥
 इस समय मत्सरी बाजी, गयमें धड़े धनुषबागी खरको राक्षस पागभारी यमराजकी समान देखने लगे ॥ ११ ॥ उस काल खरने अपनी समस्त सेनाके विनाश
 ममयां श्रद्धिभोगोंः प्रदिशश्चमहास्थः ॥ पूरयामासतंदद्वारा मोपि सुमहद्वनुः ॥ १२ ॥ ससायके दुर्धविपदे विस्फुल्लिगेरिवाग्निभिः ॥ नभश्चकाराविवरपर्जन्य
 दायृष्टिभिः ॥ १३ ॥ तद्वृक्षशिनैर्बाणैः खरगमविसर्जितैः ॥ पर्याकाशमनाकाशं सर्वतः शरसंकुलम् ॥ १४ ॥ शरजालाघृतः सूर्यो न तदा स्म प्रकाशते ॥ अन्यो
 न्ययगमं रं भादुभयोः मंत्रयुध्यतोः ॥ १५ ॥ ततो नालीकनाराचे स्तीणाग्नेश्च विकीर्णभिः ॥ आजवानरणरामतोत्रैरिव मद्नाद्विपम् ॥ १६ ॥ तं रथस्थं धनुष्पा
 णिगममं पर्यवस्थितम् ॥ दृष्ट्युः सर्वभूतानि पाशहस्तमिवातकम् ॥ १७ ॥ हतारं सर्वसैन्यस्य पोरुपयं स्थितम् ॥ परिश्रान्तं महासत्त्वं मेने रामं खरस्त
 ता ॥ १८ ॥ तामिदमिव विकीर्णमिदं विकीर्णतामिनम् ॥ इद्वानोद्विजते गमः सिद्धश्चुद्रमृगं यथा ॥ १९ ॥ ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महासत्त्वं मेने रामं खरस्त
 भनं मयं गदयामकम् ॥ २० ॥ ततोऽस्य शरं चापं मुष्टिं देशे महात्मनः ॥ खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन्हस्तलावचम् ॥ २१ ॥ सपुनस्त्वपरान् सप्तशराना
 मागममं ॥ निजचान्गं कुद्रः शक्राशनिमुमप्रभान् ॥ २२ ॥ ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वा महानादनं नादसमरेखरः ॥ २३ ॥
 कानंगांशं पुरुषार्थं शिकं द्रुप धैर्यवान् महाबली रामचन्द्रजीको रण करनेसे थके समझा ॥ २४ ॥ और सिंहकी समान विक्रम दिखाता हुआ सिंहकी
 गमान हार उधर घुमने लगा । सिंह जिस प्रकार मृगके छीनाको देतकर नहीं डरता वैसेही श्रीरामचन्द्रजी खरको देख कुछभी नहीं घबड़ाये ॥ २५ ॥
 अननर गर मुरे ममान पुगियाली पद्मारथर चडकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट पहुँचा, जिस प्रकार आगके धोरे पतंग पहुँचतेहैं ॥ २६ ॥ तिसके पीछे महात्मा
 भीगमचन्द्रजीको मरने अपने हाथोंकी गुरली दिखाई और रामचन्द्रजीका बाण चढाहुआ धनुष मुझीके धोरेसे काटडाला ॥ २७ ॥ फिर कोधमें भरकर इन्द्रके
 बरही गुन्य भगवाणाली तीगं मात बाण ग्रहण करके श्रीरामचन्द्रजीके मर्मस्थानमें मारे ॥ २८ ॥ और फिर सैकड़ों हजारों बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको पीडितकर

फ्रीडा) खाकर मर जाती है ॥ ५ ॥ रे राक्षस ! दंडकारण्यवासी धर्माचरण करनेवाले महातेजवान् तपस्वियोंको मारकर तुझको कैसा बुरा फल प्राप्त होगा सो नहीं जान । ॥ ६ ॥ अथवा जो झुरस्वभाववाले जन चिरकाल पापकर्म करके लोकोंसे निन्दा पानेके पात्र हो जाते हैं, वह जन ऐश्वर्य पाकरभी जड़ गले हुए वृक्षके समान चरित्र नोतक नहीं रहसके अर्थात् गिर पड़ते हैं ॥ ७ ॥ वृक्ष जिस प्रकार समय पाय कर फूलता है; वैसेही समयके आजाने पर पाप कर्मका भयावना फल निश्चयही प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ हे निशाचर ! जिस प्रकार विष मिला हुआ अन्न खानेसे शीघ्रही मृत्यु होती है, वैसेही पाप कर्म करनेका फल थोड़ेही समयमें फलजाता है ॥ ९ ॥ रे राक्षस ! भयानक पाप कर्म करनेवाले और लोकोंका बुरा चाहनेवाले दुष्टोंको वाणोंसे मारनेकेही लिये ऋषिलोगोंने मुझे राजाकर यहां पठाया है ॥ १० ॥ ॥ ॥

वसतोदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ किंनुहत्वामहाभागान्फलप्राप्त्यसिराक्षस ॥ ६ ॥ नचिरंपापकर्मणःक्षुरालोकजुगुप्सिताः ॥ ऐश्वर्यप्राप्य तिष्ठन्तिशीर्णमूलाश्चद्रुमाः ॥ ७ ॥ अवश्यंलभतेकर्ताफलंपापस्यकर्मणः ॥ दोरंपर्यागतेकालेद्रुमःपुष्पमिवार्तवम् ॥ ८ ॥ नचिरात्राप्यतेलोकैकपापानांकर्मणांफलम् ॥ सविपाणांमिवाब्रानांभुक्तानक्षिणदाचर ॥ ९ ॥ पापमाचरतांधोरलोकस्याप्रियमिच्छताम् ॥ अहमासादितोराज्ञाप्राणान्दुर्तुनि शाचर ॥ १० ॥ अद्यभित्त्वामयामुक्ताःशराःकांचनभूषणाः ॥ विदार्यापिपतिप्यतिवल्मीकमिवपन्नगाः ॥ ११ ॥ येत्वयादंडकारण्येभक्षितायमर्भचा प्रहरस्वयथाकामंकुरयन्कुलाधम ॥ अद्यतेपातयिष्यामिशिरस्तालफलंयथा ॥ १२ ॥ अद्यत्वांनिहतंवाणेःपश्यंतुपरमर्षयः ॥ निरस्यस्थंविमानस्यथेत्यवानिहताःपुरा ॥ १३ ॥ प्रहसनक्रोधमृच्छितः ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणकुद्धःसंरक्तलोचनः ॥ प्रत्युवाचततोरांमं जितप्रकार बमईको फोडकर पृथ्वीपर निकल आता है, वैसेही इस समय हमारे शरासनसे छूटहुए वाण तेरे शरीरको चीर फाडकर निकल आवेंगे ॥ ११ ॥ पहले मैं तुझ करके मारे गये हैं, आज वह विमानमें बैठकर तुझको हमारे वाणसे मरा और नरकमें जाना हुआ देखें ॥ १२ ॥ रे नीच कुलमें उत्पन्न हुए ! तु भली भाँतिसे यत्न करके हमारे ऊपर प्रहार कर, किन्तु आज हम निष्पयही तालफलके समान तेरा शिर काटकर गिरा देंगे ॥ १३ ॥ जब भीरुरागचन्द्रजीने ऐसा कहा तब क्रोधसे चग होकर वरके दोनों नेत्र छाल होजाते और क्लेशके मारे, पाप प्रतिपत्ति और मरने के भाव उत्पन्न हो जाते ॥ १४ ॥

जिसप्रकार बमईको फोडकर पृथ्वीपर निकल आता है, वैसेही इस समय हमारे शरासनसे छूटहुए वाण तेरे शरीरको चीर फाडकर निकल आवेंगे ॥ ११ ॥ पहले मैं तुझ करके मारे गये हैं, आज वह विमानमें बैठकर तुझको हमारे वाणसे मरा और नरकमें जाना हुआ देखें ॥ १२ ॥ रे नीच कुलमें उत्पन्न हुए ! तु भली भाँतिसे यत्न करके हमारे ऊपर प्रहार कर, किन्तु आज हम निष्पयही तालफलके समान तेरा शिर काटकर गिरा देंगे ॥ १३ ॥ जब भीरुरागचन्द्रजीने ऐसा कहा तब क्रोधसे चग होकर वरके दोनों नेत्र छाल होजाते और क्लेशके मारे, पाप प्रतिपत्ति और मरने के भाव उत्पन्न हो जाते ॥ १४ ॥

समयमें साधारण राक्षसोंको मार वास्तवमें प्रशंसित न होनेपर भी तुम आपही किस प्रकारसे अपनी प्रशंसा करतेहो ॥ १६ ॥ बलवान् पराक्रमशाली नरगण नेजके मारे गर्वित होकर किसी समयभी अपनी प्रशंसा नहीं किया करते ॥ १७ ॥ जिनका चित्त शुद्ध नहींहै, ओछा स्वभावहै ऐसे क्षत्रियोंमें अथम लोगही तुम्हारी समान निरर्थक गर्व प्रगट किया करते हैं ॥ १८ ॥ मृत्युसमयके निकट आजानेपर कौन धीर अपने वंशका परिचय देकर प्रशंसाके अयोग्य विषयमें अपनी प्रशंसा करताहै ॥ १९ ॥ जिन प्रकार आग अपने वापसे सुवर्णकी समान पीतलकी अधमताई प्रगट करतीहै वैसीही तुमने जो अपनी प्रशंसा की इससे तुम्हारा ओछापनही प्रगट हुआ ॥ २० ॥ तुम क्या गदा धारण किये हुए समयमें टिके देखकर विविध धातुओंके आकार धराधर पर्वतकी समान हयको अकम्पनीय नहीं समझतेहो ? ॥ २१ ॥ हम

विकांतावलंबंतोवायेभवंतिनरपंभाः ॥ कथयंतिनतेर्किंचित्तेजसाचातिगर्विताः ॥ १७ ॥ प्राकृतास्त्वकृतात्मानोलोकेक्षत्रियपांसनाः ॥ निरर्थकं वि-
कार्यंतेतथारामविकल्पसे ॥ १८ ॥ कुलं व्यपदिशन्धीरः समरेकोभिधास्यति ॥ मृत्युकालेतुसंप्राप्तेस्वयमप्रस्तुवेस्तवम् ॥ १९ ॥ सर्वथातुल्युत्तंते
कार्यनेनविदर्शितम् ॥ सुवर्णप्रतिरूपेणतप्तेनेवकुशाग्निना ॥ २० ॥ नतुमामिहतिष्ठंतं पश्यसित्वंगदाधरम् ॥ धराधरमिवाकंप्यंवर्तं धातुभिश्चि-
तम् ॥ २१ ॥ पर्याप्तोहंगदापाणिहंतुं ग्राणाव्रणेत्तव ॥ त्रयाणामपिलोकानां पाशहस्तइवांतकः ॥ २२ ॥ कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वदयामिन त्वहम् ॥
अस्तं प्राप्नोति स वितायुद्धविघ्नस्ततो भवेत् ॥ २३ ॥ चतुर्दशसहस्राणि राक्षसां हंतानिति ॥ त्वद्विनाशात्करोम्यद्यतेपामश्रुप्रमार्जनम् ॥ २४ ॥
इत्युक्त्वा परमकुद्धः स गदां परमांगदाम् ॥ खराश्चि क्षेपरा मायप्रदीप्ता मशानियथा ॥ २५ ॥ खराहु प्रमुक्तासाप्रदीप्ता महती गदा ॥ भरम वृक्षांश्च गुल्मांश्च
कृत्वा गातत्समीपतः ॥ २६ ॥ तामापतंतो महतीं मृत्युपाशोपमांगदाम् ॥ अंतरिक्षगतां रामश्चिच्छेदवृद्धाशरैः ॥ २७ ॥

लीलासेही गदा हाथमें लेकर समयमें पाशधारी यमराजकी समान तुम्हाराही नहीं बरन्त्र त्रिलोकीके सबही प्राणियोंका संहार कर सकतेहैं ॥ २२ ॥ हमको तुमसे औरभी कुछ कहनाथा, परन्तु उसको अब कुछ नहीं कहेंगे क्योंकि सूर्य अस्त होनेपर आगयेहैं सो विशेषदेर लगानेसे युद्धमें विघ्न हो जायगा ॥ २३ ॥ तुमने जो १४०० चीदह हजार राक्षस मार डालेहैं सो अब तुझको मारकर उनकी स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे ॥ २४ ॥ यह कहकर खरने महाक्रोधितहो अतिश्रेष्ठ सुवर्णके चंद पैरी हुई गदा जो उसके हाथमें थी वह देदीप्यमान इन्द्रके वज्रकी समान उसने रामचन्द्रजीके ऊपर चलाई ॥ २५ ॥ यह प्रज्वलित बड़ी गदा उसकी भुजामें छूट कर अगल धगलके वृक्षलतादिकोंको जलातीहुई श्रीरामचन्द्रजीके समीप आनेलगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने बाण जाल चलाकर साक्षात् मृत्युकें फंदकी समान

निकट आती हुई, उस वदी गदाके आकाशमेंही खंड २ कर डाले ॥ २७ ॥ अतीव हिंसा करनेके स्वभाव वाली सांषिनी जिसप्रकार मंत्र और औषधिप्रभावमें जाती है वैसेही यह गदा श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे टुकड़े २ हो पृथ्वीमें गिरपड़ी ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकंडे भाषाटीकायामेकोनविंशः सर्गः ॥ २९ ॥
 धंभवत्सल श्रीरामचन्द्रजी अपने बाणोंसे उस गदाको काटकर मुसकाय क्रोधमें भर खरसे कहनेलगे ॥ १ ॥ रे राक्षसाधम ! वस तुमने इतनाही अपना सब दंड दिराया तुम हम करके हीन बल होकर वृथा कर्ष्यो गर्जना करतेहो ॥ २ ॥ तुम केवल निरर्थक चकवाद करनेमें समयहो । तुम्हारी गदाने हमारे बाणोंसे टुकड़े २ होकर पृथ्वीमें गिरकर तुम्हारे विश्वासको नष्ट किया ॥ ३ ॥ और तुमने जो कहा था कि मरे हुए राक्षसोंके स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे सो तुम्हारी यह बातभी मिट्याहुई ॥ ४ ॥
 साविशीर्णाशरैर्भिन्नापपातधरणीतले ॥ गदामंत्रापधिवलैर्व्यालीवविनिपातिता ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अरण्यकंड एकोनविंशः सर्गः ॥ २९ ॥ भित्वातुतांगदांवाणैराचवोधमवत्सलः ॥ समयमानइदंवाक्यंसंख्यमिदमव्रवीत् ॥ १ ॥ एतत्तेवलसर्वस्वंदर्शितंराक्षसाधम ॥ २ ॥
 क्तिहीनतरोमत्तौवृथात्वसुपगर्जसि ॥ २ ॥ एषावाणविनिर्भिन्नागदाभूमितलंगता ॥ अभियानप्रगल्भस्यतवप्रत्ययवातिनी ॥ ३ ॥ यत्त्वयोक्तं विनष्टानामिदमधुप्रमार्जनम् ॥ राक्षसानां करोमीतिमिथ्यातदपितेवचः ॥ ४ ॥ नीचस्यशुश्रूषीलस्यमिथ्यावृत्तस्यग्नसः ॥ प्राणानपहर्हिष्यामि गरुत्मानमृतयथा ॥ ५ ॥ अद्यतेभिन्नकंठस्यफेनबुद्बुदप्रपितम् ॥ विदारितस्यमद्भागैर्महीपास्यतिशोणितम् ॥ ६ ॥ पांसुरुपितसर्वांगः त्वस्तन्य स्तभुजद्वयः ॥ स्वप्स्यसेगांसमाश्लिष्यदुर्लभांप्रमदामिव ॥ ७ ॥ प्रवृद्धनिद्रेशयितेतत्त्वयिराक्षसपांसने ॥ भविष्यतिशरण्यानां शरण्यादंडकाइमे ॥ ८ ॥
 जनस्थानेह तस्थानेतवराक्षसमच्छरेः ॥ निर्भयाविचारिष्यतिसर्वतोमुनयोवने ॥ ९ ॥ अद्यविप्रसारिष्यतिराक्षस्योदत्तवांधवाः ॥ वाष्पादं वदनादीनाभयादन्यभयावहाः ॥ १० ॥ अद्यशोकरसन्नास्ताभविष्यंतिनिरर्थिकाः ॥ अनुरूपकुलाः पत्न्योयासां त्वंपतिरीदृशः ॥ ११ ॥
 और गलडजीने जिसप्रकार अमृत हरण कियाथा, इस समय हमभी वैसेही नीच ओछे स्वभाववाले झंझी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम्हारे प्राण हरण करेंगे ॥ ५ ॥ आहं हमारे बाणों करके विदारित होनेसे जब तुम्हारा शिर कट जायगा, तब पृथ्वी तुम्हारे गलेका झाग सहित रुधिर पान करेगी ॥ ६ ॥ आज तुम शिथिलहो गिरेहु दोनों हाथोंसे सर्वांगमें रुधिर लगाये हुए दुर्लभ स्त्रीके समान पृथ्वीको चिपटाकर शयन करोगे ॥ ७ ॥ रे राक्षसकुलके नारा करनेवाले ! यह दंडकपन सब डोरोका आश्रय स्वरूप क्षपिणीका आश्रम हो जायगा ॥ ८ ॥ रे राक्षस ! मेरे बाणमधुकरके जनस्थान राक्षसमधुन्य होनेसे मुनिगण निर्भय होकर तम प्रकारसे पनमें होकर घुमेंगे ॥ ९ ॥ भयंकारी मय राक्षसिष्ये षन्तु बान्धवोंके पारेलजनेमें कलत्र फलती हुई हमारे भयने आण जनस्थानमें आकर फलती रहे ॥ १० ॥

हो गो चंद गुह्यादी ममान वंगकी शिष्ये आज शोकरसके यर्मको जानकर हीनवीय हो जायँगी ॥ ११ ॥ रे निर्लज्ज ! शुद्रात्मा ! ब्राह्मणकंटक ! मुनिगण तुमसे शंका क-
 अग्निमें आहुति दिया करते हैं सो आजमें वह भय जाता रहेगा ॥ १२ ॥ जव रघुकुमार श्रीरामचन्द्रजीने महाक्रोधके बराहकेर इस प्रकार कहा तब निशाचर ग-
 क्रोभपुच्छों फिर चड़े ऊंचे स्वर्गमें रामचन्द्रजीको दुर्वास्य कहताहुआ बोला ॥ १३ ॥ कि तुम निश्चयही गर्वितहो और भयहोनेपरभी भय नहीं करते, इन्-
 मरान मृग्युक्तें बग होकर क्या कहने लायक क्या न कहने लायकहै, उसको नहीं समझ सकते ॥ १४ ॥ जो पुरुष कि कालकी फ़ाँसीमें बँध जाते हैं, उनकी अ-
 कल्यादि छः इन्द्रियोंकी वृत्ति जाती रहनेके कारण उनको कार्याकार्यका ज्ञान नहीं रहता ॥ १५ ॥ निशाचर खरने श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहक-
 भुगुदी टेंदीकर निकटही पहुँच बड़ा एक गालका वृक्ष देता ॥ १६ ॥ उस बड़े भारी गालके पेड़को देखकर युद्धमें उसकोही अपना असुरूप बनानेके लिये ख-
 नशंभलीलशुद्धात्मविलयब्राह्मणकंटक ॥ त्यक्तेशक्तिरेग्रीमुनिभिः पात्यते हविः ॥ १७ ॥ तमेवमभिसंख्यं धुवाणं राघवं वनं ॥ खरो निर्भत्सया मा
 मंगे पात्सरत्नस्वनः ॥ १८ ॥ इदं खल्वलिप्तोऽसि भयं प्यपि च निर्भयः ॥ वाच्यावाच्यं ततो हित्वं मृत्योर्वैश्वं न बुध्यसे ॥ १९ ॥ कालपाशपरिक्षि
 ता भयंति पुरुषादियं ॥ कार्याकार्यं न जानंति ते निरस्तपडिंद्रियाः ॥ २० ॥ एवमुक्त्वा ततो रामं संख्यं धुक्कुटिततः ॥ सददर्शं महासालमविदूरे नि
 शानरः ॥ २१ ॥ रणे प्रहरणस्यार्थं सर्वतोऽद्य वलोकयन् ॥ सतमुत्पाटयामास सदृशं नच्छदः ॥ २२ ॥ तं समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां विनदित्वा महा
 नदः ॥ गमयुक्षि च निषेधतस्तच्च मिति चाब्रवीत् ॥ २३ ॥ तमापतंतं वाणो वै शिश्त्वारामः प्रतापवान् ॥ रोपमाहारयत्तीव्रं निहतुं स मेखरम् ॥ २४ ॥
 जानसंदग्धं न तो गमोरोपरकृतिलोचनः ॥ निर्दिभेदसहयोगेन वाणानां संखरम् ॥ २५ ॥ तस्य वाणांतरादुक्तं बहु सुखावफेनिलम् ॥ गिरेः प्रवहण
 स्यैव थागणानपरिययः ॥ २६ ॥ विकलः सकृतो वाणोः खरो रामेण संयुगे ॥ मत्तोरुधिरगंधेन तमेवाभ्यद्रवद्बहुतम् ॥ २७ ॥
 निष्पत्तिचाकर लगको उग्राड लिया ॥ २८ ॥ और घोर गंभीर शब्द करके दोनों भुजाओंमें इस वृक्षको उठा 'लो तुम मारे गये' यह कहकर वह वृक्ष श्रीरामचंद्रजी-
 प्रपर पलाया ॥ २९ ॥ प्रतापवान् भीरुचंद्रजीने अपने ऊपर आतेहुए इस गालके वृक्षको अनेक वाणोंसे काट डालकर युद्धमें खरको मार डालनेके लिये म-
 रंग किया ॥ ३० ॥ महाक्रोध करनेके कारण श्रीरामचंद्रजीके नयन लाल र हो आये, शरीरसे पसीना निकलने लगा, उन्होंने हजार वाणोंसे खरके अंगको छिद्र
 भिन्न करवाया ॥ ३१ ॥ पर्वतके दरानेमें जिन प्रकार पानीकी धारा निकलती रहती है, वैसेही खरकी देहमें जो वाण लगनेके कारण छिद्र होगयेथे, उनसे रू-
 गिरने लगा ॥ ३२ ॥ गर भीरामचंद्रजीके वाणोंमें घ्याकुल हो और रुधिर गन्धसे मतवाला होकर श्रीरामचंद्रजीके सामने बहुत शोचवासे धाया ॥ ३३ ॥

यह रहितसे हुवाहुआ और अतिशय क्रोधाविष्ट होकर इसप्रकारसे दीडा कि कृतास्त्र श्रीरामचंद्रजी शीघ्रतासे दो तीन पग पीछेको हटगये ॥ २३ ॥ इसके पीछे श्रीराम चंद्रजीने खरके मारडालनेके लिये दूसरे ब्रह्मदंडकी समान अग्निसमान बाण ग्रहण किया ॥ २४ ॥ भीमान् देवराज इन्द्रजीने यह बाण श्रीरामचंद्रजीको अगस्त्यद्वारा दियाथा धर्मत्मा श्रीरामचंद्रजीने वही बाण धनुषपर चढाकर खरके ऊपर छोडा ॥ २५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने धनुषको खंचकर वह महाबाण छोडा, तब वह बाण वज्रके समान शब्द करताहुआ खरकी छातीमें लगा ॥ २६ ॥ खर उस बाणकी अग्निते भस्महोकर श्वेतारण्यमें रुद्रकरके भस्महूप अन्धकासुरकी समान पृथ्वीमें गिरपडा ॥ २७ ॥ वृत्रासुर जिसप्रकार वज्रसे, नैमुचि जिसप्रकार फेनसे, और बलासुर जिसप्रकार इन्द्रके वज्रमे हट होकर गिरेये खरभी ईनेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसे नाराहोकर पृथ्वीमें गिरा ॥ २८ ॥ इससमय देवतागण चारणोंके सहित महाहर्ष और विस्मय युक्त होकर नगाडे चजातेहुए श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चारों तंमापतंतं संकुंडकृतास्त्रोरुधिराण्डुतम् ॥ अपासर्पेद्द्वित्रिपदं किंचित्स्वरितविक्रमः ॥ २३ ॥ ततः पावकसंकाशं वचाय समरेशम् ॥ खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदंडमिवापरम् ॥ २४ ॥ सतहंतं मववतासुरा रजेनधीमता ॥ संदधे च सयर्मत्मा मुमोच च खं प्रति ॥ २५ ॥ सविमुक्तो महाबाणो निर्वतसम निस्त्वनः ॥ रामेण धनुरायम्य खरस्योरसि चापतत् ॥ २६ ॥ सपपात खरो धूमो दह्यमानः शराग्निना ॥ रुद्रेण च विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यांथकः ॥ २७ ॥ सवृद्धवज्रेण फेनेन न मुचिर्यथा ॥ बलो वै द्राशनिहतो निपपातहतः खरः ॥ २८ ॥ एतस्मिन् तरे देवाश्चरणैः सह संगताः ॥ दुंदुभोश्चाभिनिर्भ्रतः पुष्प वर्षसमंततः ॥ २९ ॥ रामस्योपरि सिंहप्राववर्षो विस्मितास्तदा ॥ अर्घ्यं धिक् मुहुर्तेन रामेण निशितैः शरैः ॥ ३० ॥ चतुर्दशमहत्वागिरात्तमां कामरूपिणाम् ॥ खरदूषणमुख्यानां निहतानि महामृधे ॥ ३१ ॥ अहो वीर्यमहोदाय्यं विष्णो रिविद्भिद्भ्यते ॥ ३२ ॥ ओरसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २९ ॥ और सब देवता चारणगण फूल बरसाकर बडे विस्मित हुए कि डेढ़ही मुहुर्तेमें तीसे बाणोंने भीरामचंद्रजीने ॥ ३० ॥ इस महायुद्धमें खर दूषण इत्यादि मुख्य राक्षसोंके सहित कामरूपी चीदह हजार राक्षसोंको मार डाला ॥ ३१ ॥ साक्षात् विष्णुं जीकी समान मर्दगर्गी भीरामचंद्रजीका

१ कावेरीनदीके किनारे भवतारण्यमें एक देवता नाम राजर्षि हुए फलसे, सब अन्धकासुर उन्हे मारनेको पाया इन समय क्षिप्रजीने खाल मारकर बर राक्षसका शेरार किया ॥ २ ॥ मरुत्पतिने के जानेपर जब इन्द्रने विश्वरूपको पुरोहित किया तब इन्द्रने शुभकरूपसे शैवोंके निमित्त छत्ते आहुति देने देव मारडाला विद्वत्पते मारनेपर नगरे गेलाते वालभुवने पुष्पासुरको जपस किया जिसका बडा मुड ईदके साथ हुआ तब इन्द्रने भवतारण्य कीरिने उज्ज्वली जोषका हाथ मोल बाज करताय उससे वृत्रासुरका शेरार किया ॥ ३ ॥ समुपि शैवको जगदीशका बर दावता मुड शीरे शरसे किया प्रकारके आमुपने न मारीये तब मुने मरुते शैव कोषकर, बाहर देव शीकाय मुकुटा कर्णिक ॥ ३० ॥ नाम ये बर नल नमति, पावक संकाशं वचाय ॥ ३१ ॥ साक्षात् विष्णुं जीकी समान मर्दगर्गी भीरामचंद्रजीका

रार दूषण शिशिरा आदि राक्षसोंके मारेजानेपर अकम्पननामक राक्षस शीघ्रतासे जनस्थानसे पलायनकर लंकामें जाकर रावणसे कहने लगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! जनस्थानवासी अनेक राक्षस संग्राममें मारे गये और उनके स्वामी खरकाभी संहार होगया । और मैं किसी भाँतिसे जीता बच यहां भागकर आया हूँ ॥ २ ॥ जब अकम्पनने ऐसा रुद्धा तो क्रोधमें भरनेके कारण रावणके नेत्र लाल होआये और वह अपने तेजसे अकंपनको भस्मसा करताहुआ बोला ॥ ३ ॥ किसकी उमर बीत चुली ? धिड़कीमें किसको आश्रय मिलना दुर्लभ हुआ है ? वह कौन है ? जिसने हमारा महाभयंकर जनस्थान ध्वंस कर दिया ॥ ४ ॥ हमारा अप्रिय कार्य करके इन्द्र, यम, कुबेर अथवा विष्णुभी सुखसे नहीं रह सकते ॥ ५ ॥ हम कालकेभी काल हैं हम अधिक क्या कहें हम मृत्युकोभी मृत्युधर्ममें त्वरमाणस्तोगत्वा जनस्थानादकंपनः ॥ ग्रविशयलंकावेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ जनस्थानस्थिताराजन्नाक्षसावहोहताः ॥ खरश्च निहतः संख्येकथंचिदहमागतः ॥ २ ॥ एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ॥ अकंपनमुवाचे दिनिदं हन्निव तेजसा ॥ ३ ॥ तेन भीमं जनस्थानं हतं मम परासुना ॥ कोहिसर्वपुलोकैके पुगतिनाधिगमिष्यति ॥ ४ ॥ नहि मे विप्रियं कृत्वा शक्यं मघवता सुखम् ॥ प्राप्तुं वै श्रवणेनापिनयमेन च विष्णुना ॥ ५ ॥ कालस्य चाप्यहं कालो दहेयमपि पावकम् ॥ मृत्युं मरणधर्मेण संयोजयितुमुत्सहे ॥ ६ ॥ वातस्य तरसा वेगं निहंतुमपि चोत्सहे ॥ दहेयमपि संक्रुद्धस्तेजसा दिव्यपावकौ ॥ ७ ॥ तथा क्रुद्धं दशग्रीवं कृतां जालिरकंपनः ॥ भयात्संदिग्धया वाचारावणं याचतेऽभयम् ॥ ८ ॥ दशग्रीवोऽभयं तस्मै प्रददौ राक्षसांवरः ॥ सवित्त्रव्यो ब्रवीद्वाक्यमसंदिग्धमकंपनः ॥ ९ ॥ पुत्रो दशरथस्यास्ते सिंहासं हननो युवा ॥ रामो नाम महास्कंधो वृत्तायत महाभुजः ॥ १० ॥ श्यामः पृथुयशाः श्रीमान् तुल्यबलविक्रमः ॥ हतस्तेन जनस्थाने खरश्च सहदूपणः ॥ ११ ॥ अकंपनवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः ॥ नागैर्द्रुहवनिः श्वस्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

जब इस प्रकारसे क्रोधित हुआ तब अकंपनने मारे भयके हाथ जोड़ सन्दिग्ध वचनोंसे अभयदान मांगा ॥ ८ ॥ तब राक्षसवर दशाननने अकंपनको अभय दिया, तब अकंपन विश्वास कर स्पष्ट २ वृत्तान्त कहने लगा ॥ ९ ॥ कि श्रीराजा दशरथजीके पुत्र सिंहासमान पुष्ट अंगवाले युवा अवस्थाको प्राप्त एक रामचन्द्र नामक हैं, उनके ऊंचे स्तब्धे व मंडी २ भुजा हैं ॥ १० ॥ श्यामरूप, महायशस्वी, योगायमान, अपने तुल्य किसी दूसरेका बल विक्रम न रखनेवाले उनकी श्रीरामचन्द्रजीने जनस्थानमें दूषणके मर्तिराक्षसों गंवार किया है ॥ ११ ॥ राक्षसोंका राजा रावण अकंपनकी यह बातों सुनकर मदने अंधे सर्वकी समान श्वास छेताएँ आप यह प्रचन कहते हैं ॥ १२ ॥

गो हिनं गुहारे पलाकर प्रहार किया ॥ ४५ ॥ हे रावण ! विशुद्धवंश सूर्यकुलपदमें पही हुई पृथ्वीकोभी उबार सकते हैं ॥ २४ ॥ समुद्रकी वेला भूमि में
पैसी दोनों देता है उन रामरूप मदवाले हाथीको संग्राममें दर्शन करनेके योग्य आप में पवनका वेगभी रोक सकते हैं ॥ २५ ॥ और वह महायशस्वी श्रीरामचन्द्र
मानो पाठ है चतुर राक्षसगणरूपी मृगोंके नाश करने वाले घाणही मानों जिनके हैं ॥ २६ ॥ हे दशानन ! पापात्मा लोग जिस प्रकार स्वर्गके जीवों
विद्वंसो जगह देवके योग्य आप नहीं हैं ॥ ४७ ॥ हे राक्षसराज ! धनुषरूप प्राणोंको हर जीतनेको समर्थ नहीं हैं ॥ २७ ॥ मैं तो यह जानता हूँ कि देवासुर
दमरुधनुष भरे और घाणरूप तरंगोंमें युक्त घोर युद्धरूप जलसे भरे अति घोर रामरूप १ चिन्तित होकर सुनिये ॥ २८ ॥ सीतानामक उनकी स्त्री एक लोकके म
हेश्वर । राक्षसगण । प्रमत्त होओ और प्रमत्त होकर सीधे २ लंकाको चले जाओ और

विशुद्धवंशभिजनाग्रहस्तस्तेजोमदःसंस्थितदोर्विपाणः ॥ उदीक्षितुरावणनेहयु ॥ २४ ॥ भित्त्वावेलांसमुद्रस्यलोकानाप्तावयेद्विभुः ॥ वेगं
दग्धरहोमृगहावृसिंहः ॥ सुतस्त्वयाचोययितुंनशक्यः शरांगणूनिनिशितासिदंष्ट्रः ॥ शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं नरपिप्रजाः ॥ २६ ॥ नहिरानां
तालमुखंतिघोरं प्ररुदितुराक्षसराजयुक्तम् ॥ ४८ ॥ प्रसीदलंकेधराक्षसेन्द्रलंकां प्र
वनेषु ॥ ४९ ॥ एवमुक्तो दशग्रीवो मारीचिनसरावणः ॥ अयं तस्य वधोपायस्तन्ममैक
नरगः ॥ ३१ ॥ ततः शूपाणखादृष्टासहस्राणि चतुर्दश ॥ न्यवर्तत पुरालंकां विवेश च
नादाव्रजान् जलदोपमा ॥ २ ॥ सादृष्टाकर्म रामस्य कृतमन्यैः सुदुष्करम् ॥ ३२ ॥ नैव देवीनगंधर्वानाप्सरानन
दीप्ततेजसम् ॥ उपोपविष्टसचिर्वैरुद्रिरिवावसवम् ॥ सीतयारहितो रामो न चैव हि भविष्यति ॥ ३५ ॥
वांङ्कल्यंगमिष्यामि एकः सारथिना सह ॥ आनेष्यामि
प्रनादित्यवर्णेन दिशः सर्वाः प्रकाशयन् ॥ ३४ ॥

इत्थाने भीमराज ० वाल्मी ० आदि ० आरण्यकं हि भाषाटीकायामेकविंशः सर्गः ॥ ३१ ॥ इसी एकी श्री किस भाँति उसके समान होसकती है ? ॥ ३० ॥ सो अब महा
हजार राक्षसोंको मोहदूष देगकर ॥ १ ॥ व रास, दूषण और त्रिशिताको मारा हुआ देवजायगी तब राम न बचैये वरन् अवश्यही मर जायेंगे ॥ ३१ ॥
करनेके अपोग्य भीरामचन्द्रजीका किया हुआ कर्म देगकर अति उत्कामके रावणपालिता होजा ॥ ३२ ॥ कि, अच्छा ! हम अकेले मारथीके साथ वहाँ जायेंगे
रावण विषाणमत्त होता है, देवराजगण जिनपरकार दण्डके विषाणमत्त होता है, अकेले मारथीके साथ वहाँ जायेंगे ।

गौरभी सब देवताओंके उषान्नोका विनाश क्रोधसे जिसने कर दिया है. फिर उदय होते हुए महाभाग्य चंद्रमा व सूर्यको ॥ १६ ॥ दोनों बाँहोंसे निवारण करनेवाला तोंके समान ऊँचा व वीर्यवान् व दश हजार वर्ष यन्त्रों तपकर ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीको अपने सब शिर काट २ कर जिसने चढादियेथे, देव, दानव, गन्धर्व, पिराच, फ्रांग, वा उरग ॥ १८ ॥ किसीके द्वाराभी जिसको मृत्युका भय नहीं जिसने केवल मनुष्योंको कुछ न समझ उनसे अभय नहीं माँगा, और ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें मंत्र पढ़ २ कर जिसकी स्तुति करतेलगेथे ॥ १९ ॥ यह महाबलवान् रावण होमशालामें गमन करके पवित्र सोमको नष्टकरदेता और दक्षिणा देनेके समय यज्ञको ध्वंसकर देता सर्वदा ब्राह्मणहननादिक क्रूर कार्योंको कियाकरता ॥ २० ॥ सदा प्रजागर्णोका अहित आचरण करता कर्कश था अनेक प्रकारकी पीडा देकर सब लोकोंका भय

विनाशयति यः क्रोधादेवोद्यानानि वीर्यवान् ॥ चंद्रसूर्यमहाभागवुत्तिष्ठंतौ परंतपौ ॥ १६ ॥ निवारयति बाहुभ्यां यः शैलशिखरोपमः ॥ दशत्रयं सहस्राणितपस्तत्स्वामहावने ॥ १७ ॥ पुरास्वयं बुधधीरः शिरांस्त्युपजहार यः ॥ देवदानवगंधर्वपिशाचपतगोरगैः ॥ १८ ॥ अभयं यस्य संग्रामे मृत्युतो भानुपादते ॥ मंत्रैश्च भिद्युतं पुण्यमध्वरेषु द्विजातिभिः ॥ १९ ॥ हविर्यानेषु यः सोममुपहंत महोदधौ ॥ प्राप्तयज्ञहरं दुष्टं ब्रह्मघ्नं क्रूरकारिणम् ॥ २० ॥ कर्कशं निरनुक्रोशं प्रजानामहितैरतम् ॥ रावणं सर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् ॥ २१ ॥ राक्षसीभ्रातरं क्रूरं सादृशं महाबलम् ॥ तं दिव्यवस्त्राभरणं दिव्यमाल्योपशोभितम् ॥ २२ ॥ आसनेषूपविष्टं कालकालमिवोद्यतम् ॥ राक्षसैर्द्रुमभागं पौलस्त्यकुलं नंदनम् ॥ २३ ॥ उपगम्या ब्रवीद्वाक्यं राक्षसीभयविह्वला ॥ रावणं शत्रुहंतारं मंत्रिभिः परिवारितम् ॥ २४ ॥ तमब्रवीद्दीप्तविशाललोचनं प्रदर्शयित्वा भयलोभमोहिता ॥ सुदारुणं वाक्यमभीतचारिणीमहात्मना शूर्पणखा विरूपिता ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे द्वाविंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

उपजानेवाला होनेके कारण लोक उसको रावण कहा करतेथे ॥ २१ ॥ राक्षसी शूर्पणखाने अपने क्रूर महाबली भ्राताको देखा । वह रावण दिव्यवस्त्र, दिव्य गहने, और दिव्य माला पहन रहाथा ॥ २२ ॥ आसनपर पड़ीप्रकारसे बैठाथा, उस काल कालकी मुर्निसा प्रतीत होताथा ऐसा राक्षसनाथ महाभाग, पौलस्त्यकुलनंदन रिपुओंका नाश करनेवाला ॥ २३ ॥ इस प्रकारके गुणोंसे युक्त रावणको देख लक्ष्मणजीने जो नाक कान काट डालेथे इस कारण भयसे विह्वलहो, मंत्रियोंके धीचर्म बैठे हुए रावणमें बोली ॥ २४ ॥ इस प्रकारकी निशाचरी जो कि श्रीरामचंद्रजीके द्वारा क्रूररूपको प्राप्त होगईथी जिसका नाम शूर्पणखा था यह निर्भय दारुण पचन कइती हूँ छोपसे मोहित भय विमर्शती हूँ दीगियात्र बड़े नेत्र वाले रावणमें बोली ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे द्वाविंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

उस समय दीन होरही शूर्पणखा कोपयुक्तहो सब लोकोंके रुबानेवाले रावणसे भीषणोंके सामने कडुवे वचन कहन लगा ॥ ३ ॥ १९१ ॥
होकर सदाही कामभोगमें मतवाले रहते हो और तुम किसी विषयमें किसीकाभी निषेध करना या वाधा देना नहीं मानते । इसी कारण अवश्यही जाननेके योग्य जो इस समय भयंकर विषद आ पहुँची है, तुम उसको नहीं जानते ॥ २ ॥ परन्तु जो राजा श्री इत्यादिक ग्राम्य भोग वस्तुओंमें सदाही आसक्त रहता, स्पष्ट्याचारी और लोभी होता है । प्रजागण श्रमरानकी अधिकके समान उस राजाका आदर नहीं करते ॥ ३ ॥ जो राजा यथाकालमें अपने सब कार्योंको नहीं करता है वह राजा और उसके कार्य न करनेसे अपने राज्य सहित विनाशको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ जो राजा श्रीआदिकोंके आधीन रहकर दूतोंको नियुक्त करके प्रजाका हाड नहीं जानता है तो हाथी जिस प्रकार दूरसेही दल २ बाली नदीको त्याग करके चले जातेहैं, प्रजा लोगभी वैसेही उस राजाको त्याग देते हैं ॥ ५ ॥ औरभी

ततःशूर्पणखादीप्तारावणलोकरावणम् ॥ अमात्यमध्यैसंकुद्धापुरुषावक्यमब्रवीत् ॥ १॥ प्रमत्तःकामभोगेषुस्वेवृत्तोनिरंकुशः ॥ समुत्पन्नंभयंत्रोरत्रो
द्वय्यनायधुध्यसे ॥ २॥ सत्कंद्राभ्येषुभोगेषुकामधृतंमहीपतिम् ॥ लुब्धंनवदुमन्यतेश्मशानाग्रिमिवप्रजाः ॥ ३॥ स्वयंकार्याणियःकालेनानुतिष्ठतिपा
थिवः ॥ सतुर्वेसहस्राव्येनतैश्चकार्यैर्विनश्यति ॥ ४॥ अयुक्तचारंदुर्देशमस्वाधीनंनराधिपम् ॥ वर्जयंतिनरादूरात्प्रदीपंकमिवद्विपाः ॥ ५॥ येनरक्षंति
विषयमस्वाधीनंनराधिपाः ॥ तेनवृद्ध्याप्रकाशतंगिरयःसागरेयथा ॥ ६॥ आत्मवद्विर्विगृह्यत्वंदेवगंधर्वदानवैः ॥ अयुक्तचारश्चपलःकथंराजाभवि
ष्यसि ॥ ७॥ त्वंत्वालस्वभावश्चबुद्धिहीनश्चराक्षस ॥ ज्ञातव्यंतंनजानीपेकथंराजाभविष्यसि ॥ ८॥ येषांचाराश्चकोशश्चनयश्चजयतांवर ॥ अस्वार्था
नचर्त्तन्नापिप्रकृतेस्तेजैःसमाः ॥ ९॥ यन्मापश्यतिदरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः ॥ चारेणतस्मादुच्यतेराजानोदीर्घचक्षुषः ॥ १० ॥

जो नृपति लोग अपने आधीनमें न आये हुए राज्योंको उपाय करके अपने बरा नहीं कर लेते, वह समुद्रमें पड़े हुये पर्वतोंकी समान प्रकाशको नहीं प्राप्त होते ॥ ६ ॥ एक वो तुम स्वभावसेही बंचल हो और दूसरे कुछ तुम आचारभी नहीं करते; भला फिर विशुद्धचित्त देव दानव और गन्धर्वोंसे घैर करके तुम किस प्रकार राज्य कर सकोगे ? ॥ ७ ॥ हे राक्षस ! तुम बुद्धिरहित हो, बालकोंकासा तुम्हारा स्वभाव है और जिस बातको जानना उचितहै, उसको भी नहीं जानते भला फिर किसप्रकारसे अपने इस राज्यकी रक्षा कर सकोगे ? ॥ ८ ॥ हे विजयी श्रेष्ठ ! जिन राजा लोगोंके आधीन सजाना, दूत और नीति नहीं होती, ऐसे राजा लोग मापारण मनुष्योंके समान हैं ॥ ९ ॥ राजा लोग सब जगह अपने दूतोंको नियुक्त करके सब दूरका वृत्तान्त मानों देखते रहते हैं इसी कारण वह दीर्घचक्षु कहे

वह राजाही लोकमार्गमें पूने जातेहैं ॥ २३ ॥ परन्तु हे रावण ! तुम कुशुद्धि और इन समस्त गुणोंसे रहितहो, कारण कि राक्षसोंका वह सर्वनाश हुआ और तुमने
 हूतोंके द्वारा उमका कुछभी नृनान्न न जाना ॥ २२ ॥ तुम केवल पराया अपमान करते हो सदाही भोगविलासमें मगलवाने रहतेहो देशकालका निश्चय करना नहीं
 जानने और गुण दोषका विचार करनेका सामर्थ्य तुम्हारी बुद्धि नहीं रखती इस कारण तुमको शीघ्रही विषद्व्यस्त और राज्यभ्रष्ट होना पडेगा ॥ २३ ॥ धन, बल,
 और गर्वभुक्त गजसनाय गजन शृंगसाको इस प्रकारमे अपने समस्तदोष कहवीदुई देसकर बुद्धिलगाय बहुतही देसक मनही मन विचारतारहा ॥ २४ ॥ इत्योपे
 श्रीमद्रा० चान्दी० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां त्रयाश्रिताः सर्गः ॥ ३३ ॥ शृणुष्वता मंत्रियोंकी सभाके बीचमें अनेक प्रकारके कटुवचन कहरहीहै यह
 तंतुगवगदुर्बुद्धिगुणैर्तेर्विवर्जितः ॥ यस्यतेऽविदितभारैरक्षसांसुमहान्वधः ॥ २२ ॥ पराचमंताविषयेपुसंगवान्देशकालप्रविभागतत्त्ववित् ॥
 अयुक्तबुद्धिगुणदोषनिश्चयविषयज्ञानचिन्तित्वादिप्रत्ययते ॥ २३ ॥ इतिस्वदोषान्परिकीर्तितान्स्तयासमीक्ष्यबुद्ध्याक्षणाक्षरेश्वरः ॥ धनेनदपेण
 गयेनगान्विनोविचिन्तयामासचिरं सरावणः ॥ २४ ॥ इत्योपे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥
 ततःशृणुष्वग्राह्यावृत्तार्थपरुषं वचः ॥ अमात्यमध्येसंक्षुब्धःपरिपप्रच्छरावणः ॥ १ ॥ कश्चरामःकथंवीर्यःकिंरूपःकिंपराक्रमः ॥ किमर्थदंडकार
 ण्यंप्रतिपटुश्चमृदुस्तरुम् ॥ २ ॥ आयुर्धर्किंचरामस्ययेनतेराक्षसाहताः ॥ खरश्चनिहतःसंख्येदूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥ तत्तत्तद्विहिनोद्वांगिकेन
 त्वंनिरुपिता ॥ इत्युक्त्वा राक्षसेर्दिणराक्षसीकोयमूर्च्छिता ॥ ४ ॥ ततो रामंयथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चिरकृष्णाजिनां
 वरः ॥ ५ ॥ कंदर्पमरुत्पथश्चरामोदशरथात्मजः ॥ शक्रचापनिभंचापंकुप्यकनकांगदम् ॥ ६ ॥ दीप्ताक्षक्षिपतिनाराचान्सर्पांनिवमहाविषान् ॥

नाददानंशगन्धोगान्विमुनंतमहावलम् ॥ ७ ॥

दंगरुत गवणने कोशिन होकर पूछा ॥ १ ॥ राम कीर्तनहै ? उनका वीर्य, रूप और पराक्रम कैसाहै ? वह किस कारणसे इस दुस्तर दंडकारण्यमें आयेहैं ? ॥ २ ॥
 उन्होंने जिनमें कि खर दूषण और त्रिशिरा आदि राक्षसोंको युद्धमें मार डाला वह उन रामचंद्रजीके आयुध कैसेहैं ? ॥ ३ ॥ हे मनोहर शरीरवाली ! तुमको
 भिगने विरूप कहदिया ? सब पर्यायही कहो । जब राक्षसराज रावणने इस प्रकारमे कहा तब राक्षसी कोधसे मूर्च्छितहो ॥ ४ ॥ जैसेका तैसा ठीक २ श्रीरामचन्द्र
 जीरा नृनान्न कहने लगी । उमने कहा रामचन्द्र दंगरयके पुत्र कामदेवकी समान रूपवान् दीर्घबाहु और विरालनेत्र, बलकल व मृगचर्म धारण किये हुए
 ॥ ५ ॥ उनका धनुष इन्द्रके धनुषसी समानहै उममें सुवर्णके बंद लगे हैं उग धनुषको खेंचकर ॥ ६ ॥ तेज विषवाले सर्पोंके समान पदीन नाराच रामचन्द्र

छोड़ते हैं यह हमने नहीं देखा कि ॥७॥ धनुषको किस समयमें खँचते हैं; यहभी हमने नहीं देखा केवल इतनाही देखा है कि बाणवर्षा करके वह संग्राममें राक्षसों का संहार करते थे ॥८॥ जैसे इन्द्र अकालमें ओले वर्षाकर श्रेष्ठ अन्नका नाश कर देते हैं इसीप्रकार भयंकर वीर्यवान् १४०० हजार राक्षसोंको ॥९॥ तीक्ष्ण बाणोंके प्रहार अफेड़े पैदल रामचन्द्रजीने मार डाला । केवल आधेही मुहूर्तमें सरको दूषणके सहित संहारकर ॥१०॥ ऋषिगणोंको अभय दे समस्त दंडकवनको मंगलमय कर दिया ॥११॥ उन आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने स्त्रीके वधकी शंका करके, केवल नाककानही काटकर हमहीको अकेला छोड़ा है ॥१२॥ लक्ष्मणनाम रामचन्द्रका छोटा भ्राता महातेजस्वी गुण और विक्रममें अपने बड़े भ्राताकी तुल्य है, वह उनकाही अनुरागी भक्त है । वह अतिशय बुद्धिमान् बलवान् और वीर्यवान् है ॥१३॥ विक्रमवान् है, क्रोधविष्ट है, रावहीको जीतनेवाला और आप किसीसे जीते जानेके योग्य नहीं है और श्रीरामचन्द्रजीके दहिनाहाथ, वरन् शरीरके बाहर रहनेवाला प्राण है ॥१४॥ नकारा मुकं विकपंतरामं पश्यामि संयुगे ॥ हन्यमानं तु तत्सेन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः ॥८॥ इंद्रणेवोत्तमं सस्यमाहंत त्वं शमवृष्टिभिः ॥ रक्षसां भीमवीर्याणां सहस्राणि चतुर्दश ॥ ९ ॥ निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेन पदातिना ॥ अर्धधिकमुहूर्तेन खरश्च सहदूषणः ॥ १० ॥ ऋषीणामभयं दत्तं कृतं तं माश्च दंडकाः ॥ ११ ॥ एकाकं चिन्मुक्ताहं परिभूय महात्मना ॥ स्त्रीवधं शंक्रमानेन रामेण विदित्वात्मना ॥ १२ ॥ भ्राता चास्य महति जागृतस्तुल्य विक्रमः ॥ अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ १३ ॥ अमर्षो दुर्जयोजेता विक्रान्तो बुद्धिमान् बली ॥ रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिः ॥ १४ ॥ रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णदुसदृशानना ॥ धर्मपत्नी प्रियान्तिथं भर्तुः प्रियहिते रता ॥ १५ ॥ सासुके शीघ्रानासोरुः सुरूपा च यशस्विनी ॥ देवते वनस्यास्य राजते श्रीरिवापरा ॥ १६ ॥ तप्तकांचनवर्णाभारक्तुंगनखीशुभा ॥ सीतानामवरोहवैदेही तनुमध्यमा ॥ १७ ॥ नैव देवीन गंधर्वी न यक्षी न च किन्नरी ॥ तथारूपा मयानारी दृष्टपूर्वामहीतले ॥ १८ ॥

और रामचन्द्रजीकी जो स्त्री है उसके नेत्र बड़े २ हैं और वदन पूर्णपासीके चंद्रमाकी समान है, रामचंद्रको बहुत प्यार करती हैं; और वह सदा पतिकी प्यारी और करनेवाला कार्य करती रहती हैं ॥ १५ ॥ उस यशस्विनी रामचंद्रजीकी स्त्रीके केश, नासिका, ऊरु और रूप अति उत्तम हैं । वह मानो उस वनकी अधिष्ठात्री देवी और दूसरी लक्ष्मीकी समान विराजमान हो रही हैं ॥ १६ ॥ उनके वर्णकी ज्योति तपाये हुए सुवर्णकी समान है, कमर पतली और नरोंकी पंक्तिका शिर छाड़ है । यह अनियम सुन्दरता युक्त है और सब स्त्रियोंकी शिरोमणि हैं, उन्होंने विदेह वंशमें जन्म ग्रहण किया है, और वह सीतानामने संसारमें विख्यात हैं ॥ १७ ॥ न देवी, न गन्धर्वी, न यक्षिणी, न किन्नरी किसीकी भी सुन्दरता से उनकी ओपपत्ति के भयसे नहीं घबरा सकती। यक्षोंका कि, कभी दृग्गते इतनी प्रज्वलीलर बात बकना

रमणी नहीं देखी ॥ १८ ॥ बह नीवा जिसकी मीठी, और बह जिसको हृषी भरकर भेंट वह पुरुष समस्त प्राणी जया, वरज इन्द्रसभा अधिकमुखस जे-
 शिवाता है ॥ १९ ॥ मीठाकं मचही अंग सब लोकके प्राप्ता करनेके योग्य हैं और पृथ्वीमें उसका रूप अतुलनीय है । वह सुशीला तुम्हारेही लायक भायां
 और गुम उमरेंही अनुरूप पतिहो ॥ २० ॥ उसके दोनों पयोधर ऊंचे हैं जंघा अति विराल है और मुखण्डल अति श्रेष्ठ है उसको हम सोच विचार कर तुम्-
 भी दोनोंके योग्य जानने गर्दयी ॥ २१ ॥ हे महाभुज ! सो इस कार्यको करतेही, क्रूर लक्ष्मणने हमारे नाक कान काट डाले, उस पूर्णचंद्रमुखवाली नि-
 र्माणीको दमदंडी ॥ २२ ॥ गुम मूढचाणथारीके पुण्य वाणोंका लक्ष्य बनोगे, यदि उसको अपनी स्त्री बनानेका तुम्हारा आराय हो तो शीघ्रही रामचंद्रके जीतने-
 यस्यमीताभंडायांचंचुट्टापरिष्वजेत ॥ अभिजीतसर्वपुलोकके प्यपिपुंदरात् ॥ १९ ॥ सासुशीलावपुःश्लाघ्यारूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ तवा
 तुरूपाभार्यामात्वंचतस्याःपतिर्वरः ॥ २० ॥ तांतुविस्तीर्णजवनापीनोत्तुंगपयोधराम् ॥ भार्यार्थतुतवानेतुमुद्यताहंवराननाम् ॥ २१ ॥ विर-
 पिनास्मिन्मूर्णलक्ष्मणनमहाभुज ॥ तांतुदृष्टाद्यवेदोपूणचंद्रनिभाननाम् ॥ २२ ॥ मन्यथस्यशराणांचत्तन्विधेयोभविष्यसि ॥ यदितस्यान
 भिप्रायोभार्यान्त्यंतवजायते ॥ शीघ्रमुद्विगतापादोजयार्थमिहदक्षिणः ॥ २३ ॥ रोचतेयदितेवाक्यंमत्तद्राक्षसेश्वर ॥ क्रियतानिर्विशंकेनवचनं
 ममगण ॥ २४ ॥ विज्ञायेपामशक्तिचक्रियतांचमहाबल ॥ सीतातवानवद्यांगीभार्यात्वेराक्षसेश्वर ॥ २५ ॥ निश्चम्यरामेणशरैरजिह्वैर्गह्ता
 अनस्थानगताग्निशाचरान् ॥ खरंचदृष्टानिहतचटुपणंत्वमद्यकृत्यंमतिपत्तुमर्हसि ॥ २६ ॥ इत्यार्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये
 द्रण्यक्रीडे चतुर्विंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ ततःशूर्पणखावाक्यंतच्छृत्वाःरोमहर्षणम् ॥ सचिवानभ्यनुज्ञायकार्यंयुद्धाजगामह ॥ १ ॥ तत्कार्यमनुज
 गम्यान्तर्गथायदुपलभ्यच ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यवलायलम् ॥ २ ॥

शक्तिना धरण आगे भरकर चलो ॥ २३ ॥ हे राक्षसराज रावण ! हमारा यह वचन यदि तुम्हें रुचाहो तो जो हमने कहा उसको चित्तसे शंका त्यागकर करो ॥ २४ ॥
 हे महाबल ! गुम उनको अमर्ष और अपनेको संपर्ष जानकर इस सर्वांग सुन्दरी सीताको स्त्रीबनानमें यत्नवान होओ ॥ २५ ॥ रामचंद्रजीने सीधे चलनेवाले बाणों-
 मयस्य उन जनस्थानवासी राक्षसोंको सरदृषणके सहित मारडाया है यह सुनकर अब जो कुछ कर्तव्यहो सो करो ॥ २६ ॥ ॥ इत्यार्ये श्रीमद्रामायणे वात्-
 म्ही आदिकाव्ये आरण्यक्रीडे भाषाटीकायां चतुर्विंशः सर्गः ॥ ३४ ॥ ॥ शूर्पणखाके यह रोमहर्षण वचन सुन कर्तव्य स्थिरकर मंत्रियोंकी सम्मति ने-
 रावण जनस्थानमें जानने पैपार हुआ ॥ १ ॥ गमन करनेके समय उस कार्यको भली भाँतिसे छानकर, और उसके सब विषयोंको भली प्रकार सोच विचार हे-

गुणभी समझ लेता हुआ, बल, अबल सब जानलिया, उसको जानकीका हरलाना महात्मा रामचन्द्रजीसे वैर करनाही ठीक जंचा ॥ २ ॥ सब कर्तव्योंका मनमें निश्चय कर स्थिरबुद्धिहो प्रथम रमणीक यानशालामें गया ॥ ३ ॥ और यानशालामें पहुँचकर राक्षसराज रावण गुप्तभावमें सारथिमें बोला कि, शीघ्रही रथ तैयार करो ॥ ४ ॥ रावणके ऐसा कहतेही एक क्षणमें शीघ्रता करनेवाले सारथीने जो रथ रावणकी इच्छानुसार था उस रथको सजाया ॥ ५ ॥ रावण उस इच्छानुसार कंचनसे बने हुए रत्नभूषित पिशाचवदनवाले सिंचिढ जिसमें जुते हुए, ऐसे रथपर सवार हुआ ॥ ६ ॥ जब वह रथ चला तब उसका शब्द मेढोंके गर्जनकी समान होता था । कुबेरका छोटाभाई राक्षसपति श्रीमान् दशानन उस रथपर चढ, नदनदीपति समुद्रकी ओर चला ॥ ७ ॥ रावणके ऊपर जो चमर और छत्र लगे थे वह दोनों

इतिकर्तव्यमित्येवकृतानिश्चयमात्मनः ॥ स्थिरबुद्धिस्तोरम्यायानशालाजगामह ॥ ३ ॥ यानशालांततो गत्वा प्रच्छन्नराक्षसाधिपः ॥ मृतंतं चोदयामासरथः संयुज्यतामिति ॥ ४ ॥ एवमुक्तः क्षणेनैव सारथिर्लघुविक्रमः ॥ रथं संयोजयामास तस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ कामगं रथमास्थाय कां च नरत्नभूषितम् ॥ पिशाचवदनैर्गुत्तं खरैः कनकभूषणैः ॥ ६ ॥ मेघप्रतिमना देन स तेन धनदानुजः ॥ राक्षसाधिपतिः श्रीमान्वयोनदनदीपतिम् ॥ ७ ॥ सधैतवाल्क्यजनः श्वेतच्छत्रो दशाननः ॥ स्निग्धवैदूर्यसंकाशस्ततकांचनभूषणः ॥ ८ ॥ दशग्रीवोर्विशतिभुजो दर्शनीयपरिच्छदः ॥ त्रिदशार्मुर्नोर्द्रोदशशीर्षद्वान्द्रिगद ॥ ९ ॥ कामगं रथमास्थाय शुभे राक्षसाधिपः ॥ विद्युन्मंडलवान्मेघः सवलाकइवांचर ॥ १० ॥ सशैलसागरानुपं वीर्यवानवलोकयन् ॥ नानापुष्पफलवृक्षैरनुकीर्णसहस्रशः ॥ ११ ॥ शीतमंगलतोयाभिः पद्मिनीभिः समंततः ॥ विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् ॥ १२ ॥ कदल्यटविसंशोभं नालिकैरोपशोभितम् ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चतरुभिश्च सुपुष्पितैः ॥ १३ ॥

श्रेष्ठ थे, रावणके देहकी कांति वैदूर्यमणिके समान नीली थी, वह सब तपाये हुए सुवर्णके भूषण पहरे हुए था ॥ ८ ॥ उसके दयासुप्त, दया गर्दन, और चीन भुजा थीं देवगणोंके रात्रि, और मुनियोंके हनन करनेको यह रावण साक्षात् दया कैंगरी करके युक्त पर्वतराजसां दिशाई देता था ॥ ९ ॥ वह रावण उस सपेच्छाचारी निमान पर चढकर ऐसा शोभित हुआ मानों सौदामिनीके संग श्यामधन बगलोंकी पांतिके साथ गगनमंडलमें जाया है ॥ १० ॥ रावण चढते २ समुद्रके तीरपर पहुँचा वीचमें, उसने चढतेसे पर्वत व समुद्रकी, तलैदीके देहा देखे वह स्थान अनेक प्रकारके पुष्प फल और वृक्षोंमें, शोभायमान थे ॥ ११ ॥ शीतल मंगल जलपुष्प, तलैपो परोपर, वी केरीपुष्प, और बहे, २ आलवेंते यह देव अलंकृत था ॥ १२ ॥ कदलिका पर आने, और, तमाल, नादिकैयके वृक्ष आदि ॥ १३ ॥

शाल, ठाल, तमालादि नाना जातिके पुष्पित वृक्ष लगेये ॥ १३ ॥ वह स्थान, जो सदा नियमित भाजनमें भग्न रहत एव परमाप्याप्त लाभयमान था नाम, गरुड, गन्धर्व और सहस्रों किन्नरभी वहांपर थे ॥ १४ ॥ और कामदेवको जिन्होंने जीत रक्खाहै, ऐसे सिद्ध और चारणगणभी उस स्थानमें शोभित हो रहे थे, आज्ञ्य, भूम्न, वैरसनस, सारु, यालतिल्य, मरीचि आदिसे व्याप्त ॥ १५ ॥ दिव्य वस्त्रभूषण, दिव्य माला, और दिव्यरूप विद्योने व्याप्तया । क्रीडा व रतिकी विधि जानने वाली हजारों अप्सराओंके साथ सिद्धगण विहार करतेये ॥ १६ ॥ देवोंकी श्रीसम्पन्न स्त्रियांभी घूम रही थीं, अमृत पीनेवाले देव दानवोंके समूह भी इधर उधर फिरते थे ॥ १७ ॥ हंस, कौच, मण्डूक और सारससमूह चारों ओर बोलरहेये । वैदूर्यमणिके समान नीलवर्णके पत्थर वहांपर विराजतेये और समुद्रतंगोंकी हिलोरबग वह देखा

अत्यंतनियतादारेःशोभितंपरमर्षिभिः ॥ नागैःसुपर्णेर्गन्धर्वैःकिन्नरैश्चसहस्रशः ॥ १४ ॥ जितकामैश्चसिद्धैश्चचारुणैश्चोपशोभितम् ॥ आजैर्वैद्यानसे मर्षैर्वाल्सित्यैर्मरीचिषैः ॥ १५ ॥ दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् ॥ क्रीडार्तविधिज्ञाभिर्प्सरोभिःसहस्रशः ॥ १६ ॥ सेवितंदेवपत्नीभिःश्रीमतीभिरुपासितम् ॥ देवदानवसंघैश्चरितंतं वृताश्रिभिः ॥ १७ ॥ हंसकौचप्लवाकीर्णसारसेःसंयसादितम् ॥ वैदूर्यमृत्तरंस्निग्धंसद्रिंसागते जसा ॥ १८ ॥ पाण्डुराणिविशालानिदिव्यमाल्ययुतानिच ॥ दूर्यगीताभिजुष्टानिविमानानिसमंततः ॥ १९ ॥ तपसाजितलोकानां कामगान्यभिसे पतन् ॥ गंधर्वाप्सरसश्चैवदर्शयन्दानुजः ॥ २० ॥ नार्यासरसमूलानांचंदनानांसहस्रशः ॥ वनानिपश्यन्सोम्यानिप्राणतृप्तिकराणिच ॥ २१ ॥ अगुरुणांचसुख्यानां धनान्युपवनानिच ॥ तत्क्रोलानांचजात्यानां फलानांचसुगंधिनाम् ॥ २२ ॥ पुष्पाणिचतमालस्यगुल्मानिमरिचस्यच ॥ मुक्तानांचसमूहानिद्रुप्यमाणानितीरतः ॥ २३ ॥ शैलानिप्रवराश्चैवप्रवालनिचयांस्तथा ॥ कांचनानिचभृंगाणि राजाजानितयेवच ॥ २४ ॥

मदाही शीतल और स्निग्ध भावकरके युक्तथा ॥ १८ ॥ इन सब वस्तुओंके सिवाय, रावण दिव्यमालायुक्त, गीत और बाजोंकी ध्वनि जिसमें होरही ऐसे श्वेतवर्ण विशालविमानोंको चारों ओर देखते लगा ॥ १९ ॥ जिन लोगोंने अपने तपोबलसे अनेक लोकोंको जीत लियाहै, और इच्छाचारी विमानोंपर जो बैठे हैं, कुबेरके छोटे भाई रावणने जानेके समय मार्गमें उन गन्धर्वगणोंको अप्सराओंके साथ देखा ॥ २० ॥ वहांपर वनमें गौंद रस मूल सहित हजारों सुन्दर, नासिकाको अपनी गुगुन्धिने तुल करनेवाले चंदनके वृक्ष देखे ॥ २१ ॥ अगरके मुख्य वन उपवन अंकोल वृक्षोंके सुगन्धित पुष्पित और जायफलके फलित वन उपवनादि देखे ॥ २२ ॥ तमालनाम एक वृक्षके फूल और काली मिर्चके गुल्मसमूह समुद्रके किनारे फूले व मोतियोंके समूह गिरे हुए देखे ॥ २३ ॥ पर्वत व भूगोंकी चट्टा

नौके समूह व चांदी सुवर्णके शृंगभी रावणने देखे ॥ २४ ॥ सुविमल जलपूर्ण अद्भुत मनोहर सोते धन धान्यके सहित स्त्री रत्नयुक्त ॥ २५ ॥ हाथी घोड़े नौके अनेक प्रकारके नगर देखते हुए रावणने शीतल मंद सुगन्ध पवनसहित ॥ २६ ॥ सिन्धुराजका अनूप किनारा देखा, वह देखनेमें स्वर्णकेही तुल्य था, वहांपर ओरसे मुनियों करके सेवित मेघसम श्याम एक वरगदका वृक्ष देखा ॥ २७ ॥ उसकी समस्त शाखा चारों ओर शत योजनके घेरमें फैल रहीथी जहांपर पहले बड़े शंख वाले हाथी और कछुएको ॥ २८ ॥ गरुडजी भोजन करनेके लिये इस पेड़की एक शाखापर बैठेथे पक्षियोंके स्वामी गरुडजीके वीक्षसे उसकी एक डाली ॥ २९ ॥ जिसमें बहुत परं लगेथे दूढ़ गईथी उसी शाखाका आश्रय कर बैखानस, माप, मरीचिप, बालखिल्य ॥ ३० ॥ और धूम्राख्य परमर्षिगण मिलकर तपस्या कर

प्रसवाणिमनोज्ञानिप्रसन्नान्यद्भुतानिच ॥ धनधान्योपपन्नानिस्त्रीरत्नैरावृतानिच ॥ २५ ॥ हस्त्यश्वथरथाढानिनगराणिविलोकयन् ॥ तंसमंसर्वतः स्निग्धं नुदुसंस्पर्शमारुतम् ॥ २६ ॥ अन्नपेसिंधुराजस्यददर्शत्रिदिवोपमम् ॥ तत्रापश्यत्समेघाभं न्यग्रोधं मुनिभिर्वृतम् ॥ २७ ॥ समंताद्यत्यताः शाखाः शतयोजनमायताः ॥ यस्यहस्तिनमादायमहाकायंचकच्छपम् ॥ २८ ॥ भक्षार्थं गरुडः शाखामाजगाममहाबलः ॥ तस्य तांसहसाशाखां भागं णपतगोत्तमः ॥ २९ ॥ सुपर्णः पर्णबहुलां वंभजाथमहाबलः ॥ तत्रैखानसामापावालखिल्यामरीचिपाः ॥ ३० ॥ आजगवधुर्धूम्राश्च संगताः परमर्षयः ॥ तेषां दयार्थं गरुडस्तां शाखां शतयोजनम् ॥ ३१ ॥ भग्नमादाय वेगेन तौ चोभौ गजकच्छपौ ॥ एकपादेन धर्मोत्तमाभक्षित्वा तदामिपम् ॥ ३२ ॥ निपादविषयं हत्वा शाखायापतगोत्तमः ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे मोक्षयित्वा महासुनिन् ॥ ३३ ॥ सतुतेन ग्रहर्षेण द्विगुणीकृतविक्रमः ॥ अमृतानयनाथं वचका रमतिमान्यतिम् ॥ ३४ ॥ अयोजालानि निर्मथ्य भित्त्वारत्नगृहं वरम् ॥ महेंद्रभवनाद्धुसमाजहारामृतंततः ॥ ३५ ॥ तं महर्षिगणेर्जुष्टुपुर्णकृत लक्षणम् ॥ नाम्नासुभद्रं न्यग्रोधं ददर्श धनदानुजः ॥ ३६ ॥

थे । धर्मोत्तमा गरुडजीने उन ऋषियोंके प्रति दया करके एक पैरसेही उस शत योजनकी ॥ ३१ ॥ टूटी हुई शाखाको पकड़ दूसरे पैरसे गज कच्छपको दवाय महांतर उनका मांस खाकर ॥ ३२ ॥ उस टूटी हुई शाखाकी सहायतासे समस्त निपाददेशको नाश करदिया इस प्रकार मुनिगणोंको बचाकर गरुडजी परमहर्षित हुएथे ॥ ३३ ॥ अनन्तर उस दुर्षक वराहो गरुडजीका विक्रम दूना बढ़गया, तो इस कारण मतिमान गरुडजी अमृतके लानेका विचार करते हुए ॥ ३४ ॥ और लोहेके जालको तोड़ त

हुआ ॥ ३६ ॥ वदति नदीपति समुद्रके दूसरी पार जाकर दूसरे वनमें परम पवित्र रमणीक एक निर्जन आश्रम रावणने देखा ॥ ३७ ॥ रावणने देखा कि मारीचने निगावर मृगचर्म और जगजूट धारण करके निपटाहार कर वहां वास करताहै ॥ ३८ ॥ राक्षस मारीच रावणको देखतेही मिला और यथा विधानसे विविध भोग्य वस्तुओंसे रावणकी पूजा करताहुआ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भोजनकी सामग्री बजलसे स्वयं रावणकी पूजाकर मारीच अर्थयुक्त वचन बोला ॥ ४० ॥ हे राजन् राक्षसेन्द्र ! आपकी और लंकाकी कुशलतावो है ? फिर आप किस कारणसे यहां शीघ्रही पधारें हैं ॥ ४१ ॥ जब मारीचने ऐसा कहा तब ॥ ४२ ॥ हे राजन् राक्षसेन्द्र ! आपकी और लंकाकी कुशलतावो है ? फिर आप किस कारणसे यहां शीघ्रही पधारें हैं ॥ ४३ ॥

बोलनें चतुर महातेजस्वी रावणने इसप्रकार कहना आरंभ किया ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां पंचविंश सर्गः ॥ ४५ ॥

तंतुगत्वापरंपरसमुद्रस्यनदीपतेः ॥ ददर्शाश्रमेकस्मिन्पुण्येऽस्येवनांतरे ॥ ३७ ॥ तत्रकृष्णजिनघरंजटामंडलयारिणम् ॥ ददर्शनियताहांनां
रीचंनाराक्षसम् ॥ ३८ ॥ सरावणःसमागम्यविधिवत्तेनरक्षसा ॥ मारीचेनार्चितोराजासर्वकामैरमातुषः ॥ ३९ ॥ तत्स्वयंपूजयित्वाचभोजनं
नोदकेनच ॥ अर्थोपहितयावाचामारीचोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४० ॥ कश्चित्कुशलंराजल्लंकायांरक्षसेश्वर ॥ केनार्थेनपुनस्त्वर्वैतूणमेवइहागतः ॥ ४१ ॥
एवमुक्तोमहोत्तमारीचंनसरावणः ॥ ततःपश्चादिदंवाक्यमब्रवीद्राक्ष्यकोविदः ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकां
ऽरण्यकांडे पंचविंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ मारीचश्च्युतांततातवचनंमभाषतः ॥ आतोऽस्मिममचार्तस्यभवान्हिपरमागतिः ॥ १ ॥ जानीयेतां
नस्थानंभ्रातायत्रलरोमम ॥ दूषणश्चमहाबाहुःस्वसाशूर्पणखाचमे ॥ २ ॥ त्रिशिराश्चमहाबाहूराक्षसःपिशिताशनः ॥ अन्येचबहवःशङ्गा
लब्धलक्षानिशाचराः ॥ ३ ॥ वसन्तिमन्त्रियोगेनअधिवासंचराक्षसाः ॥ बाधमानाभहारण्येमुनीन्येधर्मचारिणः ॥ ४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभ्रान
कर्मणाम् ॥ शूराणालब्धलक्षणांस्त्रिचिन्तानुवर्तिनाम् ॥ ५ ॥ तेत्विदानींजनस्थानेवसमानामहाबलाः ॥ संगताःपरमायत्तारोभेणसहसंयुगे ॥ ६ ॥

ताव मारीच ! कहाताहूं श्रवण करो । हम वडे दुःखी हैं, तुमही विपदके समय हमारी परम गतिहो ॥ १ ॥ जिस स्थानमें हमारा भाई श्वर और महाबाहु दूषण
पहन शृण्णरा रक्षा करतीथी उस जनस्थानको तुम जानतेहीहो ॥ २ ॥ मांसका सानेवाला राक्षस त्रिशिरा व औरभी बहुत निशाचरगण युद्धमें उत्साही व शूरवीर ॥ ३
मेरी आज्ञा पालन करते हुए वहां वास करतेथे । वह सब निशाचरगण महावनमें धर्मचारी क्षत्रियोंके अनुष्ठानमें सदाही चाधा दिया करतेथे ॥ ४ ॥ इन सब राक्षसों
मेंगया १४००० चाँदह हजार थी, वह सबही भयंकरकर्म करनेवाले शूर युद्धमें उत्साही और श्वरके चित्तके अनुसार कार्य करनेवाले थे ॥ ५ ॥ इससमय जन्म

नके रहनेवाले महावलवान खर इत्यादि राक्षस युद्धमें रामचंद्रके साथ ॥ ६ ॥ विविध भौतिके अस्त्र शस्त्र धारणकरके व दुर्भेद्य कवच बांधकर युद्धमें भिड़ये तब रामचन्द्रः
महामोघ करके ॥ ७ ॥ कुछभी कठोर वचन न कहकर धनुषपर बाण चढ़ाय उनको छोड़ चौदह हजार उग्रतेजवान राक्षसोंको ॥ ८ ॥ मनुष्य रामचंद्रने खर व दूषण
सहित सबको संग्राममें तीक्ष्ण दीनिमान नाराचोंसे संहार किया ॥ ९ ॥ और त्रिशिराकोभी मार दंडकवनको अभय करदिया । उस रामचंद्रका आचरणः
ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि उसके पिताने उसको निर्लज्ज जानकर स्त्रीसहित घरसे निकाल दिया है ॥ १० ॥ वही दुःशील, कर्करा, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभो-
और अधिजितेन्द्रिय, क्षत्रियकुलकलंक रामचंद्र इस राक्षसोंकी सेनाका मारडालनेवाला है ॥ ११ ॥ जो धर्मका त्याग और अर्थमका आश्रय करके सदाही प्रा-:

नानाशस्त्रप्रहरणाः खरप्रमुखराक्षसाः ॥ तेन संजातरोपेण रामेण मरणमूर्धनि ॥ ७ ॥ अनुक्तापरुपं किंचिच्छरैर्व्यापारितं यतुः ॥ चतुर्दशसहस्राणि राक्ष-
सामुग्रतेजसाम् ॥ ८ ॥ निहतानि शरैर्दोषैर्मानुषेण पदातिना ॥ खरश्च निहतः संख्येदूषणश्च निपातितः ॥ ९ ॥ इत्वा त्रिशिरसंचापिनिर्भयादं-
डकाः कृताः ॥ पित्रानिरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः ॥ १० ॥ संहता तस्य सेन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः ॥ अशीलः कर्करास्तीक्ष्णो मूर्खो-
व्योदजितेन्द्रियः ॥ ११ ॥ त्यक्तधर्मत्वं धर्मात्मा भूतानामहितैरतः ॥ येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमास्थाय केवलम् ॥ १२ ॥ कर्णेन सापहारेण भगि-
नीमं विरूपिता ॥ अस्य भार्या जनस्थानात् सीता सुसुतोपमाम् ॥ १३ ॥ आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव ॥ त्वया ह्यहं सहायेन पार्श्वस्थेन म-
हावल ॥ १४ ॥ भ्रातृभिश्च सुरान्सर्वान्नाहमत्राभिचितये ॥ तत्सहायो भवत्वमेसमर्थो ह्यसिराक्षस ॥ १५ ॥ वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव ॥
उपायतो महाञ्छूरो महामाया विशारदः ॥ १६ ॥ एतदर्थमहं प्राप्तास्त्वत्समीपं निशाचर ॥ शृणु तत्कर्म साहाय्ये त्वकार्यं वचनान्मम ॥ १७ ॥

योंका अहित करनेमें रत रहता है जिसने बिना वैरही केवल अपने बलके घमंडमें आय ॥ १२ ॥ नाक कान काटकर हथारी बहान शूर्पणखाको विरूप करदिया । इन
कारण जनस्थानसे उसकी स्त्री सीता जो कि देवताओंसे भी बढकर रूपमें है ॥ १३ ॥ हम अपने विक्रमसे ले आयेगे तुमको हथारी सहायता करनी होगी, तुम महावलवान
सहायके साथ ॥ १४ ॥ व अपने भाइयोंके संग हम सारे देवताओंकोभी कुछ नहीं गिन्ते, तिससे हे मारीच । तुम हमारे इस विषयमें सहायक हो क्योंकि तुम समर्थः
॥ १५ ॥ तुम महागुरुहो और सब प्रकारकी माया जानतेहो. वीर्य, युद्ध, दर्प और उपायमें तुम्हारी समान दूसरा कोई नहीं है ॥ १६ ॥ हे निशाचर । इसी कः
णमें हम ममय हम तुम्हारे समीप आये हैं इस समय हमारी सहायता करनेके लिये जो कुछ तुमको करना होगा सो हम कहते हैं, श्रुत भयन करो ॥ १७ ॥

तुम बाँदी की विन्दियें युक्त स्वर्णके मृग वनकर रामचन्द्रके आश्रममें जा सीताके सामने इधर उधर फिरना ॥ १८ ॥ सीता मृगहारी तुमको देखकर निःसन्देहही अपने स्वामी रामचंद्र और लक्ष्मणसे यह कहैगी कि इस मृगको पकड़दो ॥ १९ ॥ जब वह रामचंद्र और लक्ष्मण मृगको पकड़नेके लिये आश्रमसे दूर निकल जाँयेंगे तब हम शून्य आश्रम पाकर सीताकी सुसहिति निर्विघ्न छे आवेंगे, जिस प्रकार राहु चंद्रयाकी प्रभाको हरण कर लेता है ॥ २० ॥ जब उनकी स्त्री हर लीजायगी तब रामचंद्र शोकके मारे दुर्बल होजाँयेंगे तब कृतार्थ होकर यथासुख और निःशंक चिन्तसे रामचन्द्रको संग्राममें जीतेंगे ॥ २१ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनतेही महात्मा मारीचका मुत्त मुत्त गया और वह अतिशय भयभीत होगया ॥ २२ ॥ और चिन्ताके बश होकर अपने सुखे होठोंको जीभसे चाटने लगा और उसके नेत्र प्रानों

सौवर्णस्त्वंमृगोपध्वत्वाचित्रोरजतविंदुभिः ॥ आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर ॥ १८ ॥ त्वांतुनिःसंशयसीतादृष्टुमृगरूपिणम् ॥ गृह्यता
मितिभर्तारिलक्ष्मणंचाभिधास्यति ॥ १९ ॥ ततस्तयोरपययुञ्जून्येसीतायांसुखम् ॥ निरावायोहरिव्यामिराहुश्चंद्रप्रभामिव ॥ २० ॥ ततः
पश्चात्सुखरामेभार्याहरणकर्षिते ॥ विखब्धप्रहरिव्याभिकृतार्थेनान्तरात्मना ॥ २१ ॥ तस्यरामकथांश्रुत्वा(मारीचस्यमहात्मनः ॥ शुष्कंसमभद्र
क्रंयिं त्रस्तोन्नभूवच ॥ २२ ॥ ओष्ठौपरिलिहन्नुष्कानेनैर्गनिर्मिपेरिव ॥ मृतभूतइवावर्तस्तुरागणंसमुदशत ॥ २३ ॥ सरावणंत्रस्तविपणचेतामहावने
गमपराक्रमज्ञः ॥ कृतांजलिस्तत्त्वमुवाचवाक्यंहितंचतस्मैहितमात्मनश्च ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्य० यद्विंशःसर्गः ॥ ३६ ॥
तच्छ्रुत्वारक्षसंद्रस्यवाक्यत्रिशारदः ॥ प्रत्युवाचमहातेजामारीचोराक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥ सुलभाःपुरुंपाराजन्सततंप्रियवादिनः ॥ अप्रियंस्य
चपथ्यस्यक्ताश्रोताचदुर्लभः ॥ २ ॥ ननूनघुध्यसेरामंमहावीर्यगुणोन्नतम् ॥ अयुक्तचारश्चपलोमहेंद्रवरुणोपमम् ॥ ३ ॥

निर्मेयहीन होगये । मारीच आरतभावसे मृतकतुल्य होकर रावणकी ओर देखता रहगया ॥ २३ ॥ वह पहलेहीसे महाबनमें श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जानस, था ।
इमीकारणसे भयभीत और शोक्तिचिन्तसे हाथ जोड़कर रावणसे अपने व उसके हितके करनेवाले वचन बोला ॥ २४ ॥ ॥ इत्यापें श्रीमद्रामायणे वाल्मी
कीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां पट्टविंशः सर्गः ॥ ३६ ॥ ॥ महातेजस्वी राक्षसराजके यह वचन सुन वाक्यविशारद मारीच उससे बोला ॥
॥ १ ॥ हे राजन् ! मुहँ देखी कहनेवाले लोग बहुत मिलते हैं किन्तु सुननेमें कुप्यारे और वास्तवमें हितकारीहों ऐसे वचनोंके कहने सुननेवाले दोनोंही संसारमें
रूप मिलते हैं ॥ २ ॥ एक तो तुमने दूतोंको नहीं नियुक्त कर रखवाहै कि, जिससे सब स्थानोंका वृत्तांत तुमको मिलता रहै, दूसरे तुम्हारा स्वभाव चंचल

हे । इसी कारणसे रामचन्द्र जो साक्षात् महेन्द्र और कुवेरकी समान महावीर्यवान् और श्रेष्ठ गुणोंकरके युक्त हैं इस बातको तुमने नहीं जाना ॥ ३ ॥ दे तात ! रामचन्द्रसे वर करनेमें क्या राक्षसकुलका मंगल होगा ? रामचन्द्र क्रोधित होनेपर क्या सर्व लोक राक्षसोंसे शून्य नहीं कर सकते हैं ? ॥ ४ ॥ क्या जानकी तुम्हाराही नाश करनेके लिये तो उत्पन्न नहीं हुई हैं ? कहीं सीताके ले आनेका यह व्यवहार तुम्हारे दुःखका कारण न हो ? ॥ ५ ॥ तुम इच्छानुसार चलनेवाले और निरंकुशहो अर्थात् तुम्हारा कहने सुननेवाला कोई नहीं है इसकारण तुम्हारे राजा होते समस्त लंका तुम्हारे और सर्व राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट नहीं होगी ? अर्थात् अवश्य होगी ॥ ६ ॥ तुम्हारी समान जो राजा बुरे शीलवाला पापबुद्धि और इच्छानुसार चलनेवाला होता है, वह राजा अपनेको, समस्त राज्य अपने कुटुंबियोंको नारा करनेका कारण होता है ॥ ७ ॥ रामचन्द्र अपने पिता करके नहीं त्यागे गये हैं, वह मर्यादा रहित भी नहीं हैं, अथवा लोभी, दुःशील अंश अपिस्वस्तिभवेत्तातसर्वेषामपिरक्षसाम् ॥ अपिरामो न संकुदः कुर्याल्लोकानराक्षसाम् ॥ ४ ॥ अपितेजीवितांतायनोत्पन्नाजनकात्मजा ॥ अपि सीतानिमित्तंचनभवेद्वयसनंमहत् ॥ ५ ॥ अपित्वामीश्वरप्राप्यकामवृत्तंनिरंकुशम् ॥ नविनश्यत्पुरीलंकात्वयासहसराक्षसा ॥ ६ ॥ त्वद्विधः कामवृत्तोहिदुःशीलः पापमन्त्रितः ॥ आत्मानंस्वजनराट्सराजाहंतिदुर्मतिः ॥ ७ ॥ नचपित्रापरित्यक्तोनामर्यादः कथंचन ॥ नलुब्धो नचदुःशीलोनचक्षत्रियपांसनः ॥ ८ ॥ नचधर्मगुणैर्हिनः कौसल्यानंदवर्धनः ॥ नचतीक्ष्णोहिभूतानांसर्वभूतहितैरतः ॥ ९ ॥ वंचितं पितरं दृष्ट्वा कैकेय्या सत्यवादिनम् ॥ करिष्यामीति धर्मात्मा ततः प्रव्रजितो वनम् ॥ १० ॥ कैकेय्याः प्रियकामार्थपितुर्दशरथस्य च ॥ हित्वाराज्यं च भोगांश्च प्रविष्टो दंडकावनम् ॥ ११ ॥ नरामः कर्कशस्तातना विद्वान्नाजितेन्द्रियः ॥ अनृतं न श्रुतंचैव नैवं त्वं वल्लुमर्हसि ॥ १२ ॥ रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः ॥ राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः ॥ १३ ॥

क्षत्रियवंशके नाराकभी नहीं हैं ॥ ८ ॥ कौशल्याकुमार अपनी माताके आनंदको बढ़ाने वाले धर्मसे वा गुणोंसे हीन नहीं हैं; उनका तीक्ष्ण स्वभाव नहीं है और वह सदा प्राणियोंका अहित करनेमें रतभी नहीं हैं वरन् सबका हित करनेमें तत्पर हैं ॥ ९ ॥ अपने सत्यवादी पिताको कैकेयी करके ठगा हुआ देवकर वह रामचन्द्रजी उनके सत्य रक्षा करनेके लिये वनको चले आये हैं ॥ १० ॥ और पिता दशरथ, व रानी कैकेयीका प्रियकार्य करनेकी वासनासे राज्यसुखको जलंजलि देकर श्रीरामचन्द्रजी दंडकारण्य आये हैं ॥ ११ ॥ हे तात ! रामचन्द्र कर्कशस्वभाववाले भी नहीं हैं, मूर्ख भी नहीं हैं, अजितेन्द्रिय भी नहीं हैं और मिथ्या कहना तो दूर है, वह इस झूठाईके प्रसंगमें भी नहीं हैं, सो उनके प्रति ऐसे गचन कइना आपको उचित नहीं है ॥ १२ ॥ अधिक कहना तक कहें, रामचन्द्र धर्मयुति हैं, साधु हैं, सत्यपराक्रमवान् हैं और इन्द्र जिस प्रकार देवता

भ्रष्ट मरने हैं ईसही वस्ती सब जोरोंके राजा हैं ॥ १३ ॥ वह अपने तेजमे जनकुमारी जानकीजीकी रक्षा करते हैं तुम किस प्रकारसे उनकी जानकीजीका
 हरन करनेकी इच्छा करनेहो ? क्योंकि उनके हरण करनेकी इच्छा करना मानो सूर्यकी किरणको हाथसे पकड़नाहै ॥ १४ ॥ सब बाणही जिसकी शिखा
 है गुरु और गुरु जिसके ईश्वर हैं, और जिसकी नीमामें गमन करना अंभभव है सो उस रामरूप प्रज्वलित अग्निमें सहसा प्रवेश करना तुमको उचित नहीं
 है ॥ १५ ॥ गुरुका चढ़नाही जिसका प्रकाशित मुखहै, बाणही जिसकी दीपि है इसीसे अमल धनुर्बाण धारण किये; इसीमे तीक्ष्ण और रात्रुओंकी सेनाके संहार
 करो ॥ १६ ॥ कृतान्न ममान रामचन्द्रजीके मन्त्रव राज्य सुख जीवन और अपना इष्ट छोड़कर तुमको जाना उचित नहीं । यदि गयेभी तो जातेही तुम्हारा नाराहो
 जायगा ॥ १७ ॥ उनके तेजकी तुम्हना नहीं है, जानकी उनकीही मी है और मदाही उनके धनुर्वलका आश्रय करके बनये वास करतीहै । तुम किसी भांतिभी जानकीको
 कर्तव्यन्यवेदोंकी शिखीस्वनेतजसा ॥ इच्छुसेप्रसभंहेतुप्रभामिचविवस्वतः ॥ १८ ॥ शराचिपमनाधुप्यचापखड्गवर्नरेणे ॥ रामाग्रिसहसादीप्तनप्रवेदं
 तपसहसि ॥ १९ ॥ धनुर्व्यादितदीतास्यंशराचिपममरणः ॥ नापवाणधरंतीक्ष्णशत्रुसेनापहारिणम् ॥ २० ॥ राज्यंमुखं च संत्यज्य जीवितं चेष्टमा
 रमनः ॥ नात्यागादयिनुनातगमातकमिहाहंसि ॥ २१ ॥ अप्रमेयं हितत्तेजो यस्य साजनकात्मजा ॥ न त्वंसमर्थस्तां हतुरामचापाश्रयां वनेन ॥ २२ ॥ दीप्त
 गन्धैरेव मिदम्यमिहो गच्छस्य भामिनी ॥ प्राणेभ्योऽपि प्रियतराभार्या नित्यमनुव्रता ॥ २३ ॥ न सार्धर्पयितुं शक्या मेथिल्यो जस्विनः प्रिया ॥ दीप्तं
 मंत्रदृग्नाभस्य शिगामीनामुभयमा ॥ २४ ॥ क्रियुद्धमर्थमर्थमिदं कृत्वा तेराक्षसाधिप ॥ दृष्टश्चेत्वरणे तेन तदंतुषु जीवितम् ॥ २५ ॥ जीवितं
 नमृगं नैव गजं नैव सुदुर्लभम् ॥ मम वैः सचिवैः सार्धविभीषणपुरस्कृतेः ॥ २६ ॥ मंत्रयित्वा सधर्मिष्ठैः कृत्वा निश्चयमात्मनः ॥ दोषाणां च गुणानां
 नमं प्रयत्नं रात्रायतम् ॥ २७ ॥ आत्मनश्च वलं ज्ञात्वा रात्रस्य च तत्त्वतः ॥ हितं हितवनिश्चित्य क्षमं त्वंकर्तुमर्हसि ॥ २८ ॥

नमं प्रयत्नं रात्रायतम् ॥ २९ ॥ आत्मनश्च वलं ज्ञात्वा रात्रस्य च तत्त्वतः ॥ हितं हितवनिश्चित्य क्षमं त्वंकर्तुमर्हसि ॥ २९ ॥ प्रज्व
 हरण नहीं कर सकोगे ॥ ३० ॥ मित्रके समान चीड़ी छातीवाले नरसिंह रामचन्द्रजी नित्य अनुगत सीताजीको प्राणसे भी प्यारी समझते हैं ॥ ३१ ॥ २० ॥
 ३२ ॥ श्रद्धिभी शिपाके गमान तेजस्वी रामचन्द्रजीकी प्रिय मी श्यामा अवस्थावाली जानकीको हरलानेकी किसीको भी सामर्थ्य नहीं है ॥ २० ॥
 ३३ ॥ गजगज ॥ गुरदाग इय निरर्थक उपपमे प्रयोजन क्या है ? जो वनमें रामचन्द्रजी कहीं नुहें मिलभी गये तो वहाँ तुम्हारे जीवनकी इतिश्री होजायगी ॥ २३ ॥
 ३४ ॥ गज गज गज गज इय मंसगमें महादुर्लभ है हमसे जो सुग भोग किया चाहो तो रामचन्द्रजीसे वैराभाव न करो अब यहांसे जाय सब विभीषणादि मंत्रियोंके
 साथ ॥ २२ ॥ मन्दाहकर अपना वस्ती भी स्थिर कर गुन दोषोंसे विचार रामचन्द्रजीके और अपने बलको जांचकर ॥ २३ ॥ फिर रामचन्द्रजीके बलमें अपना बल मित्या

तुम मेरी रायमें तो तुमको चुप रहना उचित है। बस तुम्हारा हित इसीमें होगा हमारे इन कड़े वचनोंको जो मैंने आपका हित करनेके लिये कहे हैं क्षमा करना ॥ २४ ॥ हमें कौनसापापि दशरथजीके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीके साथ तुम्हारा युद्धमें समागम करना अच्छा नहीं लगता, इसकारण हे राक्षसनाथ ! फिरभी तुम्हें द्वितीकी युक्तियुक्त चार्ना कहता हूं तुम श्रवण करो ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥
 मैं एक समय अपने बलवीर्यके धमंडके गारे पृथ्वीपर घूमता हुआ फिरताथा मेरे पर्वतकी समान शरीरमें सहस्र हाथियोंका बलथा ॥ ३ ॥ हाथमें परिच आदि० लिये मस्तकपर किरिट कानमें तपाये हुए सोनेके बने कुण्डल पहरेथा । मेरे देहकी कान्ति नीले चादरोंके समानथी इसप्रकारकी अवस्थामें लोकोंको भय उपजा दुआ ॥ २ ॥ मैं दंडक वनमें घूम २ कर ऋषिगणोंका मांस भक्षण करताथा अनन्तर धर्मात्मा महाभुनि विश्वामित्रजी मेरे भयसे भीत होकर ॥ ३ ॥ स्तुति अहंतुमन्येतवनक्षमंरणेसमागमंकोसलराजसूनुना ॥ इदं हि भूयः शृणुवाक्यमुत्तमंक्षमंचयुक्तंचनिशाचराधिप ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० अर० सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ कदाचिदप्यहंवीर्यात्पयदं नृपिमीमाम् ॥ बलनागसहस्रस्यधारयन्पर्वतोपमः ॥ ३१ ॥ नीलजीमूतसंकाशस्तत्तत्कांचनकुंडलः ॥ भयंलोकस्यजनयन्किरीटीपरिघायुधः ॥ २ ॥ व्यचरन्दंडकारण्यमृपिमांसाभिभक्षयन् ॥ विश्वामित्रोयथार्त्तात्मा मद्रिजस्तो महाभुनिः ॥ ३ ॥ स्वयंगत्वादशरथं नरेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥ अयं क्षतुमांरामः पर्वकाले समाहितः ॥ ४ ॥ मारीचान्मेभयघोरं समुत्पन्नं नरेश्वर ॥ इत्येवमुक्तो धर्मत्तिमाराजादशरथस्तदा ॥ ५ ॥ प्रत्युवाच महाभागं विश्वामित्रं महाभुनिम् ॥ ऊनद्रादशरथोऽयमकृतास्त्रधराधवः ॥ ६ ॥ कामंतुममत्तस्तेन्यमया सह गमिष्यति ॥ बलेन चतुरंगेण स्वयमेत्यनिशाचरम् ॥ ७ ॥ वधिष्यामि मुनिश्रेष्ठ शत्रुतव यथेप्सितम् ॥ एवमुक्तः स तु सुनीराजानमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ रामान्नान्यद्रलंलोकैर्पयांसितस्य रक्षसः ॥ देवतानामपि भवान्समरेष्वभिपालकः ॥ ९ ॥

जाकर राजा दशरथसे यह बोले कि, अमावस्या और पूर्णमासीको जब हम समाधि अवस्थामें रहेंगे उस समय इन रामचंद्रको हमारी रक्षा करनी होगी ॥ ४ ॥ हे राजन् ! मारीच राक्षससे हमको घोर भय उत्पन्न हुआ है । जब ऋषिने इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा राजा दशरथ ॥ ५ ॥ उन महर्षि महाभाग विश्वामित्रको प्रत्युत्ते देने हुए कि, रामकी अवस्था अभी सोलह वर्षोंसे भी कम है और अश्वविद्याभी अभी इन्हें नहीं आती ॥ ६ ॥ इसकारण इनको नहीं देसकते पन्तु तुम्हारा कार्य करनेके लिये हम अपनी बही भारी चतुरंगिनी सेना सहित चलकर वहां उस निशाचरको ॥ ७ ॥ यमलोकमें पठावेंगे जोकि आपका शत्रु है, जिसका संहार करना आपको अभीष्ट है, निशाचरिणी राजा दशरथजीके यह वचन सुन उन्ने बोले ॥ ८ ॥ यद्यपि यह मन्द है कि, आप संग्राममें देखनाओंकेभी उत्तरक भरे भीतर गुप्तकार्य किंचित्

छोकमें प्रगट्ही परन्तु रामचंद्रके सिवाय और किसीका चलाभी इस राक्षसका नाश करनेमें समर्थ नहीं होगा, इस कारण हे परंतप ! तुम्हारी जो बड़ी भारी चतुरंगिनी
 मेनाई यह यहीं रहे ॥ १९ ॥ ३० ॥ यह महातेजस्वी रामचंद्र चालक होनेपरभी राक्षसोंका नाश करनेमें समर्थ होंगे इससे हम इनको लेजायेंगे । हे राजन् !
 तुम्हारा कल्याणहो ॥ ३१ ॥ महर्षि विभामित्रजी यह कहकर श्रीरामचंद्रजीको सायले परप्रतीयुक्त हो अपने सिद्धाश्रममें आये ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे जब
 महर्षि विभामित्रजी यज्ञ करनेके लिये दीक्षित हुए, तब श्रीरामचंद्रजी विचित्र धनुषकी टंकार करतेहुए विभामित्रजीके समीप आये ॥ ३३ ॥ उनके गलेमें
 सुवर्णकी माला मस्तकपर अलङ्कें हाथमें धनुष, दोनों नेत्र परम सुन्दर, एक मात्र जांधिया पहरे ब्रह्मचारी शरीर श्यामल वर्ण और अतिसुन्दरताईसे शोभायमान,
 तबतक उनके रस इत्यादि पुरुषचिह्न नहीं प्रगट् हुएये ॥ ३४ ॥ वह अपने तेजसे समस्त दंडकारण्यको सुयोधित करके द्वितीयाके चंद्रमाकी समान उदय होते हुए
 आसीत्तबकृतकर्मत्रिलोकविदितं नृप ॥ काममस्तिमहत्सेन्यतिष्ठत्विहपरंतप ॥ ३० ॥ वाल्म्येयमहतेजाः समर्थस्तस्य निग्रहे ॥ गमिष्ये राम
 मादायस्वस्तिनोऽस्तु परंतप ॥ ३१ ॥ इत्येवमुक्तासमुनिस्तमादाय नृपात्मजम् ॥ जगाम परमप्रीतो विधां मित्रः स्वमाश्रमम् ॥ ३२ ॥ तंतथादंड
 कारणेयजमुद्दिश्य दीक्षितम् ॥ ध्रुवोपस्थितो रामश्चित्रिस्फारयन्धनुः ॥ ३३ ॥ अजातव्यं जनः श्रीमान्वालः श्यामः शुभेक्षणः ॥ एकवस्त्रधरो
 धन्यशिलीकनकमालया ॥ ३४ ॥ शोभयन्दंडकारण्यं दीप्तेन स्वेन तेजसा ॥ अदृश्यत तदारामो बालचंद्र इवोदितः ॥ ३५ ॥ ततोऽहं मेवं संकाश
 स्तप्तकांचनकुंडलः ॥ बलीदत्तवरो दर्पादाजगामाश्रमांतरम् ॥ ३६ ॥ तेन दृष्टः प्रविष्टोऽहं संसेवोद्यतां युधः ॥ मातुहं द्वाधनुः सज्यमसंभ्रांतश्चकार ह
 ॥ ३७ ॥ अवजानन्नसंमोहाद्बालोऽयमितिराववम् ॥ विधामित्रस्य तं त्रिदिग्भ्यर्थायैकतत्त्वः ॥ ३८ ॥ तेन मुक्तस्ततोऽज्ञानः शितः शत्रुनिर्वहणः ॥
 तेनाहं ताडितः शितः समुद्रशतयोजने ॥ ३९ ॥ नेच्छतातातमहं नुनं दामीरेणरक्षितः ॥ रामस्य शरवेगेन निरस्तोऽब्रूंतचेतनः ॥ २० ॥
 दिग्गन्धार्द्रं दत्ते लगे ॥ ३५ ॥ उस समय हम तनकाञ्चन कुण्डलधारी, मेवका रंग धारण करके ब्रह्माजीके दिये हुए वस्त्रभावसे बलमदसे दण्डित हो विभामित्रजीके
 आश्रममें आये ॥ ३६ ॥ मैं जैमेही उनसे छिपकर हथियार लेकर आया वैसेही हमको आया हुआ देखतेही श्रीरामचंद्रजीने तत्क्षण आयुध उठाकर हण्डित हो
 धनुषपर गर चढ़ाया ॥ ३७ ॥ बहुतेही मोहवश होनेके कारण हम बालक समझ उनको ध्यानमें न लाकर बड़ी शीघ्रतासे विभामित्रजीकी यज्ञवेदीके ऊपर को दौड़े ॥
 ॥ ३८ ॥ यह देखकर श्रीरामचंद्रजीने शत्रुओंके मारनेवाले तीसे बाणोंको चला हमें घायल कर शत योजन दूर समुद्रमें फेंक दिया ॥ ३९ ॥ हे तात ! हमारे
 मारनेही इच्छा उस समय उनकी नहीं थी इसीकारणसे उन्होंने उस समय हमको संहार न कर रक्षा की तिसके पीछे हम रामचंद्रजीके बाणवेगसे मृिउत होकर उतनी

है । इस कारणसे उनके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है । वह राम बलि अथवा नमुचिको संहार करनेमें भी समय है ॥ १७ ॥ हरावण ! तुम रामचन्द्र-
 साथ युद्ध करो वा न करो, परन्तु यदि हमको देखनेका अभिलाष करतेहो तो हमारे साथ श्रीरामचन्द्रजीकी वार्त्ता मतकरो नहीं तो हम यहांसे चले जायेंगे ॥ २०
 हम लोकमें धर्मका अनुष्ठान करनेवाले योगयुक्त होकरभी बहुतसे पुरुष पराया अपराध करनेसे सपरिवार विनाराको भ्रान्त हुए हैं ॥ २१ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे अपरा-
 धमको नाश होना पड़ेगा. हे निगाचर ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो, परन्तु हम तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे, हमें अपने प्राण प्यारे हैं ॥ २२ ॥ वह महातेजस्-
 वान्नुद्धिमान् महाबलवान् रामचन्द्रजी वास्तवमेंही निराचरोंके काल हैं ॥ २३ ॥ यद्यपि पहले जनस्थानका रहनेवाला अपावन खर, शूर्पणखाके लिये रामचन्द्रसे म-
 रणरामेणयुद्धस्वप्नामांशकुरुरावण ॥ नन्तरामकथाकार्यायदिमांद्रुमिच्छसि ॥ २० ॥ वहवःसाधवोलोकेंयुक्ताधर्ममनुष्ठिताः ॥ परंपामपरा-
 धेनविनष्टाःसपरिच्छिन्नाः ॥ २१ ॥ सोऽहंपरापराधेनविनशेयंनिशाचर ॥ कुरुयत्तेक्ष्मंतत्त्वमहंत्यानानुयामिवे ॥ २२ ॥ रामश्चहिमहातेजामहास-
 त्त्वोमहाबलः ॥ अपिराक्षसलोकस्यभवेदंतकरोऽपिहि ॥ २३ ॥ यदिशूर्पणखादेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोदतःपूर्वरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥
 अत्रयद्वियथातत्त्वंकोरामस्यव्यतिक्रमः ॥ २४ ॥ इदंयचोत्रंभुङ्क्षिताथिनामयायथोच्यमानंयदिनाभिपत्स्यसे ॥ सर्वाधवस्त्यक्ष्यसिजीवितरणेह
 तोऽद्यगमंशरंरंजिह्वेगः ॥ २५ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांड एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ मारीचस्यतु
 तद्वाक्यंशंमयुक्तंकरावणः ॥ उक्तोऽनप्रतिजग्राहमर्तुकामइवोपयम् ॥ १ ॥ तंपथ्यहितवत्कारंमारीचंराक्षसाधिपः ॥ अत्रवीतपुरुषंवाक्यमयुक्तंकाल
 नोदितः ॥ २ ॥ दुष्कुलेतदयुक्ताथमारीचमयिकथ्यते ॥ वाक्यंनिष्कलमत्यर्थवीजमुत्तमिवोखरे ॥ ३ ॥

वाक्यमयाई, परन्तु इस विषयमें रामचन्द्रजीका क्या अपराध है सो तुम्ही सत्य २ कहो ॥ २४ ॥ तुम हमारे बन्धुहो इस कारणसे हमने तुम्हारे मंगलकेही लिये य-
 मत्त वचन कहे, यदि तुम हमारे वचनोंको न मानकर रामचन्द्रसे वर करोगे तो निश्चयही बन्धु बान्धवों सहित रामचन्द्रजीके बाणोंसे युद्धमें विनाशको प्राप्तह-
 तुमको माण पागत्याग करना पड़ेगा ॥ २५ ॥ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥
 निम प्रकार मृत्यु विमर्श की निकटई ऐसा रोगी औषधि ग्रहण नहीं करता ऐसेही सहनेके योग्य व उचित मारीचके वचन रावणने ग्रहण नहीं किये ॥ ३ ॥ उस का-
 योर्न निगाचरपति रावणने मंगलजनक और शुचियुक्त संगत वचन कहने वाले मारीचसे अयोग्य व कठोर वचन कहे ॥ २ ॥ हे मारीच ! तुमने जो यह रा-
 वण

प्रतिकूलजन हमसे कहे, यह अयोध है और ऊसरमें बीजबोनेकी समान ॥ ३ ॥ तुम्हारे वचन मुझे युद्धमें रामसे नहीं हरासकते कारण कि, वह मूर्ख पापशील साधारण मनुष्य है ॥ ४ ॥ निष्कल है जो पुरुष साधारण स्त्रीके कहनेसे माता, पिता, राज्य और सुहृदोंको छोड़कर एकसाथ वनमें चला आया है यह मूर्खता नो क्या है ॥ ५ ॥ सो हम तुम्हारे सामने अवश्यही युद्धमें खरके नाशकरनेवाले उस रामकी प्राणसे अधिक प्यारी भार्याको हरण करेंगे ॥ ६ ॥ रेमारीच ! हम अपनी बुद्धिसे अपने हृदयमें ऐसा निश्चय करही लिया है, सो इन्द्रके सहित सुरासुरगणभी इसके विरुद्ध नहीं कर सकते । अर्थात् हमको इस संकल्पसे नहीं डर सकते ॥ ७ ॥ यदि हम इस कार्यके विषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय करनेको तुमसे पूछते, तब तुमको उसके दोष, गुण, हानि, लाभ उपाय, इत्यादि कहने उचित थे ॥

त्वद्वायैर्न तु मां शङ्क्यं भेत्तुरामस्य संयुगे ॥ मूर्खस्य पापशीलस्य मानुषस्य विशेषतः ॥ ४ ॥ यस्य क्त्वा सुहृदो राज्ञ्यं मातरं पितरं तथा ॥ स्त्रीवाक्यं प्राकृतं तं श्रुत्वा वनमेकपदे गतः ॥ ५ ॥ अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरधातिनः ॥ प्राणैः प्रियतरासीता हर्तव्या तत्र संनिधौ ॥ ६ ॥ एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच विद्यते ॥ नव्या वर्तयितुं शक्या सोऽद्रिपि सुरासुरैः ॥ ७ ॥ दोषगुणवासंस्पृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि ॥ अपायं वा उपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये ॥ ८ ॥ संपृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता ॥ उद्यतां जलिनारज्ञो यश्चेच्छ्रुतिमात्मनः ॥ ९ ॥ वाक्यमप्रतिकूलं तु मृदु पूर्वशुभं हितम् ॥ उपचारणवत् व्योयुक्तं च वसुधाधिपः ॥ १० ॥ सावमर्दयद्वाक्यमथ वाहितमुच्यते ॥ नाभिनन्दे तद्वाजामानार्थी मानवर्जितम् ॥ ११ ॥ पंचरूपाणि राजानो धारयन्त्यभितो जसः ॥ अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ॥ १२ ॥ औष्ण्यं तथा विक्रमं च सोम्य दंडं प्रसन्नताम् ॥ धारयन्ति महात्मानो राजानः क्षणदा चर ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मान्याः पूज्याश्च नित्यदा ॥ त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं मोहमाश्रितः ॥ १४ ॥

॥ ८ ॥ जो ज्ञानवान मंत्री अपने पेश्वेके अभिलाषी होते हैं वह राजा करके पूछे जानेपर हाथ जोड़ पूछे हुए विषयका उत्तर नम्रतासे निवेदन करते हैं ॥ ९ ॥ कारण कि, राजाओंके समीप, उपचारयुक्त मनोहर, मंगलजनक अप्रतिकूल वचनही कहने ठीक हैं ॥ १० ॥ मंगलजनक वचनसे भी यदि अपमान होता हो तो माननीय राजालोग उस सम्मान रहित वचनोंको सुन प्रसन्न नहीं होते अथवा ग्रहण नहीं करते ॥ ११ ॥ हे, निशाचर ! अभितोजस्वी महात्मा भूपतिलोग, अग्नि, इन्द्र, चंद्र, हम और वरुण दन वन देवताओंका रूप धारण करते हैं ॥ १२ ॥ हमसे ही हे मारीच ! उनमें अधिकारी गरमाई, इन्द्रका पराक्रम, चंद्रमाकी शीतलताई, यम, राजाकी समान देवता, अग्नि वरुणोंके समान प्रसन्नता लेनी है ॥ १३ ॥ इन प्रकारगरे वचनोंके अभावमें तुम पर मान्यमान करवाते हो ॥ तुम भोक्त विषय, कर्त्ता

इमं गमसो दगस्य विना युद्धं किये सीताको श्रमकर कृतकार्य हो फिर लंकापुरीको तुम्हारे सहित लौटोगे ॥ २५ ॥ हे निशाचर मारीच ! यदि तुम हमारे वचनोंके मगि एउ कगेने ना अभी हम तुमको मार डालेंगे, यह मेरा कार्य बलसे तुमको अवश्य करना होगा कोई पुरुष राजाके विरुद्ध आचरण करके सुख संपत्ति नहीं प्राप्त करेगा ॥ २६ ॥ रामचन्द्रके निकट जानेसे तुम्हारे जीवनमें संशय मात्र है, परन्तु हमारे साथ विरुद्धाचरण करनेसे इसी समय तुम्हारी मृत्यु निश्चय होगी, सो जान्ती सुडिमे मर्यादित विचार कर इस विषयमें जो कर्त्तव्य हो सो करो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकयां चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

मारीच राक्षसपति रावण दरके राजाकी नमान मनोगत विषयमें आज्ञा पाकर शंका रहित चित्तसे यह कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे निशाचर राज ! किस ग्राप्यसीतामयुद्धेन वंचयित्वा तुरायवम् ॥ लंकाप्रतिगमिष्यामि कृतकार्यः सहत्वा ॥ २६ ॥ नोचेत्करोपि मारीच हन्मि त्वामहमद्यैव ॥ एतत्कार्यमवश्यमेव यत्नादपि कारिष्यसि ॥ राज्ञो विप्रति कूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥ २६ ॥ आसाद्य तं जीवित संशयस्ते मृत्युर्धुर्वोद्विष्य मया विरुध्यतः ॥ एतद्यथावत्परिगण्य बुद्ध्या दवदत्र पथं कुरुत तथा त्वम् ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ आइसो रावणनेत्रं प्रतिकूलं च राजजवत् ॥ अववीत्परुषं वाक्यं निःशंको राक्षसाधिपम् ॥ १ ॥ केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा ॥ सपुत्रस्य स राजस्य स्यात्मात्यस्य निशाचर ॥ २ ॥ कस्त्वया सुखिनाराजान्नाभिन्दति पापकृत् ॥ केनेदमुपदिष्टे मृत्युद्वारमुपायतः ॥ ३ ॥ शत्रवस्तवमुव्यसंतं हीनवीर्यानिशाचर ॥ इच्छंति त्वां विनश्यंतमुपरुद्धं वलीयसा ॥ ४ ॥ केनेदमुपदिष्टे शुद्धेणाहितबुद्धिना ॥ वस्त्वामिच्छति नश्यंतं स्त्वद्वृत्तेन निशाचर ॥ ५ ॥ वध्याः क्षत्रुन वध्यंते सन्निवास्तवरावण ॥ ये त्वामुत्पथमारुढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ॥ ६ ॥ अमात्यैः कामवृत्तो हिराजा कापथमाश्रितः ॥ निग्राह्यः सर्वथा सद्भिः सन्निग्राह्यो न गृह्यते ॥ ७ ॥

राप कर्म करनेवाले पुरुषने तुम्हें राज्य, मंत्रिर्गर्ग और पुत्रोंके सहित विनाश होनेका यह उपदेश दिया है ॥ २ ॥ कौन पापात्मा तुम्हारे सुखसे सुखी नहीं होसकता है किन पारीने उपायके छलमें यह तुम्हारी मृत्युका उपाय तुम्हें बतला दिया है ॥ ३ ॥ हे राक्षसनाथ ! तुम्हारे हीनवीर्य शत्रु लोग निश्चयही बलवान् पुरुषके साथ तुम्हारा विरोध कराकर तुम्हारा नाश होता देखनेके अभिलाषी हुए हैं ॥ ४ ॥ हे रावण ! किस दुष्ट बुद्धिवालेने तुमको ऐसा उपदेश दिया है ? उसदुष्टका यही अभिलाष है कि, तुम अपने कर्मोंके मभावमें ही नाशको मान दोओ ॥ ५ ॥ हे रावण ! मंत्रिगण किन्ही प्रकारसे मार डालनेके योग्य नहीं होते, परन्तु जो सोटे रस्तेमें पाएंगे पुरीसे नही रोकेंगे यही माररस्तेजके सोचेंगे ॥ ६ ॥ देखो तुम कामके रूप क्षेत्रकर भेटे पापोंमें खलना ब्याहनेहो और तुम्हारे मंत्रीगण तुमको साथ

नरुणं नदी गंगे. अथ मंत्रियाँ को राजा कुमांगमे निगृह्य करता चाहेय पना ॥ ७ ॥ हे निशाचर ! हे विजय करने वालोंमे उत्तम
 मंत्रिगण नरने म्नामीकीही प्रसन्नतासे धर्म, अर्थ, काम य गयको प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ और जो स्वाभीकीही प्रसन्नता न हुई तो सबही ब्र-
 म्नाई और म्नामीके पुत्रोंमे विकार होनेके कारण मवही दुःख भवते हैं और प्रजापरभी महाभय प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ नरपाल प्रजाओंके गया धर्मकी प्राप्ति
 नष्ट होती है. हम काम मवही अवस्थामे भलीभाँति राजाकी रक्षाकरनी ठीक है ॥ १० ॥ हे निशाचर ! अनि तीक्ष्ण स्वभाववाला सबका अनभल चाहनेवा-
 ला होता है. जो नष्टशानमे नहीं रहनेवाला राजा गज्यका पालन नहीं कर सकता है ॥ ११ ॥ जो मंत्री लोग बड़ी कठोर आज्ञा राजासे कहकर प्रकाशित व-
 र्णनसे और नष्टशानमे नहीं रहनेवाला राजा गज्यका पालन नहीं कर सकता है ॥ १२ ॥ इस लोके
 धर्ममे धर्मचक्रमे चयशश्चक्रनीर ॥ स्वामिप्रमादाम्बिवाः प्राप्नुवंति निशाचर ॥ ८ ॥ विपर्ययेतु तत्सर्वव्यर्थमवतिरावण ॥ व्यसनं स्वामि-
 नुग्राह्यमनुवंती नंजनाः ॥ ९ ॥ गजमूलोद्दिधमं शयशश्चक्रनीर ॥ तस्मात्सर्वास्वस्थासुरक्षितव्यानगधिपाः ॥ १० ॥ राज्यपालधि-
 श्रवणं नीद्वंजननिशाचर ॥ नचातिप्रतिकूलं नचाविनीनगशम ॥ ११ ॥ येतीक्ष्णमंत्राः सचिवाभ्युज्यते स हते नंदे ॥ विपमे पुरथाः शीघ्रमंदसा-
 न्धयोग्या ॥ १२ ॥ यददः साधयोलोक्रुत्यमनुष्ठिताः ॥ पंगमपराधेन विनष्टाः ॥ १३ ॥ स्वामिनाप्रतिकूलं न प्रजास्ती ॥
 नरायण ॥ गज्यमागानचर्यनं मुनागोमायुनायथा ॥ १४ ॥ अव्यं विनशिष्यति सर्वरावणगभमाः ॥ येषां त्यंकं शोराजुद्धि रजिते द्वियः ॥ १५ ॥
 नदिदं दानादीयं योगमामादिनं मया ॥ अन्नं चोचनीयोमिमं न्योविनशिष्यति ॥ १६ ॥ मां निहत्य नुरामोसावचिरात्वां विधायति ॥
 अनं नृपतुल्योस्मि प्रियं चाप्यभिगादतः ॥ १७ ॥ दर्शनं देवगमस्य हतं मामवधारय ॥ आत्मानं च हतं विद्धि हत्वासीतां मवांधवम् ॥ १८ ॥
 अंक मनुष्य दत्ति श्रमं नृपतुल्य किं अयं पदं चोचनीय वगने अगधमे धनुषां चोमति नाराको प्राप्त होगे हैं ॥ १९ ॥ हे दशानन ! प्रजा प्रतिकूलचारी तो
 नराचर राजासकं भक्षमानं दास्य, मियागं रुकं गतिन शया आदि मृगजोंकी नाई आगे वृद्धिको प्राप्त नहीं होती ॥ १४ ॥ अरे रावण ! तुम खेतीवृद्धिवाले
 इन्द्रियोंके तथा हृष्ट हो, रुदं म्भायशांटे हो, मंमे तुम जिनके राजाहो वह ममन्तही निशाचर अवश्यही मृत्युके प्राप्त हो जायगे ॥ १५ ॥ जिमने कि तुम स-
 धारता भी हुई मनुष्य भद्रं नृप शोचनीय हो, ईमरी नृपराग हमारे ऊपरभी काकवालीय न्यायकी समान अकस्मात् यह घोर दुःख आन पडा है ॥ १६ ॥ रामचं-
 दमपे मारग गिर नृपराग मंत्रार रुगे ॥ नृप रुकं भद्रं दायमे मां जानेन हम तो कृतार्थ होजायगे ॥ १७ ॥ परन्तु तुम निश्चय जानो कि, हम तो रामको

नहीं मरे धरेंगे और यह भी भलीभाँति समझ रखो कि, सीताको हरणकरेही तुम भी अपने परिवारसहित मारे जाओगे ॥ १८ ॥ यदि हमारे साथ मिल रामचंद्रजीको भोगादे तुम सीता महारानीको आश्रयसे लेभी आये, तौ हमारी, तुम्हारी, लंकापुरीकी, व निशाचर गणोंकी किसीकीभी रक्षा न होगी ॥ १९ ॥ यदि तुम हमारे इन क्षिरसारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करनेसे नहीं रुकोगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा क्योंकि जिस मनुष्यकी आयु क्षीण होजातीहै वह किसी सुदृढ़के हितकारी बननेको नहीं माना करता ॥ २० ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भापाटीकायामेकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥ ॥ मारीचने राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर, फिर उसके भयसे भीतहो यह भी कह दिया कि अच्छा हम चलते हैं ॥ १ ॥ वह धनुर्वाणधारी और खड्ग धारण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर व तुम्हारी ओर देखें तौ तुम अपने व हमारे प्राण गणही जानो ॥ २ ॥ हे तात ! रामचंद्रजीसे कैसाही आनयिष्यसिचेत्सीतामाश्रमात्सहितोमया ॥ नैवत्वमपिनाहंनैवलंकानराक्षसाः ॥ १९ ॥ निवार्यमाणस्तुमयाहितैपिणानमृष्यसेवाक्यमिदं निशाचर ॥ परेतकल्पाहिगतायुपोनराहितंनशृल्लतिसुहृद्विरीरितम् ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांड एकचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥ एवमुक्त्वातुपरुपमारीचोरावणंततः ॥ गच्छवेत्यब्रवीदीनोभयाद्रात्रिचरप्रभोः ॥ १ ॥ दृष्टश्चाहंपुनस्तेनशरचापासिधारिणा ॥ मद्बोधयतश्चेणनिहतंजीवितंचमे ॥ २ ॥ नहिरामंपराक्रम्यजीवन्प्रतिनिवर्तते ॥ वर्ततेप्रतिरूपोऽसौयमदंडहतस्यते ॥ ३ ॥ किंतु कर्तुमयाशक्यमेवंत्वयिदुरात्मनि ॥ एषगच्छाम्यहंतातस्वस्तितेस्तुनिशाचर ॥ ४ ॥ प्रहृष्टस्त्वभवत्तेनवचनेनसराक्षसः ॥ परिष्वज्यसुसंछिष्टमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एतच्छोटीर्ययुक्तंतेमच्छंदशर्वतिनः ॥ इदानीमसिमारीचःपूर्वमन्योहिराक्षसः ॥ ६ ॥ आरुह्यतामयंशीघ्रंखगोरपरिक्रम प्रकाश कर कोईभी जीवित नहीं छूट सकता, फिर हम तो तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचंद्रके चाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समान होजायेंगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायेंगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपना सामर्थ्य प्रकाश करके जीताहुआ रहना संभव नहीं, क्योंकि तुम अतिदुरात्माहो ! हम तुम्हारा करही क्या सकते हैं ? हे राक्षसराज ! तुम्हारा मंगलहो हम चलतेहैं ॥ ४ ॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परमहर्षित हो उससे भलीभाँति भेदा और यह वचन बोला ॥ ५ ॥ कि तुमने हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेको कहा तब यही वचन तुम्हारा चीरोचित हुआ । पहले तुम एक

परिक्रम प्रकाश कर कोईभी जीवित नहीं छूट सकता, फिर हम तो तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचंद्रके चाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समान होजायेंगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायेंगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपना सामर्थ्य प्रकाश करके जीताहुआ रहना संभव नहीं, क्योंकि तुम अतिदुरात्माहो ! हम तुम्हारा करही क्या सकते हैं ? हे राक्षसराज ! तुम्हारा मंगलहो हम चलतेहैं ॥ ४ ॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परमहर्षित हो उससे भलीभाँति भेदा और यह वचन बोला ॥ ५ ॥ कि तुमने हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेको कहा तब यही वचन तुम्हारा चीरोचित हुआ । पहले तुम एक

नेही मरे धरेंद और यहभी भलीभाँति समझ रखो कि, सीताको हरणकरतेही तुमभी अपने परिवारसहित मारे जाओगे ॥ १८ ॥ यदि हमारे साथ मिल रामचंद्रजीको भोगादे तुम सीता महारानीको आश्रमसे लेभी आये, तौ हमारी, तुम्हारी, लंकापुरीकी, व निशाचर गणोंकी किसीकीभी रक्षा न होगी ॥ १९ ॥ यदि तुम हमारे इन हिनरारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करनेसे नहीं रुकोगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा क्योंकि जिस मनुष्यकी आयु क्षीण होजातीहै वह किसी सुहृदके हितकारी बचनोंको नहीं माना करता ॥ २० ॥ ॥ इत्यापें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भापाटीकायामेकत्वार्यशः सर्गः ॥ ४१ ॥ ॥ मारीचने राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर, फिर उसके भयसे भीतहो यहभी कह दिया कि अच्छा हम चलते हैं ॥ १ ॥ वह धनुर्बाणधारी और खड्ग प्राण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर देखें तौ तुम अपने व हमारे प्राण गएही जानो ॥ २ ॥ हे तात ! रामचंद्रजीसे कैसाहो आनप्रियसिचेसीतामाश्रमात्सहितोमया ॥ नैवत्वमपि नाहं नैवलंकानराक्षसाः ॥ १९ ॥ निवार्यमाणस्तुमया हितैपि पानमृज्यसेवाक्यमिदं निशाचर ॥ परेतकल्पाद्दिगतायुपो न राहितं न गृहं तिसुहृद्भिरिति ॥ २० ॥ इत्यापें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांड एकच त्वारिशःसर्गः ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वा तु परुपमारीचो रावणंततः ॥ गच्छावेत्यब्रवीदीनो भयाद्रात्रिचरप्रभोः ॥ १ ॥ दृष्ट्वाहंपुनस्तेन शरचापासि धारिणा ॥ मद्बोधतश्छेदनिहतं जीवितं च मे ॥ २ ॥ न हिरामंपराक्रम्य जीवन्प्रतिनिवर्तते ॥ वर्ततेऽप्रतिरूपोऽसौ यमदंडहतस्यते ॥ ३ ॥ किंतु कंतुमया शक्यमेवं च यिदुरात्मनि ॥ एष गच्छाम्यहं तातस्वस्ति तेस्तु निशाचर ॥ ४ ॥ प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन सराक्षसः ॥ परिष्वज्य सुसंस्थि एमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एतच्छरीरं यथुक्ते मेच्छंदशर्वर्तिनः ॥ इदानीमसिमारीचः पूर्वमन्यो हिराक्षसः ॥ ६ ॥ आरुह्य तामयं शीघ्रं खगोर् त्रविभूषितः ॥ मया सह रथो युक्तः पिशाचवदनः खरः ॥ ७ ॥

पराक्रम प्रकाश कर कोईभी जीवित नहीं छोट सकता, फिर हम तो तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचंद्रके बाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समान होजायेंगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायेंगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपना सामर्थ्य प्रकाश करके जीताहुआ रहना संभव नहीं, क्योंकि तुम अतिदुरात्माहो ! हम तुम्हारा करदी क्या सकते हैं ? हे राक्षसराज ! तुम्हारा भंगलहो हम चलतेहैं ॥ ४ ॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परमहर्षित हो उससे भलीभाँति भेदा और यह वचन बोला ॥ ५ ॥ कि तुमने हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेको कहा तब यही वचन तुम्हारा पीरोचित हुआ ! पहले तुम एक पापापण मारीच राक्षसे पर अब तुम हमारी भवान् हुए ॥ ६ ॥ अब तुम हमारे साथ यथीच्छा करि चले ॥ ७ ॥

निगचोको ममान गवत जुव ग्दं देवो ॥ ७ ॥ निर वनो पदुचकर विदेहराजकुमारी सीताको लुभाकर इच्छानुसार स्थानमें चलेदेता । तब हम राम लक्ष्मण
 मणि मूल्या आभयमें प्रवेग करके बटुपूर्वक सीताको हर लवंगे ॥ ८ ॥ ऐसा सुनकर ताडकातनय मारीचने कहा कि, बहुत अच्छा चलिये । तत्पश्चात् रावण
 १ मारीच विमान ममान उस ग्यहर चढ ॥ ९ ॥ गीत्रानामे उस आभयमें उम आभयमें चले, और अनेक भांतिके पत्तन बन ॥ १० ॥ पर्वत नदी राज्य व नगरोंको देखते
 मानुने दंड सारगने और जहां गमचन्द्रजीका आश्रयथा ॥ ११ ॥ और आश्रयको मारीचके सहित रावणने देखा और दोनोजने उस रत्नभूषित रथसे उतरे ॥ १२ ॥
 और मारीच हाथ पकड़कर गरज कहने लगा कि, हे मने । वनमें कैलोकें वृद्धोंमें धिराहुआ यह रामचन्द्रका आश्रय दिसाई देताहै ॥ १३ ॥ जिस कारणसे कि
 प्रत्ये भयिना विदेही पदं प्रगंनुमर्हमि ॥ तांशून्ये प्रमभंसीतामानयिव्यामिथिलीम् ॥ ८ ॥ ततस्तयेत्युवाचेनरावणं ताटकासुतः ॥ ततोरावण
 मार्गचो विमानमिव नंथम् ॥ ९ ॥ आरुह्यायतुः शीघ्रतस्मादाश्रयमंडलात् ॥ तथेव तत्र पश्यतीपतनानिवनानि च ॥ १० ॥ गिरीश्वसरितः
 नारांगप्रजिनगगणि च ॥ ममं त्यदंडकारण्यं रावस्याश्रयमंततः ॥ ११ ॥ ददर्श स ह मारीचो रावणो राक्षसाधिपः ॥ अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः कां
 च न नृपयान् ॥ १२ ॥ हन्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वायमवधीत् ॥ एतद्रामाश्रयमपदं दृश्यते कदलीवृत् ॥ १३ ॥ कियतांतत्सखेशीघ्रं यदर्थवच
 मगनाः ॥ नगपगवचः श्रुत्वा मार्गचोगक्षमन्तदा ॥ १४ ॥ मृगो भूत्वा श्रमद्वारिभस्य विचचारद् ॥ सतुरूपसमास्थाय महदद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥
 मणिप्रभं भाग्यः विनामिनमुन्नाहृतिः ॥ रक्तप्रभोत्पलमुखं दं दं नीलोत्पलश्रवाः ॥ १६ ॥ किंचिदत्युन्नतमीव दं दं नीलनिभोदरः ॥ मधूकनिभ
 पाशं शकंजं किंजल्कमत्रिभः ॥ १७ ॥ वेदूयसं काशखुस्तनुजं वः सुसंहतः ॥ इंद्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः ॥ १८ ॥ मनोहरस्ति नगव
 णो विदेहीना विचरुतः ॥ क्षणेन गदगमां जानीमृगः परमशोभनः ॥ १९ ॥

१९ ॥ ममान गवत जुव ग्दं देवो ॥ ७ ॥ निराचर मारीच रावणके यह वचन सुनकर ॥ १४ ॥ महाअद्भुत मृगरूप धारण करः
 रामचन्द्रजीके ताश्रयके दारपर किन्ने लगा ॥ १५ ॥ इस मृगके सींगोंका अग्रभाग मणिप्रवर सदृशथा, और मुखकी आकृति श्वेत कृष्ण विविध वर्णोंसे चिन्ति
 थी, पदनसदृश कमलके फूलसी ममान, श्रवणगुल्ल दं दं नीलोत्पलकी समानये ॥ १६ ॥ गर्दन कुछएक ऊँची, उदरभी इन्द्रनील मणिकी समता रखताथाः
 पीछे ११ भाग महुरंके मुखनरी ममान और वनं पपगमकी तुल्यथा ॥ १७ ॥ रुरियें वेदूयें मणिकी तुल्यथा, दोनों जाँघें पतलीथीं सच संधियें एक दूसरीसे गः
 दं रंधी, पाश पद इन्द्रायुधसी ममान ऊपरको लड़ी रुंद विगजमान होरहीथी ॥ १८ ॥ उसका वर्ण चिकना और मनोहरथा और शरीर उसका अनेक भांतिः

मन्त्रोक्तं विदितया उय मारीच राक्षसने श्ण भग्मे यह परमगोभायुक्त भृगूमूर्ति धारण की ॥ १९ ॥ उस वनको शोभित करता हुआ और श्रीरामचन्द्रजीके आश्र
मते भी राम परममनोहर देगने योग्य रूपसे वह राक्षस प्रकाशमान करने लगा ॥ २० ॥ जानकीजीको ललचातेके लिये अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्र
रूप प्राप्ति सिद्धे चांगों ओर हरी २ घास चरता हुआ यह भृगु रामचन्द्रजीके आश्रमपर विचरने लगा ॥ २१ ॥ उसके शरीरपर सैकड़ों चांदीके बिन्दु ऐसे
जैसे कि जिनके देगने परमप्रीति उपजे, वह भृगु कभी २ वृक्षाँकी कोणले नये २ पत्ते खाता हुआ घूमने लगा ॥ २२ ॥ कभी कैलोंकी बगियाँमें और
सर्पि सरङ्गे रंगें में संघा करके और कभी श्रीमीताजीकी दृष्टिके सम्मुख जाकर इस प्रकार आश्रमके इधर उधर वह भृगु मन्दगतिसे चलने लगा ॥ २३ ॥ पीठपर
मुद्रांक वाग चित्र विचित्र होतेंसे इसकाल इस महाभृगुकी अतिशय शोभा हुईथी वह यथासुखसे रामचन्द्रजीके निकट घूम्ने लगा ॥ २४ ॥ आश्रममें
वनप्रजाजान्यरायमाश्रमपदंचतत् ॥ मनोहरदर्शनीयरूपंकृत्वासरक्षसः ॥ २० ॥ प्रलोभनाथर्वदेह्यानाधातुविचित्रितम् ॥ विचरन्नगच्छतेशप्यं
शाद्वत्यानिममंतः ॥ २१ ॥ रोप्यैर्विशुशतीश्चित्रभूत्वाचप्रियनंदनः ॥ विटपीनांकिसलयान्भक्षयन्विचचारह ॥ २२ ॥ कदलीयहकंगत्वार्णिकारा
नितस्तनः ॥ तगाश्रममंदगतिसीतासंदशनंतः ॥ २३ ॥ राजीवचित्रपृष्ठः सधिराजमहाभृगुः ॥ रामाश्रमपदाभ्याशेषिविचारयथासुखम् ॥ २४ ॥ पुनर्ग
त्तानिवृत्तश्चविनारभृगोत्तमः ॥ गत्वामुहूर्तं त्वरयापुनः प्रतिनिवर्तते ॥ २५ ॥ विक्रीडंश्चपुनर्मौपुनरेव निपीदति ॥ आश्रमद्धारमागम्यमृगयथूथानिग
च्छति ॥ २६ ॥ मृगयथूरनुगतः पुनरेव निवर्तते ॥ सीतार्दनमाकांक्षाशसोमृगतांगतः ॥ २७ ॥ परिभ्रमतिचित्राणिमंडलानि विनिपतत् ॥ समुद्रीक्ष्यच
सर्वतस्मृगायड्यवनचराः ॥ २८ ॥ उपगम्यसमाग्रायविद्रवंतिदिशोदश ॥ राक्षसः सोपितान्वन्यान्मृगान्मृगवधेरतः ॥ २९ ॥ प्रच्छादनाथंभावस्यनभक्ष
यतिसंसृशत् ॥ तस्मिन्नेवततः कालेवेदेहीभूलोचना ॥ ३० ॥ कुसुमापचयेव्ययापादपानत्यवर्तत ॥ कर्णिकारानशोकांश्चतृतांश्चमदिरक्षण ॥ ३१ ॥
पुनर्गते समय कभी दांडता कभी ठिठककर खड़ा होता, कभी मुहुर्त भरतक आगेको आश्रममें चलता, कभी फिर झटपट लौट आता ॥ २५ ॥ कभी इधर उधर
मिलता, कभी पूर्यीपर लेट जाता, कभी आश्रमके द्वारपर आकर सुरसे चले हुए मृगझुण्डोंके साथ चरने लगता ॥ २६ ॥ कभी भृगोके साथही साथ आकर फिर
मीताजीसे दिग्गद देहेदी पांटाने फिर आश्रममें चला आता जानकीके दर्शनकी इच्छासे वह राक्षस भृगु होगया ॥ २७ ॥ इसप्रकार वह भृगुताको प्राप्त होकर विचित्र
मंडलगोरे पद फौद करने लगा इसकी कूद फांद देख और वनके भृगु ॥ २८ ॥ उसके निकट आये और उसको मृगवेदी दूरी दिशाओंको भागने लगे । मारीच यद्यपि सदा
मुगारे माते रहे मरणा ॥ २९ ॥ तथापि उसने अपना भाष छिपानेके लिये उन भृगोको भक्षण नहीं किया केवल स्वर्ग करने लगा । दुरी समय शुभलोचना देहेदीजी ॥
॥ ३० ॥ परमाणवकचित्तं देहेदी नन्दनानेके किने कभी भरणेक कभी क्षितिचार और कभी आय भृत्यके निकट प्राणी रह ॥ ३१ ॥

मे दम मरारु मृगन धारण करलियाहैं । हे पुरुषसिंह ! यह मृगस्य गन्धर्व नगरकी समान अत्र रमणीय और परमदीनियुक्त है, परन्तु वास्तवमें यह मृग नहीं
 ॥ १७ ॥ हे राहुनन्द ! दम प्रसार रत्नचित्रित मृग कभी पृथ्वीपर नहीं हो सकता । हे जगन्नाथ ! यह निश्चयही भाया है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ८ ॥
 नम लक्ष्मणजी दम प्रसार कहने लगे वच कुछएक दुरकार्ड हुई सीताजीने राक्षसके छलसे मोहित हो लक्ष्मणजीको इस कहनेसे रोक दिया और आप परमहर्षित हो बोलीं
 ॥ ९ ॥ हे आर्यपुत्र ! दम अभिराम मृगने हमारे मनको हरण कियाहै हे महाबाहो ! इसको पकड़ लाओ हम इस मृगके साथ सेला करेंगी ॥ १० ॥ क्योंकि हमारे
 दम पुण्याभरणें बहुतने पुण्यदर्शन मृगगण चरार घूमा करते हैं, जिनकी काली और सफेद पूँछ होतीहै ॥ ११ ॥ और ऋक्ष, पृथत वानर व किन्नरादिभी डूमते हैं
 यह नव मलालयान् और लयसाध हैं ॥ १२ ॥ परन्तु हे राजन् ! पहले कभी इस प्रकारका मृग हमारी दृष्टिमें नहीं आया, तेज क्षमा कान्तिमें यह मृगोंमें श्रेष्ठ
 मृगोहो न विद्यो रत्नविचित्रो नास्ति राघव ॥ जगत्यां जगतीनाथ माये पाहिन संशयः ॥ ८ ॥ एवं द्रुवाणं काकुत्स्थं त्रिचार्यं शुचिस्मिता ॥ उवाच सीतासंहृष्टा
 छत्रनाभतचेतना ॥ ९ ॥ आर्यपुत्राभिरामो सोमृगो हरति मे मनः ॥ आनयेनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥ १० ॥ इहाश्रमपदेऽस्माकं बहवः पुण्यदर्श
 नाः ॥ मृगाश्चरंति सहिताश्च मराः सुमरास्तथा ॥ ११ ॥ ऋक्षाः पृथतसंवाश्ववा नराः किन्नरास्तथा ॥ विहरंति महाबाहोरूपश्रेष्ठामहाबलाः ॥ १२ ॥ न चान्यः
 सदृशो राजन्द ॥ पूर्वमृगो मया ॥ तेजसाक्षमया दीप्त्या यथाऽयं मृगसत्तमः ॥ १३ ॥ नानावर्णविचित्रांगोरत्नभूतो ममाग्रतः ॥ द्योतयन् नमन्यग्रं द्योततेश
 शिस्तनिभः ॥ १४ ॥ अहोरूपमहो लक्ष्मीः स्वरसंपन्नो भवामि ॥ मृगोऽद्रुतो विचित्रांगो हृदयं हरती वमो ॥ १५ ॥ यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव ॥ आश्चर्य
 भूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति ॥ १६ ॥ समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः ॥ अंतःपुरे विभूषार्थो मृग एव भविष्यति ॥ १७ ॥ भरतस्य रथे पुत्रस्य च
 शृणां च मम प्रभो ॥ मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति ॥ १८ ॥ जीवन्नयदितेभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः ॥ अजिनं न शार्दूलरुचिरं तु भविष्यति ॥ १९ ॥
 ज्ञात होताहै ॥ १३ ॥ इसका सवही गरीर विविध वर्णसे विचित्र हो रहाहै । मध्य २ में रत्नोंके बिन्दु चने हैं । यह मृग चन्द्रमाके समान वनभूमिको शान्ति
 भावसे प्रकाशित करता हुआ हमारे मम्मल विराजमान हो रहाहै ॥ १४ ॥ अहह ! क्या सुन्दर तोहै ! अहो क्या शीहै ! आहा क्या शोभाहै ! क्या मधुर इसकी
 पोटाहै ! यह अपूर्व विचित्र अंगवाला मृग हमारे मनको चुरावे छेताहै ॥ १५ ॥ यदि आप इसको जीता हुआही पकड़ देंगे तो बड़ा अपूर्व यह पदार्थ सदा निकट
 रहकर निमग्न उपजाता मृग फर्कता ॥ १६ ॥ जब हम वनवासके यतको भुग्न करनेके फिर अपने राज्यामें चर्छेगी तब यह मृग हमारे रत्नवासक भूषण हो गा ॥ १७ ॥
 १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

पकड मकें, ती इसका चर्मही परममनोहर होगा ॥ १९ ॥ इस निहत मृगके सुवर्णमय चर्मको कुरासनपर विछाकर उसपर बैठ तुम्हारे सहित भगवान्की पूजा कर नेको हमारा अभिलाष हुआ है ॥ २० ॥ यद्यपि स्वामीको इस प्रकारकी प्रेरणा करना म्रियोके लिये स्वेच्छाचारिवाहै और भयंकर, व अनुचितभीहै, तथापि इस मृगकी विचित्र देखने हमको बहुतही विस्मय उपजायाहै ॥ २१ ॥ उसके कंचनके समान रोम, भली अष्ट मणिकी समान शृंग, प्रभातकालीन सूर्यकी नाई और आकाशकी समान प्रकाशमान ॥ २२ ॥ रूपसे श्रीरामचंद्रजीके हृदयमें भी विस्मय की अत्राई हुई. सीताजीके ऐसे वचन सुनकर और उस अद्भुत मृगको देख ॥ २३ ॥ तिसके गरिरीकी सुन्दरताइसे रामचंद्रजी लुभागये, तिसै सीताजीने प्रेरणा की इस कारण हर्षितचिच हो श्रीरामचंद्रजी भावा लक्ष्मणसे बोले ॥ २४ ॥ कि, हे लक्ष्मण !

निहतस्यास्यसत्त्वस्यजांबूनदमयत्वचि ॥ शण्डवृत्त्याविनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥ २० ॥ कामवृत्तमिदंरौद्रंक्षीणामसदृशंमतम् ॥ वपुपात्त्वस्यसत्त्वस्यविस्मयोजनितोमम ॥ २१ ॥ तेनकांचनरोम्णातुमणिप्रवरशृंगिणा ॥ तरुणादित्यवर्णेननक्षत्रपथवर्चसा ॥ २२ ॥ वभ्रुव गववस्यापिमनोविस्मयमागतम् ॥ इतिसीतावचःश्रुत्वाहृद्वाचमृगमद्भुतम् ॥ २३ ॥ लोभितस्तेनरूपेणसीतायाचमचोदितः ॥ उवाचराघवो हृष्टोभ्रातरंलक्ष्मणंयवचः ॥ २४ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्याःस्पृहामुल्लसितामिमाम् ॥ रूपश्रेष्ठतयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति ॥ २५ ॥ नवनेनंदनोदेशे नचत्रयसंश्रये ॥ कुतःपृथिव्यासौमित्रियोऽप्यकश्चित्समोमृगः ॥ २६ ॥ प्रतिलोमानुलोमाश्चरुचिरारोमराजयः ॥ शोभन्तेमृगमाश्रित्यचित्राः कनकविंदुभिः ॥ २७ ॥ पश्यास्यजुंभमाणस्यदीप्तामग्निशिखोपमाम् ॥ जिह्वांमुत्खान्निःसरन्तीमेवादिवशतद्भद्राम् ॥ २८ ॥ मसारागल्लर्कमुखःशंखमुक्तानिभोदरः ॥ कस्यनामानिरूप्योसीनमनोलोभयेन्मृगः ॥ २९ ॥

अरलोकन कगे हम मृगका श्रेष्ठ रूप देखकर जानकीजीकी अभिलाषा उद्युतित हो उठी है । अतएव इस समय इसका प्राण धारण करना असंभव है ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण ! मया यन्मे, मया नन्दनमे, मया चत्रयकाननमे, अथवा पृथ्वीके किसी स्थानमें भी इसके समान मृग नहीं है ॥ २६ ॥ देखो इसके रोमोंकी पँक्तिमें कुछ भीभी कुछ बंकिमाकार कैसी गोभाको प्राण होरही हैं, और तिसपर उसमें सुवर्ण विन्दुओंके चित्रित होनेसे औरभी सुन्दरताई आई है ॥ २७ ॥ देखो भय्या ! मेवसे विजली जिय नकार चमकती है वैसेही जमुहाई लेनेके समय उसके मुखसे अधिकी शिखाके समान प्रदीप्त जीभ निकलती है ॥ २८ ॥ इसका मुखमंडल इन्द्रनीलमणि निर्मित पानपाय के आकारला है । पेट शंस और मोलीभी समान है, और इसके स्वरूपका निर्णय करना दुःसाध्य है; इसको देखनेसे किसका मन मोहित नहीं

होगा ॥ २९ ॥ इसका रूप वस्त्र सुवर्णकी प्रभासे परिपूर्ण है और नाना प्रकारके रत्नमय है ऐसा दिव्य स्वरूप दृष्टि आनेसे किसका मन विस्मयको प्राप्त नहीं होगा ? ॥ ३० ॥ धनुर्धारी नृपदिगण महाबलमें शिकार करनेके लिये प्रवृत्त हो मांसके लिये अथवा विहारके लिये बहुत मृगोंको मार डालते हैं ॥ ३१ ॥ अधिक करके यह राजा लोग मृगवधमें उद्यत होकर बड़े २ वनोंमें मणिरत्न सुवर्णादि धातुरूप धनका संग्रहभी करते हैं ॥ ३२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकार धनधान्यकी राशिसे खजाना बढ़ता है इसलिये वन्तमें सबही पुरुषोंकी ब्रह्मकी नाई मनकी इच्छा सफल होती है ॥ ३३ ॥ हे लक्ष्मण ! अर्थकी इच्छा करनेवाला पुरुष अर्थसाधन दस्तुके कारण निःसंशय चिन्तसे उस कार्यमें लगै तो अर्थशास्त्रज्ञ पंडित लोग उसकोही ठीक अर्थ कहते हैं ॥ ३४ ॥ इस कारणसे इस मृगके पथ करनेमें कुछ दुविधा करनेकी आवश्यकता नहीं है । सुमध्यमा जानकीजी हमारे साथ इस मृगरत्नके श्रेष्ठ व सुवर्णमय चर्मपर बैठेंगी ॥ ३५ ॥ कस्यरूपमिदं दृष्ट्वा जावून दमयप्रभम् ॥ नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥ ३० ॥ मांसहेतोरपि मृगान्विहारार्थं च धन्विनः ॥ घ्नंतिलक्ष्मणराजानो मृगयायामहावने ॥ ३१ ॥ धनानि व्यवसायेन विचिचीयंते महावने ॥ घातवो विविधाश्चापि मणिरत्नसुवर्णिनः ॥ ३२ ॥ तत्सारमखिलं नृणां धर्मं निचयवर्षनम् ॥ मनसा चिन्तितं सर्वं यथाशुक्रस्य लक्ष्मण ॥ ३३ ॥ अर्थी येनार्थकृत्येन संव्रजत्यविचारयन् ॥ तमर्थमर्थशास्त्रज्ञाः प्रादुरर्थाः सुलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ एतस्य मृगरत्नस्य परार्थ्यैकां च न त्वचि ॥ उपवेक्ष्यति वेदेही मया सह सुमध्यमा ॥ ३५ ॥ नकादलीनप्रियकीनप्रवेणी न नाचिकी ॥ भवेदेतस्य सदशीस्पशेनेनेति मेमतिः ॥ ३६ ॥ एष चैव मृगः श्रीमान्यश्च दिव्यो न भश्चरः ॥ उभावेतौ मृगौ दिव्यौ तारा मृगमही मृगौ ॥ ३७ ॥ यदि वायं तथान्यन्मां भवेद्वदसि लक्ष्मण ॥ मां ये पाराशरस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया ॥ ३८ ॥ एतेन हि नृशंसेन मारीचेनाकृतात्मना ॥ वने विचरता पूर्वहंसिता सुनिपुंगवाः ॥ ३९ ॥ उत्थाय बहवो येन मृगयायां जनाधिपाः ॥ निहताः परमेष्वासास्तस्माद्दध्यस्त्वयं मृगः ॥ ४० ॥ स्या रुदद्वी और प्रियक मृगका चर्म क्या प्रवेणीनायक छागलका चर्म, क्या मेपादिकका चर्म, कोई भी चर्म इस मृगके चर्मकी समाने कोमल, चिकना; व मनोहर हमको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ यहही वन श्रीमान् है, और आकाशमें जो पक्षी विमान करते हैं, वे भी

पेटमें रहतेही हुए जिस प्रकार खिचड़ीका गर्भ अपनी माताको मार डालताहै, वैसेही पूर्वं समय इस वनमें राक्षस वातापिभी तपस्वी ब्राह्मणोंके पेटमें प्रवेश करके उन-
 मंदार किया करता था ॥ ४१ ॥ बहुत काल पीछे किसी समय वह वातापि तेजस्वी महामुनि अगस्त्यजीको भान होकर उनके द्वारा पचाया गयाथा ॥ ४२ ॥
 फिर जब कि आदिके पूर्ण होने उपरान्त वातापिको राक्षसरूप धारण करनेका इच्छुक देखा तब भगवान् अगस्त्यजी भुसकाय कर बोले ॥ ४३ ॥ वातापि ! तू-
 अपने तेजसे ज्ञानग्रहित हो इस जीवलोकमें अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मारडालाहै, इसी कारणसे हमने तुमको पचाडाला ॥ ४४ ॥ हे लक्ष्मण ! जो हमारी समा-
 धर्मनिरा और निर्जिहिय पुरुषका निरादर करताहै, उस राक्षसके प्राण वातापीही की समान नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ अतएव मारीच इस आश्रममें आकर अगस्-

पुरस्तादिहवातापिःपरिभूयतपस्विनः ॥ उदरस्थोद्विजान्हंतिस्वगर्भोश्चतरीमिव ॥ ४१ ॥ सकदाचिचिराच्छोकैर्आससादमहाभुनिम् ॥ अगस्त्यते
 जसायुक्तंभक्ष्यस्तस्यवभूवह ॥ ४२ ॥ समुत्थानेचतद्रूपंकर्तुंकामंसमीक्ष्यतम् ॥ उत्समयित्वातुभगवान्वातापिमिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ त्वयाऽवि-
 गम्यवातापेपरिभूताश्चेतजसा ॥ जीवलोकैर्द्विजश्रेष्ठास्तस्मादसिजरंगतः ॥ ४४ ॥ तद्रक्षोपिनभवंदेववातापिरिवलक्ष्मण ॥ मद्विधंयोतिमन्येत
 धर्मनित्यंजिर्नेद्रियम् ॥ ४५ ॥ भवंद्वर्तयंवातापिरगस्त्येनेवमागतः ॥ इहत्वंभवसन्नद्धोयंत्रितोरक्षमैथिलीम् ॥ ४६ ॥ अस्यामामयत्तमस्माकं
 पत्नृत्यंरघुनंदन ॥ अहमेनंवधिप्यामिग्रहीप्याभ्यथवामृगम् ॥ ४७ ॥ यावद्रच्छामिसीमित्रेभृगमानयितुंदुतम् ॥ पश्यलक्ष्मणवेदेद्वामृगत्वचि-
 र्ग...स्पृहाम् ॥ ४८ ॥ त्वचाप्रधानयाहोपमृगोऽद्यनभविष्यति ॥ अग्रमत्तेनतेभान्वयमथमस्तेनसीतया ॥ ४९ ॥ यावत्पुपतमेकेनसायेकेननिह-
 न्म्यहम् ॥ हत्वेतच्चर्मआदायशीघ्रमेप्यामिलक्ष्मण ॥ ५० ॥

जी करने वातापिकी नाई हमारे द्वारा मारडाला जायगा । इस समय तुम कबच इत्यादि बांधकर यत्नसहित सीताजीकी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हे रघुनंदन ! हमारा
 कर्तव्य कार्य जानकीके अधीनहै इसलिये तुम सावधानीसे यहां टिके रहो, हम इस मृगको मारही डालेंगे, अथवा जीता हुआ पकड लावेंगे ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण !
 इस मृगचर्म लेनेकी जानकीको बड़ी अभिलाषा हुईहै, देखो अब हम बहुत शीघ्रतासे इस मृगको पकडनेके लिये जायेंगे ॥ ४८ ॥ इस मृगका चर्म सब मृगोंसे
 अच्छाहै, आज निश्चयही इसको प्राण त्याग करना पड़ेगा । लक्ष्मण ! हम जबतक इस मृगको नहीं मारडालें तबतक तुम सीताजीके साथ सावधानतासे आश्रममें
 टिके रहो ॥ ४९ ॥ हे लक्ष्मण ! मैं एक वाणसे शीघ्रही मृगको मारकर इसका चर्म ले आऊंगा जबतक हम लौट कर न आवें तबतक तुम सावधानीसे

दशरथ मरता ॥ १० ॥ हे गृध्रमण ! तू ज्ञानभीमो लेकर अति बलवान् बुद्धिमान्, अच्छे कार्यों करनेमें चतुर बली, श्रेष्ठ जटायुके साथ निरन्तर शंक्ति
 लक्ष्मणीके साथ रहता ॥ ११ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 रामेणैव गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 रामेणैव गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 रामेणैव गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 रामेणैव गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥

प्रविशन्तानि पल्लवपक्षिणान् जटायुषा बुद्धिमता च लक्ष्मण ॥ भवाग्रमत्तः प्रतिगृह्य मेथिलीं प्रतिक्षणं सर्वत एव शंक्तिः ॥ ६१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा-
 आ० अ० त्रिचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥ तथातु तं समुद्दिश्य भ्रान्तरं धुनंदनः ॥ दधारासि महातेजा जंबू नदमयत्सरुम् ॥ १ ॥ ततस्त्रिवि-
 तं गणमादायारमविभूषणम् ॥ आचध्य च कलापौ द्वौ जगामोदयविक्रमः ॥ २ ॥ तं वन्यराजो राजेन्द्रमापतंतं निरीक्ष्य वै ॥ बभूवा तर्हि तस्त्रासात्पुन-
 र्मदर्शनेऽभय ॥ ३ ॥ यद्वासिर्धनुरादाय प्रदुद्रावयतो मृगः ॥ तं स्मपश्यति रूपेण द्योतयंतं मिवाग्रतः ॥ ४ ॥ अवेक्ष्या वेक्ष्य धावंतं धनुष्याणि-
 क्षां नो गन्मिन् वीर्यं शरदं द्रुमं डलम् ॥ मुहूर्तं दिवददशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते ॥ ५ ॥ शंक्तिं तु समुद्रांतं मुत्पतंतं मिवांवरम् ॥ दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केपु चित् ॥ ६ ॥
 नो मुहूर्तांगतः ॥ ८ ॥ आसीत्कुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तं न मोहितः ॥ अथावतस्थे सुश्रुत्वा तं श्रद्धया माथ्रित्य शाल्वले ॥ ९ ॥

भीमवचनं श्रुत्वा भीमो गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥
 गङ्गायां स्नानं समाप्तं ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विचित्रारिः सर्गः ॥ ४३ ॥

क्रोमं विभं और बहुतही थककर एक पेंडकी छायाके नीचे हरी दूबके सेतमें बैठगये ॥ ९ ॥ मृगरूपी मारीचने उनको उन्मादित कर दिया था, वह मारीच फिर अन्य मृगोंके साथ बहुत निकटही गमचन्द्रजीको दृष्टि आया ॥ १० ॥ वह मारीच राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको अपने एकडेके अभिलाषी जानकर, दौड़ा और मारे भरके उस समय फिर अन्तर्धान होगया ॥ ११ ॥ और बहुत दूर जाकर फिर वृक्ष समूहोंके नीचे दिखाई दिया, महातेजवान् रामचन्द्रजी यह देखकर अव उस मृगराज माण्डावनाही निश्चय करते हुए ॥ १२ ॥ उन्होंने रोपते भरकर फिर तरकरासे सूर्यके समान रात्रिका नारा करनेवाला प्रज्वलित एक बाण निकाला ॥ १३ ॥ और उसको हठ धनुषसग चढ़ा बलमे रींच जलती हुई अधिकें समान प्रकाशित तिस मृगपर ॥ १४ ॥ ब्रह्माका बनाया हुआ अति प्रज्वलित अस्त्र, उस मृगरूपी गणान मारीचके योग्यही छोड़ा ॥ १५ ॥ गरभेष्ठ ब्रह्माग्नेने छूटेही बचकी समान मृगरूपी मारीचका हृदय विदारण करवाला तब वह मारीच अतिशय मनमुन्मादयामामृगमृगरूपोनिशाचः ॥ मृगेःपरिवृत्तोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यहश्यत ॥ १० ॥ ग्रहीतुकामंदृष्टातंपुनरेवाभ्यधावत ॥ तत्क्षणादेवसं ग्रामात्पुनरंतर्हितोभवत् ॥ ११ ॥ पुनरेवततोदूराद्दक्षस्यण्डाद्भिनिःसृतः ॥ हृद्धारामोमहातेजास्तंहंकृतनिश्चयः ॥ १२ ॥ भूयस्तुशरमुद्धृत्यकुपि तन्मज्जगयः ॥ सूर्यगंधिमप्रतीकाशंज्वलंतमरिमर्दनः ॥ १३ ॥ संधायसदृंचापेविकृप्यवलयइली ॥ तमेवमृगमुद्दिश्यज्वलंतमिवपन्नगम् ॥ १४ ॥ मृमोचज्वलितदीप्तमध्वं ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ मभृशंमृगरूपस्यविनिर्भेद्यशरोत्तमः ॥ १५ ॥ मारीचस्यैवहृदयंविभेदाशनिसन्निभः ॥ तालभात्रम भोत्पुन्यन्यपतत्सभृशानुरः ॥ १६ ॥ व्यनदद्वैरवंनादंघरणयामरूपजीवितः ॥ त्रियमाणस्तुमारीचोजहांतांकृत्रिमांतनुम् ॥ १७ ॥ स्मृत्वात द्यनर्गंधोदभ्योक्तं तुलक्ष्मणम् ॥ इहप्रस्थापयेत्सीतातांशून्यरावणोहर्तुः ॥ १८ ॥ सप्राप्तकालमाज्ञायचकारचततःस्वनम् ॥ सदृशंराघवस्येव क्षाणुं हंरुं गादं वृक्ष ममान् ज्यगको टल्ल पृथीपर गिरपडा ॥ १९ ॥ और क्षीण प्राण मरनेके निकट पहुँच पृथीपर गिरकर भयंकर शब्दसे बहुत चिन्ताया । उस गणभर्तु मरनेके समय वह अपनी बनावटी छलकी देह त्यागन करदी ॥ २० ॥ अनन्तर मारीच मरनेके समय उस मायाभय देहको त्याग रावणकी आज्ञा स्मरण कर विषाग्न लेगा कि, किस उपायका भ्रकटम्यन करनेमें सीता लक्ष्मणको यहां भेजें, और रावण शून्य आश्रमको पाकर सीताको हरण करले ॥ २१ ॥ यह विचार गंभीराना आरंभ किया ॥ २२ ॥ भीषणचन्द्रनीके अनुपम चाणने उसका मर्मस्थान इतना विंध गयाथा, कि फिर वह मृगरूप धारण नहीं कर सका और राक्षस

पुत्रिं प्रहण श्री ॥ २० ॥ परनेके समय मारीचकी देह बड़ी भारी होगई उस भयंकर निशाचर मारीचको भूमिमें गिरा ॥ २१ ॥ रुधिरसे लिपटा पृथ्वीमें लोटताहुआ भीगपगन्धर्जनिं देगा और मनही मनमें सीता और लक्ष्मणके वचन स्मरण करके आश्रमकी ओर लौटे ॥ २२ ॥ आश्रमको लौटनेके समय विचारनेलगे कि, लक्ष्मण जीने परदेही कहाया कि यह मारीचकी मायाहै । उनकीही बात इस समय सत्य हुई यथार्थही मारीचको हमने मार डाला ॥ २३ ॥ इस समय मारीचने "हा भीरो ! हा लक्ष्मण ! " घड़े ऊँचे शब्दसे यह कहकर प्राण त्याग किये हैं, न जाने सीता इस शब्दको सुनकर क्या करेगी ॥ २४ ॥ अथवा महाबाहु लक्ष्मणजी किंग अत्रग्यासो प्राप्त होंगे ? इस प्रकार चिन्ता करते २ धर्माल्मा श्रीरामचन्द्रजीके रोम खड़े होगये ॥ २५ ॥ उस काल मृगहृषी राक्षसको मार डालकर और इसका

नङ्कंसुमदाकायोमारीचोजीवित्त्यजन् ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं भीमदर्शनम् ॥ २१ ॥ रामोरुधिरसिक्ताङ्गं चेष्टमानं महीतले ॥ जगाम मनसासी तां लक्ष्मणस्य वचः स्मरन् ॥ २२ ॥ मारीचस्य तु मायै पापूर्वोक्तं लक्ष्मणेन तु ॥ तत्तथा ह्यभवच्चाद्यमारीचोऽयं मया हतः ॥ २३ ॥ हासिते लक्ष्मणे त्येवमाकुशयतु महास्वनम् ॥ ममारराक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् ॥ २४ ॥ लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थाङ्गमिष्यति ॥ इतिसंचित्य धर्मो त्मरामो हृष्टतद्वरुहः ॥ २५ ॥ तत्र रामं भयंतीव्रमाविवेश विपादजम् ॥ राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वनम् ॥ २६ ॥ निहत्य प्रपतंचान्यमांस मादाय राघवः ॥ त्वरमाणोजनस्थानं ससाराभिमुखं तदा ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुश्च त्त्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने ॥ उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानी हिराघवम् ॥ १ ॥ नहि मे जीवितं स्थाने हृदयं वाव तिष्ठते ॥ क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम् ॥ २ ॥ आक्रंदमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि ॥ तं क्षिप्रमभिधावत्वं भ्रातरं शरणेऽपिणम् ॥ ३ ॥

इन प्रकार चिहाना सुनकर विपादके मारे तीव्र भयसे रामचन्द्रजी भीत हुए ॥ २६ ॥ तिसके पीछे वह एक और मृगको मारकर और उसका मांस ग्रहण करके शीघ्रतासे जनस्थानकी ओर चले ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे भाषाटीकायों चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ यही आभयसे वनके मध्य अपने स्वामीकी समान बहुत करुणाका शब्द सुनकर सीताजी लक्ष्मणसे बोलीं, जाकर देख आओ रामचन्द्रजीको क्या हुआ ? ॥ १ ॥ यह भ्रातराभिं वनमें चिल्ला रहे हैं यह शब्द सुनकर हमारा मन प्राण अपने २ ठिकाने नहीं है ॥ २ ॥ वनके बीच छुट्टे स्वरमें रोते हुए अपने भ्राताका प्रहारा करती भयभीत ॥ ३ ॥ इस कारण मुझे अपना ही भयानक दर्शन हुआ ॥ ४ ॥

गाम धंउ तिम नकार मिद्र के बग में पड़ने हैं, तुम्हारे भैया भी वैसे ही राक्षस के बग में पड़े हैं, परन्तु लक्ष्मणजी को मृग पारने गमन करने के समय जो रामचंद्रजी आज्ञा देगये थे उसको हम गज कर के नीनाजीने इस प्रकार कहे जानें पर भी रामचंद्रजी के समीप नहीं गये ॥ ४ ॥ तब मीताजी नितान्त दुःखित होकर लक्ष्मणजी से बोली कि, हे लक्ष्मण ! तुम हमको हम गज कर के नीनाजीने इस प्रकार कहे जानें पर भी रामचंद्रजी के समीप नहीं जाते । इससे समझ पड़ा कि, तुम हमको लेखने के लिये रामचंद्रजी के मित्र रही गयु हो ॥ ५ ॥ देखो तुम इस प्रकार की अवस्थायें भी उनकी रक्षा करने के लिये नहीं जाते । इसी कारणसे रामचंद्रजी की यह विपद् तुमको प्रिय रामचंद्रजी के विनाग की कामना करने हो ॥ ६ ॥ निश्चय ही हमारे प्रति तुम्हारे प्रति तुम उनके समीप नहीं जाते इसी कारणसे तुम उनके समीप नहीं जाते इसी कारणसे रामचंद्रजी की यह विपद् तुमको प्रिय रामचंद्रजी के विनाग की कामना करने हो ॥ ७ ॥ इसी कारण तुम महादुःखि पाव रामचंद्रजी को न देखकर भी निश्चिन्त बंठे हो । किन्तु तुम जो

गन्धर्वाश्चाप्यग्निदानाभिषेगोऽष्टमः ॥ नजगामतयोक्तस्तुभ्रातुराज्ञायशासनात् ॥४॥ तमुवाचततस्तत्रक्षुभिताजनकात्मजा ॥ सौमित्रेभिन्नरूपे
गन्धर्वास्त्वमभिषेगः ॥५॥ यस्त्वमस्यामवस्थायोभ्रातरं नाभिषेदसे ॥ इच्छसित्वं विनश्यंतरामं लक्ष्मणमकृते ॥६॥ लोभाद्युभक्तुते वृत्तं ना
भ्रातृगुत्स्वमभिषेगः ॥७॥ तेन तिष्ठसि विप्रव्यं तमपश्यन्महाद्युतिम् ॥ किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निहमयाभ
नुगच्छसि गन्धर्वम् ॥ व्यमनंते प्रियमन्येऽहो भ्रातरि नास्ति ते ॥८॥ अत्र वीच्छस्मण द्वास्तांसीतां मृगवधूमि ॥
॥९॥ कर्तव्यमिह तिष्ठंत्यायत्नयानस्त्वभागतः ॥ एवं दृष्ट्वाण विदेहीवाप्यशोकसमन्विताम् ॥१०॥ राक्षसेषु पिशाचेषु के
पन्नगामुग्गंशदंशदानवगह्वरे ॥११॥ अशक्यस्तव देहिभर्तजे तु न संशयः ॥ देवि देवमनुष्येषु गन्धर्वेषु पतत्रिषु ॥१२॥ राक्षसेषु पिशाचेषु के
नृगेषु मृगेषु ॥ दानवेषु च योगुनसन्निधितो भवे ॥१३॥ यो गमं प्रति युध्येत समरे वासवोपमम् ॥ अवध्यः समरे रामो नैवं त्वं बहुमहसि ॥१४॥

गमनन्दजीकं अधीनमें होकर वनमें आये हो तो उनके यहां संगयापन्न होनेसे ॥ ८ ॥ मुझसे यहां रहकर क्या कार्य होगा ? जब वैदेहीजीने आँखोंमें आंसू धारत बह रहा कि, तुझारी तो बह दगा गही तो अब हम क्या करें ॥ ९ ॥ तब मृगीके समान डरी हुई सीताजीसे लक्ष्मणजी बोले कि, हे विदेहकुमारी ! नाग, अश्व, गन्धर्व, दैत्य, दानव, गक्षम ॥ १० ॥ कोईभी आपके स्वामीको जीतनेमें समर्थ नहीं है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । हे देवि ! मनुष्य, गन्धर्व, यक्षी ॥ ११ ॥ गक्षम, पिशाच, किन्नर, मृग, व अतिथोर जीव इनमें ऐसा कोईभी नहीं है ॥ १२ ॥ जो इन्द्रके समान पौरुषी श्रीरामचन्द्रजीका सामना करनेके लालः उनमें समर्थमें कोई मारभी नहीं सकता, हम लिये तुमको ऐसा अनुचित नहीं कहना चाहिये ॥ १३ ॥

और रामचन्द्रजीके बिना अकेली इस वनके बीच त्याग करनेकोभी किसी प्रकारसे हमारा साहस नहीं होता, इन्द्रादि बलवान् देवगणभी अपने बलसे रामचन्द्रजीके पदको नहीं रोक सकते ॥ १४ ॥ अथवा सब त्रिलोकी समस्त देवतागणोंके सहित एकत्र मिलकरभी रामचन्द्रजीके पराजय करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते इससे आप भोक्त्याग करके स्थिरचित्त हूजिये ॥ १५ ॥ आपके स्वायी रामचन्द्रजी मृगोत्तमको हनन करके शीघ्रही लौटेंगे और हम निश्चय कहते हैं कि, यह शब्द उनका नहीं है और न कोई यह देयोरित शब्द है ॥ १६ ॥ निशाचर भारीचही मन्धर्व नगर सदृशी मिथ्या माया विस्तार करके इसप्रकार शब्द चिछाकर कर रहा है । हे जानकि ! महात्मा राम हरके आप हमारे निकट सौंपी गई हैं ॥ १७ ॥ इसही कारणसे आपको त्याग करनेमें हमारा उत्साह नहीं होता । हे कल्याणि ! हे वरारोहे ! इन सब राक्षसोंके साथ हमारी

न्यामस्मिन्वनेहातुमुत्सहेराघवांविना ॥ अनिवार्यवलंतस्यबल्लवतामपि ॥ १४ ॥ त्रिभल्लोकेःसमुदितैःसेश्वरैःसामरैरपि ॥ हृदयंनिवृत्तंतेस्तु
संतापस्त्यज्यतांतव ॥ १५ ॥ आगमिष्यतिभर्ताशीघ्रंहत्वाभृगोत्तमम् ॥ नसतस्यस्वरोव्यक्तंनकश्चिदपिदेवतः ॥ १६ ॥ गंधर्वनगरप्रख्यामा
यातस्यचरत्तसः ॥ न्यासभूतासिर्वेदेहिन्यस्तामयिमहात्मना ॥ १७ ॥ रामेणत्वंवारोहेनत्वांत्यकुमिहोत्सहे ॥ कृतवैराश्चकल्याणिवयमैतेर्निशच
रेः ॥ १८ ॥ खस्यनिधनेदेविजनस्थानवधंप्रति ॥ राक्षसाविविवावाचोव्याहरंतिमहावने ॥ १९ ॥ हिंसाविहारवैदेहिनचिंतयितुमर्हसि ॥
लक्ष्मणेनैवमुक्तातुक्रुद्धासंरक्तलोचना ॥ २० ॥ अत्रवीत्परुषाक्यंलक्ष्मणंसत्यवादिनम् ॥ अनार्यकरुणारंभनृशंसकुलपांसन ॥ २१ ॥
अहंतवप्रियमन्ये रामस्यव्यसनंमहत् ॥ रामस्यव्यसनंदृष्टतेनैतानिप्रभापसे ॥ २२ ॥

गयुता होगई है ॥ १८ ॥ हे देवि ! खरको मारने और जनस्थानको विध्वंस करनेसे राक्षस लोग इस महावनमें हमारे ऊपर अनेक प्रकारके मोहिनी मायाके वचन प्रयोग किया करते हैं ॥ १९ ॥ हे जानकि ! सायु लोगोंकी हिंसा करनाही राक्षस लोगोंका एकमात्र खेल है इस कारण इस विषयमें चिन्ता करना किसीप्रकारसे भी आपको उचित नहीं है । जब लक्ष्मणजीने इसप्रकार कहा तब क्रोधके मारे जानकीजीके नेत्र छाल हो आये ॥ २० ॥ यह क्रोधोर वचन सत्यवादी लक्ष्मणजीसे घोलीं कि, रे नृगंग ! कुलनागर ! तुम भीरामचन्द्रको परचाकर दया करके हमारी रक्षा करनेको तैयार हुए हो, इस कारणसे यह ध्यान आर्पणनोचित नहीं है ॥ २१ ॥ हमने जाना कि, रामचन्द्रजीकी यह बड़ी भारी विपत् नुस्कारी परमप्यारी रुद्र है इसी कारण तुम उनके विपत्से पटा झूठा देखकर वेग करके लो ॥ २२ ॥

है लक्ष्मण ! तुम्हारी मनाब नदी सूखना व गुन पापी शत्रुके मनमें जो ऐसा निन्दनीय पाप रहेगा तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥ २३ ॥ तुम्हारा स्वामी
 चडा गोत्र है मन्मथजी जो अकेले वनको आने लगे, तब हमारा लाटव करके तुमभी अकेलेही उनके साथ आये । अथवा छिपकर भरतके भेजेहुए तुम स्वामी
 साथ आने हुं ? ॥ २४ ॥ किन्तु हे लक्ष्मण ! तुमने या भर्तवें जो मनमें मोचा है, वह सिद्ध नहीं होगा क्योंकि हम पक्षपलाशलोचन, नीलोत्पलश्याम ॥ २५ ॥
 भीमचन्द्रजीकी भी दोहर किम वक्रागमे अन्यजनकी अभिलाषा करोगी इसमें हे लक्ष्मण ! हम तुम्हारे सामने निश्चयही प्राण त्याग देंगी ॥ २६ ॥ क्यों ?
 मन्मथजीके विना शत्रु काटभी हम इस लोकमें प्राण धारण नहीं कर सकेंगी । सीताजीके इस प्रकार रोमहर्षण कठोर वचन ॥ २७ ॥ सुन

ने निर्विघ्नपर्वे गुणान्तर्ययद्रव्यं ॥ त्वद्विधेयुशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिणु ॥ २३ ॥ सुदुष्टस्त्वं नेराममेकमेको नुगच्छसि ॥ ममहेतोः प्रतिच्छन्नः
 प्रयुक्तो भग्नना ॥ २४ ॥ तत्र मिद्वयनिर्मो मित्रेण वापि भरतस्य वा ॥ कथमिदीवश्यामं रामं पद्मानिभक्षणम् ॥ २५ ॥ उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं
 प्रयजनम् ॥ मम शत्रुत्वमो मित्रं प्राणास्त्यह्यस्य संशयम् ॥ २६ ॥ गमं विनाशमपि नैव जीवामि भूतले ॥ इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम् ॥
 ॥ २७ ॥ अत्र सीद्धिः स्वर्गः सीतां प्राजलिः मजितेन्द्रियः ॥ उत्तरं नोत्सहे वल्लुदेवतं भवती मम ॥ २८ ॥ वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मेथिलि ॥
 न्यभाषन् पद्मनाभं गुरुश्लोकं पुटुद्भयने ॥ २९ ॥ विमुक्तधर्मा अपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः ॥ न सहेहीदृशं वाक्यं वेदेहि जनकात्मजे ॥ ३० ॥
 श्रीमयोरुभयोरपि मम न नागचर्मनिभम् ॥ उपशृण्वन्तु मे मर्वे साक्षिणो हिवनेचराः ॥ ३१ ॥ न्यायादीयथा वाक्यमुक्तो हं परुषं त्वया ॥ धिक्काम
 यमि न भवती न मम रं विभक्तमे ॥ ३२ ॥

लक्ष्मणजी हाय जोंदकर उनमें बोले कि, आज हमारी भाषात देवता हैं, इस प्रकार उत्तर देनेको हमारा साहस नहीं होता ॥ २८ ॥ परन्तु हे जानकि !
 पापने जो यह श्रांश्य बातों कही हैं मो भियोंके लिये इनका कहना कुछ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि इस लोकमें वियोंका स्वभाव ऐसा देखाही जात
 है ॥ २९ ॥ वियोंकी प्राप्ति स्वभावमेही दूर चन्द्र. भग्नजनहीन है, यह पिता पुत्र इत्यादिमें परस्पर भेद करा देती हैं किन्तु हे जानकि ! तुम्हारी य
 र्ना हम पर नहीं मरी जानी है ॥ ३० ॥ अतिशुद्ध पानोंकी नाई यह तुम्हारे वचन हमारे दोनों कानोंको विद्धकर रहे हैं । अच्छा ! वनवासी देवतागण सब
 हमारे भागी रहकर भयण हैं ॥ ३१ ॥ हमने उपाय शानों कही है तथापि तुमने हमको कठोर वचन कहे तुमको धिक्कार है । निश्चयही तुम्हारा विनाशका

उपरिथान ३ (राक्षसगुलकी नाग करानेवाली वृक्षको धिक्कार है यह गूढ है) जो हमपर ऐसी शंका करती हौ ॥ ३२ ॥ हम सदाही गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन किया करते हैं इनने रामचन्द्रजीकी आज्ञा मान तुम्हें छोड़ नहीं जातेथे किन्तु तुमने स्त्रीके स्वभाव और दुष्ट प्रकृतिके वश होकर हमको दुर्वचन कहे । हे वरानने ! जहां रामचन्द्रजी हैं हमभी वहां जाते हैं, तुम कुशाल क्षेमसे रहो ॥ ३३ ॥ और समस्त वनदेवतागण तुम्हारी रक्षा करें, हे विशालाक्षि ! बड़े २ बुरे शत्रुन हमारे मानने वगट हो गये हैं, इस कारणसे फिर रामचन्द्रजीके साथ आकर तुमको कुशल सहित देखें ॥ ३४ ॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकारसे कहा तब जनकनन्दिनी भीमाजी अपरिलयाहिनी अश्रुधारासे भीजकर रोते २ लक्ष्मणजीसे बोली ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मण ! रामके बिना हम गोदावरीमें डूब मरेगी अथवा फाँसीसे प्राण त्याग करेगी

ग्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेनगुरुवाक्येव्यवस्थितम् ॥ गच्छामियत्रकाकुत्स्थःस्वस्तितेऽस्तुवरानने ॥ ३३ ॥ रक्षंतुर्त्वांविशालाक्षिसमग्रावनदेवताः ॥ निमि
तानिद्विधोराणियानिप्रादुर्भवन्तिमे ॥ अपित्वांसहरामेणपश्यंयुनरागतः ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्ततुरुदतीजनकात्मजा ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यं
तीव्रवाष्पपरिस्तुता ॥ ३५ ॥ गोदावरीप्रवेक्ष्यामिहीनारामेणलक्ष्मण ॥ आवंघ्रियेऽथवात्यक्षेविपमेदेहमात्मनः ॥ ३६ ॥ पिवामिवाविपंतीक्ष्णंप्र
वेक्ष्यामिद्भुताशनम् ॥ नत्वहंराघवादयंकदापिपुरुषंस्पृशे ॥ ३७ ॥ इतिलक्ष्मणमाश्रुत्यसीताशोकसमन्विता ॥ पाणिभ्यांरुदतीदुःखादुदरं
प्रजघानह ॥ ३८ ॥ तामार्तरूपांविमनारुदतींसोमित्रिरालोक्यविशालेनत्राम् ॥ आश्वासयामासनचैवभर्तुस्तंभ्रातरंकिंचिदुवाचसीता ॥ ३९ ॥

अपना किनी ऊंचे पर्वत इत्यादिक पर चढकर वहांसे अपनी देहको नीचे गिरा देंगी ॥ ३६ ॥ या तीक्ष्ण विष पान करेंगी, अथवा अग्निमें प्रवेश करेंगी ॥
 तथापि भीरामचन्द्रजीके विना और किसी पुरुषको हय कभी स्पर्श नहीं करेंगी ॥ ३७ ॥ सीताजी इसप्रकार शोकयुक्त होकर रोते २ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर
 दुःखके मोरे अपना उदर पीटने लगीं (सर्व राक्षसोंके नाश विना मेरी उदरपूर्ति न होगी यह ध्वनिहि) ॥ ३८ ॥ लक्ष्मणजीने विशालनयना जनकदुलारी सीताजी

[illegible]

को महाआरत भावसे रोते देखकर बहुत समझाया बुझाया परन्तु फिर जानकीजीने अपने देवर लक्ष्मणजीसे और कुछ न कहा ॥ ३१ ॥ तिसके पीछे जितेन्द्रिय और विशुद्धचिन्त लक्ष्मणजी हाथ जोड़ प्रणाम कर कुछ एक विनती करने हुए और चारों ओर देखते देखते दुःखित हो रामचन्द्रजीके निकट को चले ॥ ४० ॥ इत्यार्य श्रीमद्रामचन्द्रजी ० वाल्मीकि ० आदि ० आरण्यकांडे भाषाटीकायां पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ लक्ष्मणजी जानकीकी कटूक्तिसे पीड़ित हो कोथमें भर श्रीरामचन्द्रजीको देर नेंके लिये अतिचिन्मचिन्मसे चले ॥ १ ॥ तिसके पीछे दशानन रावण यह सुअवसर पाकर यतीका रूप धारण कर शीघ्रही श्रीमीताजीके सामने आया ॥ २ ॥ यह कोमल गेहूआ वस्त्र पहरे शिरपर वार रखाये छत्री लगाये खड़ाकं पहरे बाँधे कंधेपर लाठी और कमंडलु हाथमें ॥ ३ ॥ वह अतिबली ऐसा विद्वंदी संन्यामीका रूप

तत्तस्तुसीतामभिवाद्यलक्ष्मणः कृतांजलिः किंचिदभिप्रणम्य ॥ अवंक्षमाणो बहुशः समैथिलो जगाम रामस्य समीपमात्मवान् ॥ ४० ॥ इत्यार्य श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकव्येऽरण्यकांडे पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ तथापरुषुत्तस्तु कुपितो राववानुजः ॥ सविकांक्षन् शृंगारं प्रतस्थेन चिरादिव ॥ १ ॥ तदा साद्यदश्रीवः क्षिप्रमंतरमास्थितः ॥ अभिचक्राम वेदेहीं परित्राजकरूपवृक्ष ॥ २ ॥ शृङ्गकापायसंवीतः शिलीछत्री उपानही ॥ वामे चासिऽवसज्याथ शुभेयष्टिकमंडलू ॥ ३ ॥ परित्राजकरूपेण वेदेहीमन्ववर्तत ॥ तामाससादातिवलो भ्रातृभ्यारहितवाने ॥ ४ ॥ रक्षितामूर्यचंद्राभ्यां संध्यामिव महत्तमः ॥ तामपश्यत्तोत्रालां राजपुत्रीं यशस्विनीम् ॥ ५ ॥ रोहिणीं शशिना हीनां ग्रहवद्वशदारुणः ॥ तमुग्रपाप क्रमो गंजनस्थानगताद्रुमाः ॥ ६ ॥ संदृश्यन् प्रकंपतेन प्रवाति चमारुतः ॥ शीघ्रलोताश्च तं दृष्ट्वा वीक्षंतं रक्तलोचनम् ॥ ७ ॥ स्तिमितं गंतुमारेभेभया द्रोदावरीनदी ॥ रामस्य त्वंतरं प्रेम्सुदंशं वीवस्तदंतरे ॥ ८ ॥ उपतस्थे च वेदेहीं भिक्षुरूपेण रावणः ॥ अभव्यो भव्यरूपेण भर्तारमनुशोचतीम् ॥ ९ ॥

नना सीताजीके समुत्त हुआ, जब कि दोनों भाई आश्रममें नहीं थे ॥ ४ ॥ जिस प्रकार बिना चन्द्र सूर्यके सन्ध्याकालमें महा अंधकार हो जाता है वैसेही बिना राम और लक्ष्मणजीके सीताजीके निकट दशानन आकर परम यशस्विनी राजपुत्री जनकचन्द्रीजीको देखने लगा ॥ ५ ॥ जैसे चन्द्रमाकरके हीन रोहिणी नक्षत्रको राहु देखे । जनस्थानके समस्त वृक्ष उग्रस्वभाव पाप करनेवाले रावणको देखकर ॥ ६ ॥ हिलने झुलनेसे रहित होगये पवनका चलना बंद होगया । लालः २ नेत्र किये सीताजीके प्रति उसकी दृष्टिको लगी देख नदीभी शीघ्र गतिको त्याग मंद २ बहने लगी ॥ ७ ॥ गोदावरी नदीका जलभी शंकाके वश होकर मंद २ बहने लगा । इसी अवसरमें रामचन्द्रजीका अन्तर चाहनेवाला दयाशील ॥ ८ ॥ भिक्षुका वेश बनाकर वेदेहीजीके निकट आन पहुँचा, यह महाकुरूप दशानन अतिरूपवती

जानकीजी को ऐसे ग्राम हुआ जिसप्रकार । चिदानक्षत्रके निकट शनि आताहै, वहाँ पहुँच उसने ऐसा दीप टापका संन्यासी
 रंग बनाया । तब नगर निगहोंमें छिराहुआ कुँआ हो और वहाँ आने वाला चट उसमें गिरे ॥ १० ॥ ऐसा छप्रवेशी साधुका वेश धारण किये हुए रावण उन
 पराभेदी समझलिया जानकीजीकी ओर देगकर सडा हुआ ॥ ११ ॥ सुन्दर स्वरूप, दशनपंक्ति जिनकी मनोहर, वदन पूर्णचन्द्रसमान जो जानकीजी परगालामें
 रही भती पतिरुं गोरुने पीडित होगहीरथी ॥ १२ ॥ तिन कमलनेचा पीताम्बर धारण किये जानकीजीके निकट वह निशाचर हर्षसहित पहुँचा ॥ १३ ॥ ऐसी जानकी
 जीसे देव रास काननं पाणने पीडितहुवा उस समय वेदका उच्चारण करके जानकीजीकी प्रशंसा करके कहनेलगा ॥ १४ ॥ तुम तीनोंलोकमें उत्तमहो;

अभ्यस्ततं देहो निमग्नमिदं नैश्वर्यः ॥ सहस्राभ्यरूपेण तृणैः कूपइवावृतः ॥ १० ॥ अतिष्ठत्प्रेक्ष्य वै देहो रामपत्नीयशस्विनीम् ॥ तिष्ठन्संप्रेक्ष्य च
 तदापर्वोगमस्तरावणः ॥ ११ ॥ शुभां रुचिरदंतोष्ठां पूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ आसीनां पर्णशालायां वाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥ १२ ॥ सतांपद्मपला
 शाभीपीतकौशेयसामिनीम् ॥ अभ्यगच्छत् वै देहो हृद्यचेतानिशाचरः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा कामशराविद्धो ब्रह्मचोपमुदीरयन् ॥ अत्रवीत्प्रश्रितं वाक्पयं
 दिते गतनाथिपः ॥ १४ ॥ तामुत्तमां त्रिलोकानां पद्मदीनामिव श्रियम् ॥ विभ्राजमानां वपुषा रावणः प्रशशंसह ॥ १५ ॥ सौम्यकांचनवर्णाभिपीत
 कौशेयसामिनि ॥ कमलानां शुभां मालां पद्मिनीवचविभ्रती ॥ १६ ॥ द्वीः श्रीः कीर्तिः शुभालक्ष्मीरूपसराशुभानने ॥ भूतिर्वात्स्वरोहेरतिर्वारि
 तारिणी ॥ १७ ॥ ममाः शिखरिणः विग्धाः पांडुरादशनास्तव ॥ विशाले विमलेनेत्रे रक्तकृष्णतारके ॥ १८ ॥ विशालं जघनं पीनमूहकरि
 करोपमौ ॥ एतावुपनितां वृत्तां संदत्तां संगल्भितौ ॥ १९ ॥

और पद्मिनीकी समान मनोहर कमल फूलोंमें समाकुल होरहीहो ऐसी प्रगंसा रावणने की ॥ १५ ॥ फिर कहा कि हे शुभानने । तुम्हारा वर्ण विशुद्ध कांचनकी सदृश है;
 निभार तुम पीठे वर्णके रंगमीन रूप पहरेहो, कमल फूलोंकी माला गलेमें धारण कियेहो ॥ १६ ॥ हे वरारोहे । तुमही, श्री कीर्ति, लक्ष्मी, अप्सरा, अथवा
 भूति हो या मातातु रवि हो जो वनमें दृष्टानुसार विहार करती हो मोचतलाओ कि तुम कौन हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे सब दांत परस्पर समान हैं, उनका
 आनंदमाला तुम्हारी कोर सरस मनोहर और अनेक वर्णों है । तुम्हाहे नैव युगल विभ्रातः, निर्मल अरुणाई लिये, और कृष्णनाराजी कण्ठके मुक्त हैं ॥ १८ ॥ तुम्हारा
 वपुष अभिप्रेत १ विभ्रातः के और कानि कानि कीर्ति की श्रवणके समान बरा उभार बहे २, शोभाकाव वक्त्रमें लम्ब बिछे कुछ केंचरसमान ॥ १९ ॥

तुम अकेली कैसे इस महावनमें नहीं डरती हो ? हे वरानने ! तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो कहते आई हो, और किस कारण इस दंडकारण्यमें ॥ ३१ ॥ अकेली विचरती हो ? क्योंकि यह जगह घोर राक्षसों के युक्त इस प्रकारसे महात्मा रावणने वैदेहीजीकी प्रशंसा की ॥ ३२ ॥ उसको ब्राह्मण वेप धारण किये आया हुआ देख जानकीजीने यथाविधि अतिथिसत्कारसे सब भांति उसकी पूजा की ॥ ३३ ॥ प्रथम बैठनेके लिये आसन दिया फिर चरण धोनेको जल, पुनः फलाहारादिक जो रखेथे वह सौम्य दर्शन रावणको निवेदन किये ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणका वेप धारण किये लाल वस्त्र पहरे संन्यासीकी समान पात्र लिये जानकीजीने महात्माकी उपेक्षा न करनी चाहिये इस कारण ब्राह्मणकेही समान रावणका निमंत्रण करके कहा ॥ ३५ ॥ हे विप्र ! आप कुशासनपर सुखसहित बैठ जाइये,

कथमेकामहारणेनविभेपिवरानने ॥ कासिकस्यकुतश्चत्वंकिन्निमित्तंचदंडकान् ॥ ३१ ॥ एकाचरसिकल्याणिघोराराक्षससेवितान् ॥ इतिप्रशस्ता
वैदेहीरावणेनमहात्मना ॥ ३२ ॥ द्विजातिवेयेणहितंहृद्वारावणमागतम् ॥ सर्वैरतिथिसत्कारैःपूजयामासमैथिली ॥ ३३ ॥ उपानीयासनंपूर्वपाद्येना
भिनिमंत्र्यच ॥ अत्रवीत्सिद्धमित्येवतदातंसौम्यदर्शनम् ॥ ३४ ॥ द्विजातिवेयेणसमीक्ष्यमैथिलीसमागतंपात्रकुसुंभधारिणम् ॥ अशक्यमुद्रे
ष्टुपायदर्शनान्यमंत्रयद्राह्मणवत्तथागतम् ॥ ३५ ॥ इयंबृसीब्राह्मणकाममास्यतामिदंचपाद्यं प्रतिगृह्यतामिति ॥ इदंचसिद्धंनजातसुत्तमंत्वदर्थमव्यग्र
मिहोपभुज्यताम् ॥ ३६ ॥ निमंत्र्यमाणःप्रतिपूर्णभापिर्णानैरद्रपत्रींप्रसमीक्ष्यमैथिलीम् ॥ प्रसह्यतस्याहरणेदृढमनःसमर्पयामासवधायारावणः
॥ ३७ ॥ ततःसुवेपंमृगायागतंपतिंप्रतीक्षमाणासहलक्ष्मणंतदा ॥ निरीक्षमाणाहारितं ददर्शतन्महद्गुर्नैवतुरामलक्ष्मणौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीम
द्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकांडे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

और यह पाय ग्रहण कीजिये, व यह वनके फल सब आपकेही लिये रखेहैं, इनको योजन कीजिये ॥ ३६ ॥ नरेन्द्रभार्या जानकीजीने जब इसप्रकार निमंत्रण किया तब रावण उनकी ओर देख अपना मन अर्पण कर अपने वध करानेको वलपूर्वक उनके हरेलजानेका निश्चय करताहुआ ॥ ३७ ॥ परम प्रियमूर्ति रामचन्द्रजी लक्ष्मण जीके सहित मृगया करने गयेथे. जानकी उस समय उनकी वाट देखती हुई इधर उधर दृष्टि करने लगीं, तो केवल चारों ओर बड़े विस्मयगर्बालो हरे कर्णिकी प्रत्यक्ष ही दृष्टि आई, परन्तु राय लक्ष्मणजी निमंत्रण करने लगेथे.

जय मंन्यामीनेपगारी रावणने हरण करनेके अभिलाषते इस भांति पूछा तब सीताजी आपही आप विचार करने लगी ॥ १ ॥ कि एक तो यह ब्राह्मणहै दूसरे अतिथिहै जो हम हमसे नहीं घोलती, तो कदाचित् शाप न देदे, एक मुहूर्त भर यह शोच विचारकर जानकीजी उससे बोली ॥ २ ॥ आपका कल्याणहो । हम मिथि छानरेग यहत्ना जनकजीकी तो कन्याहै और श्रीरामचन्द्रजीकी मिय भार्याहैं हमारा नाम सीताहै ॥ ३ ॥ विवाह होनेके पीछे इन्द्राकुंवरियोंकी राजधानी अयोध्यानगरीमें चारह वर्षतक रहकर पूर्णमनोरथहो अनेक प्रकारके मनुष्योंको दुर्लभ सुख हमने भोगे ॥ ४ ॥ फिर तेरहवें वर्षमें राजा दशरथजीने मंत्रिगणोंके साथ मलाह करके रामचन्द्रजीके अभिषेक करनेका उद्योग किया ॥ ५ ॥ उनकी आज्ञानुसार सब अभिषेककी तैयारियां होने लगीं, उस समय हमारी माननीया सासु

रावणनेतुर्वेदीतदाष्टप्राजिहीर्षुणा ॥ परिव्राजकरूपेणशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥ ब्राह्मणश्चातिथिश्चैपअनुक्तोद्दिशेपेतमाम् ॥ इतिध्यात्वासुहृतं तुसीताचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ दुहिताननकस्याहंमैथिलस्यमहात्मनः ॥ सीतानामास्मिभद्रंतेरामस्यमहिषीप्रिया ॥ ३ ॥ उपित्वाद्वादशसमा इन्द्राकूणानिवेशने ॥ भुंजानामानुपान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥ ४ ॥ तत्रत्रयोदशेवर्षेराज्यामंत्रयतप्रभुः ॥ अभिषेचयितुरामंसमेतोरामं त्रिभिः ॥ ५ ॥ तस्मिन्संभ्रियमाणेतुराववस्याभिषेचने ॥ कैकेयीनामभर्तारिममार्यायाचतेवरम् ॥ ६ ॥ परिगृह्यतुकेकैयीथशुरंसुहृतेनमे ॥ ममप्र्राजनर्भन्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥ ७ ॥ द्रवयाचतभर्तारंसत्यसंधंनृपोत्तमम् ॥ नाद्यभोद्वयेनचस्वप्स्येनपास्येचकदाचन ॥ ८ ॥ एषमेजी वित्तस्यनोरामोयदमिष्यते ॥ इतिद्विषाणकिंकैर्योश्चशुरोमंसपार्थिवः ॥ ९ ॥ अयाचतार्थैर्न्यर्थैर्नचयाच्चांचकारसा ॥ ममभर्तामहातेजावय मापंचयिंशकः ॥ १० ॥ अष्टादशहिवर्षाणिमजन्मनिगण्यते ॥ रामेतिप्रथितोलोकेसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ ११ ॥

कैकेयीजीने अपने स्वामी राजा दशरथजीसे दो वर मांगे ॥ ६ ॥ कैकेयीजीने अपने सुहृत्के बलसे श्वशुरको धर्मके बरामें करके हमारे स्वामी रामचन्द्रजीको बतवात, और भरतजीको अभिषेक ॥ ७ ॥ यह दो वर नृपश्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथजीसे मांगे और उन्होंने सत्यप्रतिज्ञ, नृपतिश्रेष्ठ राजा दशरथजी अपने स्वामीसे दो वर मांग यहभी कहा कि जो रामचन्द्रजीका अभिषेक होगा, तो हम किसी प्रकारसे भी भोजन पान वा शयन न करेंगी ॥ ८ ॥ और यही हमारे जीवनका अंत होजायगा जो रामचन्द्रजीका अभिषेक हुआ तो हम न जियेंगी । जब कैकेयीने इस प्रकार कहा तो हमारे श्वशुर महाराज दशरथजीने ॥ ९ ॥ उनसे बहुत पनाटि देनही प्रार्थना की परन्तु उन कैकेयीजीने न मानी उस समय महा तेजवाद् हमारे स्वामी पचीस वर्षके ॥ १० ॥ और हमारी आयु जन्मसे गणना करके

अत्राह वर्षकी थी, हमारे स्वामी रामनामसे विख्यात हैं, वह सत्यवान, सुशील, निर्मल स्वभाव ॥ ११ ॥ विशालनेत्र, सर्व प्राणियोंके हितकारी महा...
परन्तु इनके पिता महाराज दशरथजी कामसे आर्त होगये थे ॥ १२ ॥ इसकारण कैकेयीका प्रिय करनेके लिये उन्होंने इस प्रकारके गुणसम्पन्न रामचन्द्र...
अभिषेक न किया और जब रामचन्द्रजी अभिषेकार्थ अपने पिताके निकट आये तो ॥ १३ ॥ कैकेयीने शीघ्रही उनसे यह वचन कहा कि, हे रघु...
तुम्हारे पिताजीने तुमको जो आज्ञा दीहै वह हमसे सुनो ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ ! भरतको यह निष्कटक राज्य देना होगा और तुम्हें चौदह वर्षके लिये...
रहना पड़ेगा ॥ १५ ॥ इसकारण तुम वनमें जाकर पिताके सत्यकी रक्षा करो और मिथ्यावादी न करो, पिताको इस क्रणसे छुड़ाओ. तब दृढव्रत हमारे...

विशालक्षीमहाबाहुःसर्वभूतहितैस्तः ॥ कामार्तेश्वमहाराजःपितादशरथःस्वयम् ॥ १२ ॥ कैकेय्याःप्रियकामार्थंतरामनाभ्यपेचयत् ॥ अंगि...
कायतुपितुःसमीपंराममागतम् ॥ १३ ॥ कैकेयीममभर्तारमित्युवाचद्रुतंवचः ॥ तवपित्रासमाज्ञासंभेदंशृणुराघव ॥ १४ ॥ भरतायप्रदा...
मिदंराज्यमकंटकम् ॥ त्वयातुल्यवस्तव्यनववर्षाणिपंच ॥ १५ ॥ वनेप्रव्रजकाकुत्स्थपितरंमोचयानृतात् ॥ तथेत्युवाचतारामःकैकेयीमहर्षो...
भयः ॥ १६ ॥ चकारतद्वचःश्रुत्वाभर्तारमहद्व्रतः ॥ दद्यान्नप्रतिगृहीयात्सत्यंश्रयात्रानृतात् ॥ १७ ॥ एतद्ब्राह्मणरामस्यव्रतंधृतमनुत्तमम् ॥ तन्न...
भ्रातातुर्वेमात्रोलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ १८ ॥ रामस्यपुरुषव्याघ्रःसहायःसमरेऽरिहा ॥ सम्रातालक्ष्मणोनामब्रह्मचारीदृढव्रतः ॥ १९ ॥ अ...
च्छद्वनुष्पाणिःप्रव्रजंतंमयासह ॥ जटीतापसरूपेणमयासहसहातुजः ॥ २० ॥ प्रविष्टोदंडकारण्यंधर्मनित्योदृढव्रतः ॥ तेवयंप्रच्युताराज्य...
कैव्यास्तुकृतेवयः ॥ २१ ॥ विचरामोद्विजश्रेष्ठनंगंभीरमोजसा ॥ समाश्वसमुहूर्ततुशक्यंवस्तुभिहत्वया ॥ २२ ॥

भीरामचन्द्रजीने निडरहोकर कैकेयीसे ऐसाही होगा, यह कहा ॥ १६ ॥ हमारे दृढव्रतधारी स्वामीने उनके वचन सुनकर उसीके अनुसार कार्य किया. हे...
वह केवल लोकोंको दान किया करते हैं; परन्तु कभी किसीसे कुछ ग्रहण नहीं करते, सदाही सत्य कहते हैं कभी मिथ्या नहीं कहते ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण ! च...
रामचन्द्रजीका श्रेष्ठवर्त है । उनके सौतेले भाई लक्ष्मणजी अतिशय वीर हैं ॥ १८ ॥ व सदा रामजीके संग रहा करते हैं पुरुषव्याघ्र हैं समरमें निहारतेही शत्रुक...
करते हैं वह ब्रह्मचारी और दृढव्रतधारी हैं ॥ १९ ॥ धनुषबाण हाथमें ले, जया रखाय तपस्वीका भेष बनाय रामचन्द्रजीके व हमारे साथ २ वनमें चले आये ॥ २० ॥
इसप्रकार दृढव्रतधारी महात्मा रामचन्द्रजी भाता लक्ष्मण और अपनी स्त्री सहित जया रखाय तपस्वी के धारणकर दंडकारण्यमें आये ॥ २१ ॥ हे द्विजभेष ! अब हम

तीनजन कंकरीके कारण राज्यसप्त होकर अपने तेजेके प्रभावसे गंभीर वनमें विचरण करते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! एक मुहुर्त भर विश्रामकरो ॥ २२ ॥ अभी हमारे
 स्वामी बहुत सारे वनफल, मूल और, रुरु, वराह व गोधा वध करके बहुत मांस द्रव्य ले यहाँ आते होंगे जब वह आवेंगे तब आपका भली भाँतिसे सत्कार होगा
 इनमे विराजिये ॥ २३ ॥ इस समय आप अपना नाम गोत्र और वंश सत्य २ कहिये हे द्विज ! किस कारणसे आप इस दंडकारण्यमें अकेले घूमते हैं ॥ २४ ॥ जब
 रामभार्या भीताने इस प्रकारके वचन कहे तो महा बलवान् राक्षसराज रावण उनको तीसा उचर देता हुआ बोला ॥ २५ ॥ हे जानाकि ! सुर असुर और मनुष्य
 महित समस्त लोक जिसके डरके मारे धर २ कांपते हैं हम वही राक्षसोंके राजा रावणहैं ॥ २६ ॥ तुम्हारा लावण्य कांचनकी समान है और तुम रेशमी वस्त्र
 पहारहीदो, हे अनिन्दिते ! तुमको देखकर अपनी श्रियोंमें हमारा अच कुलभी अनुराग नहीं रहा ॥ २७ ॥ हम बहुत सारी उत्तम स्त्रियें अनेक स्थानोंसे हरकर लाये हैं
 आगमिष्यतिमेभर्तावन्यमादायपुष्कलम् ॥ रुरुत्तगोधान्वराहंश्चहत्वादायामिपंवहु ॥ २३ ॥ सत्वंनामचगोत्रचकुलमाचक्ष्वतत्त्वतः ॥ एक
 श्रंदङकारण्येकिमर्थचरसिद्विज ॥ २४ ॥ एवंवृत्त्यांसीतायारामपत्न्यामहाबलः ॥ प्रत्युवाचोत्तरंतीव्ररावणोराक्षसाधिपः ॥ २५ ॥ येनवित्रा
 सितालोकाःसंद्वामुरमानुषाः ॥ अहं सरावणोनामसीतेरक्षोगणेश्वरः ॥ २६ ॥ त्वांतुकांचनवर्णाभांद्वाकौशेयवासिनीम् ॥ रतिस्त्वकेषुदारेषुना
 धिगच्छाम्यनिदिते ॥ २७ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितमस्तः ॥ सर्वासामेवभद्रंतेमामग्रमहिषीभव ॥ २८ ॥ लंकानामसमुद्रस्यमध्येमम
 महापुरी ॥ सागरंणपरिक्षितानिविष्टागिरिमूर्धनि ॥ २९ ॥ तत्रसीतेमयासांद्ध्वनेषुविचरिष्यसि ॥ नचास्यवनवासस्यस्पृहयिष्यसिभामिनी ॥
 ३० ॥ पंचदास्यःसहस्राणिसर्वाभरणभूषिताः ॥ सीतेपरिचरिष्यंतिभार्याभवसिमयेदि ॥ ३१ ॥ रावणेनैवमुक्तातुकुपिताजनकात्मजा ॥
 प्रत्युवाचानवद्यगीतमनाहत्यराक्षसम् ॥ ३२ ॥

सो तुम उन समस्तके बीचमें पदरानी बनो ॥ २८ ॥ तुम्हारा मंगलहो, हे जानाकि ! चारों तरफ समुद्रसे घिरीहुई पर्वतके शिर विकूटपर लंका नामक जो नगरीहै वह हमारा
 रीही है ॥ २९ ॥ तुम वहाँ हमारे साथ महाबलोंमें विचरण किया करोगी, हे भामिनि ! वहाँ विचरण करनेपर फिर तुमको इस वनमें वास करनेकी अभिलाषा
 नहीं रहेगी ॥ ३० ॥ हे सीते ! यदि तुम हमारी भार्या बनोगी तो सर्व वस्त्राभूषण भूषित पांच हजार दासियें तुम्हारी सेवा किया करेंगी ॥ ३१ ॥ “रावण यह
 जानता था कि, मैंने एने पाप किये हैं कि, जिससे जब तप करनेसे कदाचित् मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती इस कारण विरोध करके राम जिनको तत्त्वसे ईश्वर
 जानता था उनके हाथसे मरनेमें मुक्तिकी प्राप्ति विचारकर जानकीसे ऐसे वाक्य कहे कि जो ऐसे निरुर वचन कहें तो शीघ्र अधिक पाप करनेसे राम करनेसे

पद प्राऊँगा” अनिन्दिता जनककुमारी जानकीजी राक्षसराज रावण करके इस प्रकार कही जानेपर महाकोपित हुई, और उसका अनादर करके कहने लगी ॥ ३२ ॥ जो यहां पर्वत सुमेरुके समान सबके आश्रय देनेवाले अकंपनीय, महासागरकी समान क्षोभ रहित हैं, ऐसे महेन्द्र तुल्य हम स्वामी रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३३ ॥ जो सब शुभलक्षण युक्त वटवृक्षकी समान हैं, हम उनकी सत्य प्रतिज्ञा महाभाग रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३४ ॥ जो आजानु बाहुवाले हैं, धियालहृदय है, और सिंहके समान विक्रमके साथ चलनेवाले हैं हम उन्हीं नृसिंह और सिंहसदृश रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३५ ॥ उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान है, कीर्ति बहुतही विस्तारित होरही है और बांहें जिनकी अति बड़ी हैं, हम उन्हीं राजकुमार जितेन्द्रिय रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३६ ॥ तुम शगाल होकर सिंहीका अभिलाष करते हो, परन्तु तुम हमको नहीं ले सकते, जैसे सूर्यकी प्रभाको कोई नहीं छू सकता ऐसेही श्रीरामचन्द्रजीके तेजरूप अग्निसे धिरी हमको

महागिरिमिवाकं पृथग्महेंद्रसदृशं पतिम् ॥ महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥ ३३ ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं न्यग्रोधमारिमंडलम् ॥ सत्यसंधं महाभाग मंहराममनुव्रता ॥ ३४ ॥ महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम् ॥ नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ॥ ३५ ॥ पूर्णचंद्राननं रामराजवत्संजितं द्वियम् ॥ पृथुकीर्तिमहाबाहुं महं राममनुव्रता ॥ ३६ ॥ त्वंपुनर्जंयुः सिंहीमांमिहच्छसिदुर्लभम् ॥ नाहं शक्यात्स्वत्प्राप्तुमादित्यस्य प्रभायथा ॥ ३७ ॥ पादपाङ्कांच नाचून् बहून् पश्यसि मंदभाक् ॥ राघवस्य प्रियां भार्यायस्त्वमिच्छसि राक्षस ॥ ३८ ॥ क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्त्विनः ॥ आशीविपस्य वदनां दंशमादातुमिच्छसि ॥ ३९ ॥ मंदरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हंतुमिच्छसि ॥ कालकूटविपं पीत्वा स्वस्तिमान्गंतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ अक्षिसूच्याप्रमृजसि जिह्वालेटि चक्षुरम् ॥ राघवस्य प्रियां भार्यामधिगंतुं त्वमिच्छसि ॥ ४१ ॥

तुम पानेकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥ ३७ ॥ अरे अभागो राक्षस ! जब कि, तूने रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याके हरनेका अभिलाष किया है, तब तू निश्चयही सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता होगा (स्वप्नमें सोनेका वृक्ष देखना मृत्युरूप है) अथवा तुमको हमारा प्राप्त करना ऐसा दुर्लभ है जैसे कोई दारिद्र सुवर्णके सहस्रों पेट अपने गृहमें देखनेकी इच्छा करे ॥ ३८ ॥ मृगारि शीघ्रगामी और बड़े क्षुधित सिंहके मुखसे या विषपर सर्पके मुखसे तुम दांत निकालनेकी इच्छा करते हो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतपर मन्दराचलको भुजासे उखाटन करना चाहते हो, और कालविष पीकर भी इस शरीर सहित सकुशल जाया चाहते हो ॥ ४० ॥ क्या तुम सूची (सुई) से अपने नेत्रोंको रघुजनेकी इच्छा करते हो, या छुरेकी धारको अपनी रसनासे चाटना अच्छा समझते हो, क्योंकि जो तुम श्रीरामचन्द्र

जीकी परमप्यारी नारी हमको पानेकी इच्छा करते हो ॥ ४१ ॥ तुम श्रीवामे पर्वतका शिररवांघ समुद्र उत्तरना विचारतेहो, और सूर्य चन्द्रमा दोनोंको उभय भुजासे पकड़ना चाहते हो ॥ ४२ ॥ जो कि, तुमने श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी नारीको बलपूर्वक प्राप्त होनेकी इच्छा की है, सो यह इच्छा ऐसी है, जेमे कोई जलतीहुई अग्नि वसमें बांधकर ले जाना चाहै ॥ ४३ ॥ तुमने जो रामचन्द्रजीकी कल्याणव्रतवाली भार्याको हरनेकी इच्छा की है, सो यह इच्छा लोहके त्रिगुल्लोके बीचमें चलनेकी समानहै ॥ ४४ ॥ सिंह और शृगालमें, छुद्रनदी व सागरमें, अमृत और सिरकेमें जितना भेदहै उतनाही भेद श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४५ ॥ कांचन शीशे और लोहेमें, चन्दन जल और कीचड़में, वनमें हाथी और बिलावमें जितना अन्तरहै, उतनाही अन्तर श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४६ ॥ गहड़ और काकमें, मोर और जलमुर्गमें, हंस और गीधमें जितना अन्तरहै उतनाही अन्तर श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४७ ॥ महेन्द्रसम

अवसज्यशिलाकंठेसमुद्रतुमिच्छसि ॥ सूर्याचन्द्रमसोचोभोपाणिभ्यांहर्तुमिच्छसि ॥ ४२ ॥ योरामस्यप्रियांभार्याप्रथपथितुमिच्छसि ॥ अग्निप्रज्वलितंदद्वावह्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥ ४३ ॥ कल्याणवृत्तांयोभार्यारामस्याहर्तुमिच्छसि ॥ अयोमुखानांशुलानांमव्येयारितुमिच्छसि ॥ रामस्यसदृशींभार्यायोऽधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४४ ॥ यदंतरंसिंहशृगालयोर्वेनचदंतरंस्वदनिकामसुद्रयोः ॥ सुराग्र्यसौवीरकयोयंदंतरंतदंतरंदाशरथेस्तवेवच ॥ ४५ ॥ यदंतरंकांचनसीसलोहयोर्वेनचदंतरंदाशरथेस्तवेवच ॥ ४६ ॥ यदंतरंवायसवैनतेययोर्वेनचदंतरंमहूमयूरयोरपि ॥ यदंतरंहंसकण्ठयोर्वेनचदंतरंदाशरथेस्तवेवच ॥ ४७ ॥ तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावैरामेस्थितेकामुहवाणपानी ॥ हतापितेद्वनजरांगमिष्येआज्ययथामक्षिकयाऽवगीर्णम् ॥ ४८ ॥ इतीवतद्वाक्यममुष्टभावासुदुष्टुकारजनीचरंतम् ॥ गात्रप्रकंपाद्व्यथितायध्रुववातोद्धतासाकदलीवतन्वी ॥ ४९ ॥ तविपमानामुपलक्ष्यसीतांसारवणोमृत्युसमप्रभावः ॥ कुलंवलनमचकमेचात्मनःसमाचनक्षेभयकारणार्थम् ॥ ५० ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥

प्रभाववाली श्रीरामचन्द्रजी जो धनुष बाण धारण किये इस पृथ्वीपर टिकेहैं, वो यदि तुम हमको हरभी ले जाओगे तो तुम्हारे यहां हम वृद्धावस्थाको प्राप्त न होगी, अर्थात् वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर हमको लेआवेंगे । जिसप्रकार धृतमें मक्खसी पहजाय तो धृत दूषित नहीं होता, वरन् मक्खसीही प्राण देतीहै अर्थात् हमारा कुष्ठ न होगा तुमही मारे जाओगे ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार पवनके चलनेसे कदलीका वृक्ष कंपायमान होकर हिलने लगताहै, वैसेही शुद्धस्वभाववाली तन्वीगी जानकीजी दुष्ट राक्षसे इस प्रकारके वचन कह थर २ कांपने लगीं ॥ ४९ ॥ तिन जनकात्मजा सीताजीको कंपायमान देखकर मृत्युसमप्रभावयुक्त रावण उनको डरपा नेकेलिये अपना कुठ नाम और कर्म कहने लगा ॥ ५० ॥ इत्यापे श्रीमदा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

भीमाजीने ह्म नगराते कठोर वचन कहे तब रावणने महाक्रोधित होकर भुक्रुटि टेढी करके कहा ॥ १ ॥ हे वरवर्णिनि ! हम कुबेरके सौतेले भाई हैं । हम यापगाढीस नाम दयावीच रावणहै तुम्हारा मंगलहो ॥ २ ॥ जिस प्रकार प्रजागण मृत्युसे भय करते हैं, वैसेही हमारे भयसे भीत होकर, देव, गन्धर्व, पिशाच, त्रिग्न और उरगण सपस्तही सदा भागते हैं ॥ ३ ॥ हमने किसी कारणवशसे क्रोधमें भर द्रुव्द करके संग्राममें विक्रम प्रकाश करके सौतेले भाई कुबेरको सब नगरने जीत लियाहै ॥ ४ ॥ इस कारण वह हमसे डरकर धन धान्य ऋद्धि सिद्धि से भरी पुरी अपनी लंकापुरी त्यागकर पर्वतराज कैलासमें वास करते हैं ॥ ५ ॥ हे भरे ! हमने अपने वीर्यके प्रभावसे उन कुबेरका इच्छानुसार चलनेवाला परमसुन्दर पुष्पकनामक विमानभी हरण करलियाहै हम उसी विमानमें बैठकर आकाशमार्गमें

पुण्यव्रतार्थासीतार्थासंरुचः परुषं वचः ॥ ललाटे भुक्रुटि कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह ॥ १ ॥ भ्राता वैश्रवणस्याहं सापत्नो वरवर्णिनि ॥ रावणो नाम भद्रं ते दशमीः प्रतापवान् ॥ २ ॥ यस्य देवाः संगंधर्वाः पिशाचपतंगो रगाः ॥ विद्रवंतिसदाभीतामृत्यो रिव सदा प्रजाः ॥ ३ ॥ येन वैश्रवणो भ्राता वैमात्रः कारणतिरे ॥ द्रुं द्रमासादितः क्रोधाद्रग्ने विक्रम्य निर्जितः ॥ ४ ॥ मद्रथातः परित्यज्य स्वमधिष्ठानमृद्धिमतम् ॥ कैलासं पर्वतं श्रेष्ठमध्यास्तेन रवाह नः ॥ ५ ॥ यस्य तत्पुष्पकं नाम विमानं कांगं शुभम् ॥ वीर्यादावर्जितं भद्रे येन यामि विहाय समम् ॥ ६ ॥ मम संजातरोपस्य मुखं दृष्ट्वैव मैथिलि ॥ विद्रवं तिपित्रस्ताः सुराः शक्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥ यत्र तिष्ठाम्यहं तत्र भारुतो वातिशंकितः ॥ तीव्राशुः शिशिरांशुश्च भयात्संपद्यते दिवि ॥ ८ ॥ निष्कंपपत्रास्त रपो नद्यश्च स्तिमितो दकाः ॥ भवंति यत्र तत्राहं तिष्ठामि चरामि च ॥ ९ ॥ मम पारसे समुद्रस्य लंकानामपुरीशुभा ॥ संपूर्णाराक्षसे चोरैर्यथैद्रस्यामराव ती ॥ १० ॥ प्राकारेण परिनिस्तायां दुर्गं विराजता ॥ हेमकक्ष्यापुरीरम्या वैदूर्यमयतोरणा ॥ ११ ॥

पछोई ॥ ६ ॥ हे मैथिलि ! हमें क्रोध उत्पन्न हुआ कि हमारा मुख देखतेही इन्द्रादि मुख्य देवतागण महाभयभीत होकर दशों दिशाओंको भाग जाते हैं ॥ ७ ॥ जहाँ पर हम रहा करते हैं, वायु वहाँ पर शंकासहित चला करतीहै और सूर्यभी हमारे भयसे आकाशमें डल्यै चन्द्रमाके समान देख पड़ताहै ॥ ८ ॥ अधिक शया कहें ? जहाँ पर हम बैठते उठते व घूमते घूमते हैं वहाँ पर वृक्षाके पत्तेभी नहीं हिलते डुलते, नदियोंका जलभी बहनेसे रुक जाताहै ॥ ९ ॥ मन्द्रके पार हमारी लंका नामक परम सुन्दर नगरी है वह पुरी देखनेमें इन्द्रकी दूसरी अमरावतीहै भयंकर निशाचरगण उसमें रहा करतेहैं ॥ १० ॥ और वहाँपर श्वेत पसरते गुप्त पशुने गोभित हो रहे हैं, उस लंकापुरीके सब फाटक वैदूर्य मणिके वनेहैं और परकोट्य सुवर्णकाहै, चारों ओर जिसके समुद्ररूपी साँदे हैं, जिससे यह

पुरी परम मनोहारिणी होगई है ॥ ११ ॥ वहांपर सदाही चाजोंकी ध्वनि गुँजती रहनीहै। उसमें हाथी घोड़े और रथसमूह बहुत भररहे हैं। वहांकी सन जुलवाइये अधिकपित फल देनेवाले वृक्षोंसे युक्त हैं जिससे चाडियोंकी अति शोभा होरहीहै ॥ १२ ॥ हे राजपुत्री सीते ! तुम हमारे साथ उस नगरीमें वास करोगी, तब फिर मनुष्योंकी श्रियोंको कभी स्मरणभी नहीं करोगी ॥ १३ ॥ हे मनस्विनी चरवर्णिनी ! वहांपर तुम यह दिव्य भोग करके जो मनुष्योंको महादुर्लभहै क्षीणायु रामचंद्रको कभी मनमें स्मरण न करोगी ॥ १४ ॥ और दशरथजीने भरतजीको राज्याभिषेक करके मन्दवीर्यवाले अपने बड़े पुत्र श्रीरामचन्द्रजीको वनमें भेज दिया ॥ १५ ॥ हे षडे २ नेववाली ! तुम उन राज्यभट गतचित्र तपस्वी रामके साथ रहकर क्या करोगी ? ॥ १६ ॥ हम समस्त राक्षसोंके राजा, कामवाणसे बंधे जाकर तुम्हारे

हस्त्यश्वरथसंवाधातूर्यनादविनादिता ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसंकुलोद्यानभूषिता ॥ १२ ॥ तत्र त्वं वसहेसीते राजपुत्रिमया सह ॥ न स्मरिष्यसि नारीणां मातुपीणामनस्विनि ॥ १३ ॥ भुजानामानुषान् च भोगान् दिव्यांश्च वरवर्णिनि ॥ न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः ॥ १४ ॥ स्थापयित्वा प्रियं पुत्रं राज्ये दशरथो नृपः ॥ मंदवीर्यस्ततो ज्येष्ठः सुतः प्रस्थापितो वनम् ॥ १५ ॥ तेन किं प्रष्टराज्येन रामेण गतचेतसा ॥ करिष्यसि विशालाक्षितापसेनतपस्विना ॥ १६ ॥ रक्षारक्षसभर्तारं कामयस्व यमागतम् ॥ नमन्मथ शराविष्टं प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १७ ॥ प्रत्याख्यायहि मां भीभीरुपश्चात्तापं गमिष्यसि ॥ चरणेनाभिहृत्यैव पुरुरवसुर्वशी ॥ १८ ॥ अंगुल्यानसमो रामो मयुद्धे समानुपः ॥ तव भाग्येन संप्राप्तं भजस्व वरवर्णिनि ॥ १९ ॥ एवमुक्ता तु वेदेहीकुक्षासंरक्तलोचना ॥ अत्र वीतपुरुषं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपम् ॥ २० ॥ कथं वै श्रवणं देवं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ आतरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥ अवश्यं विनिशिष्यं तिसर्वे रावणराक्षसाः ॥ येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्द्विरजितेंद्रियः ॥ २२ ॥

पास आपही आवे हैं सो हमारा निरादर करना तुमको उचित नहीं है ॥ १७ ॥ हे भीरु ! हमारा निरादर करनेसे पीछे तुमको पछताना पड़ेगा जिस प्रकार उर्वशी राजा पुरुखाको लाव मारकर संतापित हुईथी ॥ १८ ॥ राम मनुष्यहै, वह युद्धमें हमारी एक अंगुलीकी समानभी नहीं होगा। हे वरवर्णिनि ! हम तुम्हारी मौभा मनेही आप यहाँ आवे हैं, इससे तुम हमको अपना पति बनाओ ॥ १९ ॥ जब रावणने इस प्रकारके वचन कहे, तब सीताजीके नेत्र क्रोधके मारे लाल २ होगये। यह उस निर्जन वनमें रावणसे यह कठोर वचन बोलों ॥ २० ॥ सब देवताओंके नमस्कार करनेके योग्य उन परमपूजनीय कुवेरजीको अपना भाई पवाकर तुम किन प्रकार निन्दनीय कार्य करनेका अभिलाष करते हो ? ॥ २१ ॥ हे रावण ! तुम्हारी समान खोटी बुद्धिवाला कर्कश और अजितेन्द्रिय पुरुष

जिनका राजाई, उन सवही राक्षस गणोंको नाशको प्राप्त होना पडेगा ॥ २२ ॥ हे राक्षस ! इन्द्रपत्नी शचीको हरण करके, चाहे कोई जीवित रहजाय, परन्तु रामभार्या हमको हरण करके कौन पुरुष वच कल्याण पासकताहै ? ॥ २३ ॥ रे राक्षस ! अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्याको बलपूर्वक हरण करके चाहे किसीका जीवित रहना संभवभीहो परन्तु हमसमान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करके अमृत पियाहुआ पुरुषभी मृत्युके हाथमे नहीं बच सकैगा ॥ २४ ॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

यत्तापवान् दशग्रीव रावण सीताजीके यह वचन सुनकर, हाथपर हाथ मार अपने शरीरको बहुत बढाताहुआ ॥ १ ॥ तिसके पीछे वचन बोलनेमें चतुर

अपहृत्यशर्चोभार्याशक्यमिन्द्रस्यजीवितुम् ॥ नहिरामत्यभार्यामानीयस्वस्तिमान्भवेत् ॥ २३ ॥ जीवेच्चिरवधरस्यपश्चाच्छर्चोप्रवृष्ट्याप्रतिरूप रूपाम् ॥ नमादृशोराक्षसधर्पयित्वापीतामृतस्यापितवास्तिमोक्षः ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ सीतायावचनंश्रुत्वादशग्रीवःप्रतापवान् ॥ हस्तेहस्तंसमाहन्यचकारसुमहद्वपुः ॥ १ ॥ समैथिलोपुनर्वाक्यंवभा पेवाक्यकोविदः ॥ नोनमत्तयाश्रुतोमन्येममवीर्यपराक्रमो ॥ २ ॥ उद्वहेयंभुजाभ्यामुमेदिनीमंवरैस्थितः ॥ अपिवेयंसमुद्रंचमृत्युहन्यारणेस्थितः ॥ ३ ॥ अकंतुद्यांशरैस्तीक्ष्णैर्विभिन्नाहिमहीतलम् ॥ कामरूपेणउन्मत्तेपश्यमांकामरूपिणम् ॥ ४ ॥ एवमुक्तवतस्तस्यरावणस्यशिश्विप्रभे ॥ कुद्धस्यहरिपयैरक्तेनेत्रैवभूवतुः ॥ ५ ॥ सद्यःसौम्यंपरित्यज्यतीक्ष्णंरूपंसरावणः ॥ स्वरूपंकालरूपार्भेजैत्रैवणानुजः ॥ ६ ॥ संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकांचनभूषणः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥

दशग्रीव फिर जानकीजीसे बोला, समझपडा कि तुम उन्मत्तसी हो गईहो। क्या हमारा वीर्य और पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुए ? ॥ २ ॥ हम आकाशमें टिके रहकर अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकते हैं, सब समुद्रके जलकोभी पीसकतेंहैं; और युद्धमें ययराजकोभी मार सकतेहैं ॥ ३ ॥ और तीखे बाणजालमें टिकेहुए सूर्यकोभी व्यथित कर सकते; और पृथ्वीमें गिरा सकतेहैं तीक्ष्ण बाणोंसे घुबलोककोभी नष्ट कर महातलको विदीर्ण करदूं हे अपने चिन्म उन्मत्त हूँ मेरा कामरूप देख ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोधयुक्त होनेके कारण रावणके सांवरे नेत्र लाल होकर जलतीहुई अधिके समानताको पहुँचे ॥ ५ ॥ फिर यह कुन्नेरका लोटा भाई रावण दंडी भेषको त्यागकर शीघ्रही यमरूप समान अपना तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥ और महा क्रोधपरायण होकर

तपाये सोनेके वनेहुए गहनोसे सुरोहित होकर नील मेघ सदृश श्रीभानु निशाचर रूप ग्रहट हुआ ॥ ७ ॥ उस समय यह दशमुख व चीन भुजावाला होगया, और
 छलते जो दंडीका भेप बनायाथा उसको छोड दिया और वही कायावाला बनगया ॥ ८ ॥ उस राक्षसपति रावणने पहला रूप धारण कर लिया, परन्तु वन लाल
 रंगकेही पहे रहे, और रमणीरत्न सीतजीको देखकर ॥ ९ ॥ उन सूर्यके समान प्रभावाली, कालेवाल्लो करके युक्त वस्त्रभूषण धारण किने हुए जानकीजीसे कहने
 लगा ॥ १० ॥ कि त्रिभुवनविख्यात स्वामीके प्राप्त करनेकी यदि इच्छाहो तो हे वरारोहे ! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हमही तुम्हारे समान पति हैं ॥ ११ ॥ तुम
 बहुत कालके लिये हमारा भजन करो, हमही तुम्हारे बाँछित और वडाई करने योग्य पति हैं । हे भद्रे ! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हें प्यारा न हो ॥
 ॥ १२ ॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्यागकरके हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ, राज्यसे भट परिमित आयुवाले अर्यराहित राममें ॥ १३ ॥ किन गुणोसे तुम
 दशास्योविंशतिभुजोवभूषणदाचरः ॥ सपरिव्राजकच्छद्ममहाकायोविहायतत् ॥ ८ ॥ प्रतिपेदेस्वकंरूपंरावणोराक्षसाधिपः ॥ रत्नांबर
 धरस्तस्यौद्वीरत्नं प्रेक्ष्यमैथिलीम् ॥ ९ ॥ सतामसितंक्रेशांतांभास्करस्यप्रभामिव ॥ वसनाभरणोपेतमैथिलींरावणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ त्रिपु
 लोकेपुविख्यातंयदिभर्तारमिच्छसि ॥ मामाश्रयवरोहेतवाहंसदशःपतिः ॥ ११ ॥ मांभजस्वचिरायत्नमहंक्षाय्यःपतिस्तव ॥ नैवचाहंक्षचिद
 द्रेकरिप्येतवविप्रियम् ॥ १२ ॥ त्यज्यतांमानुषोभावोमयिभावःप्रणीयताम् ॥ राज्याच्युतमसिद्धार्थंरामंपरिमितायुषम् ॥ १३ ॥ केरुणेरनुक्तासिमू
 ढेपण्डितमानिनि ॥ यःस्त्रियोतचनाद्राज्यंविवाहयससुहृन्नम् ॥ १४ ॥ अस्मिन्कथालानुचरितेनैवसतिदुर्मतिः ॥ इत्युक्तवामैथिलींवाक्यंप्रियाहा
 प्रियवादिनीम् ॥ १५ ॥ अभिगम्यसुदुष्टात्पाराक्षसःकाममोहितः ॥ जग्राहरावणःसीतांबुधःखेरोहिणीमिव ॥ १६ ॥ वामेनसीतांपद्माक्षींमूर्धजपु
 रेणसः ॥ कर्वांस्तुदक्षिणेनैवपरिजग्राहपाणिना ॥ १७ ॥ तंदृष्टागिरिशृंगाभंतीक्ष्णदंष्ट्रमहामुजम् ॥ प्राद्रवन्मृत्युसंकाशंभयातंविनदेवताः ॥ १८ ॥
 अनुरागिणी दुईहो ! हे मूढे ! पंडितमानिनि मैथिलि ! जो रामचन्द्र सीके कहनेमे राज्य और सुहृदणोंको छोडकर ॥ १४ ॥ जोकि हम हिंसक जन्मोंके पास
 करनेकी भूमिमें इनके बीच वह दुर्मति रहताहै । इस प्रकार प्रियवचन कहनेके योग्य प्रियवचन बोलनेवाली मैथिलीजीसे ॥ १५ ॥ यह कहकर अति दुष्टात्मा
 रावण जानकीजीके समीप आया और उनको ग्रहण किया, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों आकारके बीच बुधने रोहिणीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥
 उस समय सीता महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देखकर कुछ ऐसी मूर्छितसी होगइ थी कि शापके डरमें वाम बाहुसे तो रावणने उन पद्मा
 क्षीका करापाया और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया ॥ १७ ॥ वनदेवता लोकभी उस समय उस पर्वतशृङ्गसदृश तीक्ष्ण डांडवाले महासर्पतुल्य

जेनका राजाई, उन सबही राक्षस गणोंको नाशको प्राप्त होना पड़ेगा ॥ २२ ॥ हे राक्षस ! इन्द्रपत्नी शचीको हरण करके, चाहे कोई जीवित रहजाय, परन्तु रामभार्या हमको हरण करके कौन पुरुष बच कल्याण पासकताहै ? ॥ २३ ॥ रे राक्षस ! अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्याको बलपूर्वक हरण करके चाहे किसीका जीवित रहना संभवभीहो परन्तु हमसमान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करके अमृत पियाहुआ पुरुषभी मृत्युके हाथसे नहीं बच सकैगा ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायामष्टत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ ॥

प्रापवान् दशमीय रावण सीताजीके यह वचन सुनकर, हाथपर हाथ मार अपने शरीरको बहुत बढाताहुआ ॥ १ ॥ तिसके पीछे वचन बोलनेमें चतुर

अपहृत्यशर्चाभार्याशक्यमिद्रस्यजीवितुम् ॥ नहिरामस्यभार्यामानीयस्वस्तिमान्भवेत् ॥ २३ ॥ जीवेच्चिरवप्रवरस्यपश्चाच्छर्चाप्रधृप्याप्रतिरूप रूपाम् ॥ नमादृशीराक्षसधर्पयित्वापीतामृतस्यापितवास्तिमोक्षः ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे अष्टत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ सीतायावचनं श्रुत्वादशग्रीवः प्रतापवान् ॥ हस्तेहस्तंसमाहन्यचकारसुमहद्बुधः ॥ १ ॥ समैथिलोपुनर्वाक्यं वभा पेवाक्यकोविदः ॥ नोनमत्तयाश्रुतीमन्येममवीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥ उद्वहेयंभुजाभ्यां तुमेदिनीमंवरैस्थितः ॥ अपिवियंसमुद्रं चमृत्युहं न्यारणेस्थितः ॥ ३ ॥ अकंतुद्यांशैस्तीक्ष्णैर्विभिद्वाहिमहीतलम् ॥ कामरूपेणउन्मत्तेपश्यमां कामरूपिणम् ॥ ४ ॥ एवमुक्तवतस्तस्यरावणस्यशखिप्रभे ॥ कुद्रस्यहरिपयैरक्तेनैवैवभूवतुः ॥ ५ ॥ सद्यःसौम्यपरित्यज्यतीक्ष्णरूपंसरावणः ॥ स्वरूपंकालरूपभंभेजेऽथवणानुजः ॥ ६ ॥ संरक्तनयनः श्रीमांस्तत्तत्कांचनभूषणः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥

दशग्रीव फिर जानकीजीमे बोला; समझपडा कि तुम उन्मत्तसी हो गईहो । क्या हमारा वीर्य और पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुए ? ॥ २ ॥ हम आकाशमें टिके रहकर अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकते हैं, सब समुद्रके जलकोभी पीसकतेंहैं; और युद्धमें यमराजकोभी मार सकतेहैं ॥ ३ ॥ और तीसरे बाणजालमें आकाशमें टिकेहुए सूर्यकोभी व्यथित कर सकतेहैं तीक्ष्ण बाणोंसे ध्रुवलोककोभी नष्ट कर महातलको विदीर्ण करदूं हे अपने चित्रमें उन्मत्त हुई मेरा कामरूप देख ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोधयुक्त होनेके कारण रावणके सांचरे नेत्र डाल होकर जलतीहुई अधिके समानताको पहुँचे ॥ ५ ॥ फिर यह पुनरेका डोय भाई रावण दंडी भेषको त्यागकर गीब्रही यमरूप समान अपना तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥ और महा क्रोधपरायण होकर

नमस्ते मोहके वनेद्रुप गहनोम सुगोपित होकर नील मेष सदृश धीमान् निगाचर रूप प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ उस समय वह दशमुख व वीत भुजावाला होगया, और
 उलमे जो दंडीका भंग बनायाया उसको छोड दिया और बडी कायावाला मनगया ॥ ८ ॥ उस राक्षसपति रावणने पहला रूप धारण कर लिया, परन्तु वन छाड
 रंगेन्दी यहरे रहा, और रत्नरिल्ल सीताजीको देखकर ॥ ९ ॥ उन सूर्यके समान प्रभावाली, काले चालों करके युक्त वस्त्राभूषण धारण किये हुए जानकीजीसे कहने
 लगा ॥ १० ॥ कि किमुनविष्यात् स्वामीके प्राण करनेकी यदि इच्छाहो तो हे वरारोहे ! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हमही तुम्हारे समान प्रति हैं ॥ ११ ॥ तुम
 प्रभु कालके द्विजे हमारा भजन करो, हमही तुम्हारे बाँछित और बडाई करने योग्य प्रति हैं । हे भद्रे ! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हें प्यारा न हो ॥
 ॥ १२ ॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्यागकरके हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ, राज्यसे भट परिमित आयुवाले अर्थराहित राममें ॥ १३ ॥ किन गुणोंसे तुम
 दशास्योचिताभिभुजोचधूवक्षणदाचरः ॥ सपरिव्राजकच्छद्ममहाकायोविहायतत् ॥ ८ ॥ प्रतिपेदेस्वकंरूपंरावणोराक्षसाधिपः ॥ रक्ताग्र
 धरस्तस्थान्निगन्तंम्रेदयमेथिलीम् ॥ ९ ॥ सतामसितकेशांतांभास्करस्यप्रभामिव ॥ वसनाभरणोपेतमैथिलींरावणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ त्रिपु
 ल्लोकंयुधिल्यान्तंयदिभर्तुमिच्छसि ॥ मामाश्रयवरागेहेतवाहंसदृशःपनिः ॥ ११ ॥ मांभजस्वचिरायत्नमहंश्लाघ्यःपतिस्तव ॥ नैवचाहंकचिद
 दंकरिष्येनचिप्रियम् ॥ १२ ॥ त्यज्यतांमानुषोभावोमयिभावःप्रणीयताम् ॥ राज्याच्युतमसिद्धार्थरामंपरिमितायुषम् ॥ १३ ॥ केयुणेरनुक्तासिमू
 ळेपगिडतमानिनि ॥ यःस्त्रियोवचनाद्राज्यंविदायससुहृन्नमम् ॥ १४ ॥ अस्मिन्व्यालानुचरितेनेवसतिर्दुर्भतिः ॥ इत्युक्तचामैथिलींवाक्यंप्रियाहा
 प्रियमिदानीम् ॥ १५ ॥ अभिगम्यसुदुष्टात्माशसःकाममोहितः ॥ जग्राहगवणःसीतांयुधःखेरोहिणीमिव ॥ १६ ॥ वामेनसीतांपद्माक्षींमूर्धन्येयुक्त
 रंगमः ॥ ज्योस्तुदृशिणैर्वपरिजयादपाणिना ॥ १७ ॥ तंदृष्टगिरिशृंगाभंतीक्ष्णदंष्ट्रमहाभुजम् ॥ प्राद्रवन्मृत्युसंकशंभयार्ताविनदेवताः ॥ १८ ॥
 अनुगमिणी दुर्दहो ? हे मूढ ! वंदितमानिनि मैथिलि ! जो रामबन्धु सीके कहनेमे राज्य और सुहृदगणोंको छोडकर ॥ १४ ॥ जोकि हम हिंसक जन्तुओंके बात
 करनेकी भूमिमें दनके बीच रह दुर्मति रहताहै । इस प्रकार प्रियवचन कहनेके योग्य प्रियवचन बोलनेवाली मैथिलीजीसे ॥ १५ ॥ यह कहकर अति दुष्टात्मा
 रावण जानकीजीके समीप आया और उनके ग्रहण किया, उस समय ऐसा दोग हुआ मानों आकाशके बीच बुधने रोहिणीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥
 उस समय मीना महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देखकर कुछ ऐसी मुछितसी होगइ थी कि शापके डरमें वाम बाहुसे तो रावणने उन पद्मा
 क्षीका कंगपाग और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया ॥ १७ ॥ वनदेवता लोकभी उस समय उस पर्वतशृङ्गसदृश तीक्ष्ण डाढवाले महाभर्तुल्य

रावणको देल भयभीत होकर दशों दिशाओंको भागगये ॥ १८ ॥ देखतेही रावणका वह मायाभय स्वर्णमंडित गर्दभजुताहुआ भयंकर शब्दकारी दिव्य रथ
 र आ पहुँचा ॥ १९ ॥ उस रथको देख रावणने गंभीर त्वर कठोर वचनोंसे जानकीजीको डाँटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ॥
 ॥ २० ॥ यशस्विनी सीताजी उस करके गृहीत हो जानेपर भयसे व्याकुलहो हा राम ! हा राम ! कहकर पुकार करने लगीं, परन्तु रामचंद्रजी उस समय
 दूरये ॥ २१ ॥ रावणके प्रति जानकीजीका कुछभी अनुराग नहीं था इस कारणसे वह अपने छुड़ानेके लिये यथाशक्त्य चेष्टा करनेलगीं, परन्तु कामके वशहुआ रा
 पन्नगराजकी स्त्रीके समान उनको लेकर आकाशको उडगया ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षसराज रावण आकाशमें जानकीको हरण करके लेचला. जानकीजी र
 मन भ्रान्त चित और आतुरकी समान यह कहकर बड़े जोरसे विलाप करनेलगीं ॥ २३ ॥ हा गुरुचिचप्रसादक ! महाबाहु लक्ष्मणजी ! कामरूपी राक्षस न
 सचमायामयोदिव्यः खरयुक्तः खरस्त्वनः ॥ प्रत्यदृश्यतेहमांगोरावणस्यमहारथः ॥ १९ ॥ ततस्तांपरुषैर्वैरभितर्ज्यमहास्वनः ॥ अंकेनादायः
 देशैरथमारोहयत्तदा ॥ २० ॥ सागृहीतातिचुकोशरावणेनयशस्विनी ॥ रामेतिसीतादुःखार्तरामंदूरंगंतवने ॥ २१ ॥ तामकामांसकामार्तःपद्मं
 द्रवधूमिव ॥ विचेष्टमानामादायउत्पपाताथरावणः ॥ २२ ॥ ततःसाराक्षसेंद्रेणह्रियमाणाविहायसा ॥ भृशंचुक्रोशमेत्तेभ्रान्तचित्तायथातुरा ॥ २३ ॥
 बालक्ष्मणमहाबाहो गुरुचित्तप्रसादक ॥ ह्रियमाणांजानीपेरक्षसाकामरूपिणा ॥ २४ ॥ जीवितंसुखमर्थचर्महेतोःपरित्यजन् ॥ ह्रियमाणां
 धर्मेणमांघ्रवणपश्यसि ॥ २५ ॥ ननुनामाविनीतानांविनेतासिपरंतप ॥ कथमेवंविधंपापंनत्वंशाधिहिरावणम् ॥ २६ ॥ ननुसद्योऽविनी
 तस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ कालोऽप्यंगीभवत्यत्रसस्यानामिवपक्तये ॥ २७ ॥ त्वंकर्मकृतवानेतत्कालोपहतचेतनः ॥ जीवितांतकरंधोरंरा
 दयसनमाशुहि ॥ २८ ॥ दंतेदानींसकामातुर्केकीर्वांधवेःसह ॥ ह्रियेयंधर्मकामस्यवर्मपत्नीयशस्विनः ॥ २९ ॥

मैं हरी जानीहूँ सो इसको तुम नहीं जानतेहो ॥ २४ ॥ हा राम ! तुम धर्मकी रक्षा करनेके लिये प्राण, सुख, संपत्ति सबकाही त्याग करतेहो, इस समद
 अपर्मके द्वारा हरी जातीहूँ सो क्यों नहीं हमें आनकर बचाते ? ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपनेवाले ! जो अविनयी होते हैं आप उनका सदाही शासन किया कर
 फिर क्यों नहीं ऐसे पापत्मा रावणका शासन करतेहो ? ॥ २६ ॥ अन्यायी पुरुषके कर्मका फल शीघ्रही नहीं मिलता; जिस प्रकार नाजके पकनेमें कुछ
 का प्रयोजन होताहै इसी प्रकार समय आनेपर अन्यायका फल मिलताहै ॥ २७ ॥ हे रावण ! तुमने कालके प्रभावसे चेतना रहित होकर यह जो कर्म किया इसके
 निम्ने तुमको रामचंद्रजीसे प्राणान्तरलेखावी घोर विपद्में पडना होगा ॥ २८ ॥ हाय ! हम धर्मकी दृष्ट्या कर्त्तव्यवाले यज्ञस्थी रामचंद्रजीकी भूमिपत्नी होकर भी

देवकर कहने लगे ॥ ३२ ॥ अति कीवृहल होनेके कारण धरहरदे, तोरण और अगारियोंसे परिपूर्ण लंकानगरिके देखनेकी इच्छा कियेहुए हम यहांपर आयेहैं ॥ ३३ ॥ हम नगरीके यन उपवन कानन और अच्छे २ भवन देखनेकी वासनासे हमारा आना यहांपर हुआहै ॥ ३४ ॥ कामरूपिणी लंका हनुमानजीके यह वचन सुनकर फिर उनमें अतिचोरेकठोर वचन बोली ॥ ३५ ॥ रे अतसमझ वानरनीच ! यह पुरी राक्षसराज रावणसे पाली जाती है सो तू हमको बिना जीते हमका दर्शन न कर सकेगा ॥ ३६ ॥ तब कृषिभूष हनुमानजी उस राक्षसी रूप धारिणी लंका अधिष्ठात्रीसे बोले कि हे भद्रे ! हम नगरीका दर्शन कर हम फिर अपने स्थानको चले जायेंगे ॥ ३७ ॥ यह सुन उस लंकाने भयंकर नादकर अतिवेगसे हनुमानजीको चरणका प्रहार किया ॥ ३८ ॥ द्रव्याभिनगरीलंकासादृशकारतोरणाम् ॥ इत्यर्थमिहसंग्रातः परंकोवृहलहिमे ॥ ३९ ॥ वनान्युपवनानीहलंकायाः काननानि च ॥ सर्वतोयुद्धमुत्थयानि द्रुमागमनंहिमे ॥ ४० ॥ तस्यतद्वचनं श्रुत्वालंकासकामरूपिणी ॥ भूयएवपुनर्विषयं च भाषेपरुपाक्षरम् ॥ ४१ ॥ मामनिर्जित्यदुर्दुद्धेराक्षसेश्वरपा लिताम् ॥ नशक्यं द्यूद्यतेदं दुर्गपुरीयं वानरायम् ॥ ४२ ॥ ततः सहर्षादूलस्तामुवाच निशाचरीम् ॥ दृष्ट्वापुरीमिमं भद्रे पुनर्यास्येयथागतम् ॥ ४३ ॥ ततः कृत्यामहानादंसावैलंकाभयंकरम् ॥ तलेन वानरैरुपेताड्यामासवेगिता ॥ ४४ ॥ ततः सहर्षादूलंकायताडितोभृशम् ॥ ननादमुमहानादं वीर्यवान्माकृतात्मजः ॥ ४५ ॥ ततः सर्वतयाभासवामहस्तस्य सांडुलीः ॥ मुष्टिनाऽभिजवानेनाहं हृमान्कोपमुच्छ्रितः ॥ ४६ ॥ स्त्रीचेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयंप्रकृतः ॥ सातु तेन प्रहारं विह्वलांगीनिशाचरी ॥ पपात सहसाभूमौ विहृताननदर्शना ॥ ४७ ॥ ततस्तद्वदुमान्गवी रस्ताद्विद्वानिनिपातिताम् ॥ कुर्याच्चक्राग्नेजस्वीमन्यमानः स्त्रियंचताम् ॥ ४८ ॥ ततो वैभृशमुद्रिमा लंकासागद्गदाक्षरम् ॥ उवाचागर्वितं वाक्यं हनुमं तं प्रवंगमम् ॥ ४९ ॥ प्रसीदस्व महाबाहो वायस्व हरिस्तप्तम् ॥ समये सोम्यतिष्ठति सत्त्वचंती महाबलाः ॥ ५० ॥

वीर्यवान् वानरादौल पवननन्दन हनुमानजीने लंकासे अतिशय ताडित होकर योग्यजना करने हुए ॥ ३९ ॥ और बायें हाथकी उंगलियोंको सकोड़ मुखा बायें कोष्ठमें मृच्छित हो लंकाके उपर मुष्टिका प्रहार किया ॥ ४० ॥ उसको स्त्री ममझकर हनुमान्जीने बहुत कोथ नहीं किया और बायें हाथमें एक माथारणमाही प्रहार किया, परन्तु विकट मुसवाली और विकट दूरनवाली राक्षसीरूपधारिणी लंका उम साधारणमेंही आघातके लगतेही कांपकर उमी ममय पृथ्वीपर गिराई ॥ ४१ ॥ उसको पृथ्वीपर गिरिहूई देख तेजस्वी और वीर्यवान् पवनकुमार हनुमान्जीने स्त्री समझ उसके ऊपर अनुग्रह प्रकाश किया ॥ ४२ ॥ तब लंकादेवी अत्यन्त व्याकुल होकर गर्वरहित वाक्य और गद्गद कंठमें हनुमान्जीको पुकारकर बोली ॥ ४३ ॥ हे प्रियदर्शन महाबलवान् कपिश्रेष्ठ !

नोर दर्यो दिसाओंको भागये ॥ १८ ॥ देतही रावणका वह मायामय स्वर्णमंडित गर्दभजुताहुआ भयंकर शब्दकारी दिव्य रथ वह १९ ॥ उस रथको देत रावणने गंभीर तर कठोर वचनोंसे जानकीजीको डांटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ।

१. ॥ उस रथको देत रायजने गंभीर तर कठोर वचनोंसे जानकीजी को डांटा और धमकाया और उनके गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ।

दम करके गृहीत हो जानेपर भयसे व्याकुलहो हा राम ! हा राम ! कहकर पुकार करने लगीं, परन्तु रामचंद्रजी उस समय बहुत

अन्तर्गत नहीं था इस कारणसे वह अपने छुड़ानेके लिये यथाशक्य चेष्टा करनेलगीं, परन्तु कामके वशहुआ राब

—मे गअतराज रापण आकाशमें जानकीको हरण करके लेचला. जानकीजीकु

—से गङ्गातराज रावण आकाशमें जानकीको हरण करके लेचला. जानकीजी कु-

... न केन । हे गोविन्द ! श्रीगणेशाय नमः ।
... भवति । तस्यै नमः । श्रीगणेशाय नमः ।

[illegible]

॥ अथ भक्त्या भगवत्पूजयेत् ॥

प्रथमः ॥ निर्गिताहंत्वायायीरत्रिभोगमहागन्धः ॥ २३ ॥ इतिरत्नः ॥ २४ ॥

॥ अथाहं श्रुत्वा यदीदृशं विदुः ॥ २५ ॥ तदा त्वया हि नि-
र्दिष्टं कुरुष्व ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां अध्यायः प्रथमः ॥

॥ ४८ ॥ तदात्वयादिवित्तियंश्चमभयमागतम् ॥ ४९ ॥ पत्तिः

॥ ४७ ॥ सतिशममनःपीमपाभोरस्यार
॥ ४८ ॥ सीतानिमित्तं राक्षसमभयमागतम् ॥
विधत्स्वसर्वकार्योपिया नित्यानीष्टमि ॥ ४९ ॥
मुद्रातीकामरूपिणीम् ॥ विक्रमेणमुद्राहेन ॥ ५० ॥
॥ ५१ ॥

॥ २ ॥
 ॥ ३ ॥
 ॥ ४ ॥
 ॥ ५ ॥
 ॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥
 ॥ १२ ॥
 ॥ १३ ॥
 ॥ १४ ॥
 ॥ १५ ॥
 ॥ १६ ॥
 ॥ १७ ॥
 ॥ १८ ॥
 ॥ १९ ॥
 ॥ २० ॥
 ॥ २१ ॥
 ॥ २२ ॥
 ॥ २३ ॥
 ॥ २४ ॥
 ॥ २५ ॥
 ॥ २६ ॥
 ॥ २७ ॥
 ॥ २८ ॥
 ॥ २९ ॥
 ॥ ३० ॥
 ॥ ३१ ॥
 ॥ ३२ ॥
 ॥ ३३ ॥
 ॥ ३४ ॥
 ॥ ३५ ॥
 ॥ ३६ ॥
 ॥ ३७ ॥
 ॥ ३८ ॥
 ॥ ३९ ॥
 ॥ ४० ॥
 ॥ ४१ ॥
 ॥ ४२ ॥
 ॥ ४३ ॥
 ॥ ४४ ॥
 ॥ ४५ ॥
 ॥ ४६ ॥
 ॥ ४७ ॥
 ॥ ४८ ॥
 ॥ ४९ ॥
 ॥ ५० ॥
 ॥ ५१ ॥
 ॥ ५२ ॥
 ॥ ५३ ॥
 ॥ ५४ ॥
 ॥ ५५ ॥
 ॥ ५६ ॥
 ॥ ५७ ॥
 ॥ ५८ ॥
 ॥ ५९ ॥
 ॥ ६० ॥
 ॥ ६१ ॥
 ॥ ६२ ॥
 ॥ ६३ ॥
 ॥ ६४ ॥
 ॥ ६५ ॥
 ॥ ६६ ॥
 ॥ ६७ ॥
 ॥ ६८ ॥
 ॥ ६९ ॥
 ॥ ७० ॥
 ॥ ७१ ॥
 ॥ ७२ ॥
 ॥ ७३ ॥
 ॥ ७४ ॥
 ॥ ७५ ॥
 ॥ ७६ ॥
 ॥ ७७ ॥
 ॥ ७८ ॥
 ॥ ७९ ॥
 ॥ ८० ॥
 ॥ ८१ ॥
 ॥ ८२ ॥
 ॥ ८३ ॥
 ॥ ८४ ॥
 ॥ ८५ ॥
 ॥ ८६ ॥
 ॥ ८७ ॥
 ॥ ८८ ॥
 ॥ ८९ ॥
 ॥ ९० ॥
 ॥ ९१ ॥
 ॥ ९२ ॥
 ॥ ९३ ॥
 ॥ ९४ ॥
 ॥ ९५ ॥
 ॥ ९६ ॥
 ॥ ९७ ॥
 ॥ ९८ ॥
 ॥ ९९ ॥
 ॥ १०० ॥

[illegible]

डाग के। छांड दूदकर साकारर चढ रात्रिके समय लंका नगरीमें प्रवेग करते हुये ॥ २ ॥ और कपिराज सुधीवजीके हितकारी हनुमानजीने इस लंका नगरीमें प्रवेश करके
 प्रथम ही गनुजोंके मस्तकपर अपना बायां चरण धरा क्योंकि पंडित लोगोंने इसकी शत्रुओंके पराजय करनेका मुख्य कारण बताया है ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे महापराक्रमी पवन
 कुमार हनुमानजी रीत्रिके समय पुरीमें प्रवेगकर विलंछन पुरीके मण्डहसे सुशोभित राजमार्गमें गमन करने लगे ॥ ४ ॥ हनुमानजीने देखा कि, हास्यसे उत्पन्न
 मृदु मनोदर गच्छमें विनादिन, विविध भौतिक राजोंका ध्वनि हीरक संचित झरोखोंमें युक्त ॥ ५ ॥ और हीरे मोती मणियोंसे बने हुये झरोखोंवाले गृहोंसे भूषित
 और उनकी मयनानये मंगमाला विराजित आकाशमण्डलकी समान लंका शोभा पाय रही है ॥ ६ ॥ पद्म स्वस्तिक आदि श्वेत बादलकी समान राक्षसोंके मन्दिरोंसे
 लंकापुरी गोभित होकर चमक दमक रही थी ॥ ७ ॥ और मच ओरसे मर्वतोभद्र वर्णमान, नन्धावर्त स्वस्तिक आदि गृहोंमें शोभायमान थी, जिसमें चारद्वार भीतर
 प्रविश्य नगरी लंकाके पिगजहितंकरः ॥ चकेऽथ पादं सव्यं च शङ्खणां स तु मूर्धनि ॥ ३ ॥ प्रविष्टः सत्त्व संपन्नो निशायाभारुतात्मजः ॥ समापथमास्थाय सु
 कल्पय विराजितम् ॥ ४ ॥ ततस्तु तौ पुरं लंकां रम्यामभिययौ कयिः ॥ हसितोत्कृष्टनिनदस्त्वूय यो पुरस्कृतेः ॥ ५ ॥ वज्राकुशानिको शेष्ववज्रजालविभू
 पितेः ॥ गृहं मधेः पुरी रम्यावभासे द्यौ रिव बुधेः ॥ ६ ॥ प्रजज्वालत दालं कागस्यो गणगृहेः शुभेः ॥ सिताभ्र सदृशोऽश्वि वैः पद्मस्वस्तिक संस्थितैः ॥ ७ ॥
 न भयमान गृहं शायि सवर्तः सुविभूषितैः ॥ तां चित्रमाल्याभरणां कपि गजहितंकरः ॥ ८ ॥ राघवाथं चरञ्जरीमानन्द दर्श च ननंद च ॥ भवनाद्भवं न गच्छन्द दर्श
 कपि कुंजः ॥ ९ ॥ विविधा कृत्तरूपाणि भवनानि ततस्ततः ॥ अथावरुचि रंगीति त्रित्यानस्वरभूषितम् ॥ १० ॥ स्त्रीणां मदन विद्वानां दिवि चाप्सरसा
 मिम ॥ अथापार्कानि नंदं दृष्टु रणां च निःस्वनम् ॥ ११ ॥ सां पान निनदां शायि भवनेषु महात्मनाम् ॥ आस्फोटित निनादां श्वेच्छितां श्वतस्ततः ॥ १२ ॥
 न चार्गे आरकों द्वार लगे हों उम मर्वतोभद्र कहत हैं, जो इसमें पश्चिमकी ओरका द्वार न लगा हो तो इसेही नन्धावर्त कहते हैं, इसेही दक्षिणका द्वार न होनेसे
 पर्यमान, और पुरंका द्वार न होनेसे स्वस्तिक कहत हैं, इन मच शुभदायक भवनोंको जिनमें अनेक प्रकारके चित्र विचित्र माला आदि भूषण धरये, देखते भालते
 सुधीवजीके शिवाजी हनुमानजी चले जाते थे ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके कार्यको मित्र करनेके मानससे जाते हुये हनुमानजी लंकापुरीको देख २ वडे ही आनन्दित
 होये, इय मंदिगं एमार रूद बह उमपरमं दुरमं परको कूद भलीभाँति जानकीजीको खोजते थे ॥ ९ ॥ जब एक भवनसे दूसरे भवनमें जाते हुये विविधाकार और
 विविधरूप भवनोंको हनुमानजी देखने लगे तब हृदय, कण्ठ और गिरइन स्थानोंमें उत्पन्न हुआ मन्द, मध्य और तारस्वर अलंकृत मनोहर गीत उन्होंने सुना
 ॥ १० ॥ एवं गेयं रत्नेवाली अम्यरागणोंके रागही ममान मदनमिश्रित त्रियोंके शब्द उनकी श्रुतर्चनिका, व नृपुर आदिका शब्द श्रवण करते ॥ ११ ॥ उन महात्माओंके

मग्न होकर हमारा उच्चार करो श्रीहत्या न करो । हे सौम्य ! वीर्यसम्पन्न महाबलवान् पुरुषलोग श्रीहत्या करनेके लिये कभी तैयार नहीं होते ॥ ४४ ॥
हे महापराक्रम वीर्यगम्यन्न कपिवर ! हमहीं स्वयं लंकाकी अधिष्ठात्री हैं तुमने अपने वीर्यके प्रभावसे सबप्रकार हमको पराजित कियाहै ॥ ४५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ !
स्वयं रावणभू प्रजाजीने हमको जो वरदान दियाथा हम उसको वर्णन करती हैं, आप श्रवण करें, उन्होंने यह कहा कि ॥ ४६ ॥ जब कि, कोई वानर विक्रम
दरारा करके तुमको अपने यगमें करलेगा, तबहीं तुम जान लेना कि, राक्षसोंको भय आय पहुँचाहै ॥ ४७ ॥ हे प्रियदर्शन ! आज तुम्हारे दर्शन करनेसे, वह ब्रह्मा
भीरा नियत कियाहुआ समय आय पहुँचा, यह इस अवश्य होनहार समयके टलनेकी किसी प्रकारसे संभावना नहींहै ॥ ४८ ॥ सीताके निमित्त दुरात्मा राक्षसराज
अहंतुनगरीलंकास्वयमेवप्रवंगम ॥ निर्जिताहंतव्यावीरविक्रमेणमहाबल ॥ ४९ ॥ इदंचतथ्यंशृणुमेध्वंवत्यावैहरीश्वर ॥ स्वयंस्वयंमुवादात्तंवरदानं
यगामम ॥ ४६ ॥ यदात्वांवानरःकश्चिद्विक्रमाद्रशमानयेत् ॥ तदात्वयाहिबिजेयंरक्षसांभयमागतम् ॥ ४७ ॥ सहिमेसमयःसौम्यप्राप्तोऽद्यतव
दर्शनात् ॥ स्वयंभूविहितःसत्योनतस्यास्तित्व्यतिक्रमः ॥ ४८ ॥ सीतानिमित्तराज्ञस्तुरावणस्यदुरात्मनः ॥ रक्षसांचैवसर्वेषांविनाशःसमुपागतः ॥
॥ ४९ ॥ तत्रप्रविश्यहरिश्रेष्ठपुरोरंरावणपालिताम् ॥ विधत्स्वसर्वकार्याणियानियानीहवांछसि ॥ ५० ॥ प्रविश्यशापोपहताहरीश्वरःपुरींशुभंराक्षस
मुख्यपालिताम् ॥ यदृच्छयात्वंजनकात्मजासतींविमार्गसर्वत्रगतोयथासुखम् ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० सु० तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥
सनिर्जित्यपुरोलंकांश्रेष्ठांतांकामरूपिणीम् ॥ विक्रमेणमहातेजाहन्तृमान्कपिसत्तमः ॥ १ ॥ अद्वारेणमहावीर्यःप्राकारमवपुप्लुवे ॥ निशिलंकांमहा
सत्त्वोर्विशेकपिचुंजरः ॥ २ ॥

गण और समस्त राक्षसोंके विनाशका काल आय पहुँचाहै ॥ ४९ ॥ इसलिये हे कपिश्रेष्ठ ! तुम इस रावणकी पालित लंकापुरीमें प्रवेशकर अपनी इच्छानुसार सब
सार्थोंको पूराकरो जिस जिसकी तुमने इच्छा कीहै ॥ ५० ॥ क्या कहें, राजा रावणसे पाली जातीहुई यह मनोहर लंकानगरी शाप ॥ यस्तु हुईहै, तुम इसमें प्रवेश करके
अपनी इच्छानुसार सब कहीं यथासुक्रमे गमन करके पतिव्रता जनककुमारी सीताजीको ढूँढो ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० सुन्दर० भाषाटी० तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥
महापराक्रम, महातेजस्वी कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी अपने विक्रमसे कामरूपिणी पुरीमें श्रेष्ठ लंकाको भली भाँतिमे जीतकर ॥ १ ॥ वह महावीर्यवान् कपिकुंजर

श्रावणं छांड दूदकर माकारपर चंद्र रात्रिके समय लंकानगरीमें प्रवेश करने हुये ॥ २ ॥ और कणिराज सुग्रीवजीके हितकारी हनुमानजीने इस लंकानगरीमें प्रवेश करके
 प्रथमही शत्रुगणोंके मन्मथपर अपना चापों चरण धरा क्योंकि पंडितलोगोंने इसको शत्रुओंके पराजय करनेका मुख्य कारण बतायाहै ॥ ३ ॥ इसप्रकारसे महापराक्रमी पवन
 कुमार हनुमानजी रीत्रिके समय पुरीमें प्रवेशकर मिलेदृष्ट पुण्योके ममूहसे सुशोभित राजमार्गमें गमन करने लगे ॥ ४ ॥ हनुमानजीने देखा कि, हास्यसे उत्पन्न
 हुए मनोदर गच्छसे विनादित, विविध भौतिक वार्जोंका ध्वनि, हीरक संचित द्योतकोंमें युक्त ॥ ५ ॥ और हीरे मोती मणियोंमें बनेहुये सरोखोंवाले गृहोंमें भूषित
 और उनकी मयनानामे मंगमाला विगलित आकाशमण्डलकी समान लंका शोभा पायरहीहै ॥ ६ ॥ पद्म स्वस्तिक आदि श्वेत बादलोंकी समान राक्षसोंके मन्दिरोंमें
 लंकानुगी भांतिन हाकर चमक दमक रहीथी ॥ ७ ॥ और मय औरसे सर्वतोभद्र वर्धमान, नन्धार्य स्वस्तिक आदि गृहोंमें शोभायमान थी, जिसमें चारद्वार भीतर
 प्रविश्यनगरेलंकाकपिगजहितंकरः ॥ चक्रेऽथपादंस्वयंचशङ्खपांसुतुमूर्धनि ॥ ३ ॥ प्रविष्टः सत्त्वसंपन्नो निशायामारुतात्मजः ॥ समहापथमास्थाय सु
 तपुष्यविराजितम् ॥ ४ ॥ ततस्तुतां पुरैर्लंकारम्यामभिर्यो कपिः ॥ हसितोत्कृष्टानिन्दस्त्र्यूवापपुरस्कृतेः ॥ ५ ॥ वज्राकुशनिकोशश्च वज्रजालविभू
 पितेः ॥ गृहमेधेः पुगीरम्यावभासद्यौरिचां नृपैः ॥ ६ ॥ प्रज्ज्वालतदालंकारशोणगृहेः शुभेः ॥ सिताभ्रसदृशेऽश्विनेः पद्मस्वस्तिकसंस्थितेः ॥ ७ ॥
 कर्ममानगृहेऽपि मयंतः सुविभूषितेः ॥ तांचित्रमाल्याभरणांकपिगजहितंकरः ॥ ८ ॥ राघवार्थे चरज्जरीमानन्ददर्शचननंदच ॥ भवनाद्भवंगच्छन्ददर्श
 कपिकुंजरः ॥ ९ ॥ विविधाकृतिरूपाणि भवनानिततस्ततः ॥ शुश्राव रुचिरंगीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् ॥ १० ॥ स्त्रीणां मदनविद्वानां दिविचाप्सरसा
 मिम ॥ शुश्राव रुचिरंगीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् ॥ ११ ॥ सांपाननिनदांश्चापि भवनेषु महात्मनाम् ॥ आस्फोटितनिनादांश्च र्वेडितांश्च ततस्ततः ॥ १२ ॥
 १ चारों ओरोंका द्वाग लगे हों उमें मनोंभद्र कहेंहैं, जो हममें पथिमकी ओरका द्वार न लगा हो तो इसेही नन्धार्य कहेंहैं, इसेही दक्षिणका द्वार न होनेसे
 कर्ममान, और पूर्वक द्वाग न होनेसे स्वस्तिक कहेंहैं, इन मय शुभदायक भवनोंको जिनमें अनेक प्रकारके चित्र विचित्र माला आदि भूषण धरेथे, देखते भालते
 सुग्रीवजीके शिष्यागी हनुमानजी चले जातेथे ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके कार्यको निद्व करनेके मानससे जातेहुये हनुमानजी लंकापुरीको देख २ घडे ही आनन्दित
 होवेंथे, इस मंदिरमें उमगर दूद यह उमगमें दुरंगे परको दूद भलीभाँति जानकीजीको खोजतेथे ॥ ९ ॥ जब एक भवनसे दूसरे भवनमें जातेहुये विविधाकार और
 विभिन्न भवनोंको हनुमानजी देखने लगे तब हृदय, कण्ठ और गिर इन स्थानोंमें उत्पन्न हुआ मन्द, मध्य और तारस्वर अलंकृत मनोहर गीत उन्होंने सुना
 ॥ १० ॥ मंगमें रहनेवाली अप्सरागणोंके रागही ममान मदनमिश्रित त्रियोंके शब्द उनकी शुद्धचंद्रिका, व नूपुर आदिका शब्द श्रवण करते ॥ ११ ॥ उन महात्माओंके

भरणमूत्राणि शिपौं नीदियौपर चंदनका शब्दभी सुनते, कहीं प्रसन्नतासे ताली बजानेका शब्द और कहीं कहीं सिंहनाद सुनते २ हनुमानजी ॥ १२ ॥ राक्षसोंके भरणोंमें मंत्रोंका जप सुनते और वहुत स्थानोंपर राक्षसोंको वेदाध्ययन करतेभी हनुमानजीने देखा ॥ १३ ॥ और कहीं २ राक्षसोंकी स्तुति करनेमें लग रहें, और अनेक राक्षसगण राजमार्गको सर्व प्रकारसे घेरे खड़ेहुए ऐसे हनुमानजीने देखा ॥ १४ ॥ अनन्तर जाते मानवी मध्यम उत्तरीयें आये जहां उन्होंने बहुतसे निशाचरोंको अवलोकन किया । उनमें कोई मुंडितमुंड, कोई दीक्षित, कोई जटाजूटधारी, कोई दयादिकें रग धारण कियेये यह भेद लेने फिरतेये ॥ १५ ॥ इनमें कुत्तोंकी मुद्दीही किसी २ के दृथियारथे, और किसी २ के अभिकुण्ड अस्त्र शस्त्रये, औ-

शुश्रावजपतंतत्रमंत्राक्षौण्डहेयुवे ॥ स्वाध्यायानिरतांश्चैवयातुयानानन्ददर्शसः ॥ १३ ॥ रावणस्तवसंयुक्तानर्जतोरक्षासनपि ॥ राजमार्गसमास्थितंक्षौण्डगणमहत् ॥ १४ ॥ ददर्शमध्यमेगुल्मेराक्षसस्यचरान्वहून् ॥ दीक्षिताञ्जटिलान्मुंडान्गोजिनावरवाससः ॥ १५ ॥ दर्भमुष्टिप्रहरप्रिण्डायुधांस्तथा ॥ कूटमुद्गरपाणींश्चचंडायुधधरानपि ॥ १६ ॥ एकाक्षानेककर्णांश्चचलदेकपयोधरान् ॥ करालान्भुग्नवस्त्रांश्चविकटान्नांस्तथा ॥ १७ ॥ धन्विनःखड्गिनश्चैवशतघ्नीसुसलायुधान् ॥ पार्ष्णीतमहस्तांश्चविचित्रकवचोज्ज्वलान् ॥ १८ ॥ नातिस्थूलान्नातिकृशान्नांघातिह्रस्वकान् ॥ नातिगौरान्नातिकृष्णान्नातिकुब्जान्नावामनान् ॥ १९ ॥ विरूपान्वहुरुपांश्चसुरूपंश्चसुवर्चसः ॥ ध्वजिनःपताकिनश्चैवद्विविधायुधान् ॥ २० ॥ शक्तिवृक्षायुधांश्चैवपट्टिशशानिधारिणः ॥ क्षेपणीपाशहस्तांश्चददर्शसमहाकपिः ॥ २१ ॥

कोई २ कूट मुद्गर और दंडको ही आयुध बनाये हुयेये ॥ १६ ॥ और उन समस्त निशाचरणोंके मध्यमें किसी २ की एकही आंखथी, किसीके एकही पा. किसी २ की छातीपर एकही पयोधर झूल रहा था; उनके वदन विकराल थे, अंग अत्यन्त विषम थे आकार अति विकट और अंग अति ॥ १७ ॥ मन्त्रीके हाथमें धनुष, राक्ष, शतघ्नी, मुसल और अतिश्रेष्ठ पारिच थे, और सबकेही शरीरोंपर विचित्र कवच चमक रहेये ॥ १८ ॥ मन्त्री न बहुत मोटे, न अति दुबले, न अति लम्बे, न अति छोटे, न अति मोरे, न अति काले, न अति कुन्बडे, न ३ ति बने ॥ १९ ॥ मन्त्री विपन्न, बहुत तेजसी, और मन्त्री लज्जा फलका और विपन्न भावसे भाग्यक्षिप्त थे, हनुमानजीने दे

१८७११७७ हनुमानजीन दत्त ॥ २२ ॥ बहुत सारे तीक्ष्ण शूल और वज्रलिये महाबलवान् सावधानीसे एक लक्ष राक्षस मध्यम कक्षामें स्थित हुये ॥ २३ ॥
 रावणकी आज्ञामें रत्नरामकी रक्षा करते हुए हनुमानजीने देहे, फिर सुवर्णपत्र रावणका वडी ध्वजायुक्त मंदिर देखा ॥ २४ ॥ वह राक्षसराजका विलयात मं-
 पर्वतके बीच शिरपर घनाथा, इसके चारों ओर परित्वा वनीयी जितमें अनेक प्रकारके श्वेत पद्म स्थित रहेथे ॥ २५ ॥ चारों ओरसे यह भवन अतिऊँ-
 भीनीमें विगड्ढाथा, और माक्षात् स्वर्ग समान दिव्य भावसे सजरहाथा मनोहर शब्द उसमेंसे उठ रहाथा ॥ २६ ॥ इसके द्वारपर घोडोंका शब्द प्रतिध्वनि-
 हो रहाथा, व अनिअद्भुत २ घोड़े बंधेथे, रथवान् विमानोंमें हाथी, व अश्व जुतेहुएथे ॥ २७ ॥ और सब भौतिकसे सजे सजाये हाथी घोड़े द्वारपर टिकये जातेथे, उन्-
 त्रविणस्त्वनुल्लिप्तोऽश्वराभरणभूषितान् ॥ नानावेषसमायुक्तान्यथास्त्वेरचरानवहून् ॥ २८ ॥ तीक्ष्णशूलचरोंश्चैववज्रिणश्चमहाबलान् ॥ शतसाहस्र
 मय्यग्रमारक्षमध्यमकपिः ॥ २९ ॥ राक्षसद्वारमहाहाटकतोरणम् ॥ ३० ॥ राक्षसेन्द्रस्यविल्यातमन्दिमू-
 धिप्रतिष्ठितम् ॥ पुंडरीकावतंसाभिःपरित्वाभिःसमावृतम् ॥ ३१ ॥ प्राकारावृतमत्यंतदर्शसमहाकपिः ॥ त्रिविष्टपनिर्भद्विच्यविव्यनादविनादितम् ॥
 ॥ ३२ ॥ वाजिह्वितसंपुष्टमदुतैश्चहयेस्तथा ॥ रथैर्नानिर्विमानैश्चतथाहयगजैःशुभैः ॥ ३३ ॥ वारणेऽश्वचतुर्दत्तैःश्वेताभ्रनिचयोपमैः ॥ भूपितेरुचि-
 रद्धारंमत्तैश्चमृगपक्षिभिः ॥ ३४ ॥ रक्षितंसुमहावीर्यांतुयानैःसहस्रशः ॥ राक्षसाधिपतेर्युत्तमाविवेशशृङ्गकपिः ॥ ३५ ॥ सहेमजांश्चानुदचक्रवालंमहाहं-
 मुक्तामणिभूषितांतम् ॥ परार्धकालागुरुचदनाहसरावणांतःपुरमाविवेश ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे
 चतुर्थःसर्गः ॥ ३७ ॥ "चंद्रोपि साचिव्यमिवास्त्यकुर्वन्स्तारागणैर्मध्यगतो विराजन् ॥ ज्योत्स्नावितानेन निपत्य लोकांनुत्तिष्ठतेनैकसहस्ररश्मिः ॥ ३८ ॥
 बहुत हाथी चौदने व श्वेत वादरके ममान बड़े २ उज्ज्वलये और अनेक प्रकारके सुन्दर पक्षी वहां द्वारपर बैठे शब्द कर रहेथे ॥ ३९ ॥ वीर्यवान् हजारों लाखों
 राक्षसोंमें यह भवन रखाया जाताथा, परन्तु महाकपि हनुमानजी ऐसे सुरक्षित रावणके गृहमेंभी गुप्तभावसे प्रवेश करहीगये ॥ ४० ॥ इस प्रकारसे हनुमानजीने
 रावणके रत्नराममें प्रवेश करके देखा कि, उसके श्वरहरे तम वर्णके सुवर्णसे बनेहैं, और उन सबके ऊपर भाग महासूयवान् मुक्ता मणियोंके समूहोंसे सुशोभित,
 और अतिभिन्न कालरणोंके अगर व चन्दनकी गन्धमें सुवासित होरहेहैं ॥ ४१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे भाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४२ ॥
 "चंद्रमाभी मन्तारोजीमो मंत्रीकी नाई सहाय देताहुआ वारोंके बीचमें शोभित होने लगा और अपनी चांदनी संसारमें फैलाता हुआ सहस्र किरणोंसे युक्त उदय

॥ १ ॥ महावीरजी उस समय चंद्रमाको शंखकी कान्ति, दुग्ध, मृणालकी समान कान्तिमान देखकर सरोवरमें हंसकी समान प्रकाशमान देखने लगे ॥ २ ॥ अनन्तर
 विमान पवननंदन हनुमानजीने देखा कि, रात्रिके प्रथम अर्धपहरमें सूर्यकी समान अधिक प्रकाशमान किरणों सहित चंद्रमा गोठमें भ्रमण करते हुये मतवाले
 वृषभकी समान तारागणोंके मध्यमें प्राप्त होकर बारवार चंद्रिका राशि छिरकाते हुए विहार कर रहे हैं ॥ १ ॥ चंद्रमाके उदय दर्शन करनेसे लोकोंके समस्त
 पाप नाशको प्राप्त हुए, समुद्र बड़ा, और सबही प्राणी शोभायमान हुए ॥ २ ॥ जो लक्ष्मी पृथ्वीपर मन्दराचल पर्वतमें प्रदोष कालके समय
 समुद्र और दिनको जलके मध्य कमल फूलोंके समूहोंमें मिली रहती है, वही लक्ष्मी इस समय चंद्रमामें टिककर विराजमान होरही है ॥ ३ ॥
 चंदीके पींजरीमें हंस, मन्दराचलपर्वतकी कन्दराओंमें सिंह और गर्वित हाथियोंपर चढ़े हुए वीर इन सबकी समान आकाशमें उदय हुए चन्द्रमाकी कला शो
 शंखप्रभंशीरमृणालवण्णुद्वयमानंदवभासमानमाददर्शचंद्रसकपिप्रवीरः पोलयमानं सरसीवहंसम् ॥ २ ॥ ततः समध्यंगतमं शुभं तं ज्योत्स्नावितानं
 मुहुरुद्रमंतम् ॥ ददर्शधीमानं सुविभानुमंतं गोष्ठे वृषमत्तमिव अमंतम् ॥ १ ॥ लोकस्य पापानि विनाशयंतं महोदधिं चापि समेधयंतम् ॥ भूतानि सर्वाणि
 विराजयंतं ददर्श शीतां शुभयाभियांतम् ॥ २ ॥ याभाति लक्ष्मीर्भुवि मंदस्थाया प्रदोषे पुच पुज्जरस्थारराजसाचारुनिशाकर
 स्था ॥ ३ ॥ हंसो यथाराजतं पंजरस्थः सिहो यथामंदरकंदरस्थः ॥ वीरो यथा गर्वितकुंजरस्थश्चंद्रोऽपि वज्राजतथां वरस्थः ॥ ४ ॥ स्थितः ककुब्जानिवर्ती
 क्षुण्णशृंगो महाचलः श्वेतइवोर्ध्वशृंगः ॥ हस्तीविजंबुनदवद्धशृंगो विभाति चंद्रः परिपूर्णशृंगः ॥ ५ ॥ विनष्टशीतांबुतारपंको महाग्रहाहविनष्टपंकः ॥
 प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलां कोराजचंद्रो भगवाञ्छशाकः ॥ ६ ॥ शिलातलप्राप्य यथा मृगं दोमहारणं प्राप्य यथा गजं द्रुः ॥ राज्यं समासाद्य यथानरैर्द्रस्त
 था प्रकाशो विरराजचंद्रः ॥ ७ ॥ प्रकाशचंद्रो दयनष्टदोषः प्रवृद्धरक्षः पिशिताशदोषः ॥ रामाभिरामैरिति चित्तदोषः स्वर्गप्रकाशो भगवान्प्रदोषः ॥ ८ ॥
 भित्तो रहींथी ॥ ४ ॥ चंद्रमाके कलंकरूप हरिण शृङ्गेके स्पष्ट प्रकाशित होनेसे ऐसा बोध हुआ मानो तेज सींगवाला बैल, ऊंचे शिखावाला श्वेत वर्णका महा
 पर्वत, अथवा जाम्बूनद सुवर्णके वंशसे जिसके दांत बँचेहों ऐसा हाथी शोभायमान हो रहा है ॥ ५ ॥ वर्षा वीत जानेसे, उसका शीतल जल चिन्दुरूप कीचड़ दूर होग
 या है । महा ग्रह सूर्यकी किरणके संचयसे, चंद्रमाकी प्रभा अति बढ गई व प्रकाश लक्ष्मीके आश्रयवश उसका कलंकभी अतिस्पष्ट होगया है इस प्रकार चन्द्रमा
 शोभित होरहा है ॥ ६ ॥ शिलातलपर बैठे हुए मृगराज सिंहके समान, रणके बीचमें खटे महागजकी समान, और राज्यपर स्थापित हुए राजाकी समान चन्द्रमा
 अतिगम्य शोभायमान हो रहा है ॥ ७ ॥ प्रकाशमान चन्द्रमाके उदयसे समस्त अंधकारका नाश होने, राजनीति में

प्रेमकलहके न होने, और स्वर्गका सुख प्रकाशित होनेसे प्रदोषकाल गौरवयुक्त और शोभायमान हो रहा है ॥ ८ ॥ कानोंको सुख देने वाली मनोहर आंका
 इधर उधर मुनाई आय रही है। पतिव्रता स्त्रियें अपने २ स्वामीके साथ शयन कर रही हैं; और अतिशय अद्भुत वीरकर्म करनेवाले भयंकर वृत्ति निगाचर गजम
 लोग इधर उधर घूमतेहुए विहार करनेमें लग रहें हैं ॥ ९ ॥ उसी समयमें परमबुद्धिमान हनुमानजीने फिर देखा कि राक्षसगणोंके समस्त गृह-स्थ, अथ और
 सुवर्णमय आमनोंसे पूरित हो रहें हैं, वीरश्रीयुत और ऐश्वर्यमय व मदमय नियाचरणोंसे भर रहें हैं ॥ १० ॥ उनके मध्यमें प्रमत्त राक्षसोंका परस्पर अधिक
 उनर प्रत्युत्तर करते कोई दृढहाथवाले उलझनयुक्त मतवाले प्रलाप वचन परस्पर कहकर निन्दा कर रहें हैं ॥ ११ ॥ और कभी २ और कोई अपनी छानीको
 बजाय रहें हैं, कोई २ अपनी प्राणप्यारीको चपटाप रहें हैं, कोई विचित्र विविध वेग धारण कर रहें हैं और अनेक धनुषकोही खेंच रहें हैं ॥ १२ ॥ अनन्तर
 तंत्रीस्वराः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः स्वयंतिनार्यः पतिभिः सुप्रुत्ताः ॥ नक्तंचराश्चापितथा प्रवृत्ता विहर्तुमत्यदुत्तरोद्वृत्ताः ॥ ९ ॥ मत्तप्रमत्ता
 निस्माकुलानिरथाश्चमद्रासनसंकुलानि ॥ वीरश्रियाचापिसमाकुलानि ददर्शधीमानसकपिः कुलानि ॥ १० ॥ परस्परंचाधिकमाक्षिपं
 तिभुजांश्चपीनानधिविशिपंति मत्तप्रलापानधिविशिपंति मत्तानि चान्योन्यमधिविशिपंति ॥ ११ ॥ रक्षांसि वक्षांसि च विशिपंति गान्त्राणि कांता सुच
 विशिपंति ॥ रूपानि चित्राणि च विशिपंति दृढानि चापानि च विशिपंति ॥ १२ ॥ ददर्शकांताश्च समालभन्त्यस्तथा परास्तत्र पुमः स्वपत्यः ॥ सुरूपवक्त्रा
 श्वतथा हसन्त्यः कुद्वाः पराश्चापिविनिःश्वसन्त्यः ॥ १३ ॥ महागजेश्चापितथानदद्भिः सुपूजितैश्चापितथा सुसद्भिः ॥ राजवरीश्वविनिःश्वसद्भिर्द्वेभुजंगे
 रिवनिःश्वसद्भिः ॥ १४ ॥ बुद्धिप्रधाना ह्यचिराभिधाना न्स्थदधाना जगतः प्रधानान् ॥ नानाविधाना ह्यचिराभिधाना न्दर्शतस्यां प्रुरियातु या
 नान् ॥ १५ ॥ न नन्दददद्वासचतान् सुरूपाग्रानां गुणानां त्मगुणानुरूपां ॥ विद्योत्तमानान्सचतान् सुरूपां न्दर्शकोश्चिच्चपुनर्विरूपान् ॥ १६ ॥
 हनुमानजीने देखा कि, स्त्रियें कोई अपने शरीरको चन्दनादि लगा रही हैं, कोई शयन करती हैं, कोई प्रफुल्लित वदनसे हँस रहें हैं, कोई २ क्रोधयुक्त होकर लम्बे २
 श्वास ले रही हैं ॥ १३ ॥ उस समय उस रंवासमें सजे सजाये मतवाले हाथियोंके समूहका गर्जन होनेसे और विभीषणादि महामान्य साधुचरित्र वीरोंके निन्धामने
 श्वास लेतेहुए सर्व समूहसे परिपूर्ण हृदकी समान लंकापुरीकी शोभा हो रही थी ॥ १४ ॥ अनन्तर हनुमानजीने उस लंकापुरीमें आस्तिक, मधुर वचन बोलनेवाले, विविध
 वेपथारी जगत्के मध्यमें प्रधान और सुन्दर रुचिके नामधारी, मुखिया २ राक्षसोंको देखा ॥ १५ ॥ अधिक बुद्धिमान, विविध गुणधारी अपनी समान गुणवाले
 और स्वरूपवान् राक्षसोंको देखकर हनुमानजीने बड़े आनंदित हुए, उन राक्षसोंमें कोई २ अधिक विरूप होनेपर भी प्रभायुक्त होनेके कारण सुरूपवानकी ममान

५० आने लगे ॥ १६ ॥ जिसके पीछे हनुमानजीने देखा कि, उन स्थानोंमें अतिउत्तम गहनोंसे सजधजकर तारागणोंकी समान प्रियदर्शनवाली महानुभाव सुत्त वेहंगी जिसप्रकार अपने स्वामीसे भेटी-जातीहैं, वैसेही अपने २ स्वामियोंसे चिपटाईजाकर कोई २ कामिनी महालज्जा और हर्षके वराहो अपने रूपकी अधि काईसे मानो प्रज्वलित हो रहीहैं ॥ १८ ॥ बुद्धिमान् हनुमानजीने फिर देखा कि कोई २ मनमानी विवाहिता पतिव्रता स्त्रियें अटारियोंके नीचे और कोई २ अपने स्वामियोंकी गोदीमें मदनयुक्त चिन्ते घेठीहैं ॥ १९ ॥ फिर हनुमानजीने देखा कि, नपायेहुए सुवर्णकी समान वर्णवाली व चन्द्रसदृश उजले वर्णयुक्त, किसी २ स्त्रीकी ओढ़नी नहीं है, और वह नंगी है, और कोई २ मानिनी होनेके कारण स्वामीके विनाही बैठी हैं ॥ २० ॥ कोई २ मनभावते स्वामीके संगसे ततोवर्गर्हाः सविशुद्धभावास्ते पाँध्रियस्तत्रमहानुभावाः ॥ प्रिये पुपाने पुचसक्तभावाददर्शताराइव सुस्वभावाः ॥ १७ ॥ स्त्रियोज्ज्वलतीस्त्रिपयोपगूढानिशी थकालेरमणोपगूढाः ॥ ददर्शकाश्चित्प्रमदोपगूढायथाविहंगविहंगोपगूढाः ॥ १८ ॥ अन्याः पुनर्हर्म्यतलोपविष्टास्तत्र प्रियके सुसुखोपविष्टाः ॥ भर्तुः पराधर्मपरानिविष्टाददर्शधीमान्मदनोपविष्टाः ॥ १९ ॥ अग्रावृताः कांचनराजिवर्णाः काश्चित्पराध्यस्तपनीयवर्णाः ॥ पुनश्च काश्चिच्छलश्चलश्मवर्णाः कांतप्रहीणाश्चिरांगवर्णाः ॥ २० ॥ ततः प्रियान्प्राप्य मनोभिरामन्सुग्रीतियुक्ताः सुमनोभिरामाः ॥ गृहेषु हृष्टाः परमाभिरामाहर्प्रवीरः सददर्श रामाः ॥ २१ ॥ चंद्रप्रकाशाश्च हिवक्त्रमालावक्त्राः सुपद्माश्च सुनेत्रमालाः ॥ विभूषणानांचददर्शमालाः शतहृदानां भिवचारुमालाः ॥ २२ ॥ नत्वेवसीतां परमाभिजातां पथिस्थिते राजकुले प्रजाताम् ॥ लतां प्रकुण्डलामिव साधुजातां ददर्शन्वीं मनसाभिजाताम् ॥ २३ ॥ निविष्टारामेक्षणांतां मदनाभिविष्टाम् ॥ भर्तुर्मनः श्रीमदनुप्रविष्टां स्त्रीभ्यः पराम्यश्च सदविशिष्टाम् ॥ २४ ॥ अतिशय प्रसन्न होरही हैं; कोई २ फूलोंके गुच्छोंको धारणकर अतिशय मनोहारिणी और हर्षयुक्त होरहीहैं, और कोई २ स्वभावसेही चित्तको तैचे लेतीहैं ऐसी स्त्री महावीरजीने देखी ॥ २१ ॥ शशिशरसदृश सुन्दरवदनके समूह, तिछीं चितवन, सुकुमार भुकुटी और उत्तम नेत्रोंकी राशि; व दाभिनी मंडलकी समान प्रभावान् गहने हनुमानजीकी दृष्टि पड़े ॥ २२ ॥ परन्तु जो अतिशय कुलीन श्रेष्ठवंशमें उत्पन्न, जिनको विधाताने अपने मनकी कल्पनासे बनाया, श्रेष्ठ प्रफुल्लिता लताकी समान महासुन्दरता व सुकुमारकी खानिहैं ॥ २३ ॥ जो सदाही पतिव्रत मार्गमें सर्व भौतिकी टिकी हुई, श्रीरामचन्द्रमेंही जिनकी केवल एक दृष्टि और श्रीरामचन्द्रही जिनके एक मात्र काम लालसा जिन्होंने स्वामीके निर्मल मनमें प्रवेशकियाहै, जो समस्त श्रेष्ठ स्त्रीकुलकी लंकांय स्वयंपूर्ण हैं ॥ २४ ॥

जो स्वामी के विग्रह में दुःखित होकर मदाही होती रहती है, पहले श्रीरामचन्द्रजी के सहवास समय में अत्युत्तम गहन नाम प्रथम गत जानक योग्य पादक जितक कठः
 भाग्यमान करता, जिनकी भुरुटियें सुकुमार हैं, व स्वर अतिमधुर, जो कि वन के मध्यमें ब्रुत्य करती हुई मोरनी के समान देखनेमें अति मनोहर हैं ॥ २५ ॥
 जो स्वामी के विग्रहमें भलीभाँति न प्रकाशती हुई चन्द्रेरसा की समान, धूरियुक्त सुवर्ण की समान, वणयुत वर्ण रेखा की समान अथवा पवन मथित मेघमालः
 ममान अति गोचनीय मूर्ति धारण कियेहुए हैं ॥ २६ ॥ उन नरेश्वर बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी की भार्या सीताजी की बहुत देर तक दूढ़नेसे भी न पायकर, कविः
 हनुमानजी कुछ क्षण के लिये अत्यन्त दुःखित और शिथिलयत्न होगये ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० सुन्दरकांडे भाषाटीकायां पंचमः सर्गः ॥ २५ ॥

उज्ज्यादितामानुमृताम्यकंठोपुरावराहोत्तमनिष्ककंठीय ॥ सुजातपद्मामभिरक्तकंठोवनेश्वरवृत्तामिवनीलकंठीय ॥ २८ ॥ अव्यक्तरखा मिवचंद्रलेखांपांशु
 प्रदिग्धमिवदंमरेखाम् ॥ क्षितप्ररूढामिववर्णरेखांवायुप्रभुश्रामिवहरेखाम् ॥ २९ ॥ सीतामपश्यन्मनुजेश्वरस्थरामस्यपत्नीवदतांवरस्य ॥ वभूवदुःखां
 पहतश्चिरस्यद्रुगमोर्मदद्याचिरम् ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकव्ये सुन्दरकांडे पंचमः सर्गः ॥ २६ ॥ सनिकामंविमानेषु
 विचरन्तकामरूपधृक् ॥ विचचारकपिलंकांलायेवनसमन्वितः ॥ ३ ॥ आससादचलद्दमीवात्रासंज्ञनिवेशनम् ॥ प्राकारेणार्कवर्णेनमास्वरेणा
 भिभंग्वृतम् ॥ २ ॥ गदितंगक्षसेर्भमिःसिंहोविमहद्वनम् ॥ समीक्षमाणोभवन्चक्रांशेकपिकुंजरः ॥ ३ ॥ रूप्यकोपहितेश्चित्रेस्तोरेणहंमभूयणः ॥
 विचित्राभिश्चक्षुःश्रामिद्रागैश्चरुचिगवृतम् ॥ ४ ॥ गजास्थितेर्महामात्रेःशूरेश्चविगतथमेः ॥ उपस्थितमसंहार्येह्यैःस्यंदनयायिभिः ॥ ५ ॥

इच्छानुसार रूप धारण किये कपिश्रेष्ठ श्रीमान हनुमानजी सतसंड अठसंडे धवरहर्गोपर, इच्छानुसार भीमतासे भ्रमण करते हुए लंकापुरीमें द्रूमनेलगे ॥ १ ॥
 और वही भीमताके नाथ गदाभगज गणके गृहके निकट पहुँचे । यह गृह मूर्धन्य सम प्रकाशित और चाहर दिवारीसे घिराहुआ था ॥ २ ॥ सिंह के समान मः
 पट्टगान् भयंकर गदाभोगे उम गृहको रक्षित देखकर कपिकुंजर हनुमानजीने उसको जरा २ सोजनेका विचारकिया ॥ ३ ॥ हनुमानजीने देखा कि यह भवः
 पट्टगामे उगड़ाने परिपूर्ण और विचित्र गोभामे गोभायमान होरहा है, इसके विचित्र दरवाजे चांदीके बने हैं, और इनपर सुवर्णके काम होरहे हैं, सचही द्वार मनोहः
 प्रकाशने स्थापित कियेये द्रमलिये यह गृह अतिगण्य गोभायमान होरहा था ॥ ४ ॥ शूरतायुक्त परिश्रमविहीन हाथियाँपर चढे महाबल गणोंसे, व अति वेगवान् रथः

विषये गाँडे पाँडोने ॥ ५ ॥ भिंद और घ्याय चर्मको धारण किये, मुवर्ण, चाँदी व हाथीदाँतकी प्रतिमाओंसे सुसज्जित और गंभीर गर्जनशाली विचित्र रथ उसके
 स्त्रिागे २, दुम गँडे ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके रत्न अतिश्रेष्ठ आमन और वड़े २ रथ व महारथोंके समूहसे शोभित ॥ ७ ॥ और परमसुन्दर सुहावने अनेक
 प्रकारके मल्लों घुंग और पत्नी इन सब यत्नओंसे रावणका गृह भूषित और पूरित था ॥ ८ ॥ सीमारक्षक विनीतस्वभाव परमशिक्षित राक्षसगण बड़ी सावधानीसे उस
 गृहकी रक्षा कर गँडे थे, और बहू मुन्दर २, त्रियोंसे ध्यान था ॥ ९ ॥ अनेक बड़ी त्रियों और प्रमोदयुक्त प्रमदाओंसे वह स्थान चारों ओर भर रहा है और अति श्रेष्ठ गहने
 की जगह रत्नरनिसे यह स्थान मागलुन्य गंभीरभावसे शब्दायमान हो रहा था ॥ १० ॥ अधिक करके यह गृह सब राजचिह्नोंसे परिपूर्ण था, और अतिश्रेष्ठ महामोलके
 भिंदलगा प्रतनुत्राणोंदाँतकाँचनगजतीः ॥ दोषवद्विर्विचित्रेश्वसदाविचरितरथेः ॥ ६ ॥ बहुरत्नसमाकीर्णपराध्यासनभूषितम् ॥ महारथसमावाप
 मदागममहामनम् ॥ ७ ॥ दृश्यैश्चपमोदारैस्तेस्तेश्चमृगपक्षिभिः ॥ त्रिविधैर्यहुसाहसैः परिपूर्णसमततः ॥ ८ ॥ विनीतैरत्नपालैश्चरक्षोभिश्चसुरक्षितम् ॥
 गुर्याभिश्चवर्गस्त्रीभिः परिपूर्णसमततः ॥ ९ ॥ सुदितप्रमदारं वरं राक्षसं द्रुनिवेशनम् ॥ वराभरणसंज्ञादैः समुद्रस्वननिस्वनम् ॥ १० ॥ तद्वाजगुणसंपन्नं
 गुर्यैश्च वररं दनैः ॥ महाजनसमाकीर्णसिंहरिवमहद्वनम् ॥ ११ ॥ भेरीमुदंगाभिरुतं शंखघोषविनादितम् ॥ नित्यार्चितं पूर्वसुतं पूजितं राक्षसेः सदा ॥
 ॥ १२ ॥ समुद्रमिव गभीरं समुद्रसमनिःस्वनम् ॥ महात्मनो महद्वैश्वमहारत्नपरिच्छदम् ॥ १३ ॥ महारत्नसमाकीर्णदर्शसमहाकपिः ॥ विराज
 मानं पुपागजाधरधसंकुलम् ॥ १४ ॥ लंकाभरणमित्येव सोऽमन्यत महाकपिः ॥ चचारहनुमांस्तत्र रावणस्य समीपतः ॥ १५ ॥ गृहाद्द्वहराक्षसाना
 मुद्यानानि च सर्वेशः ॥ वीक्षमाणोऽप्यसंवस्तः प्रासादांश्च चारसः ॥ १६ ॥

पंदनही गुंगोंसे और गुल्ल २, राक्षसगणोंसे ध्यान था, जैसे भिंदोंसे बड़ा वन ॥ ११ ॥ भेरी, मुदंग और शंखके शब्दसे शब्दायमान हो रहा था, और राक्षसगण
 निरन्तर इन गृहमें अचने २ इष्टदेवताकी पूजा करते थे ॥ १२ ॥ महात्मा राक्षसराज रावणका समुद्रतुल्य गंभीर और समुद्रकीही समान शब्दकारी इस प्रकार रत्न
 नामकीसे परिपूर्ण भवन था ॥ १३ ॥ महाकपि द्रुमानजीने अनेक रत्नोंसे युक्त उस गृहको देखा, उस गृहमें जहाँ तहाँ गज, अश्व और रथ व्याप्त थे ॥ १४ ॥ उस
 गृहमें भवनको देवराज महाकपि द्रुमानजीने विचाग कि, यह गृह सब लंकाका भूषणरूप है; यह मानकर वह जहाँ रावण अचने कर रहा था वहाँ गये ॥ १५ ॥
 उस प्रकार एक गल्ले हमारे गृहमें गये मुरिषा २, निगाचगेके गृह और गुल्लकादिमें देखने भालने उस मंत्रिणोंसे वचने करते ॥ १६ ॥

तिसके पीछे महावीरवान् हनुमानजी महावेगेने छलांग मारकर प्रथम प्रहस्तके घरमें फिर वहांसे महापाश्र्वके भवनमें प्रवेश करते हुए ॥ १७ ॥ फिर वहांसे कुंभकर्णके
 मेनाकार गृहमें फिर वहांसे कुंदकर विभीषणके घरपर महाकपि आये ॥ १८ ॥ वहांसे महोदरके घरपर कूदे, तिसके पीछे विरूपाक्षके स्थानपर आये फिर
 विपुलिङ्गका घर सोजा, फिर विद्युन्मालीके भवनको आगये ॥ १९ ॥ वहांसे वज्रदंष्ट्रके गृहपर गये, फिर महाकपि हनुमानजी शुकके यहां पधारे, फिर
 बुद्धिमान् मारणके स्थानपर ॥ २० ॥ फिर वानरश्रेष्ठ हनुमानजी इन्द्रजीतके स्थानपर कूदे, वहांसे जम्बुमाली और सुमालीके भवनपर वानरश्रेष्ठ हो रहे ॥ २१ ॥
 वहांसे गन्धिमैत्र्युके भवनपर, गन्धिमैत्र्युके भवनमें सूर्यगन्धुके यहां, फिर वहांसे यह महाकपि वज्रकायके मंदिरपर पढ़ूँवे ॥ २२ ॥ फिर पवनकुमार धूम्राक्ष, व सम्पा

अवधुत्यमहावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् ॥ ततोऽन्यत्पुत्रेष्वंशमहापार्श्वस्य वीर्यवान् ॥ १७ ॥ अथ मेव प्रतीकाशं कुंभकर्ण निवेशनम् ॥ विभीषणस्य
 च तथा पुत्रेष्वंशमहाकपिः ॥ १८ ॥ महोदरस्य च तथा विरूपाक्षस्य चैव हि ॥ विद्युजिह्वस्य भवर्न विद्युन्मालेस्तथैव च ॥ १९ ॥ वहुदंष्ट्रस्य च तथा पुत्रेष्वं
 ममहाकपिः ॥ शुकस्य च महावेगः सारणस्य च भीमतः ॥ २० ॥ तथा चन्द्रजितो वेश्मजगाम हरियूथपः ॥ जंबुमालेः सुमालेः जगाम हरिसत्तमः ॥ २१ ॥
 गन्धिमैत्र्युः भवनस्य मूर्ध्नि शोस्तथैव च ॥ वज्रकायस्य च तथा पुत्रेष्वंशमहाकपिः ॥ २२ ॥ धूम्राक्षस्यार्थसंपाते भवनं मारुतात्मजः ॥ विद्युद्रूपस्य भीमस्य
 यनस्य पिचनस्य च ॥ २३ ॥ शुकनाभस्य च कस्य शठस्य कपटस्य च ॥ ह्रस्वकर्णस्य च दंष्ट्रस्य लोमशस्य च रक्षसः ॥ २४ ॥ युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्री
 यन्यमादिनः ॥ विद्युजिह्वद्विजिह्वानां तथा हस्तिमुखस्य च ॥ २५ ॥ करालस्य विशालस्य शोणिताक्षस्य चैव हि ॥ प्लवमानः क्रमेणैव हनुमान् मारुता
 त्मजः ॥ २६ ॥ तेषु तेषु महाहैपु भवनेषु महायशाः ॥ तेषामृद्धिमतामृद्धिदर्शसमहाकपिः ॥ २७ ॥ सर्वपांसमतिक्रम्य भवनानि सन्ततः ॥ आस
 माद्राश्लक्ष्मीचाक्राक्षं न निवेशनम् ॥ २८ ॥ रावणस्योपशायिन्योददर्शहरिसत्तमः ॥ विचरन् हरिशार्दूलो राक्षसीर्विकृतेक्षणाः ॥ २९ ॥

निके पगग, रक्षी वैपुद्र, भीम, घन, विचनके स्थानपर ॥ २३ ॥ इसके पीछे शुकनाभ, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, लोमश राक्षसोंके गृहोंपर ॥ २४ ॥
 युद्धोन्मत्त, मन, ध्वजग्रीव, मादी, विद्युजिह्वके, द्विजिह्वके और फिर हस्तिमुखके स्थानपर ॥ २५ ॥ वहांसे कराल, विशाल, शोणिताक्ष, इन सब राक्षसोंके भवनोंपर
 तानुमार हनुमानजी पागी चागीमें घूम व कूदे ॥ २६ ॥ और उन सब बड़े भवनोंमें इन समस्त ऋद्धिशाली राक्षसोंकी परमसमृद्धि महायशस्वी हनुमानजीने
 रक्षी ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे श्रीमान् महाकपि हनुमानजी क्रममें इन समस्त भवनोंपर घूम राक्षस रावणके गृहपर आये ॥ २८ ॥ वहांपर महावीरजीने देखा

किं विक्राल नेत्रवाली राक्षसियें अलग २ अपने पहरेपर रावणके शयनगृहकी रक्षा करतीहैं ॥ २९ ॥ इनके अतिरिक्त रावणके गृहमें इधर उधर विचरण करती हुई, शूल, मुद्गर, शक्ति, और तोमर धारण किये हुए असंख्य राक्षसियोंके झुण्ड हनुमानजीने देखे ॥ ३० ॥ शस्त्र धारण किये हुए वडी २ देहवाले राक्षसोंके भयल समूहोंमें लाल, श्वेत, घोडे चड़े देखे जो कि अतिशीघ्र चलनेवाले थे ॥ ३१ ॥ और बडे २ श्रेष्ठरूपवाले वनके गजोंके मर्दन करने वाले, भली भाँतिसे शिक्षित, युद्धमें परावन हाथीके समान गजभी बंधे देखे ॥ ३२ ॥ वह हाथी देखतेही शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेवाले थे, व और पर्वतोंकी समान जिनमेंसे मदका द्वार नामा झरताथा ॥ ३३ ॥ ममरमें शत्रु लोगोंसे जीतनेके अयोग्य, मेघोंकी समान गर्जन करने वाले हाथी, और बहुतसी सेना, सुवर्णकी सव सामग्रीसे सम्पन्न उस भवनमें

शूलमुद्गरहस्ताश्चशक्तितोमराधारिणः ॥ ददर्शविविधान्युल्मांस्तस्यरक्षःपतेर्गृहे ॥ ३० ॥ राक्षसांश्चमहाकायात्रानाग्रहणोद्यतान् ॥ रक्ताञ्ज्वेतान्सि तांश्चापिहरोश्चापिमहाजवान् ॥ ३१ ॥ कुलीनान्पुसंपन्नान्गजान्परगजारुजान् ॥ शिक्षितान्गजशिक्षायांमैरावतसमान्युधि ॥ ३२ ॥ निहंतृन्परसे न्यानांगृहेतस्मिन्ददर्शसः ॥ क्षतश्चयथामेघान्खलवतश्चयथागिरीन् ॥ ३३ ॥ मेघस्तनितनिर्घोषान्दुर्घर्षान्समरेपरैः ॥ सहस्रबाहिनीस्तत्रजांघुनद परिष्कृताः ॥ ३४ ॥ हेमजालैरविच्छिन्नास्तृणादित्यसन्निभाः ॥ ददर्शराक्षसैर्द्रस्यरावणस्यनिवेशने ॥ ३५ ॥ शिचिकाविचित्रिकाकाराःसकपिर्मा रूतात्मजः ॥ लतागृहाणिचित्राणिचित्रशालागृहाणिच ॥ ३६ ॥ क्रीडागृहाणिचान्यानिदारुपर्वतकानिच ॥ कामस्यगृहकंरम्यंदिवागृहकमेवच ॥ ३७ ॥ ददर्शराक्षसैर्द्रस्यरावणस्यनिवेशने ॥ समंदरसमप्रख्यंमयूरस्थानसंकुलम् ॥ ३८ ॥ ध्वजयष्टिभिराकीर्णददर्शभवनोत्तमम् ॥ अनंतरत्न निचयनिधिजालंसमंततः ॥ धीरनिष्ठितकर्मांगगृहंभूतपतेरिव ॥ ३९ ॥

जहाँ तहाँ छाई हुई देखी ॥ ३४ ॥ वह सेना सुवर्णकी कड़ियोंके जालका बल्तर पहने, शातःकालीन सूर्यके समान चमकती दमकती, राक्षसनाथ रावणके स्थानमें हनुमानजीने देखी ॥ ३५ ॥ अनेक प्रकारकी पालकियें चित्र विचित्र लतायुक्त गृह, और चित्रपट शोभित गृह हनुमानजीने देखे ॥ ३६ ॥ विहार गृह और कोठके बने हुये (नकली) क्रीडा पर्वत रमणीक रति करनेके सामान, और दिनको विहार करनेके गृह हनुमानजीने देखे ॥ ३७ ॥ और हनुमानजीने देखा कि रावणका गृह अतिश्रेष्ठ है, वह मन्दराचल पर्वतकी तलेडीकी समान मनोहर मनोहर भौरोंके स्थानोंसे व्यापक है ॥ ३८ ॥ ध्वजा पताकाओंसे भूषित, उत्सव्य रत्न और ऋद्धि भित्तिके समूहमें पारिपूर्ण और वहांपर भस्परद्वित स्थित गजमल्लोग उन भित्तियोंकी रक्षाके नियुक्त थे, देखनेसे कोपित था कि,

और बार २ उनको पृथ्वीपर विहारती हुई कि, कदाचित् रामचन्द्र आजायँ. तिलक विसना हुआ व्याकुल चित्त बुद्धिमती जानकीजीको अपना सर्वनाश कराने में निमिन्नही राखण हरकर लेगया ॥ ४३ ॥ अनन्तर मनोहर दन्तवाली मन्द २ हास्य युक्त; जानकीजी राम और लक्ष्मण दोनोंको नहीं देखनेपर बन्धुजनोंके विर-
मतीनमुग्गी और भयमे बहुवृत्ती पीडित हुई ॥ ४४ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥
राखणको आकाशमें उड़ताहुआ दंस्तकर जनककुमारी सुकुमारी सीताजी महाभीत होकर घबड़ाई और बहुवृत्ती दुःखित हुई ॥ १ ॥ क्रोध करनेके कारण और रोते-
उनके दोनों नेत्र टाळ हो आये, वह आर्तस्वरसे रोकर उस कालमें भयंकर नेत्र कियेहुए राक्षसपतिसे कहने लगी ॥ २ ॥ रे राक्षसाधम रावण ! हमको अकेली पा-

अंशमाणां बहुशो यद्वैधरणीतलम् ॥ सतामाकुलकेशांतां विप्रमृष्टविशेषकाम् ॥ जहारामविनाशाय दशग्रीवोमनस्विनीम् ॥ ४३ ॥ ततस्तु सा
चारुदती गृचिस्मिता चिनाकृता च धुजनेन मेधिली ॥ अपश्यती राचवलक्ष्मणा बुभौ विवर्णवक्त्राभयभारपीडिता ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी०
आदि० काव्ये राखणकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ स्वमुत्पतंतं तद्वद्वामे धिलीजनकात्मजा ॥ दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी ॥ १ ॥ रोपरोदनता
म्राग्धीभीमाक्षगन्धसाधिपम् ॥ रुदती करुणं सीतां द्वियमाणा तमव्रवीत् ॥ २ ॥ नव्यपत्रपसेनी च कर्मणानेन रावण ॥ ज्ञात्वा विरहितां योमांचोरयित्वा प
त्यायसे ॥ ३ ॥ त्वयो नूनं दुष्टात्मन् भीरुणा हतुं भिच्छता ॥ ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ॥ ४ ॥ योहिमा मुद्यतस्त्रातु सोऽप्ययं विनिपातितः ॥
गृध्रगजः पुगणोऽसौ श्वगुरस्य सखा मम ॥ ५ ॥ परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम ॥ विथाव्यनामधेयं हियुद्धेनास्मि जिता त्वया ॥ ६ ॥ ईदृशं गार्हितं कर्म
कथं कृतानलजसे ॥ त्रियाश्चाहरणं नीचरहिते च परस्य च ॥ ७ ॥ अकथयिष्यं तिलोके पुपुरुषाः कर्मकुत्सितम् ॥ सुवृशंसमधर्मिष्ठं तव शौरीर्यमानिनः ॥ ८ ॥

पां गी करके गू लिये भागाजाताई अंग क्या इस नीचकर्मसे तुझे लाज नहीं आती ? ॥ ३ ॥ रे दुरात्मन् ! मैं जान गई कि तू डरपोक रंभभाववाला है इतना
कारणमे हमारे हरण करनेका अभिलाष कर मायामय मृगरूप बना हमारे स्वामी रामचन्द्रजीको छलसे दूर लेगया ॥ ४ ॥ और इस समय हमारी रक्षा करने में
लिये जो गौरा द्रुपद उन हमारे श्वशुरके सखा गृध्रराज जटायुजीको भी तैने मार डाला ॥ ५ ॥ हे राक्षसाधम ! इससेही जाना गया कि, तुझमें कुछ वीरता नहीं है
नूनं वं खलु हमरो अपना नामही सुनाकर हरण किया, कुछ तुझ करके हम जीती नहीं गईं. हाँ, राम लक्ष्मणसे युद्ध कर हमें जीतता तो एक बात थी ॥ ६ ॥ रे नीच
धन्यमे पराई श्रीके हरण करनेका यह नीच निन्दनीय कार्य करके तू लाजित नहीं होता ॥ ७ ॥ रे अपनेको शूर माननेवाले ! तुने जो यह अतिनिर्लज्ज और निन्दनी-

रूपं रिपादे मो इमही मय पुरुष चरचा कर २ के तुझे घुरा कहूँगे ॥ ८ ॥ तुने जो अपनी शूरताई की और शारीरक बलकी वार्ता कही सो तेरी इस शूरताको
 रिखाई ! तेरे इन बलकोभी धिक्कारहे ! तेरे कुटके कलंकजनक ऐसे चारित्रपरभी धिक्कारहे ॥ ९ ॥ तू इस प्रकारसे हरण करके शीघ्रताके साथ दौड़ा जाताहै फिर
 भडा हम क्या कर गें ? हां यदि एक मुहूर्तभी तू खडा रहे, तो प्राण लेकर नहीं लौटने पावेगा ॥ १० ॥ राजकुमार रामचंद्र और लक्ष्मणजीकी दृष्टिके आगे आते
 ही नु मेनामलित एक मुहूर्तपरभी प्राण धारण नहीं कर सकेंगा ॥ ११ ॥ पक्षी जिस प्रकार वनमें लगीहुई दावानलको नहीं छू सकता, वैसेही उन राजकुमारोंके बा
 गोका रागं महन करनेकी किसी भीति तुझमें सामर्थ्य नहीं है ॥ १२ ॥ इसकारण हे रावण ! भली भीति अपना हिताहित विचार करके सीधी तरहसे हमको छोड़दे ।
 नहीं तो हमारे रगमी अपने भ्राताके सहित हमारे इस पकड़े जानेपर महाक्रोधित हो ॥ १३ ॥ यदि तू हमको न छोड़देगा तो तेरा विनाश करनेके लिये यत्न करेंगे,
 भित्तिशायं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा ॥ कुलाक्रोशकरं लोके धिते चारित्रमीदृशम् ॥ १४ ॥ किं शक्यं कर्तुं मेवं हि यज्ज्वेनैव धावसि ॥ मुहूर्तमपि तिष्ठत्वं
 न जीवन् प्रतियास्यसि ॥ १० ॥ न हि चक्षुः पथं प्राप्य तयोः पार्थिव पुत्रयोः ॥ स सेन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥ ११ ॥ न त्वंतयोः शरस्पर्शसोऽंश
 कः कथंचन ॥ वने प्रज्वलितस्यैव स्पर्शमेव विहंगमः ॥ १२ ॥ साधु कृत्वात्मनः पथ्यं साधुमां मुंचरावण ॥ मत्पथं यणसंकुद्धो भ्रात्रा सह पतिर्मम ॥ १३ ॥ विधा
 स्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुंचसि ॥ येन त्वं व्यवसायेन बलान्माहर्तुमिच्छसि ॥ १४ ॥ व्यवसायस्तु ते नीच भविष्यति निरर्थकः ॥ न ह्यहंत मपश्यंती
 भर्तारं विधुघोषमम् ॥ १५ ॥ उत्सहे शत्रुवशाग्राणान्धारयितुं चिरम् ॥ न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे ॥ १६ ॥ मृत्युकाले यथा मर्त्यो वि
 परीतानि सेवते ॥ मुर्मूषाणां तु सर्वेषां यत्पथ्यं तत्रोचते ॥ १७ ॥ पश्यामीदृहिकं त्वां कालपाशावपाशितम् ॥ यथा चास्मिन् भयस्थानेन विभेषि नि
 शानर ॥ १८ ॥ व्यक्तं हिरण्मयांस्त्यं हि संपथ्यसि महीरुहान् ॥ न दीवितरणीयो रारुधिरौघविवाहिनीम् ॥ १९ ॥
 नृ निम आगयमे हमको हरण करके लिये जानाहे ॥ १४ ॥ सो हे नीच राक्षस ! वह तेरा आशय कभी सिद्ध नहीं होगा हम उन देवसमान अपने स्वामीको न देख
 नेार ॥ १५ ॥ शत्रुके परागें रक्षकर बहुकालतक प्राण धारण करनेको समर्थ न होगी, हमको समझ पड़ताहै कि तू अपना कल्याण और हित तहाँ देखता ॥
 ॥ १६ ॥ निम प्रभार मृत्युके समय लोगोंकी बुद्धि विपरीत हो जाती है

और महाभीषण मन्त्ररुप पञ्चयुक्त वृक्षाका बन तु अति शीघ्र दहणा । आर उत्कट वदूयमाणमय पत लगद्गुण तथा गद्गु सुपणक पण फूल फल पण ॥ २० ॥ ॥ ॥
 भी पदद इंद्रकाकीर्ण सुतीक्ष्ण शाल्मली वृक्ष यह सब बहुत शीघ्र तुझको दिखाइ देंगे । उन महात्मा रामचंद्रजीका ऐसा अभिय कार्य करके नहीं जी सकोगे ॥ २१ ॥
 त्रिमकर विपदा पीनेवाला बहुत देर तक नहीं भोग रख सकता । रे निर्घृण रावण ! इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि, तू कठिन कालकी फाँसीसे बंधा है ॥ २२ ॥ हमो-
 महात्मा स्वामीके मन्त्रुन मंत्रागममें प्राप्त होकर फिर तुम्हारा कहीं निस्तारा नहीं; फिर तू कहाँ जायकर बचेगा; उन्होंने अकेलेही बिना अपने भाताकी सहायताके पृ-
 न्दिय मायमें ॥ २३ ॥ चौदह हजार राजस मार डाले, वही सब अब शत्रुके जाननेवाले महाबलवान् वीर्यसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी ॥ २४ ॥ सुतीक्ष्ण बाणों-
 मयूरसे अपनी प्रिय भागोंके इरनेवाले तुझको अत्यन्त ही मार डालेंगे । रावणके हाथोंके बीचमें वैभी वंदेहीजी भय और शोकयुक्त होकर इस प्रकारसे व ओरभी बहुत भौंति-
 खड्गपत्रयनेचैवभीमं पश्यसिरावण ॥ तप्तकांचनपुष्पांचवैदूयप्रवरच्छदाम् ॥ २० ॥ द्रक्ष्यन्ते शाल्मली तीक्ष्णामायसेः कंटके क्षिताम् ॥ न हित्व मीहश-
 कृन्वातस्यालीकं महात्मनः ॥ २१ ॥ धारितुं शयसिचिरं विपपीत्वेव निर्वृणम् ॥ वद्धस्त्वं कालपाशेन दुर्निवारण रावण ॥ २२ ॥ कर्ग तोल प्रत्यसे श-
 ममर्थं तु महात्मनः ॥ निमेषांतरमात्रेण विना भ्रातरमाहवे ॥ २३ ॥ राजसानी हतायेन सद्वाणिचतुर्दश ॥ कथं सरावबोवीरः सर्वास्त्रकुशलोवली ॥ २४ ॥
 न चोदन्याच्छरेस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् ॥ पतन्मान्यघपरुषवैदेही रावणकिं गा ॥ भयशोकसमाविष्टा कर्णविललापह ॥ २५ ॥ तदाभृशतां चतुर्वै-
 भाषिणीं विव्रापपूर्वकं कर्णं च भाषिनीम् ॥ जहार पापस्तरुणीं विचेष्टतां तृपात्तमजामातगात्रवेषथुः ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदि-
 व्येन्द्रपयकांडे विपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ द्वियमाणा तु वैदेहीकंचिद्राथमपश्यती ॥ ददर्श गिरिभुगस्थानं पंचानरपुंगवान् ॥ १ ॥ तेषां मध्ये विशालाक्षी च-
 शंयंकनकप्रभम् ॥ उत्तरिपुंगवारो ज्ञातुभुगस्थानं निच ॥ २ ॥ सुमोचयदिरामायशसेयुरिति भाषिनी ॥ वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्यनिक्षिप्तं सहभूषणम् ॥ ३ ॥
 कठोर वचनके साथ कर्णरसमं विलाप करने लगीं ॥ २५ ॥ वह महाव्याकुल होकर अपने लुडानेकी चेष्टा करती हुई कर्णा सहित विलाप करके अनेक द-
 रुतनें लगीं, उस समय पापचारी रावण अपने शरीरको कैपाता हुआ उनको हरण करके ले चला ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदि-
 आरण्यकाण्डे भाषातीकायां विपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ ॥ जब रावण हरण करके लेचला तब जानकीजी और किसीको रक्षा करनेवाले-
 पार पड़ी जाने लगीं । और जाने २ उन्होंने पूर्वके शृंगपर बैठहुए श्रान पांच बंदरोंको देखा ॥ १ ॥ तब उन बड़े २ नेत्रवाली जानकीजीने सुवर्णके रं-दा-
 भाना एक वय १ कुण गहनें उतार उन बन्दरोंके बीचमें ॥ २ ॥ इस विचारसे डाल दिये कि, यह कदाचित् रामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त कहभी सकते-

रह जानकीजीस एंडा हुआ यम व भूषण वन्दरोंके बीचमें गिरा ॥ ३ ॥ जानकीजीके वस्त्र और भूषण डालनेका यह कर्म घबडाहटके मारे रावणने नहं; नागा, उम कालमें सीताजी बहुतही रुदन कररहीथीं उनको अनिमेष लोचनसे ॥ ४ ॥ पीली आँखोंवाले वानरश्रेष्ठोंने सीताजीको अपने नेत्रोंसे वारंवार देखलिया व रावण पद्मापुरीको नांप लंकापुरीकी ओर ॥ ५ ॥ रोतीहुई सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान् मृत्युस्वरूप सीताजीको हरण करके रावणके हर्षवर्ष; भीमा न रही ॥ ६ ॥ वह तेज डाढ़वाली और तेज विपवाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंकमें भरकर आकाशमार्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियां व तट; गादि देखता हुआ ॥ ७ ॥ बड़ी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य, कच्छप, मगर नाके इत्यादिकोंके स्थान समुद्रको उतरगया, जिसप्रकार कि कमानसे छुटाहुइ; पाणे अति शीघ्रतासे मीरा चलताहै ॥ ८ ॥ जब रावणने जानकीजीको हरण किया, तब जगन्माताका हरण होनेके कारण क्षुभित होकर वरुणालय समुद्र तरंगविही; संभ्रमाचुदशग्रीवस्तत्कर्मचनबुद्धवान् ॥ पिंगाक्षास्तांविशालाक्षीनैत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥ विक्रोशंतोतदासीतादशुर्वानरोत्तमाः ॥ सचंपाम तिकम्यलंकामभिमुखःपुरीम् ॥ ५ ॥ जगामथिलंगृह्यरुदताराक्षसेश्वरः ॥ तांजहारसुसंहरोरावणोमृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥ उत्संगेनैवमुजगीती क्षणदंष्ट्रमहाविपाम् ॥ वनानिसरितःशैलान्सरांसिचविहायसा ॥ ७ ॥ सक्षिप्रसमतीयायशरश्चापादिवच्युतः ॥ तिमिनकनिकेतंतुवरुणा लयमस्तयम् ॥ ८ ॥ सरितांशरणगन्तासमतीयायसागरम् ॥ संप्रमात्परिवृत्तोर्मोरुद्धमीनमहोरगः ॥ ९ ॥ वेदेद्वां द्वियमाणायांबभूववरुणालयः ॥ अंतरिक्षगतात्राचःसमृज्जुश्चारणास्तथा ॥ १० ॥ एतदंतोदशग्रीवइतिसिद्धास्तदाब्रुवन् ॥ सतुसीतांविचेष्टतीमकेनादायरावणः ॥ ११ ॥ प्रवि वेशपुरालंकारूपिणोमृत्युमात्मनः ॥ सोऽभिगम्यपुरालंकांसुविभक्तमहापथाम् ॥ १२ ॥ संरुढकक्ष्यांवहुलांस्वमंतःपुरमाविशत् ॥ तत्रतामसिता पर्वांशोकमोहसमन्विताम् ॥ १३ ॥ निदधेरावणःसीतांभयोभायाभिवसुरीम् ॥ अत्रवीचदशग्रीवःपिशाचीघोरदर्शनाः ॥ १४ ॥

होगया, और उसमेंके भीन और बड़े २ सच सर्प व्याकुल होगये ॥ ९ ॥ इस प्रकार जानकीजीके हरण करनेके समय यह दशा तो नदीनाथकी हुई और अ; रिशमें विचरण करने वाले चारणगण कहने लगे ॥ १० ॥ कि, अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता, यहाँतक इसके जीवनका शेष होगया । सिद्ध; भी ऐसाही कहने लगे । इस ओर रावण चेष्टारहित मूर्च्छित सीताजीको गोदीमें लिये ॥ ११ ॥ अपनी लंकापुरीमें आया, वह सीताजीको नहीं लाया बरन् कह; अपनी मृत्युको मोल ले आया । उम समय लंकानगरीमें बड़े २ चौराहे और मार्ग सुसोभित हो रहे थे ॥ १२ ॥ वहाँ पहुँचकर अपने परमसुन्दर रनवासमें रावणने

मीनाजीको अपने रनवानमें स्थापन करके घोर दर्याना पिछाचरियोंको आवा देता हुआ ॥ १४ ॥ कि, तुम भली भाँतिसे इनकी रक्षा करो । कोई स्त्री व पुरुष
 हमारी बिना आज्ञा इन मीनाको नहीं देखने पावे । मुक्ता, मणि, सुवर्ण वस्त्र, धूपण ॥ १५ ॥ इत्यादि जिस २ वस्तुकी यह इच्छा करें वह समस्तही इनको दी जाय
 यह मेरी आज्ञा है व जो कोई स्त्री तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझे इस तरह सब
 रक्षा करनेमात्रियोंमें कहूँ महा प्रतापवान् रावण ॥ १७ ॥ रनवाससे बाहर आ विचार करने लगा कि, इस समय हमको क्या करना उचित है यह सोच उसने
 दूर उभर देखा तो आगेही मांसकं खानेवाले आठ राक्षस बैठे थे ॥ १८ ॥ उन राक्षसोंको देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल
 सींयसी रंगना करने लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भाँतिके अन्न राख धारण करके शीघ्र इस स्थानसे जहाँपर खर रहा करताथा उस जनशून्य जनस्थानको
 यथार्थनापुमान्ध्रीवासीतापश्यत्यसंमतः ॥ सुक्तामणिसुवर्णानिवह्नाण्यभरणानि च ॥ १५ ॥ यद्यदिच्छेत्तदेवास्यादेयमच्छंदतोयथा ॥ याच
 यद्यतिवेदेहोवचनं किंचिदप्रियम् ॥ १६ ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानाव्रतस्याजीवितं प्रियम् ॥ तथोक्तवाराक्षसीस्तास्तुराक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ १७ ॥
 निष्क्रम्यतः पुरातस्मात्किंकृत्यमिति चिंतयन् ॥ ददर्श योमहावीर्याव्राक्षसान्पिशिताशान् ॥ १८ ॥ सतान्दृष्ट्वा महांवीर्याव्रदानेन मोहितः ॥
 उवाच तानि दंयाक्यं प्रशस्य बलवीर्यतः ॥ १९ ॥ नानाग्रहरणाः क्षिप्रमिति गच्छतस्तत्राः ॥ जनस्थानं हतस्थानं भूतपूर्वखरालयम् ॥ २० ॥ तत्रा
 स्य तज्जनस्थानेन शून्ये निहत राक्षसे ॥ पौरुषं बलमाश्रित्य तत्रासमुत्पुज्य दूरतः ॥ २१ ॥ बहुसेन्यं महावीर्यं जनस्थाने निवेशितम् ॥ सद्रूपणखरं युद्धनिह
 तंगमसायकैः ॥ २२ ॥ ततः क्रोधो ममापूर्वाधैर्यस्योपरिवर्धते ॥ वरंचमुमहन्वा तं रामं प्रति सुदारुणम् ॥ २३ ॥ निर्यातयितुमिच्छामि तच्च वैरं महारि
 पोः ॥ न हिलस्याम्यहं निद्राप्रहन्वा संयुगे रिपुम् ॥ २४ ॥ तं त्विदानीमहं हत्वा खरद्रूपणयातिनम् ॥ रामं शर्मोपलप्स्यामि धनं लब्ध्वेव निर्वनः ॥ २५ ॥
 जात्रां ॥ २० ॥ और तुम लोग वहाँ बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसीकाभी डर न करके जनशून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥ २१ ॥ वहाँपर
 खर और रूपणके गति हमारी जो महावीर्यवान् बहुत सारी सेना रहतीथी, वह समस्त रामचंद्रके वाणसे खर दूषणसहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कारणसे हम
 रों पराक्रांत हुआ है, और हममेंही हम चडे धीर्यवानका धीरजभी लोप होगया । इस समय रामचंद्रके प्रति हमारा महावैराव उपस्थित हुआ है ॥ २३ ॥ सो इस
 समय परमागन्तु गमके प्रति यह अपना क्रोध हम नष्ट करना चाहते हैं, जबतक हम युद्धमें उस महायानुका वध नहीं करलेते, तबतक हमको सुखकी नौद न
 आयेगी ॥ २४ ॥ जिन वस्त्रा निर्वन पुरुष धन प्राप्त करके सुखी होता है, वैसेही खर दूषणके मारनेवाले रामचंद्रजीका नाश करके हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥

यह जानकीजीका छोडा हुआ वस्त्र व भूषण बन्दरोंके बीचमें गिरा ॥ ३ ॥ जानकीजीके वस्त्र और भूषण डालनेका यह कर्म बबडाहटके मारे रावणने नहीं जाना, उस कालमें सीताजी बहुतही रुदन कर रही थीं उनको अनिमेष लोचनसे ॥ ४ ॥ पीली आँखोंवाले वानरश्रेष्ठोंने सीताजीको अपने नेत्रोंसे वारंवार देखलिया व रावण पम्पापुरीको नाँव लंकापुरीकी ओर ॥ ५ ॥ रोतीहुई सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान् मृत्युस्वरूप सीताजीको हरण करके रावणके हर्षकी सीमा न रही ॥ ६ ॥ वह तेज डाढवाली और तेज विषवाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंकमें भरकर आकाशमार्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियाँ व तडागादि देसता हुआ ॥ ७ ॥ बड़ी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य, कच्छप, मगर नाके इत्यादिकोंके स्थान समुद्रको उतर गया, जिसप्रकार कि कमानसे छूटाहुआ वाण अति शीघ्रतासे सीधा चलताहै ॥ ८ ॥ जब रावणने जानकीजीको हरण किया, तब जगन्माताका हरण होनेके कारण क्षुभित होकर वरुणालय समुद्र तरंगविहीन संभ्रमात्तुदशग्रीवस्तत्कर्मचनबुद्धवान् ॥ पिगाक्षास्तां विशालक्षीनैर्निरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥ विक्रोशंती तदा सीतां ददृशुर्वानरोत्तमाः ॥ सचपंपाम तिकम्यलंकामभिमुखः पुरीम् ॥ ५ ॥ जगाम मेथिलीं गृह्यरुदतीराक्षसेश्वरः ॥ तां जहार सुसंहरो रावणो मृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥ उत्संगेनैव भुजगोती क्षणदंशं महाविषाम् ॥ वनानि सरितः शैलान्सरांसि च विहाय सा ॥ ७ ॥ सक्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिवच्युतः ॥ तिमिनक्रनिकेतं तु वरुणा लयमक्षयम् ॥ ८ ॥ सरितां शरणं गत्वा समतीयाय सागरम् ॥ संप्रमात्परिवृत्तो मीरुद्धमीनमहोरगः ॥ ९ ॥ वैदेह्यां ह्रियमाणायाम् भूववरुणालयः ॥ अंतरिक्षगता वाचः ससृजुश्चरणास्तथा ॥ १० ॥ एतदंतोदशग्रीव इति सिद्धास्ताद्वाब्रुवन् ॥ सतु सीतां विचेष्टं तीमं केनादाय रावणः ॥ ११ ॥ प्रवि वेशपुरीं लंकां रूपिणीं मृत्युमात्मनः ॥ सोऽभिगम्य पुरीं लंकां सुविभक्तमहापथाम् ॥ १२ ॥ संरुढकक्ष्यां बहुलां स्वमंतः पुरमाविशत् ॥ तत्र तामसिता पांगीं शोकमोहसमन्विताम् ॥ १३ ॥ निदधे रावणः सीतां मयोमायामिवासुरीम् ॥ अब्रवीच्चदशग्रीवः पिशाचीघोरदर्शनाः ॥ १४ ॥

रिक्षमें विचरण करने वाले चारणगण कहने लगे ॥ १० ॥ कि, अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता, यहाँतक इसके जीवनका शेप होगा । सिद्धगण भी ऐसाही कहने लगे । इस ओर रावण चेष्टारहित मूर्च्छित सीताजीको गोदीमें लिये ॥ ११ ॥ अपनी लंकापुरीमें आया, वह सीताजीको नहीं लाया वरन् कहींसे अपनी मृत्युको मोल ले आया । उस समय लंकानगरीमें बड़े २ चीराहे और मार्ग मुखोभित हो रहे थे ॥ १२ ॥ वहाँ पहुँचकर अपने परमसुन्दर रनपासमें रावणने मोक वीक्षण मूल तिन परमसुन्दरीको ले जाकर धैर्य किया ॥ १३ ॥ उस समय ऐसा बोले

मीनाजीको आने रत्नगममें स्थापन करके घोर दरीना पिशाचनियोंको आज्ञा देला हुआ ॥ १४ ॥ कि, तुम भली भाँतिसे इनकी रक्षा करो । कोई भी व पुरुष
 हमारी बिना आता इन सीताको नहीं देखने पावे । मुक्ता, मणि, सुवर्ण वस्त्र, भूषण ॥ १५ ॥ इत्यादि जिस २ वस्तुकी यह इच्छा करें वह समस्तही इनको दी जाय
 यह मेरी आज्ञा है व जो कोई भी तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझे इस तरह सब
 रक्षा करनेगालियोंने कहे महा प्रतापवान् रावण ॥ १७ ॥ रत्नवासे बाहर आ विचार करने लगा कि, इस समय हमको क्या करना उचित है यह सोच उसने
 दूर दूर देखा जो आगेही मांसक सानेवाले आठ राक्षस बैठे थे ॥ १८ ॥ उन राक्षसोंको देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल
 शीर्षकी प्रशंसा करने लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भाँतिके अब शत्रु धारण करके शीघ्र इस स्थानसे जहाँपर खर रहा करताथा उस जनशून्य जनस्थानको
 यथानेनोपुमान्त्रीवासितापश्यत्यसंसृतः ॥ मुक्तामणिसुवर्णानिवस्त्राण्यभरणानिच ॥ १५ ॥ यद्यदिच्छेत्तेदेवास्त्यादेयंमच्छंदतोयथा ॥ याच
 यद्यतिवैदेर्द्वीगचनर्किचिदप्रियम् ॥ १६ ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानात्रतस्याजीवितंप्रियम् ॥ तथोक्तवाराक्षसीस्तास्तुराक्षसैःप्रतापवान् ॥ १७ ॥
 निष्क्रम्यातःपुनस्तस्मात्किंकृत्यमितिचिंतयन् ॥ ददर्शोष्ममहावीर्यान्नाक्षसान्निपशिताशनान् ॥ १८ ॥ सतान्दृष्ट्वामहावीर्योवरदानेनमोहितः ॥
 तवाचतानिदंवाक्यंशस्यचलवीर्यतः ॥ १९ ॥ नानाप्रहरणाःक्षिप्रमितोगच्छतस्तत्पराः ॥ जनस्थानंहतस्थानंभूतपूर्वखरालयम् ॥ २० ॥ तत्रा
 स्यर्ताजनस्थानेनशून्येनिहतराक्षसे ॥ पौरुषंवलमाश्रित्यत्रासुस्तुज्यदूरतः ॥ २१ ॥ बहुसैन्यमहावीर्यजनस्थानेनिर्बोशितम् ॥ सद्रूपणखरयुद्धेनिह
 तंगमसायकैः ॥ २२ ॥ ततःक्रोधोममापूर्वधैर्यस्योपरिवर्तते ॥ वैरंचसुमहज्जातरांमंत्रितुसुदारुणम् ॥ २३ ॥ निर्यातयितुमिच्छामितच्चवैरमहारि
 णीः ॥ नहिलस्याम्यहंनिद्रामहत्त्वासुगुरिपुम् ॥ २४ ॥ तंत्विदानीमहंहत्वाखरद्रूपणवातिनम् ॥ रामंशर्मोपलप्स्यामिधनंलब्ध्वेवनिर्धनः ॥ २५ ॥
 जाअं ॥ २० ॥ और तुम लोग यहाँ बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसीकाभी डर न करके जनशून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥ २१ ॥ वहाँपर
 गर और रूपणके गतिन हमारी जो महावीर्यवान् बहुत सारी सेना रहतीथी, वह समस्त रामचंद्रके वाणसे खर रूपणसहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कारणसे हम
 को बड़ा क्रोध हुआहै, और हममेंही हम वडे धीर्यवानका धीरजभी लोप होगया । इस समय रामचंद्रके प्रति हमारा महावैरभाव उपस्थित हुआहै ॥ २३ ॥ सो इस
 समय परमगुण रामके प्रति यह अपना क्रोध हम प्रगट करना चाहते हैं, जबतक हम युद्धमें उस महायुक्ता वध नहीं करलेते, जबतक हमको सुखकी नींद न
 आयेगी ॥ २४ ॥ जिन प्रसर निर्धन पुरुष धन प्राप्त करके सुखी होताहै, वैसेही खर रूपणके मारनेवाले रामचंद्रजीका नाश करके हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥

तुम लोग जनस्थानमें रहकर राम किस समय क्या करते हैं, सदाही इस विषयकी यथा तथा खोज सवर लेते रहो ॥ २६ ॥ तुम सब लोग बड़ी सावधानीमें वहांपर चले जाओ, और सदा उस रामचन्द्रको मार डालनेके लिये यत्न करते रहना ॥ २७ ॥ हमने पहले संग्राममें अनेकवार तुम लोगोंके बलको जान लिया है, वस इसी कारण से हमने तुम लोगोंको जनस्थानमें बिठाया ॥ २८ ॥ वह आठ राक्षस इन अर्थ युक्त भीठे वचनोंको सुन और रावणको प्रणाम कर लंका छोड़ करके जनस्थानकी ओर गुप्तभावसे सबके सब चले ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे रावण श्रीजानकीजीको परमहर्षित विचित्रसे ग्रहण करके और उनको अपने रत्नवासमें ठिका, रामचन्द्रजीसे महाशत्रुता करके मोहयुक्तहो परमानंदित हुआ ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुष्पंचाराः सर्गः ॥ ५४ ॥

जनस्थानेवसद्विस्तुभद्रादीराममाश्रिता ॥ प्रवृत्तिरुपनेतव्याकिरोतीतितत्त्वतः ॥ २६ ॥ अप्रमादाच्चगंतव्यं सर्वैर्वनिशाचरैः ॥ कर्तव्यश्चसदा यत्नोराघवस्यवधंप्रति ॥ २७ ॥ युष्माकंतुवल्लंघनांतं बहुशोरणमूर्धनि ॥ अतश्चास्मिन्ननस्थाने मया यूयं निवेशिताः ॥ २८ ॥ ततः प्रियं वाक्यमुपेत्य राक्षसामहार्थमग्रावभिवाद्य रावणम् ॥ विहाय लंकां संहिताः प्रतस्थिरेत्येतो जनस्थानमलक्ष्य दर्शनाः ॥ २९ ॥ ततस्तु सीतामुपलभ्य रावणः सुसंग्रहपटुः परिगृह्य मैथिलीम् ॥ प्रसज्य रामेण च वैरमुत्तमं बभूव मोहान्मुदितः सरावणः ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये २० स्कंधोऽष्टमः सर्गः ॥ ५४ ॥ संदिश्य राक्षसान्धो रात्रावणोऽष्टौ महाबलान् ॥ आत्मानं बुद्धिर्वेच्छव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥ संचितयानो विंदे ह्येकामचाणेः प्रपीडितः ॥ प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥ सप्रविश्य तु तद्देशं रावणो राक्षसाधिपः ॥ अपश्य द्राक्षसीमध्यं सीतां दुःखपरायणाम् ॥ ३ ॥ अश्रुपूर्णमुखीं दीनां शोकभारावपीडिताम् ॥ वायुवैरीषां क्रांतां मज्जतीं नावमर्णवे ॥ ४ ॥ मृगयूथपरिभ्रष्टां मृगौंधिभिरिवावृताम् ॥ अयोधे गतमुखीं सीतां तामभ्येत्य निशाचरः ॥ ५ ॥

कार्य करनेको शेष नहीं रहा ॥ १ ॥ अनन्तर वह बराबर जानकीजीका स्मरण करतेहुए कामबाणसे पीडित होकर उन जानकीजीको देखनेके लिये शीघ्रतासे अपने रमणीय गृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ २ ॥ राक्षसपति रावणने उस घरमें प्रवेश करके दुःखपरायण सीताजीको राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई देखा ॥ ३ ॥ सीताजी शोकके भारसे महापीडा पाय अतिशय दीनभावकी प्राप्तहो नेत्रोंसे आंसू बहाती हुई बैठी थीं, उस समय ऐसा बोध होताथा मानो नैका पायुके वेगसे कांपकर जलमें डूबी हुई है ॥ ४ ॥ अथवा जैसे मृगी यूयने विखुडकर कुनोसे बिचीहो सीताजी शोकके वश पडनेसे विकस और व्याकुलहो विरह दुःखसे घेरी थीं ॥ ५ ॥

अनेकप्रकार अथ अगरी और धरहरोंसे परिपूर्ण है, सहस्रों श्रियां इसमें हैं व अनेक प्रकारके पक्षी और विविध भौतिके रत्न भी इस गृहमें हैं ॥ ७ ॥ उसके सब थंभ हाथीदांतके वनेये, सुवर्ण, रफटिक, रजत, और वैदूर्य निर्मित परमचिन्तित और देखनेमें मनके हरण करने वालेये ॥ ८ ॥ वहांपर समस्त बंदनवारें तथायेहुए सुवर्णकी बनी हुईयाँ, हाथीदांत और चांदी निर्मित होनेके कारण अतिसुन्दर हजारों जालियें वहां लगी हुईयाँ जिनको देखतेही मन हर जाय और भी बहुतसे घर वहां बनेये जिनमें सुवर्णके

तांतुशोकचशदीनामवशांराक्षसाधिपः ॥ सवलादर्शयामासगृहदेवगृहोपमम् ॥ ६ ॥ हर्म्यप्रासादसंवायंस्त्रीसहस्रनिपेवितम् ॥ नानापक्षिगणेशुगुं नानारत्नसमन्वितम् ॥ ७ ॥ दांतकैस्तापनीयेश्चस्फाटिकैराजतेस्तथा ॥ वज्रवैदूर्यचित्रैश्चस्तेभेदंष्टिमनोरमेः ॥ ८ ॥ दिव्यदुंदुभिनिर्वापंतत्तकांचन भूषणम् ॥ सोपानकांचनचित्रमारुहतासह ॥ ९ ॥ दांतकाराजताश्चैवगवाक्षाःप्रियदर्शनाः ॥ हेमजालवृताश्वासस्तत्रप्रासादपंक्तयः ॥ १० ॥ सुधामणिचित्राणिभूमिभागानिसर्वशः ॥ दशग्रीवःस्वभवेनप्रादर्शयतमेथिलीम् ॥ ११ ॥ दीर्घिकाःपुष्करिण्यश्चनानापुष्पसमावृताः ॥ रावणोऽर्शयामाससीतांशोकपरायणाम् ॥ १२ ॥ दर्शयित्वातुवेदेहोऽकृत्घंतद्रवनोत्तमम् ॥ उवाचवाक्यंयापात्मासीतालोभितुमिच्छया ॥ १३ ॥ दशरक्षसकोट्यश्चद्राविंशतिरथापराः ॥ वर्जयित्वाजनान्बृहान्वालांश्चरजनीचरान् ॥ १४ ॥ तेषांप्रभुरहंसीतैस्वंपांभीमकर्मणाम् ॥ सहस्रमेकमेकस्य ममकार्यपुरःसरम् ॥ १५ ॥ यदिदंराज्यतंत्रमेत्वयिसर्वप्रतिष्ठितम् ॥ जीवितंचविशालाक्षित्वंमैराज्येऽपि ॥ १६ ॥

जंगले लगेये ॥ १० ॥ सब भूमिभाग सुधाघवलित और मणिसमूह चित्रित रहनेके कारण विचित्र शोभा देरहाथा, इस प्रकारका भवन रावणने सीताजीको दिखाया ॥ ११ ॥ उस मंदिरमें जगह २ बावली और छोटी २ तल्लेयीं भी बनीथीं, जिनमें अनेक प्रकारके पुष्प खिल रहेथे, दशग्रीव रावणने जानकीजीको यह सब कुछ दिखाया ॥ १२ ॥ इस प्रकारसे पापात्मा रावण जानकीजीको लुभानेकी इच्छासे अपना यह समस्त दिव्य गृह दिखाकर कहने लगा ॥ १३ ॥ कि, हे जानकी ! यहां बनीस करोड़ राक्षस बालक और बूढ़ोंको छोडकर हमारे अधीनहैं ॥ १४ ॥ उन सब भयंकर कर्म करने वाले राक्षसोंके हम स्वामी हैं । और हमारे इकट्ठेही एक सहस्र दासहैं ॥ १५ ॥ अब हमारा यह समस्त राज्य तुम्हारेही वशमें है हे विशालाक्षि ! हमारा जीवन भी तुम्हारे अधीन है, अधिक

क्या कहें तुम हमारे शान्तिसे भी प्यारी हो ॥ १६ ॥ हे मैथिली ! हमारे रनवासमें जो सब उत्तम स्त्रियाँ हैं, सो तुम हमारी भार्या होकर उन सबके ऊपर पटरानी बनो ॥ १७ ॥ हे जानकी ! हमने जो कुछ कहा; वह तुम्हारे लिये विशेष हितकारी है, तुम इस बातमें राजी हो जाओ, दूसरी भाँतिका अभिप्राय करके क्या करोगी, तुम्हारे कारण हम बहुत ही संतापित हुए हैं सो तुम प्रसन्न होकर हमको भजो ॥ १८ ॥ चारों ओर सौंयोजन समुद्रसे घिरी हुई शतयोजनके विस्तार वाली इस लंकापुरीको इन्द्रके सहित समस्त देव दानव भी किसी प्रकारका भय नहीं करा सकें ॥ १९ ॥ क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या यक्ष, क्या ऋषि इन लोगोंमें हम किसीको भी ऐसा नहीं देखते जो धीरतामें हमारी समान हो ॥ २० ॥ तो फिर भला, दीन तपस्वी राज्यभट्ट, पादचारी, अल्पप्राण मनुष्य रामको लेकर तुम क्या करोगी ? ॥ २१ ॥ इस कारणसे हे सीते ! हमही तुम्हारे योग्य पति हैं; तुम हमारा ही भजन करो. हे भीरु ! यौवन सदा नहीं रहता इससे

यहीनामुत्तमस्त्रीणांममयोऽसौपरिग्रहः ॥ तासां त्वमीश्वरीसीतेममभार्याभवप्रिये ॥ १७ ॥ साधुकिंतेऽन्यथा बुद्धचारोचयस्वचोमम ॥ भजस्वमा भित्तस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ परिक्षिप्ता समुद्रेण लंकैर्यशतयोजना ॥ नेयं यथं धितुं शक्या सैर्द्रपिसुरासुरैः ॥ १९ ॥ न देवेषु न यक्षे पुनर्गन्धर्वे पुनर्पितृ ॥ अहंपश्यामिलोकेषु यो मे वीर्यसमो भवेत् ॥ २० ॥ राज्यभट्टेन दीनेन तापसेन पदातिना ॥ किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्पतेजसा ॥ २१ ॥ भजस्व सीते मामेव भर्ता हंसदृशस्तव ॥ यौवनं त्वध्रुवं भीरुमस्वेह मया सह ॥ २२ ॥ दर्शने मा कृथा बुद्धिं राचवस्य वरानने ॥ कास्य शक्तिरिहा गंतुमपि सीते मनोरथैः ॥ २३ ॥ न शक्यो वायुराकाशे यो शैर्विडुमहाजवः ॥ दीप्यमानस्य वाप्यग्नेर्ग्रहीतुं विमलाः शिखाः ॥ २४ ॥ त्रयाणामपि लोकानां न तं पश्यामि शोभने ॥ विक्रमेण न येद्यस्त्वांमद्राहुः परिपालिताम् ॥ २५ ॥ लंकायाः सुमहद्वाज्यमिदं त्वमनुपालय ॥ त्वत्प्रेष्यामि द्विधा त्वेव देवाश्चापि चारमम् ॥ २६ ॥

हमारे साथ इस लंका नगरीमें विहार करो ॥ २२ ॥ हे वरानने ! अब तुम रामचन्द्रके देखनेकी आशा छोड़ो ! उनमें क्या शक्ति है जो वह मनोरथसे भी यहाँ पर आसकें ? ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कोई महाप्रचंड पवन आकाशमें चलते द्रुये बांधा चाहै, परन्तु नहीं बांध सकता, या प्रदीप अग्नि की शिखाको कोई हाथसे पकड़ना चाहै तो नहीं पकड़ सकता, ऐसे ही राम भी यहाँ नहीं आ सकता ॥ २४ ॥ हे शोभने ! समस्त भुवनोंमें हम ऐसा किसीको नहीं देखते कि, जो पराक्रम प्रकाश करके हमारी भुजाओंमें रक्षित तुमको ले जा सके ॥ २५ ॥ अतएव तुम इस विशाल लंकाके राज्यका पालन करो, हमारी समान सब पुरुष तुम्हारे आज्ञाकारी दास हो जायेंगे । और हमको भी यदि मेवक समझकर ग्रहण करो तो हम भी तुम्हारी आज्ञा के अधीन हो जायेंगे । सब देवतागण भरत स्वभाव जंगमदि समस्त जगत् तुम्हारा ही

नाम हो जायगा ॥ २६ ॥ अयं तुम अभिषेकके जलसे धीतदेहा होकर सन्तुष्ट चिन्तते हमको तृप्तकरो जो कुछ पापय वह सब धनधाम कर
नेमें क्षयको मान दोगये ॥ २७ ॥ अयं तुम लंकामें रहकर अपने पहले कियेहुए पुण्योंके फलको प्राप्तहो । हे मैथिलि ! यहाँपर जो दिव्य मालायें दिव्य गन्ध ॥ २८ ॥
और दिग्भूतग रुक्ने हैं तुम उन नयनों हमारे माथ भोगकरो । हे सुमध्यमे ! भाई कुबेरका पुण्यक नाम ॥ २९ ॥ विमान सूर्यके समान प्रकाशमान हमारे यहाँ है
दुन्दरेके माथ वंशपात्र करके हमको हम जीन लाये हैं, वह अतिविराल रमणीय है उसका वेग मनके वेगकी समान है ॥ ३० ॥ सो हे सीते ! उस विमानपर चढ़कर
तुम हमारे माथ विहार मुग्धमदित करो । हे वरानने ! पद्मकी समान परम सुन्दर और सुविमल कान्ति सम्पन्न तुम्हारा मुस्त ॥ ३१ ॥ शोकके भारे मलीन होनेसे

अभिषेकजलक्षिन्नानुष्टाचरमयस्वच ॥ दुष्कृतं यत्पुरा कर्म धनवासेन तद्गतम् ॥ २७ ॥ यच्च ते सुकृतं कर्म तत्स्येह फलमाप्नुहि ॥ इह सर्वपाणिमालया
निःश्लिङ्गं गन्धानि मे धिखी ॥ २८ ॥ भूषणानि च मुख्यानि तानि सेवमया सह ॥ पुष्पकं नाम सुश्रोणिभ्रातुर्वैश्रवणस्य मे ॥ २९ ॥ विमानं सूर्यसंका
शं नग्मानि जितंगणे ॥ विशालं रमणीयं च तद्रिमानं मनोजवम् ॥ ३० ॥ तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथा सुखम् ॥ वदनं पद्मसंकाशं विमलं चारुदर्शन
म् ॥ ३१ ॥ शोकार्तं तु वरारोहेन भ्राजति वरानने ॥ पञ्चदशतस्मिन् सवस्त्रातेन वरांगना ॥ ३२ ॥ पिपायेंदुनिर्ममं सीतामंदमयूष्यवर्तयत् ॥ ध्यायं
नो नाभिसास्वस्थमितीक्ष्णं चित्ताहतप्रभाम् ॥ ३३ ॥ उवाच च चन्दीरोगवणोरजनीचरः ॥ अलं ब्रीडेन वै देहि धर्मलोपकृतेन ते ॥ ३४ ॥ आपोऽयं देवि
निष्पंदो यस्त्वाभिमभिषिष्यति ॥ एतौ पादौ मया मिश्रघोशिनोभिः परिपीडितौ ॥ ३५ ॥ प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वशयोदासोऽहमस्मि ते ॥ इमाः शून्यमया
यावः शून्यमाणेन भापिताः ॥ ३६ ॥

अब गांभिन नहीं होना, इस कारण तुम शोक न करो, जब रावणने इस प्रकारसे कहा तब पतिव्रताशिरोमणि सीताजी वस्त्रकी आड़में ॥ ३२ ॥ अपना चन्द्र
ममान पदनपटल दकर गते लगीं, बिनामे उनका देह पीला पड़गया, वह बहुत ही अस्वस्थकी समान ध्यानमें पप्र होगई ॥ ३३ ॥ इसको देखकर वीर्यवान निशा
पर राग्य उनमें घोला कि, हे ईश्वरी ! प्रमटोप होजानेकी शंकामें लज्जित मतहोवो ॥ ३४ ॥ देखो तुम्हारे प्रति हम ऋषिगणोंकी ही उपदेश कियेहुए विधिकमसे प्रणय
पन्नन बांधनसे वैराग हुए हैं ऋषियोंने राजनविवाह बलत्कार ग्रहणमें लिखा है यह लो हम अपने दशों शिरोंसे तुम्हारे मनोहर चरणोंको दयाते हैं ॥ ३५ ॥
हमारे ननि यमत्रया मगद करनेमें और विलंब मतकरो, हम तुम्हारे वरगवर्णों दास हो जायेंगे, हमने कामके बराहोकर यह जो बातों कही देखो इसका कोई अंश निरर्थक

नहीं जाय ॥ ३६ ॥ रावणने कभी इसप्रकारसे किसी स्त्रीके चरणोंमें प्रणाम नहीं कियाथा न शिरधराथा ! दशाननमृत्युके वराहोकर जनकनंदिनी मैथिलीजीसे इस प्रकार कहकर मनमें समझा कि, यह हमारीही होगई ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आर० भाषाटीकायां पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ शोकते तपीहुई जानकीजी यह वचन सुन कुछ भय न करके मनहीमन रावणको तृणसमान समझती हुई उत्तर देती हुई कि ॥ १ ॥ राजा दशरथ साक्षात् धर्मके र्वत सदृश अभेद्यसेतु और सत्य प्रतिज्ञासे सर्व संसारमें विख्यात थे, श्रीरामचन्द्रजी उनकेही पुत्र हैं ॥ २ ॥ यह भी धर्मात्माके नामसे तोनों भुवनमें विख्यात हैं, वही दीर्घबाहु विशाललोचन श्रीरामचन्द्रजी हमारे स्वामी और साक्षात् देवता हैं ॥ ३ ॥ उनके कंधे सिंहके समान हैं, वह महाद्युतिमान् और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न

नचापिरावणःकांचिन्मृश्रद्विप्रिणमेतह ॥ एवमुक्त्वादशग्रीवोमैथिलीजनकात्मजाम् ॥ कृतांतवशमापन्नोममेयमितिमन्यते ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० अर० पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ सातथोक्तातुवैदेहीनिर्भयाशोककर्शिता ॥ तृणमंतरतःकृत्वारावणंप्रत्यभापत ॥ १ ॥ राजा दशरथोनामधर्मसेतुरिवाचलः ॥ सत्यसंधःपरिज्ञातोयस्यपुत्रःसराधवः ॥ २ ॥ रामोनामसयर्मात्मात्रिपुलोकेषुविश्रुतः ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षो देवतंसपतिर्मम ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातःसिंहस्कंधोमहाद्युतिः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रायास्तेप्राणान्वधिष्यति ॥ ४ ॥ प्रत्यक्षयद्यहंतस्यत्वया वैधर्पिताचलात् ॥ शयितात्वंहतःसंख्येजनस्थानेयथाखरः ॥ ५ ॥ यष्टेराक्षसाःप्रोक्ताघोररूपामहाबलाः ॥ राघवेनिर्विपाःसर्वसुपर्णेपन्नगाय था ॥ ६ ॥ तस्यज्याविप्रमुक्तास्तेशराःकांचनभूषणाः ॥ शरीरंविधिमिष्यतिगंगाकूलमिवोर्मयः ॥ ७ ॥ असुरैर्वासुरैर्वीत्स्वयद्यवध्योसिरावण ॥ उत्पाद्यमुमहद्वैरजीवंस्तस्यनमोद्व्यसे ॥ ८ ॥ सतेजीवतशेषस्यराघवांतकरोतबली ॥ पशोर्यूपगतस्येवजीवितंतवदुर्लभम् ॥ ९ ॥

हुये हैं वे भाता लक्ष्मणके सहित हो अवश्यही तेरे प्राणोंका वध करने यहां आवेंगे ॥ ४ ॥ यदि हम उनके सन्मुख बलपूर्वक इस प्रकारसे खेंची जाती तब तो युद्धमें सरकी समान निहत् होकर तुमकोभी रणभूमिसे शयन करना पड़ता ॥ ५ ॥ तुमने जिन सब घोरतर महाबलवान् राक्षसोंकी चार्नो कही सो गरुडके निकट सर्वसमूह की समान रामचन्द्रजीके निकट यह सब राक्षस हीनबल विहीनतेज हो जायेंगे ॥ ६ ॥ तरंग जिन प्रकार गंगाजीके किनारेको तोड़ती है वैसेही श्रीरामचन्द्रजी अपने धनुषमें छूटेहुए उन स्वर्णभूषित चाणोंके समूहमें राक्षसोंके शरीरका भेदन करेंगे ॥ ७ ॥ हे रावण ! यद्यपि तू देव दानवोंसे अपवध्य है, परंतु रागचन्द्रके साथ यह पदा भारी नैर करके किसी प्रकार तेरे प्राण न बचेगे ॥ ८ ॥ यह घटलवान् श्रीराघवचंद्रजीकी मुद्रादे बनेहुए जीकाका समस्त गुण कर देंगे । इससे यत्नकरनागे ५९

दू. पृथुही ममान अब तुम्हाग जीना दुर्लभ है ॥ ९ ॥ यदि श्रीरामचन्द्रजी कोप भरे नेत्रोंसे एक बारही तुझको देखें तो हे राक्षस ! तू तत्क्षणही भस्म हो जायगा जिस प्रकार महादेवजीकी नेत्राग्निसे कामदेव भस्म हो गया था ॥ १० ॥ जो चन्द्रमाकोभी आकाशसे पृथ्वीपर गिरा सकते या नाश करसकतेहैं वह सीताको भी भरणही यहाँ आकर इस स्थानसे छुड़ावेगे ॥ ११ ॥ तेरी उमर चीतचुकी, श्री जाती रही, वीर्य समाप्त होगया, इन्द्रियांभी अपने २ कार्यसे शिथिल होगई, इससे निश्चिन्ता होताहै कि, तुम्हारे लिये तंका नगरी निश्चयही विधवा हो जायगी ॥ १२ ॥ तुमने जो पापकार्यकिया है इसका परिणाम कभी सुखकर नहीं होगा, क्योंकि तुने विना विचार भावके विना चलात्कारकर पतिकी भेसासे हमको अलग किया है ॥ १३ ॥ हमारे वह महाद्युतिमान् स्वामी अपने भाता लक्ष्मणके महान् सेंटल अपने वीर्यका आश्रय लेकर निडरहो निर्जन वनमें घास करते हैं ॥ १४ ॥ वह संयामस्थलमें चारोंकी वर्षा करके तेरी देहसे बल, वीर्य, धर्म, व यदियभूतमगमस्त्वांगपदतिनचक्षुषा ॥ रक्षस्वमद्यनिर्दग्धोयथाहृणमन्मथः ॥ १० ॥ यश्चंद्रनभसोभूमौपातयेन्नाशयेत्तवा ॥ सागरंशोपयेद्रा पिसर्मीनामोचयद्दिह ॥ ११ ॥ गतासुस्त्वंगतश्रीरोगतसत्त्वोगतेंद्रियः ॥ लंकावैद्यसंयुक्तात्त्वक्तुतेनभविष्यति ॥ १२ ॥ नतेपापमिदंकरं मुनेदंकरंभविष्यति ॥ याहंनीताविनाभायंपतिपाथोत्तयावलात् ॥ १३ ॥ सहिदेवसंयुक्तोममभर्तामहाद्युतिः ॥ निर्भयोवीर्यमाश्रित्यशून्ये यमनिदंडके ॥ १४ ॥ सतंवीर्यंलंदर्पमुत्सेकंचयथाविधम् ॥ व्यपनेप्यतिगात्रेभ्यःशस्त्रपेणसंयुगे ॥ १५ ॥ यदाविनाशोभूतानांदृश्यतेकालोदितः ॥ तदाकार्यप्रमाणंतिनगःकालवशंगताः ॥ १६ ॥ मांप्रधृष्यसत्तेकालःप्राप्तोऽयंराक्षसायम ॥ आत्मनोराक्षसानांचवयायातःपुरस्य च ॥ १७ ॥ नशक्यायजमध्यस्थांवदिःसुभार्डमंडिता ॥ द्विजातिमंत्रसंपूताचंडालेनावमर्दितुम् ॥ १८ ॥ तथाहंयर्मनित्यस्ययर्मपत्नीहृदव्रता ॥ तयास्त्रपुंशययाहंगधमाधमपापिना ॥ १९ ॥ कीडंतिगजहंमेनपद्मखंडेपुनित्यशः ॥ हंसीसातृणमध्यस्थंकथंद्रश्येतमद्भुक् ॥ २० ॥ मय अहंकार अलग कर दोगे ॥ १५ ॥ कालके वग होकर जब कि, प्राणियोंका नाश निकट आजाताहै, तब वह कालके वग होकर कार्य अकार्यका विचार करनेमें आनर्गल हो जाते हैं ॥ १६ ॥ रे राक्षसायम ! जब कि, तेने हमारा अपमान किया है, तब स्वयं तेरा, समस्त राक्षसोंका और सर्व रत्नवासोंके नाश होनेका काण्ड आ पड़ेना है ॥ १७ ॥ जिस प्रकार बालगो करके मंत्रसे पड़ी हुई यज्ञकी सामग्रीसे विभूषित यज्ञवेदी चंडालके छूने योग्य नहीं होती वैसेही हम भी तेरे मर्ग करनेके योग्य नहीं हैं ॥ १८ ॥ रे राक्षसायम ! रे पापात्मा ! हम नित्य धर्मपरायण श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी हैं, मन वचन कायसे स्वामी कीके प्रति श्रद्धा है, इस कारण हम किसी प्रकारसे भी तेरे दूनेके योग्य नहीं हैं ॥ १९ ॥ जो हमिनी कमलपुष्पोंके मध्यमें राजहंसके साथ नित्य क्रीडा करती हैं वह किस

प्रकारसे तृणोंके बीच घोंटेदुण मुद्रर (जलकाकविशेष) के प्रति दृष्टि डालेंगी ॥ २० ॥ रे राक्षस ! यह देह स्वभावसेही संज्ञाहीन है इसको बांध, या इसपर आधात दे, जो तेरी इच्छा हो सो कर हम किसी प्रकारसे इस शरीरकी रक्षा नहीं करेंगी हमें प्राणोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २१ ॥ और अधिक तू जो हमारे शरीरको स्पर्श करे तो हम अपने जीतेजी यह कलंक पृथ्वीपर विस्तार नहीं कर सकेंगी ! वेदेहीजी इस प्रकारसे कठोर वचन कह ॥ २२ ॥ फिर रावणने और कुछ न बोलीं. तब रावण सीताजीके कठोर और रोमहर्षण वचन सुनकर ॥ २३ ॥ सीताजीको डर पानेके लिये कहने लगा कि, हे मैथिली ! मेरे वचन सुनो मैं चारह महीनतक कुछ न कहूंगा ॥ २४ ॥ हे चारुहासिनी ! इस समयके मध्यमें यदि तुम हमको न प्राप्त होगी तो रसोई करनेवाले हमारे प्रातः कलेवके लिये तुमको इदंशरीरनिःसंज्ञंधवाचातयस्ववा ॥ नेदंशरीरंश्चमंजीवितंवापिराक्षस ॥ २१ ॥ नतुशक्यमपक्रोशंघृथिव्यांदातुमात्मनः ॥ एवमुक्त्वातुत्रेदेही

क्रोधात्सुपरुषंवचः ॥ २२ ॥ रावणंजानकीतत्रयुननौवाचकिंचन ॥ सीतायावचनंश्रुत्वापरुपर्रोमहर्षणम् ॥ २३ ॥ प्रत्युवाचततःसीतांभयसं दर्शनंवचः ॥ शृणुमैथिलिमद्वाक्यंमासान्द्वादशभामिनि ॥ २४ ॥ कालेनानेननाभ्येपियदिमांचारुहासिनि ॥ ततस्त्वांप्रातराशायसूदाभ्येत्स्यं तिलेशशः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणःशब्दरावणः ॥ राक्षसीथततःकुद्वद्वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ शीघ्रमेवहिराक्षस्योविरूपाघोरदर्श नाः ॥ दर्पमस्यापनेष्यंतुमांसशोणितभोजनाः ॥ २७ ॥ वचनादेवतास्तस्यसुघोराघोरदर्शनाः ॥ कृतप्रांजलयोभूत्वामैथिलींपर्यवारयन् ॥ २८ ॥ सताःप्रोवाचराजासौरावणोघोरदर्शनाः ॥ प्रचल्यचरणोत्कर्षैर्दारयन्निवमेदिनीम् ॥ २९ ॥ अशोकवनिकामध्यमैथिलीनीयतामिति ॥ तत्रेयं क्ष्यतांगुण्डंयुष्माभिःपरिवारिता ॥ ३० ॥ तत्रैनांतर्जनैर्वारिःपुनःसांत्वैश्वमेथिलीम् ॥ आनयध्वंशंसर्वान्यांगवधूमिव ॥ ३१ ॥

रुकड़े २ कर काट डालेंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको खानेवाला रावण इस प्रकारसे कठोर वचन कहकर फिर क्रोधितहो राक्षसियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ २६ ॥ हे विकटरूप, घोरदर्शन, रक्तमांसभोजी राक्षसीगण ! तुम सब शीघ्रही जानकीका समस्त गर्व तोड़ डालो ॥ २७ ॥ वह घोरदर्शन निशाचरीगण यह सुन तत्क्ष णही हाय जोड़ जो आज्ञा कहकर रावणके कहनेके अनुसार सीताजीको घेर लेती हुई ॥ २८ ॥ यह देखकर रावण मानों पृथ्वीको कंपित और विदीर्ण करता हुआ कई एक पग चलकर, उन घोर दर्शनवाली राक्षसियोंको विशेष रूपसे फिर आज्ञा करता हुआ ॥ २९ ॥ तुम जानकीको अशोक वनमें लेकर चली जाओ और सब मिलकर सदा इनको घेरे रहकर गुटभावेसे इनकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वनकी हथिनीको जिसप्रकार परगमें किया जानाहै, तुम गम्भीर उत्पीडनहसे घोर गर्जन करके अधस्ता समझा

पुमाकर इनको हमारे चरणों छाओ ॥ ३३ ॥ जब राक्षसेन्द्र रावणने इस भांति आज्ञा की, तब राक्षसियों सीताजीको घेरकर अशोकवनमें ले गईं ॥ ३२ ॥ अनेक जातिके मनवांछित पुत्र फल मयन्न वृक्षसमूह और सब काल मतवाटेही विविध भांतिके विहंगम इस अशोक वनकी शोभाको बढ़ातेये ॥ ३३ ॥ शोकके वरामें पड़ीहुई जन कदुहारी मैथिलीजी अशोक वनके मध्य राक्षसियोंके चरणों पड़कर रहीं, जिस प्रकार व्याघ्रियोंमें हरिणी रहती है ॥ ३४ ॥ अशोक वनमें फांसीसे बंधी डरपोक मुगीके ममान अतिगम गोरूम मैनाजी रहीं, वह वहाँपर किसी भांतिका सुख न प्राप्तकर सकीं ॥ ३५ ॥ विरूप नेत्रवाली राक्षसियों करके छुडकी डरपाई व धमकाई जाकर दरमनिय स्वामी और देवरको सदा स्मरण करके और शोकसे सवानेके कारण चेतनारहित होकर जानकीजीने वहाँ किसी प्रकार शान्ति नहीं पाई ॥ ३६ ॥
 इतिप्रतिममादिष्टाराक्षस्योरावणेनताः ॥ अशोकवनिकांजमुमैथिलींपरिगृह्यतु ॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृतम् ॥ सर्वकालमद्वेष्ट्वा पिद्भिर्जःसमुपसेयिताम् ॥ ३३ ॥ सातुशोकपरीतांगीमैथिलीजनकात्मजा ॥ राक्षसीवशमापन्नाव्याघ्रीणाहरीणीयथा ॥ ३४ ॥ शोकेनमहतात्रस्तामैथिलीजनकात्मजा ॥ नशर्मलभतेभीरुःप्राशवद्भामुगीयथा ॥ ३५ ॥ नविंदेततत्रतुशर्ममैथिलीविरूपनेत्राभिरतीव्रतजिता ॥ पतिस्मरंतीदयितंच देवसंनिनेतनाधृद्रशोकर्षीडिता ॥ ३६ ॥ इत्यापे श्रीम० या० आ० अरण्यकांडे पट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥ प्रवेशितायांसीतायांलंकप्रतिपिता मङ्गः ॥ तद्वाप्रोवाचद्वेदंप्रतिपुंशतक्रतुम् ॥ १ ॥ त्रेलोक्यस्यहितार्थायक्षसामहितायच ॥ लंकप्रवेशितासीतारावणेनदुरात्मना ॥ २ ॥ पतिव्रतामहाभागानित्यंचैवसुखेयिता ॥ अपश्यंतीचभर्तारंपश्यंतीराक्षसीजनम् ॥ ३ ॥ राक्षसीभिःपरिवृताभर्तृदर्शनलालसा ॥ निविष्टाहिपुरीलं कानीनंदनदीपतेः ॥ ४ ॥ कथंज्ञास्यत्तितांगमस्तत्रस्थातामर्निदिताम् ॥ दुखसंचितयंतीसावदुःशःपरिदुर्लभा ॥ ५ ॥ प्राणयानामकुर्वाणाप्राणास्तिरयत्यमंशयम् ॥ सभूयःसंशयोजातःसीतायाःप्राणसंक्षये ॥ ६ ॥

इत्यापे श्रीघटा० चाल्मी० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां पदुंचायाः सर्गः ॥ ५६ ॥ जिस समय जानकीजीको लंकामें रावण ले गया उस समय ब्रह्माजीने देवताओंके राजा इन्द्रके हम प्रभारके बचन कहे ॥ १ ॥ थियोकीके हित करनेके निमित्त और राक्षसोंके नाशके निमित्त दुरात्मा रावण जानकीजीको लंकामें ले गया है ॥ २ ॥ यहाँ महाभागवान्त्री पतिप्रलभपुनः जो सदा सुराहीमे इतनी बड़ी हुई हैं अपने स्वामीको न देखकर और राक्षसोंको देखकर ॥ ३ ॥ राक्षसियोंसे चिरी हुई पति का पदमाली जानकी गुरुके बीचमें जो लंकापुगि है उसमें स्थित है ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजी किस प्रकार जानेंगे कि, वहां निन्दारहित जानकीजी हैं वडे कष्ट और दुःखमे रामचन्द्रको स्मरण करती हुई जानकी ॥ ५ ॥ भोजनादिके न करनेसे निश्चय प्राणोंको त्यागन करदेंगो, सो जानकीजीके प्राणरक्षा करनेमें हमको बडा

सन्देह है ॥ ६ ॥ सो तुम शीघ्र यहाँसे जाकर सुन्दर मुखवाली जानकीका दर्शन कर लंकापुरीमें प्रवेशकर यह हवि ले जाकर जानकीजीको देदो ॥ ७ ॥ जब यह वचन ब्रह्माजीने कहा तब रावणकी लंकापुरीमें इन्द्रजी आये और निद्राको अपने साथ लेते आये ॥ ८ ॥ तब इन्द्रने निद्रादेवीसे कहा कि, तू जाकर राक्षसोंको मोहित कर. निद्रादेवी इन्द्रके यह वचन सुनकर परम प्रसन्न हुई ॥ ९ ॥ देवताओंके कार्य सिद्धिके निमित्त राक्षसोंको मोहित करती हुई. इसी अवसरमें इन्द्राणीके पति इन्द्रजी ॥ १० ॥ उस स्थानमें प्राप्त हो वनमें स्थित हुई जानकीसे बोले कि हे भद्र ! मैं देवताओंका राजा इन्द्रहूँ, हे सुन्दर हास्ययुक्त जानकी ! ॥ ११ ॥ मैं तुम्हारे और रामचंद्रके कार्य सिद्ध करनेके निमित्त सहाय करनेको आयाहूँ, हे जनककुमारी ! तुम शीघ्र मत करो ॥ १२ ॥ मेरी रूपासे सेनासहित रामचन्द्रजी सागर

सत्वंशीत्रमितोगत्वासीतां पश्य शुभाननाम् ॥ प्रविश्य नगरीलंकां प्रयच्छ हविरुत्तमम् ॥ ७ ॥ एवमुक्तो यदेव द्रुः पुरं रावणपालिताम् ॥ आगच्छ त्रिद्वयासाद्धं भगवान्पाकशसनः ॥ ८ ॥ निद्रां चोवाच गच्छ त्वं राक्षसान्संप्रमोहय ॥ सातथोक्ता मववता देवी परमहर्षिता ॥ ९ ॥ देवकार्यार्थं सिद्धयर्थं प्रमोहय तराक्षसान् ॥ एतस्मिन्नेतरे देवः सहस्राक्षः शचीपतिः ॥ १० ॥ आसदावनस्थां तां वचनं चेदमब्रवीत् ॥ देवराजोऽस्मि भद्रते इह चास्मि शुचि स्मि ते ॥ ११ ॥ अहं त्वां कार्यसिद्धयर्थं राक्षस्य महात्मनः ॥ साहाय्यं कल्पयिष्यामि माशुचोजनकात्मजे ॥ १२ ॥ मत्प्रसादात्समुद्रं सतरूप्यं तिवलैः सह ॥ मयैवेह च राक्षस्यो मायया मोहिताः शुभे ॥ १३ ॥ तस्मादन्नमिदं सीते हविष्यान्नमहं स्वयम् ॥ सत्वांसंगृह्य वेदेहि आगतः सह निद्रया ॥ १४ ॥ एतदस्य सिमद्धस्तात्र त्वां वाधिय्यते शुभे ॥ धुधातुपाचरं भौरुपर्पाणामयुतैरपि ॥ १५ ॥ एवमुक्ता तु देवद्रुमुवाच परिशंकितः ॥ कथं जानामि देवेंद्रं चाभिहस्यं शचीपतिम् ॥ १६ ॥ देवलिंगानि दृष्टानि रामलक्ष्मणसन्निधौ ॥ तानि दर्शय देवद्रुयदित्त्वं देवराट्स्वयम् ॥ १७ ॥ सीता यावचनं श्रुत्वा तथाचक्रे शचीपतिः ॥ पृथिवीनां स्पृशत्पद्भ्यामनिमेषेक्षानि च ॥ १८ ॥

तर जाँयेंगे. हे कल्याणी ! मेरीही मायाने इन राक्षसियोंको मोहित किया है ॥ १३ ॥ इसी कारण हे जानकी ! मैं यह हवि अन्न तुम्हें देनेको निद्राके साथ आयाहूँ सो हे जानकी ! तुम इसे लो ॥ १४ ॥ हे जानकी ! मेरे हाथसे ये हवि भक्षण करनेसे तुमको शुभा और वृषा दशा हजार वर्षतक भी न व्यापैगी ॥ १५ ॥ जब इन्द्रने ऐसा कहा तो दसती हुई जानकी बोली कि, मैं यह कैसे जानूँ कि तुम शचीके पति इन्द्रहो ॥ १६ ॥ जो चित्त राम लक्ष्मणके साथ मैंने आपके देसमें यदि तुम देवताओंके राजा इन्द्र हो तो उन चिह्नोंको दिखाओ ॥ १७ ॥ इन्द्रजी जानकीजीके वचन सुन पेरोंने पृथ्वी न स्पर्श करते हुए और नेत्रोंको पलक

लगना बंद होगया. देवताओंकी यही पहचानही कि यैरोंसे पृथ्वी नहीं स्पर्श करते उनके नेत्रोंके पलक नहीं लगते ॥ १८ ॥ धूलि रहित यत्र धारण क्रियंद्गुः
 जो फूल मलीन न हों ऐसे फूलोंकी माला धारण किये इन लक्षणोंसे जानकीजी इन्द्रको पहचान परम हर्षित हुई ॥ १९ ॥ और फिर रोतीहुई चोलीं, हे भगवन !
 भाग्यसे महाबाहु रामचन्द्रका नाम उनके भाई सहित आज मैंने सुना ॥ २० ॥ जैसे मेरे भयुर दसरथजी, पिता-जनकजी हैं तैसेही आज मैं तुम्हें देखतीहूँ
 तुमसे मेरे पति सनाथ हुए ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञासे यह दूधकी बनी सीर खुकुलके बढानेहारी तुम्हारे हाथकी दी हुई मैं माँऊंगी ॥ २२ ॥
 सुहासिनी जानकीजीने यह हवि इन्द्रके हाथसे लेकर प्रथम अपने स्वामी रामचन्द्र और देवर लक्ष्मणजीको निवेदित की ॥ २३ ॥ और कहा कि, यदि मेरे महाबाहु
 अर्जोव्रथारीचनग्लानकुसुमस्तथा ॥ तंज्ञात्वालक्षणेःसीतावासवंपरिहर्षिता ॥ १९ ॥ उवाचवाक्यंरुदतीभगवद्वाचवंप्रति ॥ सहस्रातामहा
 बाहुर्दिष्टयामेथुतिमागतः ॥ २० ॥ यथामेश्वशुरोराजायथाचमिथिलाधिपः ॥ तथात्वामद्यपश्यामिसनाथोमेपतिस्त्वया ॥ २१ ॥ तवाज्ञ
 याचदंबद्रपयोभूतमिदंहविः ॥ अशिष्यामित्वयादंतरंयूणांकुलवर्धनम् ॥ २२ ॥ इंद्रहस्ताद्गृहीत्वातत्पायसंसाशुचिस्मिता ॥ न्यवेदयतभवंसाल
 क्षमणायचमैथिली ॥ २३ ॥ यदिजीवतिभर्तासहस्रात्रामहाबलः ॥ इदमस्तुतयोर्भक्त्यातदाश्रात्पायसंस्वयम् ॥ २४ ॥ इतीवतत्प्राश्यहविर्वि
 राननाजहौक्षुधादुःखसमुद्भवंचतम् ॥ इंद्रात्प्रवृत्तिमुपलभ्यजानकीकाकुत्स्थयोःप्रीतमनावभूव ॥ २५ ॥ सचायिशक्रस्त्रिदिवालयंतदाभीतोय
 योराघवकार्यसिद्धये ॥ आमंत्र्यसीतांसिततोमहात्माजगामनिद्रासहितःस्वमालयम् ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये
 ऽरण्यकांडे प्रक्षिप्तःसर्गः ॥ ॥ राक्षसंमृगरूपेणचरंतकामरूपिणम् ॥ निहत्यरामोमारीचंवृणंपथिन्यवर्तत ॥ १ ॥ तस्यसंस्तरमाणस्यद्रुमस्य
 मैथिलीम् ॥ क्रूरस्वनोयगोमायुर्विननादास्यप्रुष्टः ॥ २ ॥

भर्ता लक्ष्मण भाई सहित जीवितहैं तो यह जो मैं प्रेमसे देतीहूँ वह यह पायस ग्रहण करें ॥ २४ ॥ वह सुमुखी इस प्रकार स्वीकार कीछे आप भक्षण करती
 हुई. जिसके तातेही भूत प्यासका दुःख जाता रहा, इन्द्रसे यह कथा सुनकर कि, रामचन्द्र शीघ्र आवेंगे, रामचन्द्रमें मन लगाती हुई ॥ २५ ॥ वह इन्द्रभी उस समय
 रामचन्द्रकी कार्य सिद्धिके निमित्त प्रसन्न होकर स्वर्गको गये, और वह महात्मा चलते समय जानकीजीको समझाकर निद्रा सहित स्वर्गको पधारे । यह मर्गे
 क्षेपकही ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणकाण्डे भाषाटीकायां क्षेपकः सर्गः ॥ ॥ उस ओर श्रीरामचन्द्रजी मृगरूपसे विचरण करने वाले कामरूपी निशाचर
 मारीचका संहार करके शीघ्रही आश्रमके मार्गको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीजानकीजीको देखनेके लिये अतिविरागसे चले । इसी समयमें एक सियार उनकी पीठके पीछे

महाशत्रोर शब्द करने लगा ॥ २ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सियारके इस रोमाञ्चकर दारुण बोलको सुन अति भयभीत हो मनहीमनमें शंका करने लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रकार शब्द यह गियार कर रहा है, इससे तो ऐसा जान पड़ता है कि, कोई अशुभ होगा । इस समय राक्षसोंने जानकीजीको भक्षण न कर लिया हो, और सीताजी दुर्गन्धमें ही तभी मंगल है ॥ ४ ॥ मृगरूपी मारीचने जान बूझकर हमारे बोलके समान जो चिह्नादृष्टकी है, यदि लक्ष्मणने उस बोलको सुना हो ॥ ५ ॥ वस लक्ष्मणजी उम स्वरके सुनते ही तुरत सीताजी करके भेजे जाकर सीताको छोड़कर वह शीघ्र ही हमारे निकट आवेंगे ॥ ६ ॥ निश्चय ही राक्षसोंने मिलकर जान कीं कि यह करनेकी अभिलाषा की है और इसी कारणसे राक्षस मारीचने सुवर्ण मृगरूप धारण करके हमको आश्रमसे बहुत दूर किया ॥ ७ ॥ और हमको दूर

मतस्य स्वरमाज्ञाय दारुणं रोमहर्षणम् ॥ शंकया मासगोमायोः स्वरेण परिशंकितः ॥ ३ ॥ अशुभं वत मन्ये हंगोमायुर्वांशते यथा ॥ स्वस्ति स्यादपि वै देव्याराक्षसैर्भक्षणं विना ॥ ४ ॥ मारीचने तु विज्ञाय स्वर्भालक्ष्य मामकम् ॥ विकुप्टं मृगरूपेण लक्ष्मणः शृणुयाद्यदि ॥ ५ ॥ ससौ मित्रिः स्वरं श्रुत्वा तां च हित्वा यमैथिलीम् ॥ तथैव प्रहितः क्षिप्रं मत्सकाशमिहैष्यति ॥ ६ ॥ राक्षसैः सहितैर्नूनं सीताया इप्सितो वधः ॥ कांचनश्च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्च मातुमाम् ॥ ७ ॥ दूरं नीत्वा यमारीचो राक्षसो भूच्छराहतः ॥ हालक्ष्मणहतो स्मीतियद्वाक्यं व्याजहार ॥ ८ ॥ अपि स्वस्ति भवेदाभ्यां रहिताभ्यां मया वने ॥ जनस्थानं निमित्तं हि कृतवैरोऽस्मिराक्षसैः ॥ ९ ॥ निमित्तानि च घोरानि दृश्यंतेऽद्य बहूनि च ॥ इत्येवं चितयन्नामः श्रुत्वा गौमायुनिः स्वनम् ॥ १० ॥ निवर्तमानस्त्वरितो जगामाश्रममात्मवान् ॥ आत्मनश्चापनयनं मृगरूपेण राक्षसा ॥ ११ ॥ आजगाम जनस्थानं राघवः परिशंकितः ॥ तं दीनमानसं दीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ॥ १२ ॥ सव्यं कृत्वा महात्मानं घोरं श्वससृजुः स्वरान् ॥ तानि दृष्ट्वा निमित्तानि महाघोरानि राघवः ॥ १३ ॥

लाकर फिर हमारे वाणमें धायल होकर लक्ष्मणको भी यहां लानेके लिये, हाय लक्ष्मण ! हम मारे गये । यह कहकर उस राक्षसने प्राण छोड़े ॥ ८ ॥ इस शब्दको सुन लक्ष्मणभी तो चले ही आये होंगे; फिर जब वनमें आश्रमपर हम दोनों भाई न रहे तो कैसे कहें कि, मंगल होगा । कारण कि, जनस्थानका नाश करनेके कारण हमसे और राक्षसों में भारी ईर्ष्या है ॥ ९ ॥ और जिसपर यहां हमको घोर दुर्निमित्त दिखाई देते हैं, आत्मवान श्रीरामचन्द्रजीने शृगालका शब्द सुनकर इस प्रकार चिन्ता करते ॥ १० ॥ लक्ष्मण च भी गीनतासे आश्रमकी ओर गमन करने लगे । मृगरूपी मारीच जो उनके आश्रमसे दूर ले आया था, इस कारण रामचन्द्रजी जल्दीसे आश्रमको चले ॥ ११ ॥ और संकितचिन होकर श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें पहुँचे तब मय मृग पक्षीगण इनके मनको उदास देखकर सब इनके निकट आये ॥ १२ ॥ यह सब

मृग पक्षीगण उम कालमें रामचन्द्रजीकी बाईं तरफ होकर कठोर स्वरसे शब्द करने लगे, उन महायोर सब दुर्निमित्तोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने देखा तो ॥ १३ ॥ प्रमाहीन हुए लक्ष्मणजी चले आते हैं, देखतेही देवते लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके निकट आ पहुँचे ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजीकी विषादिन व दुःखित देखकर लक्ष्मणजीभी विषादित और दुःखित हुए। तब श्रीरामचन्द्रजी अपने माता लक्ष्मणजीकी निन्दा करने लगे ॥ १५ ॥ क्योंकि लक्ष्मणजी सीताजीको राक्षसनेवित्त सुने वनमें अकेली छोड़कर आयेथे लक्ष्मणजीका बाँयां हाथ पकड़कर श्रीरामचन्द्रजी ॥ १६ ॥ आँतेके समान भ्रवणकठोर पाणिममभुर बचल कहने लगे कि, हे लक्ष्मण ! तुम सीताजीको त्यागकर जो यहाँ चले आये हो, यह तुमने अतीव निन्दाका कार्य किया है ॥ १७ ॥

ततो लक्ष्मणमायातंदर्शविगतप्रभम् ॥ ततो विदूररामेण समीयाय सलक्ष्मणः ॥ १८ ॥ विपणः सन् विपणनेन दुःखितो दुःखभागिना ॥ सजगद्दंष्ट्रातं भ्राता दृष्ट्वा लक्ष्मणमागतम् ॥ १९ ॥ विहाय सीतां विजने वने राक्षससेविते ॥ गृहीत्वा चकरं सव्यं लक्ष्मणं रंजुनंदनः ॥ २० ॥ उवाच मधुरोदकं मिदं परुषमार्तवत् ॥ अहो लक्ष्मणगद्वते कृतं यत्त्वं विहायताम् ॥ २१ ॥ सीतां मिहागतः सौम्यकच्चित्स्वस्ति भवेदिति ॥ न मेऽस्ति संशयो वीरसर्वथा जनकात्मजा ॥ २२ ॥ विनष्टा भक्षिता वापि राक्षसेर्वनचारिभिः ॥ अशुभान्येव भूयिष्ठं यथा प्रादुर्भवन्ति मे ॥ २३ ॥ अपिलक्ष्मणसीतायाः सामर्थ्यं प्राप्नुयामहे ॥ जीवं त्याः पुरुषव्याप्रसुताया जनकस्यैव ॥ २४ ॥ यथा विमृगसंघागोमाधुश्चैव भेरवम् ॥ वारं तेशु कुनाश्चापि प्रदीप्तामभितो दिशम् ॥ अपि स्वस्ति भवेत्तत्प्याराजपुन्यामहाबल ॥ २५ ॥ इदं हि रक्षोमृगसंनिकाशं प्रलोभ्य मादूरमनुप्रयातम् ॥ हतं कथंचिन्महताश्रमेण सराक्षसो भून्निन्त्रयमाणवाम् ॥ २६ ॥

हे शुभदर्शन ! तुमने जो अरेली छंडा हमसे क्या सीताका भडा होगा ? कभी नहीं । हे वीर ! जनककुमारी अब आश्रममें नहीं हैं इस बातमें हमको अब कुछ संशय नहीं होता ॥ २७ ॥ परगणपर जिस प्रकारके अयगुन हो रहे हैं इससे यह ज्ञात होता है कि, या तो सीताको कोई वनचारी राक्षस चुराकर ले गया या मारकर गायया होगा ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मण ! जनककुमारीजी सब प्रकारसे कुशल हैं क्या हम ऐसा देश पावेंगे ? हे पुरुषसिंह ! क्या जानकी सब प्रकार कुशलसे जीती हैं ? ॥ २९ ॥ हे महाबलवान् ! यह मृगगण, भियार और पक्षीगण सूर्यकी ओरको मुख करके महाभयंकर शब्द कर दशोदिशाओंको देखते हैं मानो इनमें आग लगी है । ऐसे अयगुन देखकर किम प्रकार कह दें कि, राजपुत्री सीताजी कुशलसे हैं ? ॥ ३० ॥ यह मृगरूपी राक्षसभी हमको ललचाकर दूर ले आया, जिसको

फिर हमने बहुतही गरीबम करके किसी भांति मार पाया, मरनेके समय उसने निज राक्षस मूर्ति धारण की ॥ २२ ॥ हमारा मनभी बहुतही दीन और पशुपत्ता हुआ है, और चाँद आँसुभी फडक रही है । हे लक्ष्मण ! निःसन्देह सीता आश्रममें नहीं, यावो उनको कोई हरण करके ले गया, या मार्गमें मरी पड़ी होगी ॥ २३ ॥ इत्यायं श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आर० भाषाटीकायां सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥ लक्ष्मणजी महादीन और उदास मन हो रहे थे उनको सीताके विना आता हुआ देखा कर भयाना श्रीरामचन्द्रजी घूँछने लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण ! जब हम वनको आये और उस समय जो हमारे साथही वनको आई थीं, और गुप्त जिनको छोड़कर यहां आये हो, वह सीता कहाँ हैं ? ॥ २ ॥ जब हम राज्यसे भट्ट होकर दीन भावसे दंडकारण्यको आये और उस समय जो

मनभ्रमेदीनमिहाग्रहं च शुश्रूष्यं कुरुते विकारम् ॥ असंशयं लक्ष्मणनास्ति सीता तदा मृता वापथिवर्तते वा ॥ २३ ॥ इत्यायं श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ऽरण्यकांडे सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥ सहस्रलक्ष्मणं दीनं शून्यदंशरथात्मजः ॥ पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना ॥ १ ॥ प्रस्थितं दंडकारण्यं यामामनुजगमह ॥ क्रसालक्ष्मणवैदेहीयां हित्वा त्वमिहागतः ॥ २ ॥ राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दंडकान्परिधावतः ॥ क्रसादुःखसहायामं वैदेहीं तनुमध्यमा ॥ ३ ॥ यां विनानोत्सहेवीरमुदुर्तमपि जीवितुम् ॥ क्रसाप्राणसहायामेसीतासुरसुतोपमा ॥ ४ ॥ पतित्वममराणां द्विप्रथिव्याश्चापिलक्ष्मण ॥ विना तं तपनीयाभानेच्छेयं जनकात्मजाम् ॥ ५ ॥ कच्चिजीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरामम ॥ कच्चिप्रव्राजं न वीरनमेमिध्याभविष्यति ॥ ६ ॥ सीतानिमित्तं सोमित्रे मृते मयि गते त्वयि ॥ कच्चित्सकामाकेकेयी सुखितासाभविष्यति ॥ ७ ॥ सपुत्रराज्यांसिद्धार्थं नु तपुत्रातपस्विनी ॥ उपस्थास्यति कोसल्या कचित्सौम्येन केकयीम् ॥ ८ ॥

हमारे दुःखमें महाय दुर्द, वह तनुमध्यमा जानकीजी कहाँ हैं ? ॥ ३ ॥ जिसके विना हम एक मुहूर्त भरभी प्राण धारण करनेको उत्साही नहीं, वह देवकन्यके समान प्राणमहाप जानकीजी कहाँ हैं ? ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण ! हम उन तपाये हुए सुवर्णके समान प्रभावाली जनकात्मजके विना देवताओंकी प्रभुताई अथवा पृथ्वीकी राजाई ऐनहीभी अभिलाषा नहीं करते ॥ ५ ॥ हे वीर ! हमारी प्राणोंसेभी प्यारी जानकी क्या अभी तक जीती है, क्या हमने जो चौदह वर्ष तक वनमें रहनेकी प्रतिज्ञाकी है वह विरया तो न होजाएगी ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! भीताके लिये हमारे प्राण त्यागने पर और तुम्हारे अयोध्यामें लौटजानेपर केकेयी क्या सकलमनोरथ और सुखी होगी ॥ ७ ॥ केकेयी हम दक्षर-भक्तने पुत्रकी राज्यप्राप्तिमें जय मित्र कान देगी, तब क्या घृणपुत्रा, दीना, गचिनी, हमारी माता की शल्याजीकी विनयके साथ उसकी

सेवा करनी होगी ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! वेदेही यदि जीवित हैं, तब तो हम फिर आश्रमको चलते हैं, और वह शुद्धचारिणी यदि परलोकमें नहीं गई हैं, तो हमभी
 प्राण त्यागन करे ॥ ९ ॥ जब हम आश्रममें पहुँचेंगे और सीता सम्मुख हँसकर यदि हमसे न बोलेंगी तबभी हम प्राण त्यागेंगे ॥ १० ॥ इस कारणसे हे लक्ष्मण !
 तुम बताओ कि, जानकी जीवित हैं ? अथवा तुम्हारी असाधनतासे उन तपस्विनी जानकीजीको राक्षसोंने तो नहीं भक्षण कर लिया ॥ ११ ॥ वेदेहीजी कुमांगी हैं,
 चालिका हैं, और दुःख भोग करनेके अयोग्य हैं, वह इस समय हमारे दुःखसे निश्चय ही दुःखी हो शोक करके शोक करती होंगी ॥ १२ ॥ अतिगम्य दुरात्मा क्रूर निगा
 चर मारीचने ऊँचे शब्दसे (हा लक्ष्मण !) कहकर सब प्रकारसे तुमको भय उत्पन्न करा दिया है ॥ १३ ॥ हम जानते हैं कि, हमारे बोलके समान वह बोल ज, नकी
 यदि जीवित वेदेहीगम्याम्याथमपुनः ॥ संवृत्ताय दिवृत्तासाप्राणांस्त्यक्ष्यामिलक्ष्मण ॥ ९ ॥ यदिमामाश्रमगतवेदेहीनाभिभाषते ॥ पुरःप्रह
 सितासीताविनिशिष्यामिलक्ष्मण ॥ १० ॥ ब्रूहिलक्ष्मणवेदेहीयदिजीवितवानवा ॥ त्वयिप्रमत्तेरक्षोभिर्भक्षितावातपस्विनी ॥ ११ ॥ सुकुमा
 रीचवालाचनित्यंचादुःखभागिनी ॥ मद्वियोगेनवेदेहीव्यक्तशोचतिदुर्मनाः ॥ १२ ॥ सर्वथारक्षसतेनजिह्वेनसुदुरात्मना ॥ यदतालक्ष्मणेत्तु
 चोत्तवापिजनितंभयम् ॥ १३ ॥ श्रुतश्चमन्यवेदेह्यासस्वरःसदृशोभम ॥ त्रस्तयाप्रेपितस्त्वंचद्रुमांशोग्रमागतः ॥ १४ ॥ सर्वथातुद्धृतंकष्टसीता
 मुत्सृजतावने ॥ प्रतिकर्तुंशंसानांक्षसांदत्तमंतरम् ॥ १५ ॥ दुःखिताःखरघतेनराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ तेःसीतानिहतावोरेर्भविष्यतिनसंशयः
 ॥ १६ ॥ अहोऽस्मिन्व्यसनेभ्रमःसर्वथारिपुनाशन ॥ किंत्विदानींकारिष्यामिशंकेप्राप्तव्यमीदृशम् ॥ १७ ॥ इतिसीतावरारोहांचितयत्रैवराचनः ॥
 आजगामजनस्थानंत्वरयासहलक्ष्मणः ॥ १८ ॥ विगर्हमाणोऽनुजमार्तहृत्पथुथाश्रमेणैवपिपासयाच ॥ विनिःश्वसञ्जुष्कमुखोविपण्णःप्रतिश्र
 यंप्राप्यसमीक्ष्यशून्यम् ॥ १९ ॥

जीते सुनकर तुमको यहांपर भेजा है और तुमभी हमारे देखनेके लिये शीघ्रही यहांपर आयेहो ॥ १४ ॥ तुमने सीताजीको अकेली बनमें छोड़ यहां आकर ॥ १५ ॥
 कष्टकर कार्य किया है । इससे निर्दयी राक्षसोंको हमारे कियेहुए अपकारका प्रतिकार करनेको तुमने अवसर दे दिया ॥ १५ ॥ सरको मारडालनेसे मांसमें ॥
 राक्षसगण बहुतही दुःखित होगे हैं । उन घोरनिराचरणे निश्चयही जानकीको मारडाला होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हाय ! शत्रुसूदन लक्ष्मण ! ॥
 नव भाँतिने विरदमें दूरे अत्र हम क्या करें ? हमको शंका होतीहै कि, यह विपदअवश्य होनहारहै ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुमुखी जानकीजीके लिये इस प्रवः
 पिता करके लक्ष्मणजीके सहित शीघ्रतासे जनस्थानमें आये ॥ १८ ॥ श्रुवा, भ्रम, और व्यासके मारे रामचन्द्रजीका मुख सूख गयाथा उन्होंने शोनिः

चिन्ते दीध निःश्वास त्याग करते लक्ष्मणजीकी आर्यभावसे निन्दा करते २ इस प्रकारसे आश्रममें आयकर देखा तो वहां सीता नहीं हैं वह आश्रम शून्य पड़ा है ॥ १९ ॥ जब सीताजीको न देखा तब श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें प्रवेश करके सीताजीके खेलनेके सब स्थान और वनवासके उठने बैठनेके स्थानमें दृष्टने लगे. परन्तु वहांभी जनकनन्दिनीको न पाया, तब श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीके उठने बैठने और खेलनेके स्थानोंको विसर २ स्मरण किया, स्मरण करतेही उनके गेम स्तडे होगये और बहुत घबड़ाये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भापाटीकायामष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ ॥
जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने आश्रमके मार्गमें वचन कहे और वह लक्ष्मण कुछ न बोले तब फिर महादुःखीहो रामचन्द्रजी सुमित्राकुमारसे बोले ॥ १ ॥ भाई ! तुम कैसे सीताजीको छोड़कर यहां चले आये ? जब कि हम तुम्हारेही विश्वास पर सीताको वनके बीच छोड़ आये हैं ॥ २ ॥ यह देखतेही कि तुम मौनजीकी स्वमाश्रमसंप्रविगाह्यवीरोविहारदेशाननुसृत्यकांश्चित् ॥ एतत्तदित्येव न वासभूमौ प्रष्टुरो माव्यथितो बभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडेऽष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ अथाश्रमादुपावृत्तमंतरारयुनंदनः ॥ परिपप्रच्छसो मित्रिरामो दुःखादिदं वचः ॥ १ ॥ तसुवाच किमर्थत्वमागतोऽपास्य मे धिलीम् ॥ यदा सा तव विश्वासाद्गने विरहिता मया ॥ २ ॥ दृष्ट्वा लक्ष्मणदूरेत्वांसीता विरहितं पथि ॥ ३ ॥ शंकरमानं महत्पापं यत्सत्यं व्यथितं मनः ॥ ३ ॥ स्फुरते नयनं सव्यं बाहुश्च हृदयं च मे ॥ दृष्ट्वा लक्ष्मणदूरेत्वांसीता विरहितं पथि ॥ ४ ॥ एवमुक्तस्तु सोमि त्रिलक्ष्मणः शुभलक्षणः ॥ भूयो दुःखसमाविष्टो दुःखं हृदयं च मे ॥ ५ ॥ न स्वयं कामकारेण तां त्यक्ता ह मिहागतः ॥ प्रचोदितस्तैर्वो ग्रेऽस्वत्सु कारा मिहागतः ॥ ६ ॥ आर्येणैव पराक्रुष्टं लक्ष्मणे तिसु विस्वम् ॥ परित्राही तियद्वाक्यं मे धिल्यास्तच्छ्रुतिं गतम् ॥ ७ ॥ सात मार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मे धिली ॥ गच्छ गच्छेति मामाह रुदती भयविक्रया ॥ ८ ॥

त्यागकर यहां आयेहो, हमारा मन जो महाअनिष्टकी शंका करके व्यथित होना था वह हमारी शंका सत्यही सत्य हुई ॥ ३ ॥ तुमको मार्गमें दूरसेही जानकीके बिना अकेला आता देखकर हमारा, हाथ वामनेत्र और हृदयका बायांभाग फड़कने लगा ॥ ४ ॥ शुभलक्षणयुक्त लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी यह चार्त्ता सुन महादुःखितहो श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ५ ॥ हम आप अपनी दृच्छानुसार सीताजीको त्याग करके यहां नहीं आये वरन् उनके पठाये हुयेही आपके निकट आये हैं ॥ ६ ॥ आपके बोलके समान बोल बनाकर जो किसीने (हमें बचाओ) कहकर भय और व्याकुलताके स्वस्ते 'चोल्कार किया था, सो वही चित्ताहट जानकीजीके भयण मोचर हुई ॥ ७ ॥ उन्होंने 'लक्ष्मण ! हमें बचाओ' यह करुणाका बोल सुनकर भयसे विकल हो आपके स्नेहके पथके मार्गे रोते २ हमसे यह कहना प्रस्ताव किया कि

नीच जाओ ॥ ८ ॥ बह बार्बार हममें जानको कहने लगीं, तब हमने उनको विश्वास दिलानेके लिये यह वार्ता कही ॥ ९ ॥ हम ऐसा किसी राक्षसको नहीं दे
 तो भीगमचन्द्रजीको भय उजासके, इससे यह करुणाका वचन रामचन्द्रजीका नहीं, वरन् यह वचन किसी राक्षसने वा और किसीने कहा होगा इस कारण
 संभ्रम रहे ॥ १० ॥ हे मीते ! जो देवताओंकीभी रक्षा कर सकते हैं, वह श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी “हमको बचाओ” यह नीच जनोचित वार्ता किसप्रकारसे कह
 ने हैं ॥ ११ ॥ इस कारणमे किमीने किमी कारणवग रामचन्द्रजीके बोलसा बोल बनाकर “लक्ष्मण ! हमको बचाओ” यह व्याकुल स्वरसे चिलाहट की है
 कुछभी मन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ हे गोभने ! किसी राक्षसने प्राप्तके मारे “बचाओ” यह गडद क्रिया है ! इससे आप नीच श्रीजनोचित मनोवेदना त्यागकर दीर्घ
 ॥ १३ ॥ व्याकुल होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, न घबडातेका कुछ मयोजन, इस बातका विचार आप छोड़ें, क्योंकि लोकमें ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो संप्र
 मनोद्यमानेनमयागच्छेतिवदुशस्तया ॥ प्रत्युक्तमेथिलीवाक्यमिदंतत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ९ ॥ नतत्पश्याम्यहंक्षोयदस्यभयमावहेत् ॥ निर्वृता
 वनास्त्यंतंनान्धतदुदाहनम् ॥ १० ॥ विगदितं चनीचंचकथमायां भिधास्यति ॥ त्राहीति वचनं सीतेयस्त्रायेत्रिदशानपि ॥ ११ ॥ किं
 मित्तंतुं केनापि त्रातुं गलं व्यमंस्वम् ॥ विस्वरं व्याहृतं वाक्यं लक्ष्मण आहिमामिति ॥ १२ ॥ राक्षसेनेरितं वाक्यं वासात्राहीति शोभने ॥ न भवत्
 व्यथाक्रायां कुनारी जनसेविता ॥ १३ ॥ अलं विक्रवतांगंतुं स्वस्थाभवनिरुत्सुका ॥ न चास्ति त्रिपुलोकके पुपुमान्योराववरणे ॥ १४ ॥ जातोवाजा
 मानो रागं गुणयः पगजयंत् ॥ अजेयो रात्रो युद्धे देवैः शक्रपुरोगमेः ॥ १५ ॥ एवमुक्ता तु वेदेहीपरिमोहितचेतना ॥ उवाचाऽथ णिसुचंतीदारुणं मामि
 यतः ॥ १६ ॥ भावोमयितवात्यर्थपापवनिर्धरितः ॥ विनयेभ्रातरि यापुनं च त्वं मामवाप्स्यसे ॥ १७ ॥ संकेताद्रतेन त्वं रामं समनुगच्छसि ॥ क्रो
 तं दिशधात्यर्थं नैनमन्यवपद्यसे ॥ १८ ॥ गिषुः प्रच्छन्नचारी त्वं मर्दथं मनुगच्छसि ॥ राववस्यांतरं प्रेषुस्तथेनं नानाभिपद्यसे ॥ १९ ॥

भीगुनन्दन रामचन्द्रजीको ॥ १४ ॥ जीतके आजके मपयही क्या वरन् कभी ऐसा नहीं हुआ और न आगेको होगा, श्रीरामचन्द्रजीको तो संघाममें इन्द्रादि
 गामी नहीं जीत सकते ॥ १५ ॥ मोहितचिन्तितेहीजीने हमारे यह वचन सुन आंसू त्यागकर रोते २ हमको यह दारुण वचन कहे ॥ १६ ॥ कि हमारे
 गुत्राग अग्न पापभात्र स्थापित हुआ है, परन्तु भाताके विनष्ट होनेपर तुम किसी भांतिसे हमको प्राप्त नहीं कर सकोगे ॥ १७ ॥ हम समझी कि, तुम भरतके
 भात्रमे पत्राये भीगमचन्द्रजीके साथ आयेहो, इसीमे रामचन्द्रजीका आर्तनाद करता सुनकरभी तुम उनकी सहायतार्थ नहीं जाते ॥ १८ ॥ अथवा तुम ह
 गुत्र गयेहो, हमाराही छे लेनेके लिये गमचन्द्रजीके पीछे २ वनमें फिरतेहो और सर्वदा अवसर ढूँढते हो कि, कब रामचन्द्र कहींको जायें, और हम इनको म

हैं इस कारणनें तुम उनकी सहायता करनेके लिये नहीं जाते ॥ १९ ॥ जब वैदेहीजीने इस प्रकार कहा, तब अतिक्रोधके मारे हमारे नेत्र लालहो आये, रोपमें भरकर अगर फड़कने लगे और हम तैमेही आश्रमसे चल खड़े हुए ॥ २० ॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकारका कहना आरंभ किया, तब रामचन्द्रजी शोकसे मोहित हो कर उनमें पड़े कि, हे सीम्य ! तुम जो जानकीको छोड़कर यहां चले आये वह अतिशय दुष्कर कर्म हुआ ॥ २१ ॥ देखो, राक्षसोंका बल निवारण करनेकी हममें भिन्नता नगम्य है, उसको जानबूझ कर भी तुम जानकीके यह क्रोधवचन सुन आश्रमसे बाहर चले आये ॥ २२ ॥ एक तौ स्त्री, दूसरे क्रोधित, ऐसी जानकीके स्त्रीय वचनोंमें तुमभी उनको छोड़कर यहांपर चले आये इससे हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं हुए ॥ २३ ॥ तुमने सीताके वचन सुन क्रोधके दशहो हमारी आज्ञा

परमुक्तपूर्वदेव्यासंस्थोरक्तलोचनः ॥ क्रोधात्प्रस्फुरमाणोऽथाश्रमादभिनिर्गतः ॥ २० ॥ एवंवाणंसीमित्रिरामः संतापमोहितः ॥ अब्रवीदुष्कृतंसीम्यतां चिन्तन्मिहागतः ॥ २१ ॥ जानन्नपि समर्थमाराक्षसामपवारणे ॥ अनेन क्रोधवाक्येन मैथिल्या निर्गतो भवान् ॥ २२ ॥ न हिते परितुष्यामित्यक्त्वा यदमिमं धिलीम् ॥ क्रुद्धायाः परुषं श्रुत्वा स्त्रियायत्त्वमिहागतः ॥ २३ ॥ सर्वथा त्वपनीतं सीतायाय त्प्रचोदितः ॥ क्रोधस्य वशमागम्य नाकरोः शासनं मम ॥ २४ ॥ असौ हि राक्षसः शेतैः शरेणाभिहतो मया ॥ मृगरूपेणेनाहमाश्रमादपवाहितः ॥ २५ ॥ विकृष्य चापं परिधाय सायकं सलीलवाणेन च तान् डितो मया ॥ मार्गान्तं त्यज्य च विष्णुस्वरो वभूव केयूरधरः सराक्षसः ॥ २६ ॥ शराहतेनैव तदार्तयागिरास्वरं मालं व्यसुदू सुश्रवम् ॥ उपाहृतं तद्वचनं सुदारुणं त्वमागतो येन विहाय मैथिलीम् ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे एकोनपष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

रा उद्यत किया इनसे तुम्हारा यह कार्य बहुतही निन्दनीय हुआ है ॥ २४ ॥ देखो ! यह राक्षस जो मृग बनकर हमको आश्रमसे दूरतक लाया है वह हमारे बाणसे मरा हुआ पड़ा है ॥ २५ ॥ हमने शत्रुप चढ़ा सँच उस पर बाण चढ़ा लीलासेही एक बाणका इसके ऊपर प्रहार किया जिस बाणके लगनेसे इस राक्षसने मृगतनु छोड़ निकल स्तर स्तर यात्रू पड़े हुये निगाचरका शरीर धारण किया है ॥ २६ ॥ उसकाल हमारे बाणसे धायल होकर दूरसेही श्रवणगोचरहो इस प्रकारका हमारा बोल पनाकर इस राक्षसके दारुण आर्तनाद करनेमें तुम उसको सुन इस समय जानकीको छोड़कर यहां आयेहो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे एकोनपष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

आश्रममें आनेके समय श्रीरामचन्द्रजीके नामनेत्रके नीचेका भाग अत्यन्तही फड़कने लगा, पग २ पर चरण फिसलता, आर शरीर कपटहा था इन अशक्तु नोंका यह प्रभावहै कि निम कार्यके लिये जाओ उसकी सिद्धि नहीं होती ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी वारंवार अपराकुन होते देखकर आपही कहनेलगे कि, जाने सीता मुगलनेहूँ अथवा नहीं ॥ २ ॥ यह सोचते विचारते सीताके दर्शन करनेकी लालसासे शीघ्र २ चलकर देखतेहुए कि आश्रम सूनापडाहै यह देखकर श्रीरामचंद्रजी बहुत उक माये ॥ ३ ॥ यह वेग महित इधर उधर भुजाये चला और धूमकर समस्त पर्णशालाके स्थान २ करके सोजनेलगे ॥ ४ ॥ रामचंद्रजीने पर्णशालामें गमन करके देखा कि वहां सीता नहीं हैं जानकी बिन हेमंतकनुके समगमने ध्वस्तपभिनीकी समान हो पर्णशाला अत्यन्त श्रीविहीन अवस्थामें पड़ी थी ॥ ५ ॥ वनदेवतागण आश्रमको श्रीभट्ट

भृशमाव्रजमानस्यतस्याधोवामलोचनम् ॥ प्रास्फुरच्चास्त्वलद्रामोत्रैपथुश्चास्यजायते ॥ १ ॥ उपालक्ष्यनिमित्तानिसोशुभानिमुहुर्मुहुः ॥ अपि भ्रंमन्मुमीतायाहनिर्व्याजद्गह ॥ २ ॥ त्वरमाणोजगामाथसीतादर्शनलालसः ॥ शून्यमावसथंद्वाद्वभवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥ उद्धमन्निववेगेन विक्षिपन्नयुनंदनः ॥ तत्रतत्रोदजस्थानमभिवीक्ष्यसमंततः ॥ ४ ॥ ददर्शपर्णशालांचसीतयारहितान्तदा ॥ त्रियाविरहितांध्वस्तहिमंतेपद्मिनी मिव ॥ ५ ॥ रुदंतमिववृक्षैश्चग्लानपुष्पमृगद्विजम् ॥ त्रियाविहीनंविध्वस्तंसंत्यक्तंवनदेवतैः ॥ ६ ॥ विप्रकीर्णोजिनकुशंविप्रविद्धवृसीकटम् ॥ दृष्ट्वाशून्योदजस्थानंविललापपुनःपुनः ॥ ७ ॥ हतामृतावानष्टावाभक्षितावाभविष्यति ॥ निलीनाप्यथवाभीरुरथवावनमात्रिता ॥ ८ ॥ गगानिर्गन्तुपुष्पाणिरुलान्यपिचवापुनः ॥ अथवापद्मिनीयाताजलाथवानर्दीगता ॥ ९ ॥ यत्रान्मृगयमाणस्तुनाससादवनेप्रियाम् ॥ शोकरक्ते क्षणःश्रीमानुभरादवलक्ष्यते ॥ १० ॥ युष्मादंशंप्रधावन्सगिरिंश्चापिनदीनदम् ॥ वभ्रामविलपत्रामःशोकपंकार्णवप्लुतः ॥ ११ ॥

और विपन्न देगकर एकचान्दी छोड़कर चलेगये, आश्रमके मृग पक्षी और समस्त पुष्पभी मलीन होगयेये, वहांपरके वृक्ष पानों रोरहेथे ॥ ६ ॥ मृगचर्म और कुय इधर उधर पड़े और मृगागन छिन्नभिन्न और गिरे पड़ेथे, पर्णशालाकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीरामचंद्रजी वारंवार यह कहकर विलाप करनेलगे ॥ ७ ॥ कि निषय जानकी हरीगई, या मृगक होगई अथवा किसी करके भक्षण करडालीगई, या वह इरपोक स्वभाववाली छिप रही हैं या वनमें चली गई हैं ॥ ८ ॥ अथवा वह फूल फूल चुन ले लिये रही स्नमें गई हैं या जल लानेके लिये मगोबर या नदीपर गई होगी ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजीने यत्नपूर्वक ढूँढने भालने परभी वनके बीच बिपाको कहीं न पाया, तब गोरुके पार उतरे नेत्र टाल २ होगये उमममय वह टम्पनोके समान फिरलेलगे ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रजी शोकके समुद्रमें डूबकर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके नीचे

नीडर जानेछो और थिडाप करते २ नद नदी और पर्वतोपर घूमनेछे ॥ ११ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजी उन्मनकी समान कदम्बादि वृक्षोंसे सीताजीको पृछनेछे कि हे कदम्ब ! तुमने उन कदम्बप्रिया हमारी प्राणप्यारी जानकीको देखाहै ? यदि देखाहो तो उन शुभाननाकी वार्त्ता हमसे कहो ॥ १२ ॥ हे बिल्व ! वह बिल्वस रग स्नानपाटी पट्टय समान कान्तियुक्त पीले रेशमीन वस्त्र धारणकिये सीताको यदि तुमने देखाहो तो बताओ ॥ १३ ॥ अथवा हे अज्जुन ! प्रिया तुमको अतिशय चाह्यथी, गो यह क्षीणांगी जनककुमारी जीवितहै या नहीं सो बताओ ॥ १४ ॥ अथवा यह ककुभवृक्ष ककुभके समान जांवाली सीताको निश्चयही जानता होगा. र्योंकि इस वृक्षपर लता पुष्प फल सबही छेहैं ॥ १५ ॥ और भ्रमरगणोंके संगीत रवसे पारपूर्ण शोभा पारहाहै । हे वनस्पति ! तुम सब वृक्षोंमें प्रधान हो और जान अस्तिकवित्त्वयाहृष्टासाकदंबप्रियाप्रिया ॥ कदंबयदिजानीपेशंससीतांशुभाननाम् ॥ १२ ॥ सिग्धपल्लवसंकाशापीतकौशेयवासिनीम् ॥ शंभस्वयदिसाहृष्टाचिल्वचिल्वोपमस्तनी ॥ १३ ॥ अथवार्जुनशंसत्वंप्रियातामर्जुनप्रियाम् ॥ जनकस्यसुतातन्वीयदिजीवतिवानवा ॥ १४ ॥ ककुभःककुभोरुपांढ्यक्तंजानातिमैथिलीम् ॥ लतापल्लवपुष्पाब्जोभातिह्योपवनस्पतिः ॥ १५ ॥ भ्रमरैरुपगीतश्चयथाद्रुमवरोह्यसि ॥ एषव्यक्तंविजानाति तिलकस्तिलकप्रियाम् ॥ १६ ॥ अशोकशोकापनुदशोकोपहतचेतनम् ॥ त्वन्नामानंकुरुक्षिप्रं प्रियासंदर्शनेनमाम् ॥ १७ ॥ यदितालत्वयाहृष्टापकतालोपमस्तनी ॥ कथयस्ववरोहांकारुण्यंयदितेमयि ॥ १८ ॥ यदिदृष्टात्वयाजंबुजार्जुनदसमप्रभा ॥ प्रियायदिविजानासिनिःशंकं कथयस्वमे ॥ १९ ॥ अहोत्वंकर्णिकाराद्यप्युपितःशोभसेभृशम् ॥ कर्णिकारप्रियांसाध्वीशंसदृष्टायदिप्रिया ॥ २० ॥

कीभी मन रमणियोंमें श्रेष्ठहै अतएव वह कहाँहैं सो बताओ ॥ अथवा प्रिया तिलक पुष्पको बहुत प्यार करतीथी इससे यह तिलक वृक्ष निश्चयही उनके वृत्तान्तको जानता होगा ॥ १६ ॥ हे अशोक ! तुम शोकको दूर किया करतेहो, इससे शोकसे हतचित्तभूषको प्रियाके साथ पिलाकर अपने नामवाला कर दो ॥ १७ ॥ हे ताल ! यदि तुमने उन पकतालकी ममान स्तनवाली जानकीको देखा है और हमारे ऊपर कुछभी दया करते हो तब वह वरारोहा सीता कहाँ है ? सो हमको बताओ ॥ १८ ॥ हे जामुन ! यदि जाम्बूनद सुवर्ण सम प्रभावाली हमारी प्रियाको तुमने देखा है तो निःशंक चित्तसे बताओ ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार ! आज तुम

• रामने संतोही ताल पकताल । सीता धितु देग बुटी सोत्तव रुपार्द ॥ जाम्बूनाई ॥ लक्ष्मण तुम कहा कीन दकुटी धिय छांडदीन निअर कोइ थाओ चीन्ह छेगयो चलाई ॥ १ ॥ सिय धिन व्याकुल शरीर पनय भगवत् परमपीर पीर बीज हरे नीर हम बानं बलाई ॥ २ ॥ प्रेमविकन नाम अये दुमलतासी पुलकिये जोरुविचय जोलल नहि मय रंइ सुरकाई ॥ ३ ॥ आगे गुप्त अष्टभई ताने सकल नाम कही सेदिया मय मोअ दई तारर बनिनाई ॥ ४ ॥

पुष्पित होकर अत्यन्तसोभा ग्राहने हो और हमारी प्रियाभी तुमसे बहुतही लेह करती थीं सो यदि कहीं उन साध्वीको देखाहो तो कहो ॥ २० ॥ इसी प्रकार आम, नीप, महाराष्ट, कटहल, व अन्गरको देव २ कर श्रीरामचन्द्रजी उनसे कहते थे ॥ २१ ॥ और वकुल, पुन्नाग, चन्दन, केतकी आदि और वृक्षोंके नीचे २ जाकर भान्ताचिन्हो उन्मजकी समान श्रीरामचन्द्रजी वनमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी मृग इत्यादि पशुओंसे पूछते हुए बोले कि, हे मृग ! तुम क्या उन मृगछौनाकीसी आँसोंवाली सीताका कुछ वृचान्त जानते हो ? अथवा वह मृगलोचना मृगीगणोंके साथ मिलकर घूमती होगी ॥ २३ ॥ हे गज ! तुम्हारीही थंड समान आकारवाली उनकी जाँचें हैं, यदि तुमने उनको देखाहो तो कहो ? इससे हे गजराज ! हमें बतादो कि, वह कहाँ है ? ॥ २४ ॥ हे गार्दूल ! उन चन्द्रवदना हमारी प्यारी मौथेलीको यदि देखा हो तो हमारा विश्वास करके हमें बतादो ! तुमको कुछ भय नहीं है अर्थात् तुम इस बातसे न डरो कि, हम नृत्तनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा॥ दाडिमानपितान्गत्वाहृद्वारामोमहायशाः॥ २१ ॥ वकुलानथपुन्नागांश्चंदनान्केतकांस्तथा॥ पृच्छन्नामोवने भ्रातृडन्मत्तइवलक्ष्यते॥ २२ ॥ अथवामृगशवाक्षींमृगजनानासिमैथिलीम्॥ मृगविप्रेक्षणीकांतामृगीभिः सहिताभवेत्॥ २३ ॥ गजसागजनासोरुयद्विद्वष्टात्पथाभवेत् ॥ तामन्येविदितांतुभ्यमाख्याहिवरवारण॥ २४ ॥ शार्दूलयदिसाहृष्टाप्रियाचन्द्रनिभानना ॥ मैथिलीममविवक्ष्यः कथयस्वन्ततेभयम् ॥ २५ ॥ किंयावसिप्रियेनृनृदृष्टासिकमलेशणे॥ वृक्षैराच्छाद्यचारमानं किं मानं प्रतिभापसे॥ २६ ॥ तिष्ठतिष्ठवरारोहेनतेस्तिक्करुणामयि॥ नाल्पथंहास्यशीलासिकिमथमासुपंक्षसे॥ २७ ॥ पीतकौशेयकेनासिसूचितारवर्णिनि॥ धावंत्यपिमयाहृष्टातिष्ठयद्यस्ति सोहृदम् ॥ २८ ॥ नेवसानूनमथवाहिसिताचारुहासिनी॥ कृच्छ्रं प्राप्तं हिमांनृनृनृयथापेक्षितुमर्हति॥ २९ ॥ व्यक्तंसाभक्षितावालाराक्षसैः पिशिताशनेः॥ विभज्यांगानिसर्वाणिमयाविरहिताप्रिया ३० ॥ तुम्हेंमार डालेंगे ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! हे कमलेशणे ! तुम अब क्यों दौड़ी जाती हो ? हमने अब निश्चयही तुमको देख लिया है तुम किस कारणसे इन वृक्षोंके मध्यमें छिप कर हममें नहीं बोलती हो ? ॥ २६ ॥ हे वरारोहे ! हम बारंबार कहते हैं कि, तुम खड़ी रहो, व इधर उधर दौड़ती न फिरो, क्या हमारे ऊपर तुमको दया नहीं आती ? तुम तो कभी हमारे साथ इतना उपहास नहीं करती थीं क्यों हमारी उपेक्षा करती हो ? ॥ २७ ॥ हे वरवर्णिनी ! हमने तुम्हारे पीछे रेखमीन वस्त्र देखकर तुमको पहँचान लिया है, और यहभी हम देख रहे हैं कि तुम भागही रही हो इससे यदि तुम कुछ प्रेम हमारे साथ रखती हो तो लौट आओ और भागती न फिरो ॥ २८ ॥ अथवा हे चारुहासिनी ! हमने जिसको देखाहै वह तुम नहीं हो, तुमको तो निश्चयही किसीने मारडाला, यदि ऐसा न होता तो इस दारुण हेराके समयभी क्या तुमभी हमको छोड सकती हो ॥ २९ ॥ स्पष्ट विदित होताहै कि, मांस खानेवाले राक्षसोंने हमारा वियोग पाईहुई हमारी प्रियाके अंगोंको खंड २ करके खा लिया ॥ ३० ॥

अहो इनका वह मनोहर दांत ढाला, श्रेष्ठ नासिका युक्त, शुभकुंडल समन्वित, पूर्ण चंद्रमाके समान वदन राक्षसों करके द्रव्य होजाने पर निश्चयही प्रभाहीन होगया होगा ॥ ३१ ॥ उनकी कोमल गरदन हार आदि भूषणोंसे भूषित जिसके वर्णकी ज्योति चंदनकी समान चिकनी और विगुदहै सो राक्षसोंने ऐसी मनोहर गरदनकोभी खा ढाला, राक्षसोंने जब हमारी प्रियाको भक्षण किया होगा, तो न जाने उन्होंने कितना विलाप किया होगा ॥ ३२ ॥ उनकी दोनों बांहें पल्लवकी समान कोमल और हाथोंके गहनोंसे सुशोभित हैं निश्चय ही राक्षसोंने इधर उधर फेंकफांक कर उनको खालिया उस कालमें उन दोनों बाहोंका अग्रभाग अवश्य कंपित हुआ होगा ॥ ३३ ॥ हाय हम क्या राक्षसोंके भोजनार्थ ही उनको आश्रममें अकेला छोड़कर यहां आयेये इससे ही वह बन्धु बान्धव युक्त होकर भी राक्षसोंके पैरमें पड़ गई और कोई बन्धु बान्धव काम न आया ॥ ३४ ॥ हे लक्ष्मण ! क्या तुमने प्राणप्यारीको कहीं देखा है नूनंतच्छुभदंतोष्ठसुनासंशुभकुंडलम् ॥ पूर्णचंद्रनिभंयस्तंमुखंनिष्प्रभतांगतम् ॥ ३१ ॥ साहिचंदनवर्णभाय्रीवाग्नेयकोचिता ॥ कोमलाविलयंत्यास्तुकांतायाभक्षिताशुभा ॥ ३२ ॥ नूनंविक्षिप्यमाणौतोवाहूपल्लवकोमलौ ॥ भक्षितोवैपमानाग्नौसहस्ताभरणांगदौ ॥ ३३ ॥ मयाविरहितावा लारक्षसांभक्षणायवै ॥ सार्थेनैवपरित्यक्ताभक्षितावदुवांधवा ॥ ३४ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोपश्यसेत्वंप्रियांक्षचिद् ॥ क्षत्रियैकगताभद्रहान्ति त्रिपुनःपुनः ॥ ३५ ॥ इत्येवंविलपन्नामःपरिधावन्वनादनम् ॥ क्षचिदुद्रमतेयोगात्क्षचिद्विभ्रमतेचलात् ॥ ३६ ॥ क्षचिन्मत्तइवाभातिकांता न्वेषणतत्परः ॥ सवनानिनदीःशैलान्निगिरियसवणानिच ॥ काननानिचवेगेनभ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥ ३७ ॥ तदासगत्त्वाविपुलंमहद्वनंपरी त्यसर्वत्वथमैथिलींप्रति ॥ अनिष्टिताशःसचकारभाग्निपुनःप्रियायाःपरमंपरिश्रमम् ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ऽरण्यकांडेपष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

हा प्रिया ! हांसीते ! हा भद्रे ! तुम कहां गई इन शब्दोंको रामचन्द्रजी वार २ कहतेथे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वांस्वार विलाप करते २ रामचन्द्रजी वन २ में वेग सहित घुमने लगे कहीं ठोकर खाकर गिर पडते और कभी २ सब वन तथा दिशा विदिशाओंमें घुमने लगते ॥ ३६ ॥ कभी रामचन्द्रजी उन्मत्तकी समान दृष्टि आते कभी २ प्रियाके दृढ़नेमें तत्पर होकर वेग सहित नदी पर्वत झरने और समस्त वनोंमें भ्रमण करने लगे ॥ ३७ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्थिर होकर कहीं भी न रह सकते । और एक महा वनमें प्रवेश करके उसमें चारोंओर जानकीजीको एक २ वृक्ष और एक २ स्थल ढूँढने परभी रामचन्द्रजीका अभिलाष पूर्ण नहीं हुआ । परन्तु वह फिरभी प्यारी सुकुमारी जनककुलारीके सौज करनेमें परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ॥ ६० ॥

इस प्रकार हैं इन्होंने भालते श्रीरामचन्द्रजी फिर आपमें आये तो देखा कि, शून्य पड़ा है, पर्णयात्रामें कोई नहीं है आसन भी सब इधर उधर पड़े हैं ॥ १ ॥ सब ओर
 वहाँ पर देस और वैदेहीजीको न पाकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके दोनों हाथ पकड़ रोकर बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! सीता कहाँ हैं ? इस आश्रममें किम रयान
 को चली गई हैं ? हे सौमित्र ! मियाको किसने हरण किया, वा भक्षण किया ? ॥ ३ ॥ हे सीते ! यदि वृक्षकी आड़में छिपी रहकर तुम्हें उपहास करनेकी इच्छा
 हुई हो, तब तो जितना चाहिये था उतना उपहास होगया, अब अधिक न दुःखी करो । देखो ! हम महादुःखमें पड़नेसे व्याकुल हो रहे हैं सो इस समय आनकर
 तुम शीघ्र हमको धीरज दो, और समझाओ ॥ ४ ॥ हे सौम्य ! तुम जो इन सब विधासी मृगछीनके सहित खेल करती थीं सो इस समय यह सब तुम्हारे विना
 नेत्रोंसे अभ्रजल भरे धिता कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण ! सीताके विरहमें हम कभी जीवन धारण नहीं कर सकते, उनके हर जानेसे उत्पन्न हुए घोरतर शोकने हमको
 दृष्टाश्रमपदंशून्यरामोदरशरथात्मजः ॥ रहितां पर्णशालांच प्रविद्धान्यासना निच ॥ १ ॥ अट्टघातत्रवेदहोसन्निग्रीक्ष्यच सर्वशः ॥ उवाच रामः प्राकुश्वप्र
 गृह्यरुचिरो भुजो ॥ २ ॥ ककुलक्ष्मणवैदेहीकं वा देशं मित्रे भक्षिता केन वा प्रिया ॥ ३ ॥ वृक्षेणाचार्ययदिमां सतिहसितुमिच्छसि ॥
 अलं तेन सितेनाद्यमां भजस्व सुदुःखितम् ॥ ४ ॥ येः परिक्रीडसे सीते विध्वस्तं मुग्धपोतकैः ॥ एते हीनास्त्वया सोम्येध्यायं त्यक्त्वा विलेक्षणाः ॥ ५ ॥ सीतयार
 हितोऽहं वै न हि जीवामि लक्ष्मण ॥ घृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् ॥ ६ ॥ परलोके महाराजो नृनन्दं द्रव्यति मे पिता ॥ कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वम्
 भियोजितः ॥ ७ ॥ अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः ॥ कामघृतमनार्यं वा मृपावादिनमेव च ॥ ८ ॥ धिक्कामिति परलोके व्यक्तं वदं द्रव्यति मे पिता ॥
 विवशं शोकं संततं दीनं भ्रमनो रथम् ॥ ९ ॥ मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्तिनं रमिवानुजम् ॥ क्व गच्छसि वरारोहे मामोत्सृज सुमध्यमे ॥ १० ॥ त्वया विर
 हितश्चाहं त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः ॥ इतीव विलपन्नामः सीता दर्शनलालसः ॥ ११ ॥

दृक लिया है ॥ ६ ॥ पितृदेव महाराज दशरथजीको निश्चयही हम परलोकमें मिलेंगे, और वह निश्चयही हमने यह कहेंगे कि, हे राम ! हमने तो तुमको प्रतिज्ञा पूर्ण
 करनेको कहा था, और तुमने भी स्वीकार किया था, कि हम चौदह वर्ष वनमें वसेंगे ॥ ७ ॥ सो तुम उस प्रतिज्ञाको पूर्ण विना कियेही इस समय कैसे यहाँ
 पर आये ? स्वेच्छाचारी, मियावादी, और नीचता युक्त तुमको ॥ ८ ॥ धिक्कार है ! सो निश्चयही इस प्रकारके वचन पिताजी हमें कहेंगे विवश
 शोकसे व्याकुल, दीन और मनोरथ टूटे हुए ॥ ९ ॥ व दया करनेके योग्य हमको यहाँ छोड़ कहाँ जाती हो ? जिस प्रकार कुटिल मनुष्यको कीर्ति छोड़ देती
 है वे वरारोहे ! हे सुमध्यम ! तुम हमको न छोड़ो ॥ १० ॥ हम तुम्हारे विरहमें अपना जीवन परित्याग करेंगे, श्रीरामचन्द्रजी सीताके दर्शनाभिलाषी होकर इस

प्रकारं विछाप करने लगे ॥ ११ ॥ परन्तु दुःखसे आरत हुए उन्होंने जानकीजीको न देखा; इस कारण वह जानकीके शोकमें निमग्न होकर ॥ १२ ॥ अतीव दल २ में फँसे हुए महागजकी समान बहुतही व्याकुल होगये । रामचन्द्रजीकी यह दशा देख लक्ष्मणजी उनके हितकी कामनासे कहने लगे ॥ १३ ॥ हे महायुतिमान् ! आप विषाद न कीजिये । हमारे साथ यत्न कीजिये तब अवश्यही सीताका दर्शन मिलेगा । हे वीर ! यह बहुत कन्दराओंसे शोभित जो गिरवर है ॥ १४ ॥ इस वनमें प्रपन्ना जानकीजीको बहुत प्यारा है, क्योंकि वनको देख वह सदा मन होजातीर्यो सो क्या अचरज है कि वह वन देखने न चली गईहों अथवा कोई पुष्प शोभित कमल युक्त तलैयां देखने गई हों ॥ १५ ॥ अथवा मत्स्ययुक्त वेतसनामक विहंगसेवित नदीपर तो न चली गई हों अथवा हम तुमको त्रासित करनेकी कामनासे

नददर्शसिद्धुःखातौराघवोजनकात्मजाम् ॥ अनासादयमानंतंसीतांशोकपरायणम् ॥ १२ ॥ पंकमासाद्यविपुलंसीदंतमिवकुंजरम् ॥ लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाचहितकाम्यया ॥ १३ ॥ माविपादंमहाबुद्धेकुरुयत्नंमयासह ॥ इमंगिरवरंवीरवहुकंदरशोभितम् ॥ १४ ॥ प्रियकाननसं चारावनोन्मत्ताचमैथिली ॥ सावनंवाग्मविष्टास्यन्नलिनौवासुषुष्पिताम् ॥ १५ ॥ सरितंवापिसंप्राप्तामीनंवज्जलसेविताम् ॥ वित्रासचितुकामा वालीनास्यात्काननेकचित् ॥ १६ ॥ जिज्ञासमानावैदेहीत्वांमांचपुरुषर्षभ ॥ तस्याह्यन्वेपणेश्रीमन्क्षिप्रमेवयतावहे ॥ १७ ॥ वनंसर्वविचित्रो यत्रसाजनकात्मजा ॥ मन्यसेयदिकाकुत्स्थमास्मशोकेमनःकृथाः ॥ १८ ॥ एवमुक्तःससौहादौलक्ष्मणेनसमाहितः ॥ सहसौमित्रिणारामोविचे तुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥ तीवनानिगिरींश्चैवसरितश्चसरांसिच ॥ निखिलेनविचिन्वंतोसीतांशरथात्मजौ ॥ २० ॥ तस्यशैलस्यसान्निशिलाश्चशिखरा णिच ॥ निखिलेनविचिन्वंतौनेवतामभिजग्मतुः ॥ २१ ॥ विचित्यसर्वतःशैलरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ नेहपश्यामिसौमित्रैर्वैदेहीपर्वतेशुभाम् ॥ २२ ॥

इस वनके किसी स्थानमें तो न छिप रही हों ॥ १६ ॥ हे पुरुषसिंह ! वह यह जाननेके लिये वनमें लुकाई हैं कि, हम वा आप किस प्रकारसे उनको खोजकर पा लेंगे, मोहमको चाहिये कि उनके खोजनेका अवश्य यत्न करें ॥ १७ ॥ हे काकुत्स्थ ! आप तोभी यही मानते हो कि जानकी इसी वनमें हैं तब तो इस वनके सबही आभ्रमोंमें खोजेंगे, अब शोक न कीजिये ॥ १८ ॥ जब सौहार्दके वश होकर लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहा तब रामचन्द्रजी सावधानचित्त होकर लक्ष्मणजीको संग ले दृढ़ने लगे ॥ १९ ॥ वन, गिरि, तालाब, एक २ करके दोनों भाइयोंने सीताको ढूँढनेके लिये छाने ॥ २० ॥ फिर उन पर्वतोंके कैंगुरों, चट्टान, व शिखर व सब रत्नी २ सीतानेपर जानकीजीके दर्शन न हुए ॥ २१ ॥ उस कालमें समस्त पर्वतको डूँढ भालकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे भाई ! इस पर्वत पर प्यारी

अत्र कइलागी गो इति नहीं आती ॥ २३ ॥ लक्ष्मणजी समस्त दंडकारण्यमें विचरण करते हुए भी जानकीजीको न पाकर दुःखसे संतप्त हो प्रदीप्त तेजवाले अपने भ्रा-
 रामचन्द्रजीमें थोड़े ॥ २३ ॥ कि महाबलवान् विष्णुजीने जिसप्रकार बलिको बांधकर इस पृथ्वीको प्राप्त किया था हे बुद्धिमान् ! आपभी वैसेही जनककुम्भमें
 भीताजीको पावेंगे ॥ २४ ॥ वीर लक्ष्मणजीके यह वचन सुन दुःससे चिन्त हरे हुए श्रीरामचन्द्रजी अति दीनतासे बोले ॥ २५ ॥ हे महाबुद्धिमान् ! सारा वन रि-
 द्ध है कमल कमलाकर सगेवर बहुत सारी कन्दराओंसे युक्त बहुत झरनोंसे सुशोभित यह पर्वत जरा २ करके देखा व दूढ़ा तथापि प्राणोंसे भी बहुत भारी प्यारी जानने-
 जीके दर्शन हमने न पाये ॥ २६ ॥ भीताजीके हरणसे संतापित हो श्रीरामचन्द्रजी शोकसे दुःखी और व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते २ एक मुहुर्त भरत
 ततो दुःखामिसंततोलक्ष्मणो वागम्यमब्रवीत् ॥ विचरन्दंडकारण्यं भ्रातरं दीपतेजसम् ॥ २३ ॥ प्राप्स्यसेत्संमहाप्राज्ञं मे थिलं जनकारमजाम् ॥
 यथा विष्णुर्महाबाहुर्बलिवद्भ्रातृमहीमिमाम् ॥ २४ ॥ एवमुक्तस्तु वीरेण लक्ष्मणेन सराववः ॥ उवाच दीनया वाचा दुःखामिहतचेतनः ॥ २५ ॥
 यनं मुचिन्तं मयं प्रिन्त्यः फुल्लपंकजाः ॥ गिरिश्चायं महाप्राज्ञ वहुकंदरनिर्झरः ॥ नहि पश्यामि वेदेही प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥ २६ ॥ एवं स वि-
 लपन्नामः भीतादरण्यकं श्रितः ॥ दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत् ॥ २७ ॥ स विह्वलितसर्वांगो गतबुद्धिर्विचेतनः ॥ विपसादातुरो दीनो नि-
 शून्याशीतमायतम् ॥ २८ ॥ बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः ॥ हाप्रियेति विचुकोश बहुशो वाष्पगद्गदः ॥ २९ ॥ तं सान्वयामास त-
 तोलक्ष्मणः प्रियवाचिवम् ॥ बहुप्रकारं शोकार्तः प्रथितः प्रथितां जलिः ॥ ३० ॥ अनाहत्यतु तद्वाक्यं लक्ष्मणोऽपुष्टच्युतम् ॥ अपश्यंस्तान् प्रियांसी-
 तां प्राक्रोशतमपुनः पुनः ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामं वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे एकपष्ठितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ सीतामपश्यन् धर्मात्मा शोकोपह-
 तं च ननः ॥ विललापमहाबाहू रामः कमललोचनः ॥ १ ॥

शिखर शोभ ॥ २७ ॥ वे बुद्धिहीन और चेतन्य रहित होगये और सर्व शरीर विह्वल होगया इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अतिशय व्याकुल और स्पन्दनाहीन होकर
 गरम लक्ष्म २ श्वासमें रुक विलाप करने लगे ॥ २८ ॥ इसके पश्चात् राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीने बारंबार श्वास ले हा भिये ! ऐसा कह गद्गद हो आंसू भर
 पड़े शब्दोंमें रोदन करना आरंभ किया ॥ २९ ॥ रामचन्द्रजीको देखकर उनके प्रिय भ्राता लक्ष्मणजी शोकसे आरत हो विनय सहित हाथ जोड़ उनकी समझाने
 पुद्गलें लगे ॥ ३० ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी उनके मृत्युसे निकले हुए वचनोंका अनादर करके मियतमा सीताजीके अदर्शनसे बारंबार रोदन करने लगे ॥ ३१ ॥
 इत्यार्षे श्रीमद्रामं बा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकापायेकपष्ठितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ महाबाहु धर्मात्मा कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके दर्शन न पा करके

गोरुं मारे चला गइल हो विलाप करने लगे ॥ १ ॥ वह सीताजीके दर्शन न पाकरभी, मानों उनको देखही रहे हैं इस भाव करके कामबाणसे पीडित हो विलःपुनः इतने साने बचन कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रिये ! तुम पुण्योको अतियाय प्यार करती हो सो दूरा समय अशोक शाखा समूहद्वारा अपना शरीर ढक कर हमः गोरुंसे अतियाय यशती हो ॥ ३ ॥ हे देवि ! तुम्हारी दोनों जाँघें केलेके खंभकी सदृश हैं तुमने उनको कदलीसे छिया रक्खा है सो हम उनको देख रहे हैं तुम उनको नहीं छिया मरनी हो ॥ ४ ॥ हे भद्रे ! तुम हँसते २ कर्णिकारके वनमें प्रवेश करती हो, परन्तु हमको पीडन करके और अधिक उपहास करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ५ ॥ विगेष करके आश्रमके स्थानमें परिहास करना अच्छा नहीं होता हे प्रिये ! यह तो हय जानते हैं कि, स्वभावसेही तुम परिहासप्रिया हो ॥ ६ ॥ परन्तु

पश्यन्निवर्त्तन्तीमीतामपश्यन्मन्मथार्दितः ॥ उवाचराघवोवाक्यं विलापाश्रयदुर्वचम् ॥ २ ॥ त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रियतराप्रिये ॥ आवुणोसि शरीरं ते मम शोकविवर्द्धिनी ॥ ३ ॥ कदलीकांडसदृशो कदल्यासंवृतावुभौ ॥ उरूपश्यामि ते देवि नासि शक्तानि गृहितुम् ॥ ४ ॥ कर्णिकारवं भद्रे हसंती देवि संवसे ॥ अलं ते परिहासे न ममाधावहे न वै ॥ ५ ॥ विशेषेणाश्रमस्थाने हासोऽयं न प्रशस्यते ॥ अवगच्छामि ते शीलं परिहासप्रियं प्रिये ॥ ६ ॥ आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्यो यमुजस्तव ॥ सुव्यक्तं राक्षसेः सीताभक्षितावाहतापिवा ॥ ७ ॥ न हि सा विलपंतं मामुपसंप्रतिलक्ष्मण ॥ एतानि मृगयूथानि साधुनेत्राणि लक्ष्मण ॥ ८ ॥ शंसंती विहिमे देवी भक्षितारजनीचरेः ॥ हाममायें कथ्यता सिंहासाधिवरवर्णिनि ॥ ९ ॥ दासकामाद्यैः केयूँ देवि मे दय भविष्यति ॥ सीताया सह निर्यातो विना सीतामुपागतः ॥ १० ॥ कथं नाम ग्रवेक्ष्यामि शून्यमंतः पुरं मम ॥ निर्वीर्य इति लोको मां निर्दयश्चेति वक्ष्यति ॥ ११ ॥

हे विशालाक्षी ! यह पर्णशाला सूनी पड़ी है इस कारण आयो ! हे लक्ष्मण ! निश्चय होता है कि, सीताको राक्षसोंने भक्षण कर लिया अथवा वह उनको हरण कर ले गये ॥ ७ ॥ इसी कारण वह हमको विलाप करते हुए देखकरभी हमारे निकट नहीं आती. हे लक्ष्मण ! इस पर ये मृग यूथगण रोदन करते हैं ॥ ८ ॥ यह भी मानें पही कह रहे हैं कि, राक्षसोंने सीताका भक्षण कर लिया। हा अच्छे शीलवाली साध्वी ! हा अच्छे शीलवाली साध्वी ! हा वरवर्णिनी सुमुखि ! हा आर्या ! तुम कहाँ गई हो ? ॥ ९ ॥ अब सीता मरने गइल देगमों गमन करना पड़ेगा, इतने दिनोंके पीछे केकेयी देवी सफल मनोरथ दूढ़े, क्योंकि अब वह देखेंगी कि, सीता सहित गये थे और आये सीता गइल ! ॥ १० ॥ किम ममारे हय मीता गइल अपने स्नानामें प्रवेश करेंगे ? मम लोम हमको धीर्य, रुडिज और निर्दयी कहकर निन्द्य करेंगे ॥ ११ ॥

भीमजीके बिना मंग होनेमे निष्पत्ती हमको कातरता प्राप्त हो जायगी. कारण कि, जब हम वनवास करके घरको लौटेंगे और उस समय मिथिलानाथ जनकजी ॥ १२ ॥ मृगाल पुछेंगे तो किस प्रकार हम उनको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे ? विदेहराज निषय हमको बिना सीताके देसकर ॥ १३ ॥ अपनी पुत्री जानक बिनागमे मंगनहो मोहके बग हो जायेंगे । बिना दशरथजीही प्रण्य है । क्योंकि वे स्वर्गमें प्राप्त करते हैं । अथवा अब हम भरतकी पालित अयोध्यापुरीको न जानें ॥ १४ ॥ अयोध्याकी बात तो एक ओर रही सीताके बिना तो हम स्वर्गकोभी शून्य समझते हैं; इस कारण हे लक्ष्मण ! तुम अब हमको इस वनमें छोड़कर अयोध्यासे चले जाओ ॥ १५ ॥ हम जानकीके बिना किंसी प्रकारभी जीवन धारण करनेको समर्थ नहीं हैं । तुम हमारी ओरसे भलीभाँति भरतजीको गाठ आलिंगन करके कहो ॥ १६ ॥

ज्ञानरत्नप्रकाशं हि सीतापनयनमे ॥ निवृत्तवनवासश्च जनकं मिथिलाधिपम् ॥ १२ ॥ कुशलं परिपृच्छंतं कथं शब्दे निरीक्षितम् ॥ विदेहराजो नमो ह्येवा विगृह्णतं ॥ १३ ॥ सुता बिना शसंततो मोहस्य वशमेव्यति ॥ तात एव कृतार्थः स तत्रैव सतादिति ॥ अथवानगमिष्यामि पुरीं भरत पालिनाम् ॥ १४ ॥ स्वर्गोपहितयाहीनः शून्य एवमतो मम ॥ तन्मा मुत्सृज्य हिवने गच्छायो ध्यापुरीं शुभाम् ॥ १५ ॥ न त्वहं तां विना सीतां जीवेन त्रिरुपनन ॥ गाढमाश्लिष्य भरतो वाच्यो मद्रचनात्त्वया ॥ १६ ॥ अनुज्ञातोऽसिरामेण पालयेति वसुंधराम् ॥ अम्याचमके केयी सुमित्रा च त्वया निमी ॥ १७ ॥ कौमल्याचयथान्यायमभिवाद्या गमाज्ञया ॥ रक्षणीया प्रयत्नेन भवतामूक्तचारिणा ॥ १८ ॥ सीतायाश्च विना शोऽयं मम चाभिन्दू मूढन ॥ विस्तरं जनन्यामं विनिवृत्तस्त्वया भवेत् ॥ १९ ॥ इति धिलपतिरावेषु दीने वनमुपगम्य तया विना सुकेश्या ॥ भयविकलमुखस्तुलक्ष्मणोऽपि प्लिप्तमना भृशमातुरो गभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विपष्ठितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

रु रहना ॥ १६ ॥ कि, गमचन्द्रजीने यह आज्ञा की है कि, तुमहीं इस राज्यका पालन करो । हे विभी ! माता कैकेयी व सुमित्रा अपनी मातासे ॥ १७ ॥ अं कौमल्याजीमे इनमेंमे दयें रहों हमारी आज्ञानुसार यथायोग्य तुम प्रणाम कह देना और मदा नीके वचनोंसे समझा बुझाकर यत्न सहित उनकी रक्षाभी करते रहना ॥ १८ ॥ शत्रुं क मारनं तां दे । आर मरी माताजीमे भीताजीके व हमारे बिनागका वृत्तान्त भी विस्तार सहित तुम निवेदन कर देना ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुकेशीनाके विगृहमे महा प्यारुन्त होकर हम वस्त्रामे धिटा न करने लगे । तब भयके मारे लक्ष्मणजीका मुख पीला पड गया मन व्यथित हुआ और वह बहुतही आतुर होः ॥ २० ॥ इत्यार्षे भीमश्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पापाटीकायां द्विपष्ठितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

राजकुमार भीरामचन्द्रजी प्रिया विन हो शोक मोहसे आतुर होनेके कारण लक्ष्मणजीको विपाद उत्पन्न कराते हुए आपभी वहे तीव्र विपादको प्राप्त हुए ॥ १ ॥
 निमके पीछे यह विपुल शोकमें डूबकर लंबे २ आस लेते हुये, रोते २ शोकसे घिरे हुए लक्ष्मणजीको उपस्थित विपदके अनुरूप वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हम सम !
 तेहें कि हमारी समान दुरे कर्म करनेवाला दूसरा पुरुष पृथ्वीपर और नहीं है, देखो एकके पीछे एक इस प्रकार लगातार शोक इकट्ठे होकर हमारे मन और हृदयवः
 के धावते हैं ॥ ३ ॥ पहले जन्ममें हमने इच्छानुसार वारंवार बहुत सारे पाप कर्म किये हैं आज उनका फल मिलरहा है । इसीकारण हमारे ऊपर दुःखके ऊपर
 दुःख पड़ रहे हैं ॥ ४ ॥ राज्यका नाश होना, पिताजीका मरना, माताजीका वियोग होना, और बन्धु बान्धवोंसे छूटना, यह सब बातें जब याद आती

सराजपुत्रः प्रिययाविहीनः शोकेन मोहेन च पीडयमानः ॥ विपादयन् आतुरमार्तरुपो भूयो विपादं प्रविवेशतीव्रम् ॥ १ ॥ सलक्ष्मणं शोकवशाभिपन्नं
 शोके निमग्नो विपुलेतुरागः ॥ उवाच वाक्यं व्यसनानुरूपमुष्णं विनिःश्वस्य रुदन् सशोकम् ॥ २ ॥ नमद्विधो दुष्कृतकर्मकारी मन्ये द्वितीयोऽस्ति च सु
 धराम् ॥ शोकानुशोको हि परंपरायामामेति भिदन् हृदयं मनश्च ॥ ३ ॥ पूर्वमथान्नमभीप्सितानि पापानि कर्मण्यसंकृतानि ॥ तत्रायमद्या
 पतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि ॥ ४ ॥ राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो जननीवियोगः ॥ सर्वाणि मेलक्ष्मणशोके वेगमापूर
 यन्ति प्रविचिंतितानि ॥ ५ ॥ सर्वतु दुःखं मम लक्ष्मणे दंशं तं शरीरे वनमेत्येकुराम् ॥ सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णं काष्ठैरिवाग्निः सहसोपदीप्तः ॥ ६ ॥
 साहूतमार्याममराक्षसेन दग्ध्वा हतास्वसमुपेत्य भीरुः ॥ अथ स्वस्व सुस्वरविप्रलापाभयेन विक्रंदितवत्यभीक्ष्णम् ॥ ७ ॥ तौ लोहितस्य प्रियदर्शनस्य
 सदोचितावुत्तमचंदनस्य ॥ वृत्तौ स्तनौ शोणितपंकदिग्धौ नूनं प्रियायाममनाभिपातः ॥ ८ ॥

तो हमारे शोकके वेगको परिपूर्ण कर देती हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण ! वनमें आकर सीताके साथ रहनेसे वह सबही दुःख छूट गये थे वरन
 शरीरको ज्वरका नाम नहीं जान पड़ता था, परन्तु आज जानकीके वियोगसे, काष्ठके संगोपसे सहसा प्रदीपे हुए अग्निके समान वही दुःख फिर प्रजल
 होगये हैं ॥ ६ ॥ निःशयही कोई राक्षस जब भीरुस्वभाववाली आर्या प्रियासे

अब हम इस गरीबे को न भेंट सकेंगे । उनका मुखमंडल धूँवरवाले बालोंके नीचेमें शोभित, और सुन्दर, सुगंध, सुकोमल, और साफ चिकना बैबारा हुआ मो जानकीको राक्षसके बग होनेसे राहुके मुत्तमें भ्रष्टहोये चंद्रमाके समान निअप उस मुत्तकी अब सब सुंदरताई अलग हो गई होगी ॥ ९ ॥ पतिव्रता प्रियाकी वह रु गरदन मदाही हारके गुच्छोंसे भूषित रहतीथी सो रुधिरपान करनेवाले राक्षसोंने शृनेमें पाकर निअयही उसको भेदकर रुधिरपान किया होगा ॥ १० ॥ हमारे न हो निर्जन वनेमें राक्षसोंने चारों ओरसे घेरकर जब उनको खंचना आरंभ किया होगा, तो उस समय वह बड़े नेववाली सीताने निअयही कुररीकी समान विलाप किया होगा ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण ! हम वह हास्यमुख उदारस्वभाववाली सीता प्रथम हमारे साथ इस शिलातलपर तुम्हारे निकट बैठकर हँसते २ तुमसे कितनी बातें व

तच्छृण्वन्मुख्यमुत्तमृदुप्रलापंतस्यामुखं कुंचितकेशभारम् ॥ ९ ॥ तां हारपाशस्य सदीचितां श्रीवां प्रियायाममुब्रतायाः ॥ रक्षांसि नूनं परिपीतचंति शून्ये हि भित्त्वारुधिराशनानि ॥ १० ॥ मया विहीना विजने वने सारक्षो भिरावृत्य विकृता माणा ॥ नूनं विनांदुरी वदीना समुक्तवत्याथत कांतनेत्रा ॥ ११ ॥ अस्मिन्मया सार्वमुदारशीला शिलातले पूर्वमुपोपविष्टा ॥ कांतस्मिता लक्ष्म जातहासत्त्वामाह सीता बहुवाक्यजातम् ॥ १२ ॥ गोदावरीयं सरितां च रिष्टा प्रिया प्रियायामनित्यकालम् ॥ अप्यत्र गच्छेदिति चितयाभिनेव किनीयाति हि सा कदाचित् ॥ १३ ॥ पद्माननापद्मपलाशनेत्रापद्मानि वानेन तु मभिप्रयाता ॥ तदप्ययुक्तं न हि सा कदाचिन्मया विना गच्छति पं जानि ॥ १४ ॥ कामं त्विदं पुष्पितवृक्षखंडनानां विधेः पक्षिगणेरुपेतम् ॥ वनं प्रयाता नु तदप्ययुक्तमेका किनीसातिविभेति भीरुः ॥ १५ ॥ आत्स्यभो लोककृता कृतज्ञ लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन् ॥ मम प्रियासाक्षिगताहता वाशं सस्वमेशोकहृतस्य सर्वम् ॥ १६ ॥

थी ॥ १२ ॥ यह नदियोंमें श्रेष्ठ गोदावरीहै, जो हमारी प्रियाको सर्वदाही बहुत प्यारीथी, सो हमारे मनमें यह बातभी आती है कि कदाचित् वह इस नदीके पर पड़ी गईहों । परन्तु नहीं वह अकेली यहांपर कभी नहीं आतीथी ॥ १३ ॥ तब क्या वह कमलदलके समान नेववाली कमलमुखी जानकी कमल ले पड़ी गई है ? यहभी किसी प्रभार ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि वह कभी हमारे विना कमल लेने नहीं जातीथी ॥ १४ ॥ अथवा वह इस पुष्पित वृक्ष गोभिन अनेक जातिके विहंगमोंने पूर्ण यह वन अपनी इच्छानुसार देखनेको गई हैं यहभी बात किसी भांति संभव नहीं हो सकती, क्योंकि उनका डरणेक स्वभाव अकेली एनेके मध्य प्रयोग करनेमें वह बहुत डरतीथी ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! सूर्य ! आप सबके कृपाकृतको जानते हैं, और सत्य मिथ्या सबके साक्षीभी आप हैं.

सागमे भोः सह हसो पण्डा दीजिये कि, हमारी पिपा कहां चली गई अथवा कौन उनको हरकर ले गया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहीं है जो निन्दही मुझसे ज्ञान मार्गमें विद्विग्न न होनाहो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमर्ष्यादिरक्षनी सीताने प्राण दिये हैं या वह किसीसे हरी गई हैं अथवा नहीं मार्गमें शिर रही हैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने भोक्कयुक्त गरीसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब नीतिशास्त्रमें स्थित हो पड़ीन हूये मौदियि लक्ष्मण उल्लेख समायानुसार पवन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोड़कर धीरज धारण करके उत्साहयुक्तहो जानकीजीको ढूँढिये । उत्साही वृक्ष मंगली इच्छर सायं करनमेंभी कभी नहीं पकड़ते ॥ १९ ॥ चढ़े पौरुषी लक्ष्मणजीने जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीने उस वचनको चिन्तनीय

यो हं मुने पुननास्ति किंचिद्यत्तेन नित्यं विदितं भवेत्तत्र ॥ शंसस्व चायो कुलपालिनो तस्मिन् ताहता वापथि वतते वा ॥ १७ ॥ इतीव तं शोकविधेयदेहं गमं गिंज्ञं तिलपनमेव ॥ उवाच सौमित्रि दीनसत्त्वो न्याय्ये स्थितः कालयुतं च वाक्यम् ॥ १८ ॥ शोकं विमृज्याद्यधृतिं भजस्व सोत्साहता चारुतु निमगिणेभ्यः ॥ उत्साहवन्तो दिनरात्रौ केसीदन्तिकर्मस्व तदिदुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीव सौमित्रि मुदग्रपौरुषं धृवंतं मार्तण्डबुधं शसत्तमः ॥ न चिंतयामा मधूनि रिमुक्तान् पुनः प्रदुःखं मदपुपागमत् ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे विपष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ मदीनो दीनया नागात् लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ शीघ्रं लक्ष्मणजानी हि गत्वा गोदावरीं सीतापद्मान्या नयितुं गता ॥ एवमुक्त स्तुतगणलक्ष्मणः पुनरेव हि ॥ २ ॥ नदीं गोदावरीं स्म्यां जगाम लघुविक्रमः ॥ तालक्ष्मणस्तीर्थवर्तो विचित्राराममब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैनां पश्यामि नैर्गुणेशो नैर्गुणो नमि ॥ कंठुमादेशमापन्ना वेदेदीकृशनाशिनी ॥ ४ ॥

मन्त्रकार न गिना परत पद एक पागद्दी भीरुको छोड़कर फिर महा दुःखमें डूब गये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणवा० आदि० अर० भाषाटीकायां विपष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ रासचरि हसने हठ मनुष्यबुद्धि होजाय इस कारण फिर विलाप करने लगे दीन भावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण ! भीष गोदावरी नदीतर जाकर जान आओ ॥ १ ॥ कि, मीना कमल पूछ लेनेको तो वहां नहीं चली गई हैं ? जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी फिर ॥ २ ॥ भीष २ दग पारं मोदावरी नदीतर गये, और उम रमणीय पाटवात्री गोदावरीके चार्गेओर जग २ करके ढूँढपाळ रामचन्द्रजीने भीषही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि, १५९ मधरी रंगीता है वगैरे कहीराय उनको न रागा पुकारा भी पगन्नु उठेनो न सुना । हे आर्य ! जलने कौन देगमें जेगडागिणी जानकीजी बगैरिमाई हैं ॥ २४ ॥

मो उन मृदम मध्यमस्थान बाढीका पता हम नहीं जानते लक्ष्मणजीके वचन सुनकर रामचन्द्र और भी दीन व संतापसे मोहितहो ॥ १२ ॥ श्रीराम चन्द्रजी आपही गोदावरी नदीके तटपर गये और वहाँ खड़े होकर पूछने लगे कि सीता कहाँ है ? ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियों तथा गोदावरी नदी किसीने भी श्रीराम चन्द्रजीको यह न बताया कि मारे जानेके योग्य राक्षस रावण सीताको हरकर ले गयाहै ॥ ७ ॥ तब पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पाँच भूतोंने व प्राणियोंने गोदावरी नदीने कहा कि रामचन्द्रजीने सीताको बताया, और शोच करते हुये रामचन्द्रजीने भी पूछा परंतु गोदावरीने न बताया ॥ ८ ॥ न बतानेका कारण यह हुआ कि, रावणका रूप और उम दुष्टात्माके कार्योंका स्मरण करनेके मारे भयसे गोदावरीनदीने श्रीरामचन्द्रजीसे सीताको न बताया ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब

नक्षितवेद्विरेगमयप्रसातनुमध्यमा ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वादीनःसंतापमोहितः ॥ ६ ॥ रामःसमभिचक्रामस्वयंगोदावरीनदीम् ॥ सतासुप स्थितोरामःक्षमस्मितेवमव्रवीत् ॥ ६ ॥ भूतानिराक्षसेद्रेणवयंहंणहतामपि ॥ नतांशंसुरामायतथागोदावरीनदी ॥ ७ ॥ ततःप्रचोदिताभूतैःशं स्यास्मैप्रियामिति ॥ नचसाह्यवदत्सीतांपृष्टारामेणशोचता ॥ ८ ॥ रावणस्यचतद्रूपंकर्मपिचदुरात्मनः ॥ ध्यात्वाभयानुवेदेहोसानदीनशंसह ॥ ९ ॥ निराशस्तुतयानद्यासीतायादर्शनेकृतः ॥ उवाचरामःसोमित्रिंसीतामदर्शनकशिशुः ॥ १० ॥ एपागोदावरीसौम्यकिंचिन्नप्रतिभापते ॥ किंतु लक्ष्मणवक्ष्यामिस्मैत्यजनकंवचः ॥ ११ ॥ मातरंचैववैदेह्याविनातामहमप्रियम् ॥ यामेराज्यविहीनस्यवनेवन्येनजीवतः ॥ १२ ॥ संवव्य पानयच्छोकंवैदेहीक्षनुसागता ॥ ज्ञातिवर्गविहीनस्यवैदेहीमप्यपश्यतः ॥ १३ ॥ मन्येदीर्घाभविष्यतिरात्रयममजाग्रतः ॥ मंदाकिनीजनस्था नमिमंप्रव्रणंगिरिम् ॥ १४ ॥ सर्वाण्यनुचरिष्यामियदिसीताहिलभ्यते ॥ एतमहामृगावीरामामीक्षतेपुनःपुनः ॥ १५ ॥

गोदावरीने सीताजीके दर्शनमे निराश किया तब श्रीरामचन्द्रजी सीताके विरहमे व्यथित होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ हे शुभदर्शन ! यह गोदावरी तो कुछ भी उत्तर नहीं देती परंतु हम सीताके बिना अपने देशमें जाकर पिता जनकजीसे क्या कहेंगे ॥ ११ ॥ और वैदेहीजीकी यातासे बिना जानकीके कैसे अप्रिय वचन कहेंगे, जो जानकीजी राज्यविहीन बनमें कंद मूलादि भोजन कर जीते हुये हमारे ॥ १२ ॥ सब शोक अपनयन करतीर्यो वह वैदेहीजी कहाँ गई ? हम जातिके लोगोंसे महायक विहीन होनेके कारण और सीताजीका दर्शन न पानेके कारण ॥ १३ ॥ जागरित रहनेसे रात्रि हमको बड़ी जान पड़ेगी अब हम मन्दाकिनी नदी जटास्थान और दारना प्रता हुआ यह पर्यंत ॥ १४ ॥ इन मयही स्थानोंमें विचरण किया करेंगे ! जिससे कि सीताजीको देखें ! हे वीर ! यह मृगगण हपको चार २ देस्तते हैं ॥ १५ ॥

कारणसे शोकहत हमको बतला दीजिये कि, हमारी प्रिया कहां चली गई अथवा कौन उनको हरकर ले गया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहीं है जो नित्यही तुम्हारे ज्ञान मार्गमें विदित न होता हो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमय्यादिरक्षणी सीताने प्राण दिये हैं या वह किसीसे हरी गई हैं अथवा कहीं मार्गमें टिक रही हैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने शोकयुक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब नीतिशास्त्रमें स्थित हो अदीन हुये सौमित्रि लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोड़कर धीरज धारण करके उत्साहयुक्त हो जानकीजीको ढूँढ़िये । उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनेमें भी कभी नहीं घबड़ाते ॥ १९ ॥ बड़े पौरुषी लक्ष्मणजीने जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीने उस वचनको चिन्तनीय

लोकपुर्वेषु ननास्ति किंचिद्यत्नेन नित्यं विदितं भवेत्तव ॥ शंसस्व वा यो कुलपालिर्नोत्ताहता वापथिवर्तते वा ॥ १७ ॥ इतीव तं शोकविधेयदेहं रामं विसृज्य विलपंतमेव ॥ उवाच सौमित्रि दीनसत्त्वो न्याय्ये स्थितः कालयुतं च वाक्यम् ॥ १८ ॥ शोकं विसृज्या द्यूतिं भजस्व सोत्साहता चास्तु विमार्गिण्यः ॥ उत्साहवंतो हिनरानलोकैः सीदंति कर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीव सौमित्रि मुदग्रपौरुषं धृवंतमातरघुवंशसत्तमः ॥ न चिंतयामा सधृतिं विमुक्तवान् न दूःखं महदप्युपागमत् ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ऽरण्यकांडे त्रिपष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ सदीनो दीनया वाचालं क्षमणं वाक्यमब्रवीत् ॥ शीघ्रं लक्ष्मणजानी हि गत्वा गोदावरीं सीतापद्मान् यत्तुंगला ॥ एवमुक्त स्तुरामेण लक्ष्मणः पुनरेव हि ॥ २ ॥ नदीं गोदावरीं रम्यां जगाम लघुविक्रमः ॥ तालं लक्ष्मणस्तीर्थवतीं विचित्राराममब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैनां पश्यामि तीर्थं पुक्रोश तो न शृणोति मे ॥ कंठुसादेशमापन्नावैदेहीक्षेत्रनाशिनी ॥ ४ ॥

समझकर न गिना बरत वह एक बारही धीरजको छोड़कर फिर महा दुःखमें डूब गये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणवा० आदि० अ० भाषाटीकायां त्रिपष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ रावणकी हममें दृढ मनुष्यबुद्धि होजाय इस कारण फिर विलाप करने लगे दीन भावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ ॥ १ ॥ किं, सीता कमल फूल लेनेको तो वहां नहीं चली गई हैं ? जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी फिर ॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरके गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारों ओर जरा २ करके ढूँढ़ माल रामचन्द्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि, हमने सबही घाटोंपर ढूँढ़ा परन्तु कहीं पर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्कोने न सुना । हे आर्य ! जाने कौन देगमें डेरा ठाढ़ा करिणी जानकीजी चली गई हैं ॥ ४ ॥

कारणसे शोकहत हमको बतला दीजिये कि, हमारी प्रिया कहां चली गई अथवा कौन उनको हरकर ले गया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकमें ऐसा कुछ नहीं है जो नित्यही तुम्हारे ज्ञान मार्गमें विदित न होता हो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलम्पर्यादारक्षणी सीताने प्राण दिये हैं या वह किसीसे हरी गई हैं अथवा कहीं मार्गमें टिक रही हैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने शोकयुक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब नीतिरात्रिमें स्थित हो अर्दीन हुये सौमित्रि लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोड़कर धीरज धारण करके उत्साहयुक्त हो जानकीजीको ढूँढिये । उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनेमें भी कभी नहीं घबड़ाते ॥ १९ ॥ बड़े पौरुषी लक्ष्मणजीने जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंने उस वचनको चिन्तनीय

लोकेषु सर्वेषु नानास्ति किंचिद्यत्तेन नित्यं विदितं भवेत्तव ॥ शंसस्व वायो कुलपालिर्नोत्ताहा वापथिवर्तते वा ॥ १७ ॥ इतीव तं शोकविधेयदं हं रामं विसंज्ञं विलपंतमेव ॥ उवाच सौमित्रि दीनसत्त्वो न्याय्ये स्थितः कालयुतं च वाक्यम् ॥ १८ ॥ शोकं विमृज्या धृतिं भजस्व सोत्साहात्ताचास्तु विमार्गणे स्याः ॥ उत्साहवतो हिनरानलो केसीदंति कर्मस्वति दुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीव सौमित्रि मुद्रग्रपोरुपबृन्तमार्तं घृवंशसत्तमः ॥ न चिंतयामा सधृतिं विमुक्तवान् पुनश्च दुःखं महदप्युपागमत् ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ऽरण्यकांडे त्रिपष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ सदीनो दीनयावाचालक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ शीघ्रं लक्ष्मणजानीहि गत्वा गोदावरीं सीतापद्मानयानयितुं गता ॥ एवमुक्त स्तुरामेण लक्ष्मणः पुनरेव हि ॥ २ ॥ नदीं गोदावरीं स्मर्या जगाम लघुविक्रमः ॥ तालक्ष्मणस्तीर्थवर्ती विचित्राराममब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैनापश्यामि तीर्थेषु कोशतेन शृणोति मे ॥ कंठुसादेशमापन्नावैदेहीक्षेत्रनाशिनी ॥ ४ ॥

समझकर न गिना वरन वह एक धारही धीरजको छोड़कर फिर महा दुःखमें डूब गये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणवा० आदि० अर० भाषाटीकायां त्रिपष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ रावणकी हममें दृढ मनुष्यबुद्धि होजाय इस कारण फिर विलाप करने लगे दीन भावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ ॥ १ ॥ किं, सीता कमल फूल लेनेको तो यहां नहीं चली गई हैं ? जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी फिर ॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरके गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारों ओर जरा २ करके ढूँढपाछ रामचन्द्रजीसे श्रीमदी आकर कहा ॥ ३ ॥ कि, हमने सबही घाटोंपर ढूँढा परन्तु कहीं पर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्होंने न सुना । हे आर्य ! जाने कौन देगमें क्षेत्राकारिणी जाम्बवीजी बली गई हैं ॥ ४ ॥

गमुन्दरीको देखाई ॥ २८ ॥ बहुत सारे झरने जिसमें झरहं देखे सामनेवाले पर्वतसे पुकारकर बोले. हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुमने क्या उन नवीं उस पर्वतसे बोले जिस प्रकार सिंह छोटे मुँगोसे कडककर बोलताहै ॥ ३० ॥ हे पर्वत ! जब इस पर्वतने इनकी बातका कुछ उत्तर न दिया तब यह क्रुद्ध होकर वाली हमारी नीताजीको हमें दिखादो ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो यानों वह पर्वत जानकीजीको जानता हुआ श्रीरामचन्द्रजीको बताना

अभिरक्षंतिपुष्पाणिप्रकुर्वन्तोममप्रियम् ॥ एवमुक्तामहाबाहुर्लक्ष्मणंपुरुषर्षभम् ॥ २८ ॥ उवाचरामोयमात्मगिरिप्रसवणाकुलम् ॥ कञ्चित्सिन्धुतां नाथदृष्टासर्वांगसुन्दरी ॥ २९ ॥ रामारम्येवनोदेशमयाविरहितात्वया ॥ कुब्जोब्रवीद्विरितत्रसिंहःक्षुद्रमुगंयथा ॥ ३० ॥ तदिहमवणाहिमार्गोसीतां दर्शयपर्वत ॥ यावत्सान्वनिसर्वाणिनतेविध्वंसयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणपर्वतोमेथिलोप्रति ॥ दर्शयन्निवतांसीतानादर्शयतराघवे ॥ ३२ ॥ चाद्यशोपयिष्यामिलक्ष्मण ॥ ममवाणाग्निर्दग्धोभस्मीभूतोभविष्यसि ॥ ३३ ॥ असेव्यःसर्वतश्चैनस्तुण्डमुपप्लवः ॥ इमांवासारितं फ्रन्तिराक्षसस्यपदमदहत् ॥ यदिनाख्यातिमेसीतामद्यचन्द्रनिभाननाम् ॥ एवंग्रुपितोरामोदिवक्षन्निवचक्षुषा ॥ ३४ ॥ ददर्शभूमौनि तायाराक्षसस्यच ॥ त्रस्तायारागमकांक्षिण्याःप्रधावंत्याइतस्ततः ॥ ३५ ॥ राक्षसेनानुसृतायावेद्व्याश्चपदानितु ॥ ससर्मादियपरिक्रान्तिंसी चाहताया पन्तु राक्षकं भयसे नहीं बतया ॥ ३२ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वतसे फिर बोले कि तुम हमारे बाणानलकी अन्त अग्निसे भस्म हो जाओगे ॥ ३३ ॥ फिर तृण वृक्ष पट्टयादि जल जानेसे कोई तुम्हारा आश्रय न लेगा हे लक्ष्मण ! आज इस गोदावरी नदीकोभी शुष्क करदेंगे ॥ ३४ ॥ यदि यह मन हमारी चन्द्रमुत्ती सीतान्ते नहीं बतते तो हम ऐसाही करेंगे, इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजी क्रोधान्वित होकर यानों उनकोनेत्रोंसे भस्मही किये देतेथे ॥ ३५ ॥ इपर उपर देखते २ श्रीरामचन्द्रजीने पृथ्वीपर देखा जहां कि राक्षसके चरण चिह्न बनेथे, व उसी स्थानपर भयभीत और रामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छा किये इधर उपर दाँदनी तुंद ॥ ३६ ॥ राक्षसके अनुसरण करनेसे जानकीजीकीभी पैरोंके चिह्न उन चिह्नोंके बीचमें बने देखे, सीताजीके व राक्षसके पद एकमें मिले देख श्रीराम

इनके संकेतोसे जान पड़ता है कि मारो यह हमसे कुछ कहा चाहते हैं, लक्ष्मणजीसे ऐसा कहे उन मृगोंके देख पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी उन मृगोंते बोले ॥ १६ ॥ हे मृगो ! सीता कहाँ हैं ? यह कहतेही आंसू निकल आये वाणी गद्गद होगई, जब महाराज श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह सब मृग सहसा उठ खड़े हुए ॥ १७ ॥ और जिस दिशाको रावण जानकीजीको हरण कर लेयाथा उसी दक्षिण दिशाको मुखकर आकाशकी ओर निहार २ देखने लगे ॥ १८ ॥ वह सब मृगण बारंबार उसी दक्षिण दिशाकी ओर मुखकर, चिघड़ते, और फिर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख दक्षिणको दौड़ते ॥ १९ ॥ मृगणोंकी यह धावमान होने और शब्दोंकी दशा देख लक्ष्मणजीने उनके हृदयका वृत्तान्त जान लिया ॥ २० ॥ अत्यन्त धीमान् लक्ष्मणजी अपने चड़े भाता रामचन्द्रजीसे आरतकी समान बोले कि हे देव ! जब आपने

बहुकामावहिमेङ्गितान्युपलक्ष्ये ॥ तांस्तुदृष्ट्वानरव्यात्रोराधवःप्रत्युवाचह ॥ १६ ॥ कसीतेतिनिरीक्षन्वैवाप्संरुद्धयागिरा ॥ एवमुक्तानरेन्द्रेण तेमृगाःसहस्रोत्थिताः ॥ १७ ॥ दक्षिणाभिमुखाःसर्वेदर्शयंतोनभःस्थलम् ॥ मैथिलीह्रियमाणसादिश्यामभ्यपद्यत ॥ १८ ॥ तेनमार्गेणगच्छंतोनिरीक्षंतैराधिपम् ॥ येनमार्गचभूमिचनिरीक्षतेस्मतेमृगाः ॥ १९ ॥ पुनर्नंदंतोगच्छंतिलक्ष्मणेनोपलक्षिताः ॥ तेषांचनसर्वस्वलक्ष्यामासचैंगितम् ॥ २० ॥ उवाचलक्ष्मणोधीमाञ्जयेष्टभ्रातरमार्तवत् ॥ कसीतेतित्वयापृष्टायदिमसहस्रोत्थिताः ॥ २१ ॥ दर्शयंतिक्षितिचैवदक्षिणादिशमृगाः ॥ साधुगच्छावहेवदिशमेतांचनेर्ऋतीम् ॥ २२ ॥ यदितस्यागमःकश्चिदायावासाथलक्ष्यते ॥ वाढमित्येवकाकुत्स्थःप्रस्थितो दक्षिणादिशम् ॥ २३ ॥ लक्ष्मणानुगतःश्रीमान्वीक्षमाणोवसुंधराम् ॥ एवंसभापमार्णोतावन्योन्यंभ्रातराबुभौ ॥ २४ ॥ वसुंधरायांपतितपुष्पमार्गमपश्यताम् ॥ पुष्पवृष्टिनिपतितांद्वारामोमहीतले ॥ २५ ॥ उवाचलक्ष्मणवीरोदुःखितोदुःखितवचः ॥ अभिजानामिपुष्पाणितानीमा नीहलक्ष्मण ॥ २६ ॥ अपिनद्वानिवेद्व्यामयादत्तानिकानने ॥ मन्येसूर्यश्चवायुश्चमेदिनीचयशस्विनी ॥ २७ ॥

इन मृगोंसे पूछा कि सीता कहाँ हैं ? तब यह सब एका एक उठ खड़े होकर ॥ २१ ॥ दक्षिण दिशाकी ओर पृथ्वीको दिखाते लगे । इस कारण चलिये हम लोगभी इसी दक्षिण दिशाको चले चलें ॥ २२ ॥ क्योंकि कदाचित् आपही सीता वहां मिलजायें अथवा उनकी प्रामिका कोई उपाय मिल जाये, तब श्रीरामचन्द्रजी ऐसाहीहो कहकर दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् २ लक्ष्मणजी आगे २ आप चले दोनों भाई वन इधर उधर देखते भालते व आपसमें बात चीत करते २ चले ॥ २४ ॥ आगे चलकर देखा तो कहींपर फूट पड़े हैं । पृथ्वीपर फूलोंकी वृष्टि पड़ी देखकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ २५ ॥ चड़े दुःखित हो दुःखित लक्ष्मणजीसे बोले, कि हे लक्ष्मण ! हम जानते हैं कि यह वही पुष्प है ॥ २६ ॥ जो हमने वैदेहीजीको दिये थे और उन्होंने यह गान अपने अंगोंमें धारण किये थे, यह

पडा है ॥ ४७ ॥ ओ जगह २ पटकने व दे मारनेसे दूट गया है । यह किसीके स्थक लम्बे २ बाँणभी गुणक विभुणास भुगत ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मण ! दूट दूट पड ६
 जिनको देखनेसे भय उत्पन्न होता है । चाणोसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पड़े हैं ॥ ४९ ॥ देखो ! चातुक और बाण हाथमें लिये किसीका मागथिभी मृतक पडा
 है । दंशों यह किसी पुरुषांशसके जानेका प्रगट मार्ग बना है ॥ ५० ॥ हे शुभदर्शन ! किस कारणसे अतीव कठिनहृदय कामरूप निगाचरणोंके महान हमारा
 पहलेसे यतगुण अधिक धर होगया ? तुम देखलेना कि इससे उनके जीवनका अंत होगा ॥ ५१ ॥ या तो राक्षसोंने सीताको हर लिया वा भक्षण कर लिया, अथवा
 उन तपस्विनीने प्राणत्याग करदिया होगा; किन्तु जब इस महाअरण्यमें जानकीजी भरणके निकट पहुँची तब पतिव्रत धर्मनेभी उनकी रक्षा न की ॥ ५२ ॥
 हे लक्ष्मण ! इस प्रकारसे जब कि जानकी हरी गई और उस समय धर्मनेभी उनकी रक्षा न की तब मंसारमें ईश्वरीयगणकिसम्पन्न और कौन गुरुप हमारा भिय कर्मेमें
 अपविद्धश्चभग्नश्चकस्यसांश्रामिकोरथः ॥ ४८ ॥ कस्येमेनिहतावाणाःप्रकीर्णोवोरदर्शनाः ॥
 शराचरौशरैःपूर्णाविध्वस्तौपश्यलक्ष्मण ॥ ४९ ॥ प्रतोदाभीपुहस्तोऽयंकस्यवासासार्थिर्हतः ॥ पदवीपुरुषस्यैषाव्यक्तंकस्यापिरक्षसः ॥ ५० ॥
 चैरंशतगुणंपश्यममतेर्जीवितान्तकम् ॥ सुघोरहृदयैःसौम्यराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ ५१ ॥ हतामृतावावेदंहीमक्षितावातपस्विनी ॥ नधर्मद्वायते
 सीतांद्वियमाणांमहावने ॥ ५२ ॥ भक्षितायांहिवेदेद्यांहतायामपिलक्ष्मण ॥ केहिलोकेप्रियंकर्तुराताःसौम्यममेश्वराः ॥ ५३ ॥ कर्तारमपिलोका
 नागुरंकरुणवेदिनम् ॥ अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ५४ ॥ मृदुलोकहितेयुक्तंदांतंकरुणवेदिनम् ॥ निर्वार्यइतिमन्यंतेदूनंमांविदेश
 श्वराः ॥ ५५ ॥ मांप्राप्यहिगुणोदोषःसंवृतःपश्यलक्ष्मण ॥ अद्येवसर्वभूतानारक्षसामभावायच ॥ ५६ ॥ संहत्येवशशिज्योत्स्नांमहान्सूर्यइवो
 दितः ॥ संहत्यैवगुणान्सर्वान्ममतेजःप्रकाशते ॥ ५७ ॥

ममर्थ होगा ? ॥ ५३ ॥ प्राणीगण इनही सब कारणोंसे अज्ञानप्रयुक्त समस्त लोकोंके कर्त्ता मूढ़ परमदयालु सुरवर परमेश्वरको नहीं मानते हैं ॥ ५४ ॥ हमारा
 स्वभाव अतिशय कोमल है, और सर्वदाही हम सब लोकोंका हितकार्य करते हैं और करुणा सहित उनका शुभाशुभ विधान करते हैं परन्तु हम सीताका उद्धार न करसके,
 इस कारण इन्द्रादि देवता गण निश्चयही हमको वीर्यरहित समझेंगे ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण ! विचार करके देखो ! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त
 गुण दोषरूपमें बदल गये इन दोषोंसे हम छिप गये, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इससे अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेके लिये ॥ ५६ ॥
 चन्द्रमाकी चांदनीको मिताय, महासूर्यके समान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो, जो कि सुशीलवा इत्यादि गुणोंको छोड़ अब मनुष्यको ठीककरनेहैं ॥ ५७ ॥

चन्द्रजीने बड़ा कोथ किया ॥ ३७ ॥ धनुष व तूणीर (तरङ्गस) कोभी दूया फूटा पृथ्वीपर पड़ा देख रथकोभी रत्ती २ चूर्ण देख व्याकुलहो चाकित होते हुये श्रीराम चन्द्रजी अपने प्यारे भ्रातासे बोले ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो जानकीजीके गहनोंके सुवर्णविन्दु और बहुत सारी मालायें यहां पर टूटी पड़ी हैं ॥ ३९ ॥ हे भइया ! इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्णविन्दुसम विचित्रित रक्तविन्दुसमूह छिटकरहे हैं यह सीताका तो रुधिर नहीं है ॥ ४० ॥ हे भइया, लक्ष्मण ! हमको जान पड़ताहै कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांटचूट उनको खाडाला ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण ! ऐसा समझमें आताहै कि सीताके लिये झगड़ा होनेसे यहां दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआथा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे सौम्य ! किसीका यह मुक्तामणिसे बना हुआ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वीपर

भग्नधनुश्चतूणीचविकीर्णबहुधारथम् ॥ संभ्रातहतदयोरामःशशंसभ्रातरंश्रियम् ॥ ३८ ॥ पश्यलक्ष्मणवेदेह्याःकीर्णाःकनकविंदवः ॥ भूषणानां हि सो मित्रेमाख्यानिविविधानिच ॥ ३९ ॥ तप्तविंदुनिकाशैश्चित्रैःक्षतजविंदुभिः ॥ आवृतं पश्यसौमित्रेसर्वतो धरणीतलम् ॥ ४० ॥ मन्येलक्ष्मणवे देहीराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ भित्त्वा भित्त्वा विभक्तावाभक्षितावाभविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यानिमित्तं सीतायाद्वयोर्विवदमानयोः ॥ बभूवयुद्धं सो मित्रेवोरं राक्षसयोरिह ॥ ४२ ॥ मुक्तामणिचित्तचेदं रमणीयं विभूषितम् ॥ धरण्यापतितं सौम्यकस्य भग्नं महद्भुजः ॥ ४३ ॥ राक्षसानामिदं वत्स सुराणामथवापिवा ॥ तरुणादित्यसंकाशं देवदूयुलिकाचितम् ॥ ४४ ॥ विशीर्णपतितं भूमीकवचं कस्य कांचनम् ॥ छत्रं शतशालाकंच दिव्यमा ल्योपशोभितम् ॥ ४५ ॥ भग्नदंडमिदं सौम्यभूमौ कस्य निपातितम् ॥ कांचनोरच्छदाश्रमे पिशाचवदनाः खराः ॥ ४६ ॥ भीमरूपामहाकायाः क स्यान्निहतारणे ॥ दीप्तपावकसंकाशोद्युतिमान्समरध्वजः ॥ ४७ ॥

दूया हुआ पड़ाहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स ! या तो यह धनुष राक्षसोंका है वा देवताओंका है प्रातःकालके सूर्यकी समान अरुण (लाल) वैदूर्यमणिकी मूठ इसमें लगीहै ॥ ४४ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवचभी रत्ती २ दूया फूटा हुआ पृथ्वीपर पड़ाहै और यह शत २ शालाकासमन्वित दिव्यमालाशोभित छत्र किसका भूमि पर पड़ाहै ॥ ४५ ॥ हे सौम्य ! इसका दंडा टूट गयाहै किसने तोड़ाहै व मोनेकी गर्दनी पड़ी गिराचों समान मुखवाले गधे भी ॥ ४६ ॥ महा भयंकर व बड़े आका खाटे किमीके रणमें मरे पड़ेहैं । फिर दीप्तिमान् अधिक समान अतिदेदीप्यमान समरध्वज स्वाधीका प्रकाश करनेवाला छत्रमार्ग

पडाई ॥ ४७ ॥ जो जगह २ पटकने ब दे मारनेसे टूट गया है । वह किसीके रथके लम्बे २ बाँणभी सुवर्णके विभूषणोंसे भूषित ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मण ! दूटे फूटे पडे हैं
 जिनको देखनेसे भय उत्पन्न होता है । बाणोंसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पडे हैं ॥ ४९ ॥ देखो ! चाबुक और बाण हाथमें लिये किसीका माग्यिभी मृतरु पडा
 है । देखो यह किसी पुरुषराक्षसके जानेका प्रगट मार्ग बना है ॥ ५० ॥ हे शुभदर्शन ! किस कारणसे अतीव कठिनहृदय कामरूप नियाचरणोंके सहित हमारा
 पहलेमे यतगुण अधिक धैर होगया ? तुम देखलेना कि इससे उनके जीवनका अंत होगा ॥ ५१ ॥ या तो राक्षसोंने सीताको हर लिया या भक्षण कर लिया, अथवा
 उन तपस्विनीने प्राणत्याग करदिया होगा; किन्तु जब इस महाअरण्यमें जानकीजी मरणके निकट पहुँची तब पतिव्रत धर्मेभी उनकी रक्षा न की ॥ ५२ ॥
 हे लक्ष्मण ! इस प्रकारसे जब कि जानकी हरी गई और उम समय धर्मेभी उनकी रक्षा न की तब संसारमें ईश्वरीयगणकिसम्पन्न और कौन पुरुष हमारा प्रिय कर्नमें
 अपविद्धभक्ष्यभक्ष्यसांश्रामिकोरथः ॥ रथाक्षमात्राविशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥ ४८ ॥ कस्येमेनिहतावाणाःप्रकीर्णाचोरदर्शनाः ॥
 शराचरीशरैःपूर्णांविध्वस्तोपश्यलक्ष्मण ॥ ४९ ॥ प्रतोदाभीपुहस्तोऽयंकस्यवासारथिर्हतः ॥ पदवीपुरुषस्येपाव्यक्तंकस्यापिरक्षसः ॥ ५० ॥
 वंशतगुणंपश्यममतेर्जोवितान्तकम् ॥ सुचोरहृदयैःसोम्यराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ ५१ ॥ हतामृतावावेदंहीभक्षितावातपस्विनी ॥ नयर्मद्वायते
 सीतांहियमाणांमहावने ॥ ५२ ॥ भक्षितायांहिवेदेद्वाहतायामपिलक्ष्मण ॥ केहिलोकैप्रियंकंतुरक्षाःसोम्यममेधराः ॥ ५३ ॥ कर्तारमपिलोका
 नांशूरंकरुणवेदिनम् ॥ अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ५४ ॥ मृदुलोकहितयुक्तंदांतंकरुणवेदिनम् ॥ निर्वायइतिमन्यंतेतूनमांत्रिदश
 धराः ॥ ५५ ॥ मांश्राप्यहिगुणोदोपःसंवृत्तःपश्यलक्ष्मण ॥ अद्येवसर्वभूतानांराक्षसामभावायच ॥ ५६ ॥ संहत्येवशशिज्योत्स्नांमहान्मूर्यइवो
 दितः ॥ संहत्येवगुणान्सर्वान्ममतेजःप्रकाशते ॥ ५७ ॥
 ममर्थ होगा ? ॥ ५३ ॥ प्राणीगण इनही सब कारणोंसे अज्ञानप्रयुक्त समस्त लोकोंके कर्त्ता मुझ परमदयालु सुखर परमेश्वरको नहीं मानते हैं ॥ ५४ ॥ हमारा
 स्वभाव अनियाय कोमल है, और सर्वदाही हम सब लोकोंका हितकार्य करते हैं और करुणा सहित उनका शुभाशुभ विधान करते हैं परन्तु हम सीताका उद्धार न करसके,
 इस कारण इन्द्रादि देवता गण निश्चयही हमको वीररहित समझेंगे ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण ! विचार करके देखो ! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त
 गुण दोषरूपमें बदल गये इन दोषोंसे हम छिप गये, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इससे अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेके लिये ॥ ५६ ॥
 चन्द्रमाकी चांदनीको मिटाए, महासूर्यके तमान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो, जो कि मुरीलवा इत्यादि गुणोंको छोड अब सबको ठीककरते हैं ॥ ५७ ॥

चन्द्रजीने बड़ा कोध किया ॥ ३७ ॥ धनुष व तूणीर (वरकस) कोभी टूटा फूटा पृथ्वीपर पड़ा देख रथकोभी रत्नी २ चूर्ण देख व्याकुलहो चाकित होते हुये श्रीराम चन्द्रजी अपने प्यारे भातासे बोले ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो जानकीजीके गहनोंके सुवर्णविन्दु और बहुत सारी मालायें यहाँ पर टूटी पड़ी हैं ॥ ३९ ॥ हे भइया ! इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्णविन्दुसम विचित्रित रक्तविन्दुसमूह छिटकरहे हैं यह सीताका तो रुधिर नहीं है ॥ ४० ॥ हे भइया, लक्ष्मण ! हमको जान पड़ताहै कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांटचूंट उनको खाडाला ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण ! ऐसा समझमें आताहै कि नीताके लिये झगडा होनेसे यहाँ दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआथा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे सौम्य ! किसीका यह मुक्तामणिसे बना हुआ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वीपर

भग्नधनुश्चतूणीचविकीर्णबहुधारथम् ॥ संभ्रातृदयोरामःशशंभ्रातरं प्रियम् ॥ ३८ ॥ पश्यलक्ष्मणवेदेह्याःकीर्णाःकनकविंदवः ॥ भूषणानां हि सौ मित्रमाल्यानि विविधानि च ॥ ३९ ॥ तप्तविंदुनिकाशैश्च त्रैक्षतजविंदुभिः ॥ आवृतं पश्यसौ मित्रे स च तो धरणीतलम् ॥ ४० ॥ मन्ये लक्ष्मणवै देहीराक्षसैः कामरूपिभिः ॥ भित्त्वा भित्त्वा विभक्ता वा भक्षिता वा भविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यानिमित्तं सीतायाद्वयोर्विवदमानयोः ॥ बभूव युद्धं सौ मित्रे चोरं राक्षसयोरिह ॥ ४२ ॥ मुक्तामणिचित्तं चेदं रमणीयं विभूषितम् ॥ धरण्यापतितं सौम्यकस्य भग्नमहद्भुजः ॥ ४३ ॥ राक्षसानामिदं वत्स सुराणामथवा पिवा ॥ तरुणादित्यसंकाशं विंदूयुलिकाचितम् ॥ ४४ ॥ विशीर्णपतितं भूमौ कवचं कस्य कांचनम् ॥ छत्रं शतशलाकं च दिव्यमा ल्योपशोभितम् ॥ ४५ ॥ भग्नदंडमिदं सौम्यभूमौ कस्य निपातितम् ॥ कांचनोरच्छदाश्रेमे पिशाचवदनाः खराः ॥ ४६ ॥ भीमरूपामहाकायाः क स्ववानिहतारणे ॥ दीप्तपावकसंकाशोद्युतिमान्समरध्वजः ॥ ४७ ॥

टूटा हुआ पड़ाहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स ! या तो यह धनुष राक्षसोंका है वा देवताओंका है प्रातःकाटेके सूर्यकी समान अरुण (लाल) वेदूर्यमणिकी मूठ इतने लगीहै ॥ ४४ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवचभी रत्नी २ टूटा फूटा हुआ पृथ्वीपर पड़ाहै और यह शत २ शलाकासमन्यित दिव्यमालाशोभित छत्र किसका भूमि पर पड़ाहै ॥ ४५ ॥ हे सौम्य ! इसका दंडा टूट गयाहै किसने तोड़ाहै व मोनेकी गर्दनी पड़ी गिराचों समान मुरवाले गधे भी ॥ ४६ ॥ महा भयंकर प पड़े आका खाटे किमीके रणमें मरे पड़े हैं । फिर दीप्तिमान् अधिके गमान् अतिदीप्तिमान् गमरमें स्वाभीका भक्तान् करनेवाला ध्वजायुक्त किसीका मुख्यमें काम देवेवाला रथभी

क्या कहें, सुर, असुर, यक्ष और राक्षसों के समस्तही लोक ॥ ६७ ॥ हमारे बाणजालसे संड २ होकर गिरेंगे आज हम बाणोंको छोड़कर इन समस्त लोकोंको मर्यादा भंग्य करेंगे ॥ ६८ ॥ हे लक्ष्मण ! भिया बंदेहीजी मरही गईहों अथवा हरही गईहों सो किसी अवस्थामें हों यदि ब्रह्मादि देवगण उन्हें हमको न दें ॥ ६९ ॥ हम चमकर सहित इस सब जगत्का विनाश कर डालेंगे और जबतक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक बाणोंसे चराचरको संतापित करेंगे ॥ ७० ॥ यह कहकर क्रोधमें श्रीरामचन्द्रजीकी आँखें लाल २ हो आईं, होठ फड़कने लगे, श्रीरामचन्द्रजीने चीर वल्कल मृगचर्म और जटाजूट कसकर धोया ॥ ७१ ॥ उस कालमें धीमान् रामचन्द्रजीने कंधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होने लगा कि जैसे पूर्वे

यदुयानिपतिष्यतिचार्यैः शकलीकृताः ॥ निर्मर्यादानि मौलिकान् करिष्याम्यद्यसायकैः ॥ ६८ ॥ ह्यतांमृतांवासीभिर्मेनदास्यंतिममेधराः ॥ तथारूपं द्विवेदेनंदास्यंति यद्विप्रियाम् ॥ ६९ ॥ नाशयामि जगत्सर्वत्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ यावदर्शनमस्यावितापयामि चसायकैः ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वाको भ्रताभ्रातः स्फुरमाणोऽष्टसंघटः ॥ वल्कलाजिनमावध्यजदाभारमबंधयत् ॥ ७१ ॥ तस्य कुक्षस्य रामस्य तथाभूतस्य धीमतः ॥ त्रिपरंजयुपः पूवरुद्रस्य चरभानुः ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणादथ चादाय रामो निष्पीडयकार्मुकम् ॥ शरमादाय संदीप्तं चोरमाशीविपोपमम् ॥ ७३ ॥ संदेधे वनुपि श्रीमात्रामः परंपुरंजयः ॥ युगाताभिरिव कुक्षद्वंद्वं च नमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ यथाजरायथा मृत्युर्यथा कालो यथा विधिः ॥ नित्यं न प्रतिहन्यंते सर्वभूते पुलक्ष्मण ॥ तथा हं क्रोधं न गुणो न निवार्योऽस्म्यं संशयम् ॥ ७५ ॥ पुरेव मे चारुदती मर्निदितां दिशंति सीतां यद्विवाद्यमेथिलीम् ॥ संदेव गंधर्वमनुष्यपन्नगं जगत्सशैलं परिर्यंत्याम्यहम् ॥ ७६ ॥ इत्यापि श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

कालमें रुद्रजी त्रिपुर पर करनेको तैयार हुण्ये ॥ ७२ ॥ अनन्तर उन्होंने लक्ष्मणजीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ़ रूपमें धार करके संप्रसद्धा घोर वदीप नाचक ॥ ७३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने उन धनुष पर चढ़ाया । और मलयकालकी अधिकसे समान क्रोधमें भरकर कहने लगे ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मण ! जरा, मनु, लाल, और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिप्रायके रोकनेमें नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधित हुए हैं । निःसन्देह कोई हमको निवारण नहीं कर सकेगा ॥ ७५ ॥ मुदन्तगुप्त निन्दा रहित मिथिलराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग और पर्वत सहित समस्त जगत् मर्दित कर डालेंगे ॥ ७६ ॥ इत्यापि श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

हे लक्ष्मण ! तुम देखते रहो कि अब यश, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, किन्नर, वा यन्त्र्य कोई भी सुख प्राप्त करने की समर्थ नहीं होगा ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण ! आज हमारे पाणमधून गमन आरुण व्याप्त हो जायगा, देखो आज हम त्रिलोकवासी प्राणियों के गमनागमन रोक देंगे आज हम त्रिलोकीको काल के कवर में निक्षेप करेंगे ॥ ५९ ॥ जब हम गमनागमन रोक देंगे तो इससे ग्रहों की चाल रुक जायगी चंद्रमा अन्तर्हित हो जायगे, वायु, अग्नि, और सूर्य इत्यादिकी युतिके नाश हो जायगे, नय जगह गात्रा अंधकार छा जायगा ॥ ६० ॥ सबही शैलशिखर मथित हो जायगे, समुद्र सुख जायगे, वृक्षलता और गुल्म विध्वंस हो जायगे, और एक एक नाथही उजड़ जायगे ॥ ६१ ॥ हम तीनों लोकोंका नारा कर देंगे यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको न देंगे ॥ ६२ ॥ तो हमारा पराक्रम

नयशानगन्धर्वानपिशाचानराक्षसाः ॥ किन्नराचामनुव्यावासुखंप्राप्स्यंतिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ ममास्त्रवाणसंपूर्णमाकाशं पश्यलक्ष्मण ॥ असं पातं करिष्यामि द्वात्रैलोक्यचारिणाम् ॥ ५९ ॥ सन्निरुद्धग्रहगणमाचारितनिशाकरम् ॥ विप्रनष्टानलमरुद्भास्वरुधुतिसंवृतम् ॥ ६० ॥ विनिमथितशैलाग्रं शुष्यमाणजलाशयम् ॥ ध्वस्तद्रुमलतागुल्मं विप्रणाशितसागरम् ॥ ६१ ॥ त्रैलोक्यं तु करिष्यामि संयुक्तकालकर्मणा ॥ न ते कुशलिनो सीता प्रदास्यंति मम भ्राता ॥ ६२ ॥ अस्मिन्मुहुर्हंतो सीमित्रे मम द्रक्ष्यंति विक्रमम् ॥ नाकाशमुत्पतितं सर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ६३ ॥ समकुलममयं दंजगत्पश्याद्यलक्ष्मण ॥ आकर्णपूर्णं रिपुभिर्जोवलोकदुरावरैः ॥ ६४ ॥ करिष्येमथिलीहेतोरपि शाचमराक्षसम् ॥ मम रोपप्रयुक्तानां त्रिशूलानां वलंसुगः ॥ ६५ ॥ द्रक्ष्यंत्यद्य विमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् ॥ नैव देवान् देतेयानपि शाचानराक्षसाः ॥ ६६ ॥ भविष्यंति मम क्रोधा त्रैलोक्येऽपि प्रणाशिते ॥ देवदानवशृणां लोकायैरक्षसामपि ॥ ६७ ॥

देवता, हे लक्ष्मण ! अभी मुहुर्हंतो व हमारे पराक्रमको देखें कि, इस समय आकाशमें भी कूदकर कोई न बच सकेगा ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण ! आज हमारे चारों दुर्गम तुरंदुपे धराजाल से निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महाव्याकुल मर्यादाशून्य हो जायगा, और मृग व पक्षीगण सबही सब भौत से भ्रान्त और भिन्न हो जायंगे ॥ ६४ ॥ आज हम सीता के लिये कानतक प्रत्यंचा खींच छोड़े हुए वाणों से सब संसार पिशाच और राक्षसों से रहित कर देंगे ॥ ६५ ॥ इस भेदागम से कोई भी हमारे इन वाणोंको निवारण नहीं कर सकेगा, आज देवता लोग देखेंगे कि मनुष्यों के समुद्र बाण हम करके रोप और क्रोध में भरकर चलाये हुए शिलानी २, सुगन्ध गारुर गिरने दें न देवता न देव्य न पिशाच न राक्षस ॥ ६६ ॥ जब हमारे क्रोध में तीनों लोकोंका नाश हुआ तब कोई भी रक्षा न पायेगा अधिक

क्या कहें, सुर, असुर, यक्ष और राक्षसों के समस्तही लोक ॥ ६७ ॥ हमारे वाणजालसे खंड २ होकर गिरेंगे आज हम वाणोंको छोड़कर इन समस्त लोकों में
 मर्यादा शून्य करेंगे ॥ ६८ ॥ हे लक्ष्मण ! प्रिया वंदेहीजी मरही गईहों अथवा हरही गईहों सो किसी अवस्थामें हों यदि ब्रह्मादि देवगण उन्हें हम
 देंगे ॥ ६९ ॥ हम चगाचर सहित इस सब जगत्का विनाश कर डालेंगे और जगतक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक वाणोंसे चराचरको संतुष्ट
 करेंगे ॥ ७० ॥ यह कहकर क्रोधसे श्रीरामचन्द्रजीकी आंखें खल २ हो आई, होठ फडकने लगे, श्रीरामचन्द्रजीने चीर बल्कल मृगचर्म और जटाजूट क
 बांधा ॥ ७१ ॥ उस कालमें धीमान् रामचन्द्रजीने क्रोधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होने लगा कि जेने

बहुभानिपतिव्यंतिचाणोचैः शकलीकृताः ॥ निर्मर्यादानिर्माल्लोकान्करिष्याम्यद्यसार्यकैः ॥ ६८ ॥ हतांमृतांवासीभिर्जेनदास्यंतिममेश्वराः ॥ तथाहृ
 दिर्वेदेनंदास्यंतियदिप्रियाम् ॥ ६९ ॥ नाशयामिजगत्सर्वलोक्यंसचराचरम् ॥ यावददर्शनमस्यवैतापयामिचसार्यकैः ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वा नि
 यताम्रात्रः स्फुरमाणोऽसुप्तपुटः ॥ बल्कलाजिनमावध्यजटाभारमधंयत ॥ ७१ ॥ तस्यकुक्ष्यरामस्यतथाभूतस्यधीमतः ॥ त्रिपरजद्युपःपूर्वरुद्रः
 भीतनुः ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणादथचादायराभोनिष्पीडयकार्मुकम् ॥ शरमादायसदीप्तं चोरमाशीविपोपमम् ॥ ७३ ॥ संदधेवनुपिथ्रीमात्रानः
 ॥ ७४ ॥ युगांताग्रिवकुक्षद्वंद्वंचनमवधीत् ॥ ७५ ॥ यथाजरायथामृत्युर्यथाकालोयथाविधिः ॥ नित्यंनप्रतिहन्त्यंतेसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥
 थाहंक्रोधमयुक्तोनिवायोंस्म्यसंशयम् ॥ ७६ ॥ पुरेवमेचारुदतीमनिदितांदिशंतिसीतांयदिवाद्यमेथिलीम् ॥ सदेवगंधर्वमनुष्यपन्नगंजगत्संश
 याम्यहम् ॥ ७७ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे चतुःपष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

न रुद्रजी त्रिपुर वर करनेको तैयार हुएथे ॥ ७२ ॥ अनन्तर उन्होंने लक्ष्मणजीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ़ रूपमें धार करके सर्पसदृश

पायक ॥ ७३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने उन धनुष पर चढ़ाया । और प्रलयकालकी अधिके समान क्रोधमें भरकर कहने लगे ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मण ! त
 उ, और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिमात्रके रोकनेसे नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधित हुए हैं । निःसन्देह कोई हमको निवारण नह
 सरेगा ॥ ७५ ॥ मुदन्तयुक्ता निन्दा रहित मिथिलराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग और पर्वत सहित समस्त जगत्
 का डालेंगे ॥ ७६ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां चतुःपष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

हे लक्ष्मण ! तुम देखते रहो कि अवयव, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, किन्नर, वा मनुष्य कोईभी सुख प्राप्त करनेको समर्थ नहीं होगा ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण ! आज हमारे वाणसमूहमें समस्त आकाश व्याप्त हो जायगा, देखो आज हम त्रिलोकवासी प्राणियोंके गमनागमन रोक देंगे आज हम त्रिलोकीको कालके कवरमें निक्षेप करेंगे ॥ ५९ ॥ जब हम सबका गमनागमन रोक देंगे तो इससे ग्रहोंकी चाल रुक जायगी चंद्रमा अन्तर्हित हो जायगे, वायु, अग्नि, और सूर्य इत्यादिकी श्रुतिके नाशहोनेसे, सब जगह गाढा अंधकार छा जायगा ॥ ६० ॥ सबही शैलशिखर मथित हो जायगे, समुद्र सुख जायगे, वृक्षलता और गुल्म विध्वंस होजायगे, और वन एक साथही उजड़ जायगे ॥ ६१ ॥ हम तीनों लोकोंका नाश करदेंगे यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको न देंगे ॥ ६२ ॥ तो हमारा पराक्रम

नैवयक्षानगंधर्वानपिशाचानराक्षसाः ॥ किन्नरावामनुष्यावासुखंप्राप्स्यंतिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ ममास्त्रवाणसंपूर्णमाकाशंपश्यलक्ष्मण ॥ अस्पातंकरिष्यामिद्वयत्रैलोक्यचारिणाम् ॥ ५९ ॥ सन्निरुद्धग्रहणमावारतिनिशाकरम् ॥ विप्रनयानलमरुद्रास्तरद्युतिसंवृतम् ॥ ६० ॥ विनिर्मथितशैलांशुष्यमाणजलाशयम् ॥ ध्वस्तद्रुमलतागुलमंविप्रणाशितसागरम् ॥ ६१ ॥ त्रैलोक्यंतुकरिष्यामिसंयुक्तंकालकर्मणा ॥ नतेकुशलिनोसीतांप्रदास्यंतिममेश्वराः ॥ ६२ ॥ अस्मिन्मुहुर्तेसोमित्रेममद्रक्ष्यंतिविक्रमम् ॥ नाकाशमुत्पतिष्यंतिसर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ६३ ॥ समकुलममर्यादंजगत्पश्याद्यलक्ष्मण ॥ आकर्णयैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥ ६४ ॥ करिष्येमथिलीहितोरपिशाचमराक्षसम् ॥ ममरोपप्रयुक्तानां विशिखानांवलंसुराः ॥ ६५ ॥ द्रक्ष्यंत्यद्यविमुक्तानाममर्यादूरगामिनाम् ॥ नैवदेवानंदेतयानपिशाचानराक्षसाः ॥ ६६ ॥ भविष्यंतिममक्रोधा त्रैलोक्येऽपिप्रणाशिते ॥ देवदानव्यक्षाणालोकायेरक्षसामपि ॥ ६७ ॥

देखना. हे लक्ष्मण ! इसी मुहुर्तमें व हमारे पराक्रमको देख कि, इस समय आकाशमेंभी कूदकर कोई न वच सकेगा ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण ! आज हमारे चारोंके मुखमें द्युर्देवोंके गरजालते निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महाव्याकुल मर्यादाशून्य हो जायगा, और मृग व पक्षीगण सबही सयभौंतिसे भ्रान्त और विनष्ट होजायंगे ॥ ६४ ॥ आज हम सीताके लिये कानतक प्रत्यंचा खेंच छोड़े हुए बाणोंसे सब संसार पिशाच और राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ ६५ ॥ इस मंगलमें कोईभी हमारे इन बाणोंको निवारण नहीं करसकेगा, आज देवता लोग देखेंगे कि समूहके समूह बाण हम करके रोप और क्रोधमें भरकर चलाये हुए क्रिपानी २ दूरग जाकर गिरने दें न देवता न दैत्य न पिशाच न राक्षस ॥ ६६ ॥ जब हमारे क्रोधमें तीनों लोकोंका नाश हुआ तब कोईभी रक्षा न पायेगा अधिक

व सरित् सागर ॥ ११ ॥ और शील कोई भी आपका अभिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अभिय साधुलोग नहीं कर सकते । हे राजन् ! जिसने सीताको दान
 कियाहे इस समय उस जनका रोज करना आपका कर्त्तव्य हुआहे ॥ १२ ॥ आप हमारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिए, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र
 कीकं हरनेवालेको न पावेंगे, और इस प्रकार शान्तभावसे दूँदनेपरमी इन्द्रदि देवगण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र ! पीछेसे आप उनको यथायोग्य
 कोतुदारप्रणाशतिसाधुमन्यतराधव ॥ सरितःसागराःशेलादेवगंधर्वदानवाः ॥ ११ ॥ नालंतेविप्रियंकुंदीक्षितस्येवसाधवः ॥ येनराजन्हता
 सीतातमन्चेपितुर्महसि ॥ १२ ॥ मद्द्वितीयोधनुष्पाणिःसहायैःपरमर्षिभिः ॥ समुद्रंवाविचेप्यामःपर्वतांश्वनानिच ॥ १३ ॥ गुहाश्चविचिधा
 वीराःपद्मिन्योविविधास्तथा ॥ देवगंधर्वलोकांश्चविचेप्यामःसमाहिताः ॥ १४ ॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तवभार्यापहारिणम् ॥ नचेत्साम्नाप्रदा
 स्यंतिपत्नैस्तेत्रिदशेश्वराः ॥ कोशलैद्रततःपश्चात्प्राप्तकालंकरिष्यसि ॥ १५ ॥ शीलेनसाम्नाविनयेनसीतानयेननप्राप्स्यसिचेन्नरेन्द्र ॥ ततःसमु
 त्सादयहेमपुंलेमहेन्द्रवज्रप्रतिमैःशरीरैः ॥ १६ ॥ इत्यापै श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्यकांडे पंचपष्ठितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ तंतथाशोकसंस्तं
 धिलपंतमनायवत् ॥ मोहेनमहतायुक्तंपरिधूनमचेतसम् ॥ १ ॥ ततःसोमित्रिराश्वस्यमुहूर्तादिवलक्ष्मणः ॥ रामंसंवोधयामासचरणौचाभि
 पीडयन् ॥ २ ॥ महतातपसाचापिमहताचापिकर्मणा ॥ राजादशरथेनासीह्रिधोमृतमिवामरेः ॥ ३ ॥ तवचेवगुणैर्वदस्त्वद्वियोगान्महीपतिः ॥
 दंड दीजियेगा ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! शीलतासे सामसे और विनय अवलम्बन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्रसदृश सुवर्णपंखवाले

गरजालसे समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यापै श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भापाटीकायां पंचपष्ठितमः सर्गः ॥ ६५ ॥
 ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहुर्तभरतक उनको समझाते बुझाते हुए कहने लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीने अनेक तपस्या और बहु विध धर्मानु
 ष्ठान करके आपको प्राप्त किया था जिस प्रकार देवता लोगोंने अमृतको बड़े २ उपायोंसे प्राप्त किया था ॥ ३ ॥ भरतजीसे जैसा जैसा सुनाया उससे तो यही

मीनाजीके हरणसे कातर हुये श्रीरामचन्द्रजी सन्तापित हो सांवर्तकप्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेको तैयार हुए ॥ १ ॥ और प्रलयका छर्म ममस्त जगत् दग्ध करनेके अभिलाषी महादेवजीके समान वारंवार श्वास त्याग करतेहुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीरामचन्द्रजी देखने लगे ॥ २ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अट्ट पर्व जो पहले कभी नहीं देखाया, ऐसा क्रोध देखकर शुष्क मुख बना हाथ जोड़ उनसे बोले ॥ ३ ॥ आप पहलेसे मृदु, सर्व इन्द्रियोंको जीतने वालें और मर्भूतोंके श्लिष्टकारी कार्य करनेमें तैयार हैं सो इस समय क्रोधके वश होकर अपना स्वभाव छोड़ना आपको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें श्री, वायुमें गति, पृथ्वीमें भस्मा, मृगमें दीप्ति, इन चारोंमें यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ एक जनके अपराधसे समस्तलोकको

तप्यमानंतदारामंसीताहरणकश्चितम् ॥ लोकानामभवेयुक्तंसांवर्तकमिवानलम् ॥ १ ॥ वीक्षमाणंघनुःसज्यनिःश्वसंतंपुनःपुनः ॥ दग्धुकामंजगत्सर्वं गुगतिंनयथाहरम् ॥ २ ॥ अट्टपर्वसंकुद्धदृष्टद्वारामंसलक्ष्मणः ॥ अव्रवीत्प्रांजलिर्विक्रयमुखेनपरिशुष्यता ॥ ३ ॥ पुराभूत्वामृदुर्दतःसर्वभूतहितैरतः ॥ नकोयवशमापन्नःप्रकृतिहातुमर्हसि ॥ ४ ॥ चंद्रलक्ष्मीःप्रभासूर्येगतिर्वायोभुविक्षमा ॥ एतच्चनियतंनित्यंत्वयिचानुत्तमंयशः ॥ ५ ॥ एकस्यना परायेनलोकान्हंतुत्वमर्हसि ॥ ननुजानामिकस्यायंभग्नःसांघ्रामिकोरथः ॥ ६ ॥ केनवाकस्यवाहेतोःसंयुगःसपरिच्छदः ॥ खुरनेमिक्षतश्चायंसित्तो रुधिरचिदुभिः ॥ ७ ॥ देशोनिवृत्तसंग्रामःसुबोरःपार्थिवात्मज ॥ एकस्यतुविमर्दोऽयंनद्भयोर्वदतांवर ॥ ८ ॥ नहिदृत्तंहिपश्यामिवलस्यमहतः पदम् ॥ नैकस्यतुदृतेलोकान्विनाशायितुमर्हसि ॥ ९ ॥ युक्तदंडाहिमृदवःप्रशांतावसुधाधिपाः ॥ सदात्वसर्वभूतानांशरण्यःपरमागतिः ॥ १० ॥

हनन करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि, यह जो रथ टूटा पड़ा है यह एकही जनका है बहुतांका नहीं ॥ ६ ॥ किन्तु यह जुआयुक्त और परिच्छदमहित रथ किसका है, और क्यों कर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुदखुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेके कारण अतिगप भयंकर हो रहा है ॥ ७ ॥ निश्चयही यहांपर संग्राम हुआ है ॥ और इन सब कारणोंसे यहभी बोध होताहै कि एक रथीके सहित और किसी पशुका युद्ध हुआ है दो जनोंका युद्ध नहीं हुआ है ॥ ८ ॥ बड़ी भारी सेनाके चरण चिह्न यहांपर नहीं दृष्टि आते इसलिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहीं है ॥ ९ ॥ राजा लोग नराचरपर अतिगप शान्त और मृदु स्वभाववाले होते हैं, और अपराधानुसार दंड दिया करतेहैं आपभी सर्वदा सब भूतोंके शर

गय और नाम गति है ॥ १० ॥ हेरुनन्दन ! मंगारसे कीन पुरुष आपकी भार्याका वियोग आपसे अच्छा समझता है कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दान
 व मीन नागर ॥ ११ ॥ और गेल कोई भी आपका अभिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अभिय साधुलोग नहीं कर सकते । हे राजन् ! जिसने सीताको हरण
 किया है इस समय उस जनका सोच करना आपका कर्नव्य हुआ है ॥ १२ ॥ आप हमारे नाम धनुष हाथमें लेकर चलिये, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र
 इन पर्वत द्वेमे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूँढिये ॥ १४ ॥ जवतक कि आपकी
 गीत हर्ननाउं सो न पार्वी, और इस प्रकार गान्तभावसे ढूँढनेपरभी इन्द्रसिद्धि देवगण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौरालेन्द्र ! पीछेसे आप उनको यथायोग्य
 कोनुदारप्रणाशं तसाधुमन्यतराघव ॥ सरितः सागराः शैला देवगंधर्वदानवाः ॥ १५ ॥ नालंते विप्रियं कतुदीक्षितस्येव साधवः ॥ येन राजन् हता
 मीनातमन्यं पितुमर्हसि ॥ १६ ॥ मद्भित्तीयो धनुष्पाणिः सहायैः परमर्षिभिः ॥ समुद्रं वा विचेज्यामः पर्वतांश्च वनानि च ॥ १७ ॥ गुहाश्च विविधः
 योगः पद्मिन्यो विविधास्तथा ॥ देवगंधर्वलोकांश्च विचेज्यामः समाहिताः ॥ १८ ॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तव भार्यापहारिणम् ॥ न चेत्साम्ना प्रदा
 स्यं निपर्वो निविद्रोऽश्वराः ॥ कोशलं द्रुततः पश्चात्प्राप्तकालं करिष्यसि ॥ १९ ॥ शीलेन साम्ना विनयेन सीतानयेन न प्राप्स्यसि चेन्नरेन्द्र ॥ ततः सप्त
 त्मा दयं दंभपुंगवमहं द्रव्यमतिमैः शरीरैः ॥ २० ॥ इत्यापै श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्यकण्डे पंचपक्षितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ तंतथाशोकसं तं
 विलपंतमना यवत् ॥ मोहेन महता युक्तं परिधूनमचेतसम् ॥ १ ॥ ततः सीमित्रि राश्यास्यमुहुतां दिवलक्ष्मणः ॥ रामसंवीधयामास चरणौ च अभि
 नीडयन् ॥ २ ॥ महता तपसा चापि महता चापिकर्मणा ॥ राज्ञा दशरथेनासीच्छोभो मृतमिचामरः ॥ ३ ॥ तव चैव गुणेर्वदस्त्वद्वियोगान्महीपतिः ॥
 राजां देवतमापन्नो भरतस्य यथाश्रुतम् ॥ ४ ॥

दंड दीप्तिगंगा ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! गीलतासे सामसे और विनय अवलम्बन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्रसदृश सुवर्णपंखवा
 गजाजलमें मगरन मंगारको मंहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यापै श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकण्डे भाषाटीकायां पंचपक्षितमः सर्गः ॥ ६५ ॥
 भीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणके पासपसे क्रोध त्यागकर इसप्रकार शोक संतप्त और महाभोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनार्योंकी समान विलाप करना आरंभ किया ।
 ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण दूरकर मृक मुहूर्तभरतक उनके समझाने बुझाते हुए कहने लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीने अनेक तपस्या और बहु विध धर्मा
 श्रान करके आपका प्राप्न किया था जिस प्रकार देवता लोगोंने अमृतको घड़े २ उपायोंसे प्राप्न किया था ॥ ३ ॥ भरतजीसे जैसा जैसा सुनाथा उससे तो यह

भीताजीके हरणसे फावर हुंय श्रीरामचन्द्रजी सन्वापित हो सांवर्तकप्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेको तैयार हुए ॥ १ ॥ और प्रलयका लयमें ममता जगत दग्ध करनेके अभिलाषी महादेवजीके समान वारंवार आस त्याग करतेहुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीरामचन्द्रजी देखने लगे ॥ २ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अट्ट पुरं जो पहले कभी नहीं देखाथा, ऐसा क्रोध देखकर शुष्क मुख बना हाथ जोड़ उनसे बोले ॥ ३ ॥ आप पहलेसे मृदु, सर्व इन्द्रियोंको जीतने पाते और गर्भगतोंके हितकारी कार्य करनेमें तैयार हैं सो इस समय क्रोधके वश होकर अपना स्वभाव छोड़ना आपको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें श्री, वायुमें गति, पृथ्वीमें भस्मा. मृगमें दीप्ति, इन चारोंमें यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ एक जनके अपराधसे समस्तलोकको

तपमानंतदारामंसीताहरणकश्चितम् ॥ लोकानामभवेयुक्तंसावर्तकमिवानलम् ॥ १ ॥ वीक्षमाणंधनुःसज्यंनिःश्वसंतपुनःपुनः ॥ दग्धुकामंजगत्सर्वं
युगतिनयथाहम् ॥ २ ॥ अहदपूर्वसंकुद्धंद्वारामंसलक्ष्मणः ॥ अत्रवीत्त्रांजलिर्विक्रियंमुखेनपरिशुष्यता ॥ ३ ॥ पुराभूत्वामृदुर्दत्तःसर्वभूतहितैरतः ॥
नकोयशमापन्नःप्रकृतिहातुमर्हसि ॥ ४ ॥ चंद्रेलक्ष्मीःप्रभासूयंगतिर्वीर्याभुविक्षमा ॥ एतच्चनियतंनित्यंत्वयिचानुत्तमंयशः ॥ ५ ॥ एकस्यना
पगर्धनलोकानंहंतुत्वमर्हसि ॥ ननुजानामिकस्यायंभग्नःसांश्राभिकोरथः ॥ ६ ॥ केनवाकस्यवाहेतोःसंयुगःसपरिच्छदः ॥ खुरनेमिक्षतश्चायंसित्तो
रुधिरचिदुभिः ॥ ७ ॥ देशोनिवृत्तसंग्रामःसुघोरःपार्थिवात्मज ॥ एकस्यतुविमर्दोऽयंनद्वयोर्वदतांवर ॥ ८ ॥ नहिदृष्टंहिपश्यामिबलस्यमहतः
पदम् ॥ नैकस्यतुक्तेलोकान्विनाशयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ युक्तदंडाहिमृदवःप्रशांतावसुधाधिपाः ॥ सदात्वंसर्वभूतानांशरण्यःपरमागतिः ॥ १० ॥

हान करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि, यह जो रथ टूटा पड़ा है यह एकही जनका है बहुतोंका नहीं ॥ ६ ॥ किन्तु यह जुआयुक्त और परिच्छदमन्त्रि रथ किमका है, और क्यों कर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुदखुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेके कारण अतिगुण भयंकर हो रहा है ॥ ७ ॥ निश्चयही यहांपर संग्राम हुआ है ॥ और इन सब कारणोंसे यहभी बोध होताहै कि एक स्थीके सहित और किसी पशुका युद्ध हुआ है दो जनोंका युद्ध नहीं हुआ है ॥ ८ ॥ बड़ी भारी सेनाके चरण चिद्ध यहांपर नहीं दृष्टि आते इसलिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहीं है ॥ ९ ॥ राजा लोग नगरपर अतिगुण गान्त और मृदु स्वभाववाले होते हैं, और अपराधानुसार दंड दिया करतेहैं आपभी सर्वदा सब भूतोंके शर

प्य और परम गति हैं ॥ १० ॥ हे रघुनन्दन ! संसारमें कौन पुरुष आपकी भार्योका वियोग आपसे अच्छा समझता है कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दान व मरित सागर ॥ ११ ॥ और शील कोई भी आपका अध्रिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अध्रिय साधुलोग नहीं कर सकते । हे राजन् ! जिसने सीताको हरण किया है हम समय उस जनका सौज करना आपका कर्तव्य हुआ है ॥ १२ ॥ आप हयारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिए, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र जन पर्वत डूँढ़ेगे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल तैलियां व गुणायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही घल सहित आप डूँढिये ॥ १४ ॥ जवतक कि आरभी श्रीरुद्रनेबालेको न पावेंगे, और इस प्रकार गान्ताभावसे डूँढनेपरभी इन्द्रदि देवगण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र ! पीछेसे आप उनको ययायोग्य

कोनुदारप्रणाशनेसाधुमन्येतरावच ॥ सरितःसागराःशैलदेवगंधर्वदानवाः ॥ ११ ॥ नालंतेविप्रियंकतुदीक्षितस्येवसाधवः ॥ येनराजन्हता मीतातमन्चंपितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मद्वितीयोयधुनुष्याणिःसहायैःपरमर्षिभिः ॥ समुद्रंवाविचेव्यामःपर्वतांश्वनानिच ॥ १३ ॥ गुहाश्चविविधा योगःपद्मिन्योविविधास्तथा ॥ देवगंधर्वलोकांश्चविचेव्यामःसमाहिताः ॥ १४ ॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तवभार्यापहारिणम् ॥ नचेत्साम्नाप्रदा स्मन्तिपत्रोत्तंविद्वद्भेदराः ॥ कोशलेंद्रततःपश्चात्प्राप्तकालंकरिष्यसि ॥ १५ ॥ शीलिनसाम्नाविनयेनसीतानयेननप्राप्स्यसिचेन्नरेन्द्र ॥ ततःसशु त्मादयंहमपुल्लिर्महेंद्रयव्रप्रतिमैःशरीचैः ॥ १६ ॥ इत्यापे श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्यकांडे पंचपष्ठितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ तंतथाशोकसं तं निर्ययंतमनाथवत् ॥ मोहेनमहतायुक्तंपरिथूनमचेतसम् ॥ १ ॥ ततःसोमित्रिराश्वास्यमुहूर्तादिवलद्मणः ॥ रामंसंवोधयामासचरणीचाभि गीडयन् ॥ २ ॥ महतातपसानापिमहताचापिकर्मणा ॥ राज्ञादशरथेनासील्लिख्योमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥ तवचेवगुणैर्वद्वस्त्वद्वियोगान्महीपतिः ॥

रामादंयन्मापन्नोभरतस्तयथाश्रुतम् ॥ ४ ॥

दं६ दीनिर्गता ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! शीलतासे सामसे और विनय अवलम्बन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्रसहस्र सुवर्णपंखवाले गरजाउत्तं गमन गंगारसे मंदार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां पंचपष्ठितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ श्रीगमचन्द्रजीने लक्ष्मणके शरपने कोथ त्यागकर इमप्रकार शोक संतप्त और महाभोहसे युक्त चेतना रहित होकर अतार्योंकी समान विलाप करना आरंभ किया ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण दूर कर मुहूर्तभरतक उनको समझाने बुझाते हुए कहने लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीने अनेक तपस्या और बहु विध धर्मोत्तु प्राप्त करके आपको नाम किया था निम या निम प्रकार देवता लोगोंने अमृतको बड़े २ उपायोंसे प्राप्त किया था ॥ ३ ॥ भरतजीसे जैसा जैसा सुनाया उससे तो यही

ज्ञात होता है कि राजा दशरथ आपकी गुणों में बँधकर, व आपके ही वियोग में देवलोक को प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ हे काकुत्स्थ ! यदि आप ही इस आँदुह विपद को न झेलेंगे तो अल्पप्राण मनुष्य कौन सह सकेगा ? ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप अपने चित्त को सँभालिये । विपद अग्निके समान सबही प्राणियों को तप्त करती ? किन्तु क्षण काल में ही दूर चली जाती है ॥ ६ ॥ लोकका स्वभाव ही यह है देखिये नहुषपुत्र ययाति, इन्द्रपदवी प्राप्त करके भी अनीतिसे स्वर्गसे व्युत्त हुआ था ॥ ७ ॥ जो हमारे पिताजीके पुरोहित हैं, उन महर्षि वसिष्ठजीने एक दिन में शतपुत्र उत्पन्न किये और एक दिन में ही विश्वामित्रसे वह सब नष्ट होगये ॥ ८ ॥ हे कौशलेन्द्र ! जगन्माता, सर्व लोकके नमस्कार करने योग्य इस पृथ्वीका भी चलायमान होना पाया जाता है अर्थात् भूकंपादि दुःख इसको हुआ करते हैं ॥ ९ ॥ जो सूर्य चन्द्रमा जगत्कें नेत्र

यदिदुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे ॥ प्राकृतश्चाल्पसत्स्वश्च इतरः कः सहिष्यति ॥ ५ ॥ आश्वसिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः ॥ संस्पृशन्त्य भ्रिवद्राजन्शणेन व्यवपयाति च ॥ ६ ॥ लोकस्वभाव एवैष ययातिर्नहुषात्मजः ॥ गतः शक्रेण सालोक्यमनयस्तं समस्पृशत् ॥ ७ ॥ महर्षिर्यौत्रिस्तु यः पितुर्न पुरोहितः ॥ अह्नापुत्रशतं जज्ञे तथैवास्थपुनर्हतम् ॥ ८ ॥ याचेयं जगतो माता सर्वलोकमस्कृता ॥ अस्याश्च चलनं भूमेर्दृश्यते कोशलेश्वर ॥ ९ ॥ यौधर्म्यं जगतो नेत्रो यत्र सर्वप्रतिष्ठितम् ॥ आदित्यचंद्रौ ग्रहणमभ्युपेतौ महाबली ॥ १० ॥ सुमहांत्यपि भूतानि देवाश्च अपुरुषर्षभ नैव स्वयमसुंचंति सर्वभूतानि देहिनः ॥ ११ ॥ शक्रादिव्यपि देवेषु वर्तमानो नयानयो ॥ श्रूयते न शार्दूलनत्वं व्यथितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मृतायामपि वैदेह्यां न प्रायामपि रावव ॥ शोचि तु नार्हसे वीरयथान्यः प्राकृतस्तथा ॥ १३ ॥ त्वद्विद्यान हि शोचंति सततं सर्वदर्शनाः ॥ सुमहत्स्वपि कृच्छ्रे पुरा मानिर्विण्णदर्शनाः ॥ १४ ॥ तत्त्वतो हि नरश्रेष्ठ दुष्टद्वयासमनुचितय ॥ बुद्ध्या युक्तमहाप्राज्ञा विजानंति शुभाशुभे ॥ १५ ॥

और साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, और जिनमें समस्त संसार टिका हुआ है उन महाबलवान् सूर्य चन्द्रमाका भी ग्रहण हो जाता है ॥ १० ॥ हे पुरुषभेष्ठ ! इस प्रकारने अति महत् भूत और देवता लोग भी जब दैवके वश हैं तब साधारण शरीरधारी प्राणियों की क्या गिनती है ? ॥ ११ ॥ अधिक क्या कहें इन्द्रादि देवताओं में भी नीति और अनीति सुत दुःख सुना जाया करता है, इससे हे नरसिंह ! आप अब व्यथित न हूजिये ॥ १२ ॥ हे रुचंदन ! यदि जानकीजी हरी गई हों, वा मृतक होगई हों तो भी साधारण पुरुषों की समान आपकी शोक करना योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ हे वीर ! आपकी समान सर्वदर्शा और हितदर्शी मनुष्यगण सचराचर बड़ी भारी विपद पड़ने पर भी शोक नहीं करते ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप भलीभाँति विचार करके यथार्थतासे शुभाशुभका विचार कीजिये । आपकी समान महाप्राज्ञ पुरुषगण बुद्धिसे

रत्नानने रानी इत रत्न ही नानिही आया नहीं दोमरनी और उनका जानना पना किया योगके नहीं होता ॥ १६ ॥ हे वीर ! आपनेही प्रथम हम को अनेक बार इवदकासा उदंग दिया है और आपको उदंग देनेमें तो नाजान बुद्धिमतिजीभी सपर्य नही है ॥ १७ ॥ हे महाप्राज्ञ ! आपकी बुद्धिको देवता लोगभी नहीं पूजेंगे मरुत और आपकी बुद्धि शोकसे इनकार डक रही है, कि इस समय हम उसको जगा रहे हैं ॥ १८ ॥ हे इक्ष्वाकुनवर ! आप अपना दिव्य और मानवी रगसम विचार मनुंदाह करनेमें यत्न कीजिए ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपको समस्त लोकोंके संहार करनेका क्या प्रयोजन है ? आप उसी अपने शत्रुको

अदृष्टगुणदोषाणामधुराणां तु कर्मणाम् ॥ नांतरं कियंति पांशुलमिष्टं च वर्तते ॥ १६ ॥ मामेवं हि पुरा वीरस्त्वमेव बहुशोक्तवान् ॥ अतु शिष्याद्विक्रो नृनामपि मया दातुं दृश्यति ॥ १७ ॥ बुद्धिश्चेत्ते महाप्राज्ञ देवेरेपि दुरन्ध्रव्या ॥ शोकेनाभिप्रसुतं ते ज्ञानं संवो याम्यहम् ॥ १८ ॥ दिव्यं च मानुषं च यमात्मनश्च यगकमम् ॥ इक्ष्वाकुपुत्रभावेऽन्यतस्त्वादिपतां वये ॥ १९ ॥ किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषपंथ ॥ तमेव तुरिपुं पापं विज्ञायोद्धतुं मदं नि ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे पट्पष्ठितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तुलक्ष्मणमनुभाषि तम् ॥ माग्राहीमज्ञा मांगं प्रति जाग्राह गव्यः ॥ १ ॥ सनिष्ठो महाबाहुः प्रवृद्धरोपमात्मनः ॥ अवश्यं यदुत्तरि चंत्राभोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ किं क रित्यायं दैवमक्रायञ्च वलक्ष्मण ॥ केनोपायं न पश्यावः सीतामिह विचितय ॥ ३ ॥ तं तथा परितापात्तुलक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ इदमेव जनस्था नं नमनं पिणुमर्हति ॥ ४ ॥ गच्छ सर्वे दुर्भिक्षीर्णानां ह्युमलतायुतम् ॥ संतीह गिरिदुर्गोणि निर्दराः कंदराणि च ॥ ५ ॥

जानकर उगे निर्वचनरु मीतारो वचाव्ये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां पट्पष्ठितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ अदृष्टगुणजीके हमनकार अतिगम्य मारगर्भ सुन्दर बचन कहने पर सारके ग्रहण करनेवाले महाबाहु रामचन्द्रजीने उनको ग्रहण किया ॥ १ ॥ तिसके पछि वद श्रवना दश हृत् आ क्रोध मोतकर विचित्र धनुष धारण करके लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ २ ॥ हे वत्स ! हम इस समय कहाँ जाँय क्या करें और किस उपायमें जानरीको नाम देई ? नो तुम इनका विचार करो ॥ ३ ॥ तब लक्ष्मणजी अति संतापित रामचन्द्रजीसे बोले कि इस जनस्थानकोही हँडता और खोज करणा आपसों उचित है ॥ ४ ॥ बहुत सारे राजसों करके समाकीर्ण और विविध भांतिके लता वृक्षांसे युक्त इस जनस्थानमें अनेक गिरि गुहा कंदरा ॥ ५ ॥

पृथ्वीकी चट्टानें और अनेक जातिवाले मृगगणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर गन्धर्व गणोंके फिरनेके स्थान और भवन जहां बहुत सारे हैं ॥ ६ ॥ सो आप हमारे सहित सावधान होकर इन सब जगहको ढूँढ लीजिये, आपकी समान बुद्धिसम्पन्न महात्मा पुरुषोत्तम ॥ ७ ॥ आपदके समय कभी नहीं विचलते, जैसे वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते, यह सुन श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके साथ समस्त वन खोजा ॥ ८ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीने बड़ा कोप करके पैनी धारवाला भयंकर धाणभी धनुषपर चढ़ायाथा, वहां जाते २ पर्वतकी समान आकारवाले बड़े भाग्यवान् पक्षिश्रेष्ठ ॥ ९ ॥ जटायुको पृथ्वीपर पड़ा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतकी शृंगकी समान आकारवाला देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निशाचरनेही जान

गुहाश्चविविधाघोरानानामृगगणकुलाः ॥ आवासाः किन्नराणांचगंधर्वभवनानि च ॥ ६ ॥ तानियुक्तो मया सार्धं समन्वेपितुमर्हसि ॥ त्वद्विधा बुद्धिसंपन्नमहात्मानो न रपि भाः ॥ ७ ॥ आपत्सु न प्रकंपते वायुवर्गे रिवाचलाः ॥ इत्युक्तस्तद्वनं सर्वविचचारसलक्ष्मणः ॥ ८ ॥ कुद्धोरामः शरैर्वोरं संधाययधुपिक्षुरम् ॥ ततः पर्वतकूटान् महाभांगं द्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥ ददर्श पतितं भूमौ क्षतजट्टं जटायुपम् ॥ तदंघ्रिगिरिशृंगान् भ्रामरामोलक्ष्मणमत्र वीत् ॥ १० ॥ अनेन सीतावैदेहीभक्षितानां संशयः ॥ गृध्ररूपमिदं व्यक्तं रक्षोभ्रमतिकाननम् ॥ ११ ॥ भक्षयित्वा विशालाक्षीमास्ते सीतां यथा सुखम् ॥ एनं वधिष्ये दीप्ताग्निः शरैर्वरिजिह्वगेः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्रुपुंसं धाय धनुपिक्षुरम् ॥ कुद्धोरामः समुद्रांतां चालचन्निव मेदिनीम् ॥ १३ ॥ तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् ॥ अभ्यभापत पक्षी सरामं दशरथात्मजम् ॥ १४ ॥ यामोपधीमिवायुष्मन् न्वेपसिमहावने ॥ सादेवी मम च प्राणरावणेनोभयं हतम् ॥ १५ ॥ त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव ॥ द्वियमाणाभयादष्टारावणेन वलीयसा ॥ १६ ॥

कीको भक्षण कर लिया है, बस यह ठीकही ठीक जान पड़ता है यह राक्षस गृध्र बना वनमें घूमता है ॥ ११ ॥ यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताको भक्षण करके ययासुरसे विश्राम कर रहा है । इस कारण हम सीधे चलनेवाले अश्विके समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहार करेंगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर क्रोषित हो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको कैलासे हुये धनुषपर तीक्ष्ण बाण चढ़ाय उसके देखनेको चले ॥ १३ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज जटायु सफेन रुधिर उगलता हुआ अतिशय कातर वचनोंसे उन दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे बोला ॥ १४ ॥ आयुष्मान् तुम औपधिकी समान जिनको इस महावनमें खोजते हो, वह देवी जानकी और हमारे प्राण दोनोंही रावणने हरलिये हैं ॥ १५ ॥ हे रघुनंदन ! महाबलवान् दशानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रममें न रहने पर खुनेसे जानकीको हर ले जाता हुआ

३५ ॥ उम समय हमने भी राजी हो मुझने के लिये मन्थुराहो मुद कर के उम के रथ और छत्र को तोड़ डाला तब रावण पृथ्वी में गिरा ॥ ३७ ॥ यह उ
 और पाग दूरे हुये पड़े हैं यह उमने ही है और रामचन्द्रजी ! यह उसकाही संग्राममें काम देनेवाला रथ है जो टूटा हुआ पड़ा है ॥
 ३८ ॥ तो हमारे पंगों के गदागमे मरकर पृथ्वी पर पड़ा है बूढ़े होने के कारण जब हम लड़ते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावणने खड्ग से हमारे पंरा काट डाले ॥
 और वह भीराजी को छेकर आकाशमार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावण कर के मारे ही गये हैं, सो इस समय हमारा क्या करना आपको उचित नहीं है ॥
 भीमचन्द्रजी शिब के मुने मे मोवाजी के विषय के प्रिय वचन सुनते ही महाधनुष को त्याग करके आर्छिगन करलेते हुए ॥ २१ ॥ और शोकसे अवश हो

भीनामभ्यगत्राऽदंगगणशरणेप्रभो ॥ विध्वंसितरथच्छत्रःपतितोघरणीतले ॥ १७ ॥ एतदस्यधनुर्मग्नमेतेचास्यशरास्तथा ॥ अयमस्यरणेराम-
 नाग्रामिकोग्रः ॥ १८ ॥ अयंतुसागथिस्तस्यमपक्षनिहतोभुवि ॥ परिश्रान्तस्यमेपक्षोछित्त्वाखड्गेनरावणः ॥ १९ ॥ सीतामादायवेदेहीमुत्प-
 क्षायम् ॥ गदमानिहतंभ्रूयमानंहंतुंत्यमर्हमि ॥ २० ॥ रामस्तस्यतुविज्ञायसीतासत्ताप्रियांकथाम् ॥ गुत्रराजंपरिष्वज्यपरित्यज्यमहद्धनुः ॥ २१
 निपपातानशोभूमोरारुणंदसहस्रलक्ष्मणः ॥ द्विगुणीकृततापातोरामोधीरतरोऽपिसन् ॥ २२ ॥ एकमेकायनेकृच्छ्रेनिःश्वसंतंमुहुर्मुहुः ॥ समीक्ष-
 यिन्नोगमःसौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ राज्यंभ्रष्टंवनेवासःसीतानष्टामृतोद्विजः ॥ ईदृशीयंममालक्ष्मीर्देहदपिहिपावकम् ॥ २४ ॥ संपूर्णम-
 द्यप्रतरंयमहोदधिम् ॥ मोपि नूनंममालक्ष्म्याविशुष्येत्सरितांपतिः ॥ २५ ॥ नास्त्यभाग्यतरोलोकेमत्तोऽस्मिन्सचराचरे ॥ येनेयंमहती-
 मगाल्यसनवागुग ॥ २६ ॥ अयंपितुर्वयस्योमेगृष्टराजोमहाबलः ॥ शतेविनिहतोभूमौममभाग्यविपर्ययात् ॥ २७ ॥

गिरकर लक्ष्मणजी के मर्दित गेदन करने लगे । यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी महावीर्य थे तथापि दूना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ उसकाल उ-
 पक्रममें पड़े याग्यार ऊँची श्वास छेते हुए देखा शोकसे आनुर हो श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भट्ट हुये वनमें वाप्त हुआ, सीता
 गई और जटायुकी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अधिकोभी भस्म कर सकती है ॥ २४ ॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात क-
 र्य दुराते संतापने गांति पांने के लिये तलहीन तलहीन महासागरभी उतरें ! तो वह सरितस्वामी समुद्रभी निश्चयही हमारे दुर्भाग्यके प्रभाक्से एकबार
 जायगा ॥ २५ ॥ मगरागर लोकोमें हम सा अधिक मंदभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमने इतना बड़ा दुःखका जाल पाया है ॥ २६ ॥ यह महाबली ।

परयोंकी चट्टानें और अनेक जातिवाले मृगगणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर गन्धर्व गणोंके फिरनेके स्थान और भवन जहां बहुत सारे हैं ॥ ६ ॥ सो आप हमारे सहित सावधान होकर इन सब जगहको ढूँढ लीजिये, आपकी समान बुद्धिसम्पन्न महात्मा पुरुषोत्तम ॥ ७ ॥ आपदके समय कभी नहीं विचलते, जैसे वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते, यह सुन श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके साथ समस्त वन खोजा ॥ ८ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीनें बड़ा कोप करके पैनी धारवाला भयंकर धाणभी धनुषपर चढायाथा, वहां जाते २ पर्वतकी समान आकारवाले बड़े भाग्यवान् पक्षिश्रेष्ठ ॥ ९ ॥ जदायुको पृथ्वीपर पड़ा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतकी शृंगकी समान आकारवाला देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निराचरनेही जान

गुहाश्च विविधाघोरानानामृगगणकुलः ॥ आवासाः किन्नराणां च गन्धर्व भवनानि च ॥ ६ ॥ तानियुक्तो मया सार्धं समन्वेपितुमर्हसि ॥ त्वद्विधा बुद्धिं संपन्नामहात्मानो न रपेभाः ॥ ७ ॥ आपत्सु न प्रकंपते वायुवैरिवाचलाः ॥ इत्युक्तस्तद्रनं सर्वविचारसलक्ष्मणः ॥ ८ ॥ कुद्धोरामः शरं वोरं संधाय धनुषिधुरम् ॥ ततः पर्वतकूटान् भ्रमं हाभागं द्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥ ददर्श पतितं भूमौ क्षतजान् द्रुजदायुषम् ॥ तद्वद्वान्गिरिशृंगाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १० ॥ अनेन सीतावैदेहीभक्षितानां संशयः ॥ गृध्ररूपमिदं व्यक्तं क्षोभ्रमतिकाननम् ॥ ११ ॥ भक्षयित्वा विशालाक्षीमास्ते सीतां यथा सुखम् ॥ एनं वधिष्ये दीप्ताग्नेः शरैर्वरिजिह्वगेः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्गुप्तं संधाय धनुषिधुरम् ॥ कुद्धोरामः समुद्रांतां चालयन्निव्रमेदिनीम् ॥ १३ ॥ तं दीनदीनयावाचा स फेनं रुधिरं वमन् ॥ अभ्यभापत पक्षीसरां मदशरथात्मजम् ॥ १४ ॥ यामोषधीमिवायुष्मन् न्वेपसिमहावने ॥ सादेवी मम च प्राणारावणेनोभयं हतम् ॥ १५ ॥ त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव ॥ द्वियमाणा मया दहपरावणेन वलीयसा ॥ १६ ॥

कीको भक्षण कर लिया है, वस यह ठीकही ठीक जान पड़ता है यह राक्षस गृध्र बना वनमें घूमता है ॥ ११ ॥ यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताको भक्षण करके पयासुसने विश्राम कर रहा है । इस कारण हम सीधे चलनेवाले अधिके समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहार करेंगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर क्रोधित हो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको कैपाते हुये धनुषपर तीक्ष्ण बाण चढाय उसके देखनेको चले ॥ १३ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज जदायु सफेन रुधिर उग रटा हुआ अतिगप कातर वचनोंमें उन दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे बोला ॥ १४ ॥ आयुष्मान् तुम औपधिकी समान जिनको इस महावनेमें खोजते हो, यह देवी जानकी और हमारे माण दोनोंही रावणने हर लिये है ॥ १५ ॥ हे रघुनंदन । महाबलवान् दयानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रयमें न रहने पर गूनेसे जानकीको हर ले जाता हुआ

हमने देखा है ॥ १६ ॥ उस समय हमने सीताजी की मृदाने के लिये सन्मुख हो युद्ध करके उसके रथ और छत्रको तोड़ डाला तब रावण पृथ्वीमें गिरा ॥ १७ ॥ यह जो शत्रु और बाण दूट्टे हुये पड़े हैं यह उसके ही हैं और रामचन्द्रजी ! यह उसका ही संवायमें काम देनेवाला रथ है जो टूटा हुआ पड़ा है ॥ १८ ॥ और यह सारथी भी उमीका है जो हमारे पंखों के प्रहारने मरकर पृथ्वीपर पड़ा है बूढ़े होने के कारण जब हम लड़ते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावणने राक्षसे हमारे पंरा काट डाले ॥ १९ ॥ और वह सीताजीको लेकर आकाशमार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावण करके मारे ही गये हैं, सो इस समय हमारा वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २० ॥ श्रीरामचन्द्रजी गिद्ध के मुखसे सीताजीके विषयके प्रिय वचन सुनते ही महाभयपुत्रको त्याग करके आलिंगन करलेते हुए ॥ २१ ॥ और गोकुलमें अवग हो पृथ्वीमें

सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्चरणे प्रभो ॥ विध्वंसित रथच्छत्रः पतितो धरणीतले ॥ १७ ॥ एतदस्य धनुर्भग्नमेतत्तथास्य शरास्तथा ॥ अयमस्य रणे गमभग्नः सांघात्मिको रथः ॥ १८ ॥ अयं तु सारथिस्तस्य भग्नः क्षनिहतो युधि ॥ परिश्रांतस्य मे पक्षी छिच्छाखे द्वेन गवणः ॥ १९ ॥ सीतामादाय विदेहो मुत्पपात विद्रावसम् ॥ रक्षसानिहतं पूर्वमानं हंतुं त्वमर्हसि ॥ २० ॥ रामस्तस्य तु विज्ञाय सीतासक्तं प्रियां कथाम् ॥ गृत्राजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्दनुः ॥ २१ ॥ निपपाता वशो भूर्मरुं रारादसहस्रक्षमणः ॥ द्विगुणीकृततापा तौरा मोची स्तरोऽपि सन् ॥ २२ ॥ एकमेकाग्रनेकच्छेनिः श्वसंतं सुहृदुः ॥ समीक्ष्य दुःखितो रामः सोमि विमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ राज्यं भ्रष्टं वनेवासः मीतान् ग्रामृतो द्विजः ॥ इदं शीयं ममालक्ष्मी देहदपि हि पावकम् ॥ २४ ॥ संपूर्णमपि चेदद्य मत्तं रंयं मोहोदधिम् ॥ सोऽपि नूनं ममालक्ष्म्या विशुष्येत्सरितां पतिः ॥ २५ ॥ नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन्सचराचरे ॥ येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवापुरा ॥ २६ ॥ अयं पितुर्वयस्यो मे गृध्राजो महाबलः ॥ श्रेते विनिहतो भूर्ममभाग्यविपर्ययात् ॥ २७ ॥

गिरकर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करने लगे । यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी महावीर थे तथापि दुना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ उसकाल जटायुको पंकार्त्तमें पड़े वारंवार ऊँची आस डेटे हुए देख गोकुलसे आतुर हो श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भद्र हुये वनमें वास हुआ, सीताजी हरी गई और जटायुजी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अगिको भी भस्म कर सकती है ॥ २४ ॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात कहें ! हम इस दुःखके संतापने गांति पाने के लिये तलहीन तलहीन महासागरभी उतरें । तो वह सरित्स्वामी समुद्रभी निश्चय ही हमारे दुर्भाग्यके प्रभाक्से एकवार ही सूख जायगा ॥ २५ ॥ मगराचार लोकोमें हम सा अधिक मंदभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमने इतना बड़ा दुःख का जाल पाया है ॥ २६ ॥ यह महाबली गिद्धराज

हमारे पिताके प्रिय सखाई, तों यहभी हमारे भाग्यके फेरसे घायल होकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं ॥ २७ ॥ रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारके अनेक रचन कहते लक्ष्मणजीके सहित पिताकी समान स्नेह दिखातेहुये जटायुको स्पर्श करते हुये ॥ २८ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजी पंख कटे रुधिरमें डूबे गृध्रराज जटायुको चिपट कर "हमारी प्राणप्रिया मैथिली कहाँ गई है" यह कहकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां सप्तपटितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी भयंकर राक्षसके प्रहारसे पृथ्वीपर पड़े हुये जटायुको देखकर परमबंधु सुमित्रापुत्रसे कहते हुये ॥ १ ॥ निश्चयही यह पक्षी हमारे लिये यत्न

इत्येवमुक्त्वा बहुशोरायवः सह लक्ष्मणः ॥ जटायुपंचपस्पर्शपितृस्नेहं निदर्शयन् ॥ २८ ॥ निकृत्तपक्षरुधिरावसिक्तंतृराजं परिगृह्य राघवः ॥ क्रमेण लीप्राणसमागतेति विबुधैश्च वाचं निपपातधूमौ ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अरण्यकांडे सप्तपटितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ रामः प्रेक्ष्य तु तं गृध्रं भुवि रात्रेण पातितम् ॥ सौमित्रिभिः संपन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ ममायं नूनमर्थेषु यतमानो विहंगमः ॥ राक्षसेन हतः संख्ये प्राणांस्त्यजति मत्कृते ॥ २ ॥ अतिखिन्नः शरीरेऽस्मिन् प्राणोलक्ष्मणविद्यते ॥ तथा स्वर्गविहीनोऽयं विह्वलसमुदीक्षते ॥ ३ ॥ जटायो यद्यदि शक्रोपि वाक्यं व्याहारीतुं पुनः ॥ सीतामाख्याहिभद्रं तेव धमाख्याहिचात्मनः ॥ ४ ॥ किं निमित्तो जहा रायं रावणस्तस्य किं मया ॥ अपराधं तु यद्वारावणेन हृता प्रिया ॥ ५ ॥ कथं तं द्रुसंकाशं मुखमासीन्मनोहरम् ॥ सीतया कानि चोक्तानि तस्मिन् काले द्विजोत्तम ॥ ६ ॥

करके हमारेही लिये राक्षससे मारे जाकर अब प्राणत्याग करते हैं ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! इनका बोल धीया पड़ गया और दृष्टिहीन हो आई है और प्राणभी अति मात्र व्याकुल होकर कुलेक इनकी देहमें शिंक रहे हैं ॥ ३ ॥ हे जटायु ! तुम्हारा कल्याण हो, यदि फिर तुममें कुछ बोलनेकी शक्ति हो तो सीताहरणका वृत्तान्त और तुम कैसे मारे गये, यह सब कह दीजिये ॥ ४ ॥ और रावणने किस निमित्त आर्या जानकीको हरण किया और हमने उसका क्या अपराध किया था, जो वह हमारी प्राणप्यारीको हरण करके ले गया ॥ ५ ॥ हे विहंगवर ! द्वारणके समय जानकीका वह पूर्ण शशिसदृश मनोहर मुख मंडल कैसा हो गया था ? और उन्होंने उस समय क्या कहा था ॥ ६ ॥

१. योया ॥ रीत मलीन अर्पीन नै अंग विहंग परभो क्षिति स्थित दुरगरी ॥ राघव रीत व्याकुल कुपान्द्र को देख दुरी करुणा भद्र भारी ॥ गीयको गोचरो राघव कृपानिधि नेन सहो जलमें भरि पारी ॥ यार दि बार मुआन धैर जटायुकी प्राँट जटानमो क्षारी ॥ १ ॥ गीयको गोचरो राघव कृपानिधि देखते भैरवमो जल बरि ॥ टुक छो जाते हैं सीताविधाके जो यापनी रगतहृत्पाको पिपादि ॥ छोटे बनें देखि रे मु लोह हमें भीद लिपनंदि संग किबारे ॥ यो यदि राघव भरे जल नेन जटायुकी प्राँट जटानमो क्षारी ॥ ३ ॥

उस राक्षसराज रावणका शीर्य, रूप और कर्म किसप्रकारकाहै ? हे वात ! उसका निवास कहाँपरहै ? जो हम पूछते हैं सो गत्ता बता दीजिये ॥ ७ ॥ तब धर्मोत्ता जटायु लडसडसदी वाणीसे विलाप करते व पूछतेहुये श्रीरामचन्द्रजीसे यह वचन बोला ॥ ८ ॥ राक्षसोंके राजा दुरात्मा रावणने वायु और दुर्दिन (जच कि आकाशमें बादल आजोते हैं) कारिणी महामायाका आश्रय करके सीताका हरण कियाहै ॥ ९ ॥ हे वात ! जब हम लडते २ बहुत थकगये; तब निगाचर हमारे दोनों पंत काट सीताको ग्रहण करके दक्षिण दिशाको चलागया ॥ १० ॥ हे रघुवंदन ! अब हमारे प्राण रुकतेहैं और दृष्टिभी समित होतीहै और हमको सब वृक्ष सुवर्णके दिखाई देते हैं, मानो सब वृक्ष अपने शिरके केशोंमें खरा और फूलोंकी माला पहर रहेहैं ॥ ११ ॥ रावण जिस मुहूर्तमें सीताको हर

कथंवीर्यः कथंरूपः किं कर्मासचराक्षसः ॥ कचास्यभवनं तात बृहिमेपरिपृच्छतः ॥ ७ ॥ तमुद्रीक्ष्य स धर्मात्मा विलपंतमना यवत् ॥ वाचा विवृज्यया राममिदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ साहज्जाराक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥ मायामास्थाय विपुलां वात दुर्दिनसंकुलाम् ॥ ९ ॥ परिक्लान्तस्य मे तात पक्षो छित्त्वा निशाचरः ॥ सीतामादाय वै देहो प्रयातो दक्षिणामुखः ॥ १० ॥ उपरुध्यंति मे प्राणा दृष्टिं प्रमतिराव च ॥ पश्यामि वृक्षान्सर्वान् च नु शीरकृतमूर्धजान् ॥ ११ ॥ येन याति मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः ॥ विप्रनृधनं क्षिप्रं तत्त्वामी प्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ विदोनाम मुहूर्तोऽसौ न च काकुत्स्थसोऽनु धत् ॥ क्षपवद्दंडिशं गृह्य क्षिप्रमेव विनश्यति ॥ १३ ॥ न च त्वया व्यथा कार्या जनकस्य सुतां प्रति ॥ वेदेद्वारं स्य से क्षिप्रं हत्वांतरणमूर्धनि ॥ १४ ॥ असंमृदस्य ग्रन्थस्य रामं प्रत्यनुभाषतः ॥ आस्यात्सुखावरुधिरं प्रियमाणस्य सामिपम् ॥ १५ ॥ पुत्रो विश्वसः साक्षाद्भ्राता वै श्रवणस्य च ॥ इत्युक्त्वा दुर्लभान् प्राणान्मुमोच पतंगेश्वरः ॥ १६ ॥

लेगपाहै; उस मुहूर्तमें धनका स्वामी अपना बहुत दिनका नष्ट (खोया हुआ) धनभी शीघ्रही प्राप्त करलेगाहै, अर्थात् इस मुहूर्तकी खोई चीज शीघ्र मिल जातीहै ॥ १२ ॥ इस मुहूर्तका नाम विंदहै, इस मुहूर्तकी खोई हुई वस्तु शीघ्र मिल जातीहै, सो रावण इसको नहीं जानताहै, हे राम ! इस कारण वंशीका मांस ग्रहण करनेमें मछलीके समान शीघ्र उसका बिनाश होगा ॥ १३ ॥ इस मुहूर्तमें खोई हुई वस्तुही नहीं मिलती किन्तु रात्रुका नाशभी होताहै, तुमभी श्रीजा नकीजीको प्राप्त होनेके विषयमें और कुछ संदेह न करो रावणको संग्राममें मारकर शीघ्रही सीताके सहित विहार करनेको तुम समर्थ होगे ॥ १४ ॥ तिसके पीछे रामचन्द्रजीके साथ संभाषण करनेवाले सावधानविच मननेके निकट शिबराज जटायुके मुखसे मांसयुक्त रुधिर चहनेलगा ॥ १५ ॥ उस समय जटायुने

रायण विश्ववाक्ता पुत्र, और कुबेरका भाई हैं केवल इतनाही कहकर दुर्लभ प्राण त्याग करदिये ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़े बोलिये ! बोलिये ! इसप्रकार से कहने लगे उसी समय उनके सामनेही जटायुकें प्राण शरीरको त्याग करके आकाशको चलेगये ॥ १७ ॥ उस समय गिद्धराज चरणयुगल फैलाय अपना शरीर फटफटाय भूमिमें शिर गिराय पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पर्वतसमान बड़े आकारवाले ताम्रवत् रक्तनेत्र गृध्रको मराहुआ देखकर दुःखितहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १९ ॥ राक्षसोंके वसनेयोग्य दंडकारण्यमें बहुत वर्षोंसे यह जटायुजी रहतेथे, सो आज उन्होंने देह त्याग करदिया ॥ २० ॥ इस प्रकार यह अनेक वर्षतक जीवितथे, वह आज निहत होकर पृथ्वीमें शयन कर रहे हैं, हम समझे कि कालको उल्लंघन करना सहज नहीं है ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो ये गृध्र हमारे कैसे

बुद्धिबुद्धीतिरामस्य द्रुवाणस्य कृतजलेः ॥ त्यक्ताशरीरं गृध्रस्य प्राणाजग्मुर्विहाय संसृजम् ॥ स निक्षिप्य शिरोभूमौ प्रसार्य चरणौ तथा ॥ विक्षिप्य च शरीरं स्वर्णपातधरणीतले ॥ १८ ॥ तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गता सुमचलोपमम् ॥ रामः सुबहुभिर्दुःखेर्दीनः सौमित्रिमव्रवीत् ॥ १९ ॥ बहू निरक्षसां वासेवर्षाणि वसता सुखम् ॥ अनेन दंडकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा ॥ २० ॥ अनेकवर्षोंको यस्तु चिरकाल संसृजितः ॥ सोऽयमद्य हतः शेतकालो हि दुरतिक्रमः ॥ २१ ॥ पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे ॥ सीतामभ्यवपन्नो हिरावणेन वलीयसा ॥ २२ ॥ गृध्रराज्यं परित्यज्य पितृपैतामहं महत् ॥ मम हेतोरयं प्राणान्मुमोच पतने श्वरः ॥ २३ ॥ सर्वत्र खलु दृश्यंते साधवो धर्मचारिणः ॥ शूराः शरण्याः सौमित्रैरित्यग्योनि गतेष्वपि ॥ २४ ॥ सीताहरणजंडुः खंनमे सौम्यतथागतम् ॥ यथाविनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परंतप ॥ २५ ॥ राजादशरथः श्रीमान् यथा मम महा यथाः ॥ पूजनीयश्च मान्यश्च तथा यं पतने श्वरः ॥ २६ ॥ सौमित्रे हरकाष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् ॥ गृध्रराजं दिदृक्षामि मत्कृते निधनं गतम् ॥ २७ ॥

उपकारी हैं, सीताजीका उद्धार करंनमें तैयार होकर बली रावण दुरात्मा करके यह मारे गये हैं ॥ २२ ॥ और हमारे निमित्त पितृपितामहप्राप्त महत् राज्य परित्याग करके इन गृध्रराजने प्राण छोड़े हैं ॥ २३ ॥ हम जानते हैं कि सभी जातियोंमें शूरता युक्त शरण देनेवाले धर्माचरण करनेवाले साधु देखे जाते हैं सो मनुष्यादिके सिवाय पक्षि आदि तिर्यग्योनिमेंभी ऐसे लोग देखे जाते हैं ॥ २४ ॥ हे सौम्य ! हमारेही लिये इन गृध्रने प्राण छोड़े हैं इसलिये इनकी मृत्युसे सीताके हरणसेभी अधिक हम को दुःख हुआ है ॥ २५ ॥ महा यथास्वी श्रीमान् राजा दशरथजी जिस प्रकारसे हमारे पूजनीय और माननीय हैं परोपकार करने और पिताजीका सखा होनेसे यह विद्वंगमश्रेष्ठभी दयको कैसेही ॥ २६ ॥ हे सुमित्रानंदन ! तुम काष्ठ ले आओ हम अग्नि उत्पन्न करके हमारे कितने प्राण जलें

हे लक्ष्मण ! यह जटायु पक्षियोंके राजा, और घोर कर्म करनेवाले राक्षसके हाथसे मारे गये हैं, हम इनको वितापर रखकर दाह करेंगे ॥ २८ ॥ यज्ञगील और आहिताश्रियोंकी जो गति होती है, समस्त पराङ्मुख न होनेवाले, और भूमिदान करनेवाले पुरुषोंकी जो गति होती है ॥ २९ ॥ हे महावल्लभान् गुधराज ! तू हम करके मंस्कृत और हमारीही आज्ञासे उन सब श्रेष्ठगतिर्योंको प्राप्त होवो ॥ ३० ॥ धर्मत्मा श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकारमे यह कहकर दुःखित हो अपने बंधुकी ममान पक्षिराज जटायुको जलती हुई चितामें चढाकर दाह करते हुए ॥ ३१ ॥ फिर वह महायशस्वी वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जीके साथ वनमें गये और बड़े आकारवाले मृगोंका वधकर उनका मांस ले फिर वहां आये जहां जटायुको दाह कियाथा । वहां आ जटायुको पिंड देनेके लिये तृण

नाथपतंगलोकस्थचिन्तिमारोपयाम्यहम् ॥ इमंध्यामिसोमित्रेहतरोद्रेणरक्षसा ॥ २८ ॥ यागतिर्यङ्गशीलानामाहिताग्नेश्चयागतिः ॥ अपरावर्तिनायाचयाचभूमिप्रदायिनाम् ॥ २९ ॥ मयात्वंसमनुज्ञातोगच्छलोकाननुत्तमान् ॥ गुधराजमहासत्त्वसंस्कृतश्चमयात्रज ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाचितां दीप्तामारोप्यपतंगेश्वरम् ॥ ददाहरामोधर्मत्मास्वंधुमिवदुःखितः ॥ ३१ ॥ रामोऽपिसहसोमित्रिवनंयात्वासवीर्यवान् ॥ स्थूलान्दृत्त्वामहारो दीननुतस्तारतंद्रिजम् ॥ ३२ ॥ रोहिमांसानिचोद्धृत्यपेशीकृत्त्वामहायशः ॥ शकुनायददोरामोरभ्यर्क्षरितशार्दूले ॥ ३३ ॥ यत्तत्रेतस्यमर्त्यस्यकथयंतिद्विजातयः ॥ तत्स्वर्गगमनंक्षिप्रं तस्यरामोजजापह ॥ ३४ ॥ ततो गोदावरीं गत्वानर्दीनरवरात्मजो ॥ उदकंचकतुस्तस्मै गुधराजाय तावुर्भा ॥ ३५ ॥ शास्त्रदृष्टेन विधिना जलगुध्राय राघवो ॥ स्नात्वा तौ गुधराजाय उदकंचकतुस्तदा ॥ ३६ ॥ सगुधराजः कृतवान्यशस्करं सुदुष्करं कर्मणे निपातितः ॥ महर्षिकल्पेन च संस्कृतस्तदा जगाम पुण्यांगि तामात्मनः शुभाम् ॥ ३७ ॥

लये ॥ ३२ ॥ और उस समस्त मांसके टुकड़े २ कर डाले और उनके पिंड बना उनको हरी घासपर रख जटायुके अर्थ प्रदान किये ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणलोग मेत पुरुषकी स्वर्गमात्रि होनेके लिये जिन मंत्रोंका जप किया करते हैं, श्रीरामचन्द्रजी जटायुको शीघ्र स्वर्ग प्राप्त करानेके लिये उन्हीं समस्त मंत्रोंका जप करने लगे ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे राजकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनोंजन गोदावरीनदीपर जाकर जटायुके लिये तर्पण करते हुए ॥ ३५ ॥ वह दोनों जन स्नान करके शास्त्रमें कही हुई विधिसे अनुमार जटायुको जल देकर पिंड व तिलजलि देते हुए ॥ ३६ ॥ गुधराज जटायु दुष्कर कार्य करते हुए युद्धमें मारे जाकर और महर्षिसदृश श्रीरामचन्द्र

[illegible][illegible]

और वहे वंगसे महाबन्में होकरके चड़े ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे जाते २ जनस्थानसे तीन कोश दूर कौञ्चनामक घने वनमें पहुँचे ॥ ५ ॥ यह वन अतिशय दुर्गम देनेमें बहुत सारे मेघोंकी गमान घटावना था, अनेक प्रकारके सुन्दर फूलोंके खिले रहनेसे मानों वह सब भौत्तसे हर्षपूरितथा और मृग य पक्षीभी उसमें बहुत थे ॥ ६ ॥ दोनों भाला मीताजीके दरुणसे दुःखित हो और उनके दर्शनकी कामनासे वह वन छूटते २ शान्तिके यश स्थान २ पर सड़े हो जाने लगे ॥ ७ ॥ फिर यह पक्षी और तीन कोश चलकर-कंचारण्यको नांयकर यांगमुनिके आश्रमको देखते हुए ॥ ८ ॥ उस आश्रमका वन मज्जाभयंकररुण और भयंकर स्वभाववाले

भावनाही ममान गहरी एक भिरगुला देसी, इस गुलामे नित्यही अपकार रहताथा ॥ १० ॥ यासोचतना ॥
 वादी और विकृत वदन एक राक्षसीको देता ॥ ११ ॥ राक्षसी देसनेमें अति भयंकरीथी, खाल अति कडीथी थोडे पराक्रमियोंको बडा भय देनेवाली भयंकर
 क्रूरतायुक्त लम्बा घंट तीक्ष्ण डाँढ़ बडी विकराल ॥ १२ ॥ स्वभाव अति भयंकर था वडे २ मुर्गोंको वह भक्षण करती, रूप बडा भयावना शिरके बाल
 गुँडे, पंसी उप गशमीको दोनों भाइयोंने देता ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह निशाचरी रामचंद्रजीके आगे खडे हुये लक्ष्मणजीके निकट आकर कहने

दृष्टांतगिरितत्रदरीदशरथात्मजो ॥ पातालसमगंभीरांतमसानित्यसंवृताम् ॥ १० ॥ आसाद्यचनव्याघ्रोदर्यास्तस्याविदूरतः ॥ ददर्शतुर्महारूपां
 गशमीचिह्नताननाम् ॥ ११ ॥ भयदामल्पसत्त्वानांवीभत्सारोद्रदर्शनाम् ॥ लंबोदरोतीक्ष्णदंष्ट्रांकरालींपरुपत्वचम् ॥ १२ ॥ भक्षयंतोमृगान्भीमान्वि
 कटांमुक्तमूर्धजाम् ॥ अवेक्षतानुतोतत्रभ्रातरो रामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ सासमासाद्यतोवीरोब्रजंतंभ्रातुरग्रतः ॥ एहिरस्यावहेत्युक्त्वासमलंभतलक्ष्मणम्
 ॥ १४ ॥ उवाच नैनं वचनं सोमि त्रिमुपयुह्य च ॥ अहं त्वयोमुखीनामलाभस्ते त्वमसि प्रियः ॥ १५ ॥ नाथ परवतदुर्गं पुनर्दीनां पुलिनेषु च ॥ आयुश्चिरमिदं वी
 रं समया महरंभ्यम् ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः ॥ कर्णेनासस्तनंतस्यानिचकतारिं सुदनः ॥ १७ ॥ कर्णेनासेनिकृते तु विस्वरं
 निनादना ॥ यथागतं प्रदुद्वाच गशसीवोरदर्शना ॥ १८ ॥ तस्यांगतायांगह्नं व्रजंतो वनमोजसा ॥ आसेदतुरमित्रघ्नो भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥

लगी कि “आओ हम तुममें बिहार करें” गुला कहकर उसने लक्ष्मणजीको ग्रहण किया ॥ १४ ॥ और वह राक्षसी उनको चिपटाकर कहने लगी कि, हे नाथ ! हमारा
 भयोदगी नाम है, अब तुमको परम लाभ हुआ और तुमही हमारे प्यारे हुये ॥ १५ ॥ हे नाथ ! हमारे सहित सब जीवन्तक नदियोंके किनारोंपर और नाना
 प्रकारके पर्वतोंपर तुम बिहार किया करना ॥ १६ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले लक्ष्मणजीने इस बातसे क्रोधित होकर खड्ग उठाकर उस राक्षसीके नाक कान व
 गन काटकाटे ॥ १७ ॥ जब उसके कान नाक व स्तन काट डाले गये तब वह चोर दर्शतवाली राक्षसी विकट शब्दसे चिहाकर शब्द करती हुई जहाँसे आईथी वहाँ
 से दौड़ी ॥ १८ ॥ जब वह वहाँमें भाग गई तो महातेजवान् शत्रुओंके मारनेवाले श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई वेगसहित चलतेहुए एक गहन वनमें पहुँचे ॥ १९ ॥

यहां पहुँचकर सत्यवक्ता, शीलवान् पवित्र स्वभाव और परम तेजस्वी लक्ष्मणजी हाथ जोड़कर तेजसे प्रदीप्यमान श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २० ॥ हे भ्रातः ! हमारा याँया हाथ जलदी २ फड़कताहै और मन मानो बहुत उकसाताहै और प्रायः दुर्लक्षणी बहुत दृष्टि आतेहैं ॥ २१ ॥ इससे हे आर्य ! आप सज करके तैयार होरहें, और हमारी बात सुनें यह सब अयशकुन स्पष्टही कहे देतेहैं कि, भय आयाही चाहताहै ॥ २२ ॥ परन्तु विजय हमारी अवश्य होगी ! क्योंकि यह अतिभयानक पञ्चलक पक्षी मानों हमारी युद्ध विजय कहता हुआ शब्द कर रहाहै ॥ २३ ॥ फिर जब महातेजस्वी श्रीराम लक्ष्मणजी उस समस्त वनको ढूँढ रहेथे कि इतनेहीमें एक विपुल शब्द मानो उस वनको विध्वंस करता हुआ होने लगा ॥ २४ ॥ उस वनमें एकाएकी प्रचण्ड पवन चलने लगा और इस वायुके चलनेसे वृक्ष परस्पर टकराने लगे । उसमेंसे एक शब्द समस्त वनको शब्दायमान करता हुआ उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित खड्ग धारण करके “यह शब्द कहाँसे हुआ” यह लक्ष्मणस्तुमहर्तेजाः सत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ अत्रवीत्यांजलिर्वाक्यभ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥ २० ॥ स्पंदतेमेहं बहुरुद्विग्रमिव मेमनः ॥ प्रायशश्चाप्य निष्ठानि निमित्तान्युपलक्ष्ये ॥ २१ ॥ तस्मात्सज्जीभवायत्वं कुरुष्व वचनं मम ॥ ममेव हि निमित्तानि सद्यः शंसंति संप्रमम् ॥ २२ ॥ एष वंचुलको नाम पक्षी परमदारुणः ॥ आवयोर्विजयं युद्धेशं सन्निविनं दति ॥ २३ ॥ तयोरन्ये पतोरें वंसर्वतद्वनमोजसा ॥ संज्ञो विपुलः शब्दः प्रभंजनिवतद्वनम् ॥ २४ ॥ संवेष्टितमिवात्यर्थगहनं मातरिश्वना ॥ वनस्य तस्य शब्दोऽभूद्वनमापूरयन्निव ॥ २५ ॥ तं शब्दं काक्षमाणस्तुरामः खड्गैः सहानुजः ॥ ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम् ॥ २६ ॥ आसिदतु श्वतद्रक्षस्तापुभौ प्रमुखे स्थितम् ॥ विबुद्धमशिरो ग्रीवं कवंचमुदरे मुखम् ॥ २७ ॥ रोमभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्महा गिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ नीलमेघनिभं रौद्रं मेघस्तनितनिस्वनम् ॥ २८ ॥ अग्निज्वालानिकोशेन ललाटस्थेन दीप्यता ॥ महापद्मेण पिंगेन विपुले नायते न च ॥ २९ ॥ एकेनोरसि घोरैर्नयनेन सुदर्शना ॥ महादंष्ट्रोपपन्नंतं लेलिहानं महामुखम् ॥ ३० ॥

जाननेके लिये अभिलाषी होकर इधर उधर देखतेथे कि चौड़ी छातीवाला बृहदाकार एक राक्षस सहसा देखपड़ा ॥ २६ ॥ उसका पेट बहुत बड़ा व नाम उसका कचन्य था, वह श्रीरामचन्द्रजीके आगे आनकर खड़ा होगया, उसका मस्तक और गर्दन नहीं था शरीर बहुत बड़ा था, मुख पेटमें था ॥ २७ ॥ रुवें भालेके समान तीखे, और सीधे थे आकार उसका महापर्वतकी समान ऊँचा था स्वर मेघके गर्जनकी तुल्य, रंग नीले मेघकी समान, व स्वभाव और आकार उसका बड़ा भयंकर था ॥ २८ ॥ और उमका एक नेत्र मायेमें था वह अग्निही ज्वालके समान प्रदीप्त और बड़ी २ घुगिली पलकें उसपर थीं और वह नेत्र बड़ाभी बहुत था ॥ २९ ॥ और उसका दूसरा नेत्र छत्तीमें था वह नेत्र अतिगह्र भयंकर और तीक्ष्ण दिखादेना था, उमका मुखभी बड़ा भारी था और उसके मुखमें बड़े दाँतोंकी पंक्ति थी यह उस मण्डले मान्यो

श्रीदेवी स्त्रिया होत चाग्रहाया ॥ ३० ॥ और वह अपनी चार २ कोराकी लंबी दोनों बांहोंसे पकड २ ऋक्ष, सिंह, मृगादिकोंको भक्षण करता चला आताथा ॥ ३१ ॥ वह अपनी दोनों बांहोंसे विविधमृगप्रकरके मृग, पक्षी, ऋक्ष और मृगयूथयोंको पकडता और अपने मुखमें छोडताथा ॥ ३२ ॥ जिस मार्गसे होकर राम लक्ष्मणसीमा जानाया, वह लमीको रोकेहुये पडाया, तब राम लक्ष्मणजीने घूमकर एक कोरा पर जाकर देखा तो ॥ ३३ ॥ अति घोरदर्शन दारुण भयंकराकार बडे गरीराद्या रुग्ण शिरग्राह पडा वह अपनी दोनों भुजाओंसे जीवजन्तुओंको सब प्रकारसे पकडताया और उसके शरीरकी गठन देखनेसे ठीकही वह कबन्ध जान होताथा ॥ ३४ ॥ फिर महाबलवान कबन्धने दोनों बडी २ बाँहें फैलाकर राम और लक्ष्मण दोनोंकोही बलसे पीडन करके दोनोंको एक साथही

भक्षणमंमहायोगवृक्षमिदमृगद्विजान् ॥ चोरोभुजोविकुर्वाणमुभोयोजनमायतौ ॥ ३१ ॥ कराभ्यांविधिवान्यद्वाक्रक्षान्पक्षिगणान्मृगान् ॥ आक पंतश्चिरुपतमनंकान्मृगयूथपान् ॥ ३२ ॥ स्थितमावृत्यपथानंतयोभ्रात्रोःप्रपन्नयोः ॥ अयतंसमतिक्रम्यकोशमात्रंददर्शतुः ॥ ३३ ॥ महातंदा रुग्णभिमंकयंभुजमवृतम् ॥ कंचमिवसंस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥ ३४ ॥ समहाबाहुस्तथप्रसायिषुलोभुजौ ॥ जग्राहसहितावेपराववौपो ड्यन्यत्रात् ॥ ३५ ॥ लङ्घिनीदृढयन्वानोतिग्मतेजोमहाभुजौ ॥ भ्रातरीविवशंशोक्कृप्यमाणोमहाबलौ ॥ ३६ ॥ तत्रैवयाच्चशूरस्तुराववौ नैरापिच्यथे ॥ गाल्यादनाश्रयाच्चैवलक्ष्मणस्तच्चभिविच्यथे ॥ ३७ ॥ उवाचचविपण्णःसम्राधवंरावधानुजः ॥ पश्यमांविशंशीराक्षसस्यवशंग नम् ॥ ३८ ॥ मयैकैन्ननुरिक्तःपरिमुच्यस्वरावव ॥ माहिभूतवल्लिंदत्वापलायस्वयथासुखम् ॥ ३९ ॥ अधिगतासिर्वेदीमचिरेणेतिमेमतिः ॥ प्रणिग्न्यनकाकृत्स्थपितृणैतामहीमहीम् ॥ ४० ॥ तत्रामारामराज्यस्थःस्मर्तुमर्हसिसर्वदा ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तुरामःसोमित्रिमव्रीत् ॥ ४१ ॥

प्राण कालिया ॥ ३५ ॥ हा पनुय और सङ्ग प्राण किये हुए तीव्र तेजवान महाबलवान्, महाबाहु वह दोनों भाता कबन्धने खेंचे जाकर अवश होनये ॥ ३६ ॥ भीममन्त्रजी तो स्वभावसेही भयंकर और शरला मन्मथ थे, वह तो कुछभी व्याकुल न हुये, परन्तु लक्ष्मणजी बालक और अनाथ होनेके कारण एक शरीरी महा व्याकुल होगये ॥ ३७ ॥ और गोकुल करके गयवनंदन बडे भाता श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हे वीर ! देखो हम विचय होकर राक्षसके वश हुये हैं ॥ ३८ ॥ हमाराण परमात्र हमसेही देख एट जाइये । और हमें हमाराक्षसके आगे बलिकी भांति देकर यथा सुखसे आप भाग जाइये ॥ ३९ ॥ रामानुज राम ! हम निःशस्त्री ममत्रनेहें कि आप गीवही वंदेहीको शान्त होगे और पिता पितामहका राज्यभी शीघ्रही आप करेंगे ॥ ४० ॥ अब इससमय यही

प्रार्थना हे कि आप राज्यपदपर प्रतिष्ठित होकर सदाही हमको स्मरण करते रहाकीजियेगा. जब लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजी उनसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वीर! वृथा भीत न हूजिये तुमसरीसे पुरुष कभी व्यथित नहीं होतेहैं, दोनों भाइयोंसे इसी समय वह झुर ॥ ४२ ॥ महाबाहु, दानवश्रेष्ठ कवच कहने लगा कि तुम्हारे कंधे धोलाईकी समान ऊँचेहैं और हाथमें तुमने बड़े २ धनुष और सङ्ग धारण कियेहैं, सो बताओ कि तुम कौनहो ? ॥ ४३ ॥ तुम लोग भाग्यसेही इस भयंकर देशमें आकर हमारे नेत्रोंके सम्युक्त पड़ेहो तुम्हारा यहांपर क्या कार्यहै और तुम किस कारणसे यहांपर आयेहो सो कहो ॥ ४४ ॥ हम भूखे होकर यहांपर टिक रहेहैं सो तुम धनुष बाण और सङ्ग धारण किये हुए तेज सींगवाले बैलकी समान यहांपर हमारे मुखमें आय पड़ेहो ॥ ४५ ॥ परन्तु अब हमारे मुखमें पड़ तुम्हारा

मारुमत्रासंघृषावीरनहि त्वाहग्विपीदति ॥ एतस्मिन्नंतरे क्रूराभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ तावुवाच महाबाहुः क्वंघोदानवोत्तमः ॥ कौयुवां वृषभस्कं वी महासङ्घधुर्यौ ॥ ४३ ॥ चोरं देशमिमं प्राप्नोद्वेनममचाक्षुषौ ॥ वदतं कार्यमिह वा किमर्थं चागतो युवाम् ॥ ४४ ॥ इमं देशमनुप्राप्तौ क्षुयातस्येहतिष्ठतः ॥ सबाणचापखड्गौ च तीक्ष्णशृंगा विवर्षभौ ॥ ४५ ॥ मातूर्णमनुसंप्राप्तौ दुर्लभं जीवितं हि वाम् ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्वंघस्य दुरात्मनः ॥ ४६ ॥ उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ॥ कुच्छ्रात्कुच्छ्रातरं प्राप्य दारुणं सत्यविक्रम ॥ ४७ ॥ व्यसनं जीवितं तायाप्राप्तमप्यप्यतां प्रियाम् ॥ कालस्य सुमहद्रीयं सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥ ४८ ॥ त्वांचमाचनरव्याग्रव्यसनैः पश्यमो हितौ ॥ न हि भारोऽस्ति देवस्य सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥ ४९ ॥ शूराश्च बलवंतश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे ॥ कालाभिपन्नाः सीदंतियथा बालुकसेतवः ॥ ५० ॥ इति ब्रुवाणो दृढसत्यविक्रमो महायशसा शरथिः प्रतापवान् ॥ अवेक्ष्य सौमित्रिषु दम्रविक्रमः स्थिरांतदास्वांमतिमात्मना करोत् ॥ ५१ ॥ इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

जीवित रहना दुर्लभ है. दुरात्मा कवचके यह वचन सुनकर ॥ ४६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी वदन सुखाकर लक्ष्मणजीसे बोले कि हे सत्यविक्रम ! प्रिया सीताजीके हरणसे विषम विषद आपही है, सो इससे निश्चयही प्राण संहार होनेकी संभावना है तिसके ऊपर फिर वारंवार यह कष्टके ऊपर कष्ट पड़ रहेहैं ॥ ४७ ॥ अबतो यह महादुःख हमको प्राप्त हुआ है, अब प्रियाके पानेकीभी आशा त्याग करें । लक्ष्मण ! सब प्राणियोंमें कालका बड़ा वीर्य दिखलाई देताहै ॥ ४८ ॥ हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण ! देखो हम तुम दोनों कालकेही प्रभावसे कैसे दुःखमें पड़ेहैं, प्राणियोंको दुःख देनेमें कालको कुछभी डर नहीं है ॥ ४९ ॥ कालके वश हो बड़े शूरवीर अत्र गयोंके जाननेवाले पुरुषभी रेतसे बनाये हुये पुलकी समान संघाममें खास जातेहैं ॥ ५० ॥ सत्य और अन्तिकमणीय दृढविक्रमसम्पन्न, प्रतापवान् महायशस्वी दश

आग्न्यग्नये भापादी रुग्णमैकोनमनतितमः मर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ७० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
 गडा देशे कनक्य उतने योत्ता ॥ ३ ॥ अरे श्रवणश्रेष्ठ ! दोनों जन ! हम भूखे हुए हैं, विधाताने तुम दोनोंको चेतनारहित करके हमारे स्वानेको
 भेज दिया है इमलिये हमको देख अच तुम क्या राह देख रहे हो तैयार होवो ॥ २ ॥ उसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजी दुःखित व विक्रमप्रकाश करनेमें द्रुत
 निभय होकर उन कालके अनुमार यास्य श्रीगणेशाय नमः ॥ ३ ॥ कि यह राक्षसाथ हम दोनोंही जनको पकड़े हुआ है इसकारण आइये हम अभी दो खड्गोंसे
 तैयुतत्रस्थितोद्वाभ्रातरोरामलक्ष्मणौ ॥ बाहुपारपरिश्रितोऽकथं योवाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ तिष्ठतः किनुमादृष्ट्वाधुना ततश्च त्रिपथौ ॥ आहारा
 भृगुमंदिरोदयेन हतचेतनौ ॥ २ ॥ तच्छुत्वा लक्ष्मणो वाक्यं प्रातकालं हितं तदा ॥ उवाचार्तिसमापन्नो विक्रमेकतनश्चयः ॥ ३ ॥ त्वांचमांचपुरा
 नृणामादत्तो गतामायमः ॥ तस्मादसिभ्यामस्याशुवाहूच्छिदावहेयुः ॥ ४ ॥ भीषणोऽयं महाकायो राक्षसो भुजविक्रमः ॥ लोकं ह्यतिजितं कृत्वा ह्यावां
 मंगुमिदं च्यति ॥ ५ ॥ निश्रेयानां यो राजकुत्सितो जगतीपतेः ॥ क्रतुमध्योपनीतानां पशूनामिव राव ॥ ६ ॥ एतस्संजल्पितं शुत्वा तयोः क्रुद्ध
 भयोः ॥ ८ ॥ दक्षिणोदक्षिणं वाहुमसक्तमसिनाततः ॥ चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तुलक्ष्मणः ॥ ९ ॥ सपपात महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ॥
 गंगगाचिदश्रुत्वा भवेन दयश्चलदो यथा ॥ १० ॥

१ ॥ यद्दुःखं भवति तदा कष्टं ॥ २ ॥ यद्दुःखं आकारवाला भयंकर राक्षस केवल अपनी भुजाओंकीही सहायतासे सब लोकोंको सर्वप्रकारसे जीत अथ
वाग दै ॥ ३ ॥ श्रीगम रघुपणजी की तेसी वार्ता सुन नियाचर कबंध क्रोधित होकर मुँहवाय उनकी भक्षण करनेके लिये तैयार हुआ ॥ ७ ॥ तब देश और कालके
आनेनेराते भीगम और रघुपण दोनों भगवानोंने राज्ञ ग्रहण करके उसकी दोनों भुजायें कन्धपरसे काट डाली ॥ ८ ॥ चतुर श्रीरामचन्द्रजीने उसकी दाहिनी भुजा
और वीर्यशत्रु रघुपणजीने उसकी बाई भुजा शीघ्रतासे काट डाली ॥ ९ ॥ जब चाहें काट डाली गई तब भयंकर शब्द करता हुआ महाबाहु कबन्ध मेघकी समान घोर

शब्द कर के गगनमण्डल और दगों दिशाओंको अपने शब्दसे भर देता हुआ गिरपड़ा ॥ १० ॥ फिर अपनी दोनों भुजाओंको कटाहुआ देखकर दानव कबंध रुधिरसे दपाहुआ दोनों भाइयोंने बोला कि, तुम कौनहो ? ॥ ११ ॥ जब कबन्धने इस प्रकारसे पूछा तब महाबलवान् शुभलक्षणयुक्त काकुत्स्थ लक्ष्मणजी कबन्धसे रामपन्द्रस परित्यक्त होकर बोले ॥ १२ ॥ यह दृष्ट्वाकुत्स्थोत्पन्न हुए हैं और श्रीरामनामसे यह लोकमें विख्यात हैं और हम इनके छोटे भाई हैं हमारा नाम लक्ष्मण है ॥ १३ ॥ माँगेली जननी केकरी करके इनकी राज्यप्राप्ति रोकती जाकर सब त्यागी करा यह वनको पठाये गये सो यह हमारे और अपनी भार्याके साथ यन्त्रे विचरण करतेये ॥ १४ ॥ कि यन्त्रे वास करनेके समय इन देवतुल्य प्रतापशाली श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या हरी गई हैं सो उनको ही ढूँढते २ हम लोग

मनिरुतोभुगोदश्राशोणितोवपरिप्लुतः ॥ दीनःप्रच्छतोवीरोकोयुवामितिदानवः ॥ ११ ॥ इतिस्यब्रुवाणस्यलक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ शशं मतस्यराहुत्स्यंकंयस्यमहायलः ॥ १२ ॥ अयमिक्ष्वाकुदायादोरामोनामर्जनैःश्रुतः ॥ तस्यैवावरजंविद्धिभ्रातरंमांचलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥ मात्राप्रतिहतैराज्येयैरामःप्रव्राजितोवनम् ॥ मयासहचरत्येवभार्ययाचमहद्वनम् ॥ १४ ॥ अस्यदेवप्रभावस्यवसतोविजनेवने ॥ रक्षसापहताभार्यायामिच्छन्ताविहागता ॥ १५ ॥ त्वंतुकोवाकिमर्थवाकबंधसदृशोवने ॥ आस्येनोरसिदीप्तेनभग्नजंघोविचेष्टसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तःकबंधस्तुल मणेनोत्तरंययः ॥ उवाचवचनंप्रीतस्तदिंद्रवचनंस्मरन् ॥ १७ ॥ स्वागतंवांनरव्याघ्रोदिष्टचापश्यामिवामहम् ॥ दिष्टचाचेमोनिक्कृतोमेयुवाभ्यागादुयंयनी ॥ १८ ॥ विरूपंयच्चमेरूपंप्राप्तंद्वाविनयाद्यथा ॥ तन्मेशृणुनरव्याघ्रतत्त्वतःशंसतस्तव ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ पुराराममहाबाहोमहाबलपराक्रमम् ॥ रूपमासीन्ममाचित्यंत्रिपुलोकेपुत्रिश्रुतम् ॥ १ ॥

परासर जाने है ॥ १५ ॥ और तुम कौन हो ? जो कबन्धकी समान वनमें घूमते हो ! तुम्हारी जांच दूरी हुई है और अतिशय दीप्तयुक्त वदनमण्डल छातीमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥ जब लक्ष्मणजीने ऐसा कहा तब इन्द्रके वचनका स्मरण करताहुआ कबन्ध प्रसन्न होकर बोला ॥ १७ ॥ कि आपलोग दोनोंही पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं । आप अन्तरी नगरमें तो आये, आज भाग्यमैत्री हमने आप लोगोंको देखाहै और आपने जो हमारे वन्धनरूप हाथ काटडाले सो यहभी हमारे बड़े सौभाग्यकी बातहै इसमें कुछ नन्दे नहींहै ॥ १८ ॥ निम्नभूमिमें हमारा इस विरूपताका रसथा, व निम्न ऊँचयसे हम इस कुरूपताको प्राप्त हुये सो सब ज्योंका त्यों कहते हैं आप श्रवण करें ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमन्ना० पा० आदि० आरण्यकाण्डे मापाटीकायां सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ हे महाबाहू श्रीरामचन्द्रजी ! पूर्वकालमें हमारा रूप अत्यन्त सन्दर्भ अचिन्तनीय

तन्मये महाबल व पराक्रमयुक्त और तीनों लोकोंमें विख्यात था ॥ १ ॥ और सूर्य चन्द्रमा व इन्द्रके गरीरकी समान हमाराभी रूप था, सो ऐसा रूप धारण हम तीनों लोकोंको डराने लगे ॥ २ ॥ हम धूम २ कर वनवासी ऋषिलोगोंको भयभीत करतेथे एक समय जाने २ हमने स्थूलशिरा नामक महर्षिको कोषित किया ॥ ३ ॥ वे महर्षिजी विविधभक्तिके वनके फूल फलादि इकट्ठे कर रहेथे कि, हमने अपने रूपके गर्वसे उनको धिक्कारा और कोषित कराया तब उन्होंने हमारी ओर देस अति घोरगाप दिया ॥ ४ ॥ कि जाओ मूर्ख ! तुम्हारा रूपभी हमाराहीमा कुरूप होजायगा, जब हमने क्रोधयुक्तहो उनको गापदेते हुये देमा तो गापके उद्धारके लिये प्रार्थना की, कि इनका निवारण कब होगा ॥ ५ ॥ तब गापके अन्त होनेके लिये उन्होंने कहा कि, जिस समय श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे हाथ

यथामूर्त्यस्यसोमस्यशक्रस्यचयथावपुः ॥ सोऽहंरूपमिदं कृत्वा लोकवित्रासनमहत् ॥ २ ॥ ऋषीन्वनगतात्रामत्रासयामिततस्ततः ॥ ततःस्थूल शिरानाममहर्षिःकोपितोमया ॥ ३ ॥ सचिन्मन्विधिवन्ध्वंरूपेणानेनधर्षितः ॥ तेनाहमुक्तःप्रेक्ष्यवन्वोरशापाभिधायिना ॥ ४ ॥ एतदेवन्वशंसिते रूपमस्तुविगर्हितम् ॥ समयायाचितःकुब्जःशापस्यतोभवेदिति ॥ ५ ॥ अभिशापकृतस्येतितेनेदंभाषितवचः ॥ यदाछिस्त्राभुजोरामस्त्वांद् हेद्रिजनेवने ॥ ६ ॥ तदात्वंग्राप्स्यसेरूपंस्वमेवविपुलंशुभम् ॥ त्रियाविराजितंपुत्रदनेस्त्वंविद्विलक्ष्मण ॥ ७ ॥ इन्द्रशापादिदंरूपप्राप्तमेवरेणा जिरे ॥ अहंहितपसोऽंग्रेणपितामहमतोपयम् ॥ ८ ॥ दीर्घमायुःसमेग्रादात्ततोमांविभ्रमोऽस्पृशत् ॥ दीर्घमायुर्मयाप्राप्तंकिमांशक्रःकरिष्यति ॥ ९ ॥ इत्येवंबुद्धिमास्थायरेणशक्रमधर्षयम् ॥ तस्यबाहुप्रमुकेनवज्रेणशतपर्वणा ॥ १० ॥ सविथनीचशिरश्चेशरिरेसंप्रोवेशितम् ॥ समयायाच्यमानः सन्नानयद्यमसादनम् ॥ ११ ॥

काट दलेंगे और विजय वनमें तुमको फूँक देंगे ॥ ६ ॥ बस उसी समय तुम अपना सुविपुल और मनोहर रूप प्राप्त करलोगे, सो हे लक्ष्मण ! हम श्रीमान् दनुके पुत्रहैं ॥ ७ ॥ गंयामें इन्द्रजीके गापसे यह कथंकासा रूप हमने पायाहै उसका ठीक २ वृत्तान्त यह है कि आगे हमने अत्युग्र तप करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तब उन्होंने हमको दीर्घायु प्रदान की जिसके पीछे हमारे चिन्मं तम हुआ और जिससे हमने गर्वित होकर विचारा कि, इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं क्योंकि अब तो हमने दीर्घायु पालीहै ॥ ९ ॥ ऐसी बुद्धिमें स्थिर हो संयायमें हमने इन्द्रको ललकारा तब उन्होंने अपना सो धारका वज्र हमारे ऊपर छोडा जिसके लगनेसे ॥ १० ॥ प्रमत्त कनपटी आदि मन्त्र अंग हमारे गरीरके भीतर पैठ गये । जिसके पीछे हमने अपनी मौन चाहीभी परन्तु उन्होंने हमें यमपुरको न भेजा ॥ ११ ॥

वरन् केवल उन्होंने इतनाही कहा कि, जाओ पितामह ब्रह्माजीका वचन सत्य होवे और तुम बहुत दिनोंतक जीवित रहो तब हमने उनसे कहा कि, आपका वज्र लगनेसे हम शिर कनपटी मुख आदि अंगोंसे रहित होगये फिर भला हम किस प्रकारसे बिना कुछ साये पिये दीचं कालतक जीवन धारण करने में संमर्थ होंगे ॥ १२ ॥ इस बातको सुनकर इन्द्रजीने कहा कि, बहुत अच्छा अब तेरी बाहें एक योजन लंबी हो जायँगी और दीचं कालतक जीवितभी रहोगे ॥ १३ ॥ यह कहकर उन्होंने हमारे पैरों वडे २ दांत सहित मुखभी बना दिया तबसे हम अपने वडे दोनों हाथ फैलाकर वनचरोंको पकड़ २ मुत्तमें डालतेहैं ॥ १४ ॥ उनमें सिंह व्याघ्र क्रक्ष आदि जो मिलने उनको पकड़ २ कर हम भक्षण किया करते थे, इन्द्रजीने फिर यहभी कहा था कि, जब श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी ॥ १५ ॥

पितामहवचःसत्यंतदस्त्वितिमभाब्रवीत् ॥ अनाहारःकथंशक्तोभग्नसक्थिशिरोमुखः ॥ १२ ॥ वज्रिणाभिहितःकालंसुदीर्घमपिजीवितुम् ॥ नग्नवमुक्तःशक्रोमेवाहूयोजनमायतौ ॥ १३ ॥ तदाचास्यंचमेकुक्षीतीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् ॥ सोऽहंभुजाभ्यां दीर्घाभ्यां संक्षिप्यास्मिन्वनेचरान् ॥ १४ ॥ सिंहद्वीपिमुगव्याघ्रान्भक्षयामिसमंततः ॥ सतुमामब्रवीद्दिद्रोयदारामःसलक्ष्मणः ॥ १५ ॥ छेत्स्यतेसमेवाहूतदास्वर्गमिप्यसि ॥ अनेनचपुपाता तवनेस्मिन्राजसतम ॥ १६ ॥ यद्यत्पश्यामिसर्वस्यग्रहणंसाधुरोचये ॥ अवश्यंग्रहणंरामोमन्येऽहंसमुपेप्यति ॥ १७ ॥ इमांशुद्धिपुरस्कृत्यदेहं न्यासकृतश्रमः ॥ सत्वरामोऽसिभद्रतेनाहमन्येनराघव ॥ १८ ॥ शक्योहंतुंयथातत्त्वमेवमुक्तंमहर्षिणा॥अहं हिमतिसाचिव्यंकरिष्यामिनरर्षभ ॥ १९ ॥ मित्रैवोपदेक्ष्यामियुवाभ्यांसंस्कृतोत्रिणा ॥ एवमुक्तस्तुवर्मात्मादनुनातेनराघवः ॥ २० ॥

समसें तुम्हारे दोनों हाथ काटेंगे तब तुम स्वर्गको जाओगे । तबसे हे राजसत्तम ! हम इसी शरीरसे इस यन्त्रमें ॥ १६ ॥ जिस २ को देखतेहैं उस २ को ग्रहण कर लेतेहैं, व यहभी हमको निश्चयथा कि इन्द्रके वचनानुसार कोई न कोई अवश्य हमको मिलता रहेगा ॥ १७ ॥ सदा अपना ऐसाही विचारःरसतेहैं कुछ विशेष भयभी नहीं करतेये, सो इस समय हमने सत्य २ जाना कि, श्रीरामचन्द्रजी आपही हैं क्योंकि और कोई हमको नहीं मारसकता ॥ १८ ॥ क्योंकि महर्षिजीने जो कुछ कहा सो सत्यही हुआहै, इस कारण हे रामचन्द्रजी ! और तो हमसे कुछ नहीं हो सकता परन्तु हे नरभेष । बुद्धिद्वारा आपकी कुछ सहायता कर सकेंगे ॥ १९ ॥ अर्थात् जब आप हमको अत्रिमें जलादेगे तब हम आपको एक मित्र बतावेगे, जब इस प्रकारसे उस दनुके पुत्रने महात्मा धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे कहा तो ॥ २० ॥

तुमगुरु चरितर चन्दे गये, नव बह् उनको हरण करके ठे गयाथा हम उस राक्षस रावणका केवल नाममात्र जानते हैं परन्तु उसका रूप ॥ २२ ॥ निवास व दबाव कुछभी नहीं जानने केवल गोकुले आते हुये अनापकी समान इसी भाँतिसे वन २ में घूमते फिरते हैं ॥ २३ ॥ सो तुम हमारे ऊपर उपकार करके हमारे ऊपर दया कगे उनको बनाओ और क्षयियोंके दौर्गमि टूटे हुये सुते काष्ठ बटोर कर तुमको ॥ २४ ॥ एक गदा सोद हे वीर ! हम उसमें तुमको जलादेंगे अब जो दहन मीनोंको हरण करके निम जगद् उभयपदै, सो समस्त हमसे कहो ॥ २५ ॥ यदि यथायेही तुम इस बातको जानतेहो तो इससे हमारा बड़ा मंगल हो जायगा.

इदं जगाद रचनं तद्भगवत्स्य च पश्यतः ॥ रावणेन हताभार्यासीतामयशस्विनी ॥ २१ ॥ निष्कान्तं त्यजनस्थानात्सहस्रत्रायथासुखम् ॥ नाममात्रं
तु जानाभिन्नरूपं न स्यादशुभः ॥ २२ ॥ निवासं प्राभावावयतं त्यजन् विब्रूहे ॥ शोकात्तानामनाथानामेवं विपरिधावताम् ॥ २३ ॥ कारुण्यं सदृशं कर्तुं
मुपाकांशं च र्वनाम् ॥ काष्ठान्यानीयभग्नानि काले दुष्काणि कुंजरे ॥ २४ ॥ धक्ष्यामस्त्वांगवीरश्वेभ्यो महति कल्पिते ॥ सत्वंसीतां समाचक्ष्वेयनवा
यय राट्ठना ॥ २५ ॥ दुरुक्तल्याणमत्यर्थं यद्विजानासितं त्यतः ॥ एवमुक्तस्तुरागेण वाक्यं ददुर्लुप्तम् ॥ २६ ॥ गोवाच कुशलो वक्ता वक्ता रमपिरा
यम् ॥ दिव्यमस्मिन् मे जाननाभिजाना मिमं प्रीतिम् ॥ २७ ॥ यस्तां वक्ष्यति तं वक्ष्ये दग्धः स्वरूपमास्थितः ॥ यो भिजानाति तद्रक्षस्तद्वक्ष्ये राम
नयम् ॥ २८ ॥ अदृश्यस्य दिद्विज्ञातुं शक्तिं स्तिन मे प्रभो ॥ राक्षसं तु महावीर्यसीतायेन हता तव ॥ २९ ॥ विज्ञानं हि महद्वैशंपदोपेण रावव ॥
स्वाश्रुनेन मया प्राप्तरूपं त्योत्रे विगर्हितम् ॥ ३० ॥ किंतु यावन्नयात्यस्तं स विताश्रंति वाहनः ॥ तावन्मामवटं शिवादहरामयथाविधि ॥ ३१ ॥

॥ ३० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जबतक सूर्य भगवान्‌के घोड़े थककर
 हम सारंगी बघैक रोपण ऐंगे मंसारमें निन्दित रूपको प्राप्त हुयें ॥ ३० ॥
 दुई हम शिभी वसामंधी एगरो न जानमने ॥ २९ ॥ हे राम ! पहले हममें बड़ा विज्ञानथा सो इस रूपके प्रभावसे हमारा वह दिव्यज्ञान नष्ट होगया और
 तब राम बरक जो कि राबलरां जानताई एगरो आपने बतादेंगे ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! जिस महावीर्य राक्षसने आपकी सीताजीको हरण कियाहै सो बिना भ्रम
 इन कण बह गरी जालन कि जानकी कहाँ ॥ २७ ॥ पानु जो तुमको उन्हें बतावेगा, उसको हम तुम्हें बतावेंगे, आप हमें भ्रम कीजिये फिर हम अपना पहला
 तब भीगमपगर्जीन लूना रक्षा गो बह दानवमंत्र ॥ २६ ॥ अच्छा बोलनेवाला श्रीरामचन्द्रजीसे बड़ी कुशलताके साथ कहनेलगा, हमको अभी दिव्यज्ञान नहींहै

अस्तानलगे न चले जायँ, क्योंकि अब अस्ताचलको जानाही चाहतँहैं तिससे पहलेही आप हमको गढमें डालकर यथाविधि भस्म कर दीजिये ॥ ३१ ॥ हे महावीर रघुनंदन ! जब यथाविधि आप हमको गढमें रखकर फूँक देंगे तब हम बतलवेंगे कि कौन रावणको जानताहै ॥ ३२ ॥ हे राघव हे वीर ! आप उस अन्धविचिताले पुरुषके साथ भिन्नता करनेना वह पराक्रमी वीर आपकी बड़ीभारी सहायता करैगा ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! त्रिलोकीमें ऐसा कुछभी नहीं है जिसको यह पुरुष न जानता हो वह प्रथम किसी बड़ेही कारणके वश होकर त्रिलोकीमें घूमाहै ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायामेकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

दग्धस्तथाहमवदेन्यायेनरघुनंदन ॥ वक्ष्यामिमंमहावीरयस्तंवेत्स्यतिराक्षसम् ॥ ३२ ॥ तेनसख्यंचकर्तव्यंन्याय्यवृत्तेनराघव ॥ कल्पयिष्य तितेवीरसाहाय्यंलघुविक्रम ॥ ३३ ॥ नहितस्यास्यविज्ञातंत्रिपुलोकैकेपुराघव ॥ सर्वान्परिवृत्तोलोकान्पुरावैकारणांतरे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अरण्यकांड एकसप्ततितमःसर्गः ॥ ७१ ॥ एवमुक्तौतुतीवीरकंवंधेननरेश्वरी ॥ गिरिप्रदरमासाद्यपावकंविससर्जतुः ॥ १ ॥ लक्ष्मणस्तुमहोत्साभिर्ज्वलितभिःसमंततः ॥ चितामादीपयामाससाग्रज्ज्वालसर्वतः ॥ २ ॥ तच्छरीरंकवंधस्थवृत्तपिंडोपममहत् ॥ मेदसा पच्यमानस्यमंददहतपावकः ॥ ३ ॥ सविधूयचितामाशुविधूमोऽग्निरिवोत्थितः ॥ अरजेवाससीविभ्रन्माल्यंदिव्यमहाबलः ॥ ४ ॥ ततश्चिता यावेगेनभास्वरोविरजोत्थिरः ॥ उत्पपाताशुसंहृष्टःसर्वप्रत्यंगभूषणः ॥ ५ ॥ विमानेभास्वरेतिष्ठन्हंसयुक्तेयशस्करे ॥ प्रभयाचमहातेजादिशोदश विराजयन् ॥ ६ ॥ सौतरीक्षगतोवाक्यकंवंधोराममव्रवीत् ॥ शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥

य लक्ष्मणजीने पर्वतकी गुफामें ठेजाकर उसको अग्नि देदी ! १ ॥ लक्ष्मणने बड़ी २ तल्काओंको प्रज्वलित करके चारोंओरसे अग्नि लगादी तब चिता भलीभाँतिसे जलने लगी ॥ २ ॥ तब कवन्धका घीके पिंडेकी समान चरवीसे परिपूर्ण बड़ा भारी शरीर अग्निसे घीरे ३ जलने लगा ॥ ३ ॥ जब चिता जलकर रहगई तब महानलवान् कवंध उसीसमय चिताको कंपायमान करता हुआ निर्मल वस्त्र और दिव्य माला धारण करके धुआँरहित अग्निके समान उसमेंसे निकल ॥ ४ ॥ और दिव्य कांतिपुनः शरीरसे वेगमें भर आनंदसहित उसी समय आकाशको गया उसके समस्त अंग प्रत्यंग गहनोसे भूषितथे ॥ ५ ॥ तिसके पीछे वह अतिशय उजळे हंसपुनः परस्पर विमानमें बैठकर अपनी शरीरकी प्रभासे दशों दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें यह श्रीरामचन्द्रजीने अग्नि दे-

लगा कि हे रघुनंदन ! जिस उपायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह सीति ठीक २ सुनो ॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, याने, आसन द्वीभाष और समाश्रय यह जो छेः
 युक्ति व उपाय है सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब बातोंका विचार करते हैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो
 हममें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपाय है, उसका आश्रय करना कहा है सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करते हैं सो इस समय आप
 कोभी इसी मयाश्रयके आश्रय लेनेका प्रयोजन हुआ है, क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर राज्यादिसे भ्रष्ट हुए हैं । और इसी
 कारणसे आपके ऊपर आपकी श्रीका हरणस्वरूप महादुःखभी आनकर पड़ा है ॥ ९ ॥ इस कारणसे हे राजवर ! आपको दूसरेसे जिसका परिवारभी बहुत
 हो, उगमें अकथही मित्रता करनी होगी, हमने भलीभाँतिसे सोच विचारकर देख लिया है कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥
 गमयदुयुक्तयोलोकैयाभिःसर्वविमृश्यते ॥ परिमृष्टोदशांतेनदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोद्दीनस्त्वंहिरामसलक्ष्मणः ॥ यत्कृतेव्यसनंप्राप्तं
 त्वयादारप्रथपणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकार्यैःससुहृत्सुहृदांवर ॥ अकृत्वा न हिते सिद्धिमहं पश्यामिचितयन् ॥ १० ॥ श्रुयंतरामवक्ष्यामि सुग्रीवो
 नामवानरः ॥ भ्रात्रानिरस्तःकुद्धेनवाल्लिनाशकमूनुना ॥ ११ ॥ ऋष्यमूकैर्गिरिवरेण पापयंतशोभिते ॥ निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिः सहवानरैः ॥ १२ ॥
 यानरंद्रोमहार्घ्यस्तेजोवानमितप्रभः ॥ सत्यसंयोजिनीतश्च धृतिमान्मतिमान्महान् ॥ १३ ॥ दक्षः प्रगल्भो द्युतिमान्महावलपराक्रमः ॥ भ्रात्रा विवासितो
 वीरगज्यंतोर्महारमना ॥ १४ ॥ स ते सहायो मित्रं च सीतायाः परिमार्गणे ॥ भविष्यति हिते राममाचशोके मनःकृपाः ॥ १५ ॥ भवितव्यं हितञ्चापिन तच्छ
 न्यमिहान्यथा ॥ कर्तुमिदं शकुशादूलकालोद्दिदुरतिक्रमः ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रमितीवीरसुग्रीवं तं महावलम् ॥ वयस्यंतं कुरुक्षिप्रमितो गत्वा धरावव ॥ १७ ॥
 ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानर है उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्र है वालिहै; उस वालिने क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दिया है
 ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूकपर्यंतपर अपने चार वानरोंके सहित रहता है यह ऋष्यमूक पर्वत चारों ओर पंजातक शोभित हो रहा है ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव
 महारीयवान, महातेजस्वी, महादीनिमान, सत्यव्रतिज्ञ, नीतिशायक जाननेवाला, धारणशक्तियुक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान और महावलपराक्रमयुक्त है
 परन्तु लग महात्मा को गज्यंके कारण वालिने घरसे निकाल दिया है ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके दूढ़ने भालनेमें आपका सहायक और मित्र होगा । सो आप अब
 गोरु करनेमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेटसकता, जो होनहार है वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुभ्रातृ ! कालकी गति
 परी दुर्गम है ॥ १६ ॥ इस कारणसे हे वीर ! आप भीघही इस स्थानसे महापराक्रमवान् सुग्रीवके पास जाकर उसमें मित्रता करलीजिये, हे रघुनंदन ! इसी समय

साप चंडे जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ व
 दह छताई कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेवाला है, वीरवान् भी है और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी सहायता चाहता है सो आपभी उसके क
 रदेंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेवाला सुग्रीव सफलमनोरथ हो आपका कार्यभी अवश्य करदेगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्यभगवान्से उत्पन्न हु
 इसमें वह साधारण वानर नहीं है और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है ॥ २० ॥ वह सूर्य नारायणका औरसपुत्र वालिके संग वैर
 कारण दुःखित है, इसमें आप अग्न शत्रु अधिके समीप धरकर ऋष्यमूक पर्वतपर बैठे हुए उस वानरनाथसे ॥ २१ ॥ सत्यताके साथ मित्रताई कीजिये, हे राघव

अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ १८ ॥ कुतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तः
 द्युर्वाकर्तुंकार्ययस्यचिकीर्षितम् ॥ १९ ॥ कृतार्थोवाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकारिष्यति ॥ सऋक्षराजसःपुत्रःपंपामदतिशंकितः ॥ २० ॥ भास्करः
 रसःपुत्रोवाल्लिनाकृतकिलिपः ॥ संनिधायायुधंक्षिप्रमुप्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥ कुरुगववसत्येनवयस्यवनचारिणम् ॥ सहस्थानानिकातः
 नसर्वाणिकपिठुंजरः ॥ २२ ॥ नरमांसाशिनलोकैर्नैपुण्यादधिगच्छति ॥ नतस्याविदितलोकैकिंचिदस्तिहिराघव ॥ २३ ॥ यावत्सूर्यःप्रतपः
 सहस्रांशुःपतंतप ॥ सनदीविंपुलाञ्छलान्निगिरिदुर्गानिकंदरान् ॥ २४ ॥ अन्विष्यवानरैःसार्धपत्नीतेधिगमिष्यति ॥ वानरांश्चमहाकायान्प्रेपयिः
 तिरागव ॥ २५ ॥ दिशोविवेचुंतांसीतांस्त्वद्वियोगेनशोचतीम् ॥ अन्वेप्यतिवरारोहमिथिलौरावणालये ॥ २६ ॥

पानरभेष्ट मय स्थानोंमें कपिठुंजरोंके साथ जाजाकर ॥ २२ ॥ फिर भलीभांतिसे नरमांसके खानेवाले राक्षसोंकेभी लोकमें जासकता है हे राघव ! लोकमें ऐसा
 स्थान नहीं जिन सुग्रीव न जानता हो ॥ २३ ॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले रघुनंदनजी ! सहस्रकिरण सूर्य भगवान्की किरणें जहांतक पड़ती हैं, उतने
 जितनी २ नदियां और बड़े २ पर्वत व पर्वतोंकी गुफा हैं ॥ २४ ॥ समस्त जगत्में जहां कहीं आपकी भायां जानकीजी होंगी सो हे रघुनंदन ! वह सुग्री
 वापर आपमें मिला देगा कारण कि, वह नुंरंत मय दिशाओंमें बड़े शरीरवाले वानरोंको पठावेगा ॥ २५ ॥ व तुम्हारे वियोगसे शोच करती हुई श्रीजानकीजी

राग्यके घरमें हुई तो वहाँमेंभी दूँद लाकर आपको खिला देगा ॥ २६ ॥ अनाथा निन्दा रहित सीताजी मेरु पर्वतके शिखरके अग्रभागमें हों अथवा पातालमें
 निमान करती हों, कपिराज सुग्रीवजी वहाँ जाकर राक्षसोंका नाश करके आपकी भार्या सीताको ले आँगे और आपसे खिला देंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे
 वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाष्यटीकायां द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ कवच्य इत्तप्रकारसे सीताजीके शोधका उपाय बताकर फिरभी श्रीरामचन्द्रजीमें
 यह अर्थयुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! यही वहाँका कल्याणदायक मार्ग है जिसपर यह फूले हुए मनोहर वृक्ष लग रहे हैं, जो यहाँसे पश्चिमकी ओर दृष्टि
 आते हैं ॥ २ ॥ उन वृक्षोंमें जामुन, चित्तोजी, कटहर, बट, पाकर, तेंदू, पीपल, कठचंपा, आम आदि अनेक प्रकारके हैं ॥ ३ ॥ और धवई, नागकेसर, अगेथू, तिलक,
 ममंकुशंभाग्रनामनिर्दिताम्रविश्वपातालतलेपिवाश्रिताम् ॥ पुवंगमानामृषभस्तवप्रियानिहत्यरक्षांसिपुनःप्रदास्यति ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीम
 द्रामायणे वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ दर्शयित्वातुरामायसीतायाःपरिमार्गणे ॥ वाग्यमन्वर्थमर्थज्ञःकवच्यः
 पुनर्गम्यत् ॥ १ ॥ एपरामशिवःपंथायैवैतेपुष्पिताद्रुमाः ॥ प्रतीचोदिशमाश्रित्यप्रकाशंतेमनोरमाः ॥ २ ॥ जंबूप्रियालपनसान्यग्रोधप्लुक्षतिदुकाः ॥
 अश्वत्थाःकर्णिकाराश्रुताश्चान्येचपादपाः ॥ ३ ॥ धन्वनानागवृक्षाश्चित्लकानकमालकाः ॥ नीलाशोकाःकदंबाश्चकरवीराश्चपुष्पिताः ॥ ४ ॥
 अग्निमुखाअशोकाश्चसुरकाःपारिभद्रकाः ॥ तानारुह्याथवधूमौपातयित्वाचतान्वलात् ॥ ५ ॥ फलान्यमृतकल्पानिभक्षयित्वागमिष्यथ ॥
 तदतिकम्यकाकुत्स्थवनंपुष्पितपादपम् ॥ ६ ॥ नंदनप्रतिमत्वन्यत्कुर्वत्सूत्रादिव ॥ सर्वकालफलायत्रपादपामधुरलवाः ॥ ७ ॥ सर्वेचक्रत
 गन्तव्येनैवैरथेयया ॥ फलभारनतास्तत्रमहाविटपयारिणः ॥ ८ ॥ शोभंतेसर्वतस्तत्रमेवपर्वतसंनिभाः ॥ तानारुह्याथवधूमौपातयित्वाथवा
 मुगम् ॥ ९ ॥ फलान्यमृतकल्पानिलक्ष्मणस्तेप्रदास्यति ॥ चंक्रमंतौवराज्यश्लोच्छ्लेखनाद्रनम् ॥ १० ॥
 किटशार, श्याम, अगोक, कदम्ब, कैंदील यह सब पुष्पित वृक्ष लगे हैं ॥ ४ ॥ हरे २ अशोक, नींबूके वृक्ष सब प्रकारके औरभी उचम २ वृक्ष हैं सो आप उनपर चढ़के
 अथवा बलमें हिलाकर फल भूमिमें गिराकर ॥ ५ ॥ अमृत समान फल खाते पीते हुए दोनों चले जाओ, हे काकुत्स्थ ! उस फूले वृक्षद्वारा परिपूर्ण वनसे आप
 निकल जायेंगे ॥ ६ ॥ तब और एक नन्दन और उचर कुरुदेशके समान वन मिलेगा, जिसमें सब कालमें फले ऐसे घीठे फलवाले वृक्षभी लग रहे हैं ॥
 ७ ॥ उस वनमें सब नमरोंमें सब फलु चीरपवनकी समान वियमान रहती हैं, वह सब वृक्ष फलभारसे झुके हुए देख पड़ते हैं ॥ ८ ॥ वह सब मेवों और पर्व
 गोंकी समान गोभायमान होते हैं । वहाँपरभी उनपर चढ़कर अथवा जोरसे हिला झुला भूमिमें गिराकर जैसा ठीक समयज्ञा जाय ॥ ९ ॥ अमृतकी समान फल वह

रुस आपको दोगे, इस भाँतिगे दोनों माता पर्वतोपर होते हुए इस वनमें जाय ॥ १० ॥ फिर पंपानामक सरोवरपर पहुँचोगे, यह सरोवरमें शिवार, शर्करा, (शंकर) और विछलनी भूमि नहीं है सब घाट बराबर बने हैं ॥ ११ ॥ हे राम ! उसमें रेती बहुत श्रेष्ठ है विविध भाँतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस, राजहंस, कौंच, कुर आदि पक्षी ॥ १२ ॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकरभी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हें किसीने कभी नहीं मारा है ॥ १३ ॥ हे भीरुयुन्दन ! आप स्थूलशरीरवाले धीके पिंडकी समान इन पक्षियोंको और रोहित, चक्रकुंड व नल नामक मछलियोंको वहाँपर भक्षण कीजिये ॥ १४ ॥ हे भीरामचन्द्रजी ! जिनके पंख नहीं होते और बड़े शरीर जिनके होते हैं, त्वक् और बहुत कांटों करके युक्त ऐसी श्रेष्ठ मछलियोंको घाणोंसे मारकर

ततः पुष्करिणीं वीरोपपानामगमिष्यथः ॥ अशर्करामविभ्रंशांसमतीर्थामशेष्वलाम् ॥ ११ ॥ रामसंजातवाकूककमलोत्पलशोभिताम् ॥ तत्र हंसः प्लवाः कौंचाः कुराश्चैवराघव ॥ १२ ॥ वल्युस्वराणि कूजंति पंपासलिलगोचराः ॥ नोद्विजंते न राहद्वारवधस्याकोविदाः पुरा ॥ १३ ॥ घृत पिंडोपमानस्थूलास्तान्द्रिजान्भक्षयिष्यथः ॥ रोहितांश्चक्रकुंडांश्च नलमीनांश्चराघव ॥ १४ ॥ पंपायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्राप्रवरान्हतान् ॥ निस्त्वक्पशानयस्तप्तानकृशानेककंटकान् ॥ १५ ॥ तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः संप्रदास्यति ॥ भृशतान्वादतो मत्स्यानंपंपायाः पुष्पसंचये ॥ १६ ॥ पद्मगंधिशिवचारिसुखशीतमनामयम् ॥ उद्धृत्य सतदाक्लिष्टरूप्यस्फटिकसंनिभम् ॥ १७ ॥ अथ पुष्करपर्णेन लक्ष्मणः प्राययिष्यति ॥ स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥ १८ ॥ सायान्ने विचरन्नामदर्शयिष्यति लक्ष्मणः ॥ अपालोभादुपावृत्तान्वृषभानिव नंदतः ॥ १९ ॥ स्थूलान्पीतांश्च पंपायां द्रक्ष्यसि त्वनरोत्तम ॥ सायान्ने विचरन्नाम विटपीमाल्यधारिणः ॥ २० ॥

और अग्निसँभुनकर आप पंपासर पर भक्षण कीजिये ॥ १५ ॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वरा होकर वहाँके कमलपुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपको दोगे ॥ १६ ॥ पंपाका जल कमलपुष्पोंकी सुगंधिसे युक्त रोग विहीन स्वास्थ्यकर सुशीतल, चांदी और स्फटिक मणिके समान निर्यलह जिनके पीनेसे कोई भी रोग नहीं होता ॥ १७ ॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरानेके पत्रोंका दोना बना वह जल लाकर आपको पिछायेगे और बड़े २ बन्दर पर्वतोंकी सुन्दरगर्भों और गुहोंके गहनवाले ॥ १८ ॥ मन्थ्याँके समय-घूमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखायेंगे, वह बड़े २ वानर जल पीनेके अर्थ धौलेंके समान शब्द करते हुए आँवेंगे ॥ १९ ॥ हे नरभट्ट ! फिर पंपापर बड़े दृष्ट पृष्ठ नीले नीले भी बहुतोंमें बन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिपे द्रव्ये सन्ध्याँके समय विचरते आँव देंगे ॥ २० ॥

वृक्ष आपको देंगे, इस भाँतिसे दोनों भाता पर्वतोंपर होते हुए इस वनमें जाय ॥ १० ॥ फिर पंपानामक सरोवरपर पहुँचोगे, यह सरोवरमें शिवार, शर्करा, (कंकर) और बिछलनी भूमि नहीं है सब घाट बराबर बने हैं ॥ ११ ॥ हे राम ! उसमें रती बहुत श्रेष्ठ है विविध भाँतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस, राजहंस, कौंच, झुर्रा आदि पक्षी ॥ १२ ॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकरभी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हें किसीने कभी नहीं मारा है ॥ १३ ॥ हे श्रीरघुनन्दन ! आप स्थूलशरीरवाले धीके पिंडकी समान इन पक्षियोंको और रोहित, चक्रतुंड व नल नामक मछलियोंको वहाँपर भक्षण कीजिये ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जिनके पंख नहीं होते और बड़े शरीर जिनके होते हैं, त्वक् और बहुत कांटों करके युक्त ऐसी श्रेष्ठ मछलियोंको घाणोंसे मारकर

ततः पुष्करिणीं वीरौ पंपानामगमिष्यथः ॥ अशर्करामविभ्रंशां समतीर्थान्मशेवलाम् ॥ ११ ॥ रामसंजातवालूकांकमलोत्पलशोभिताम् ॥ तत्र हंसाः पुष्पाः कौंचाः कुरराश्चैवराघव ॥ वल्युस्वराणि कूजंति पंपासलिलगोचराः ॥ नोद्विजंते न राट्टद्वयस्याकोविदाः पुरा ॥ १३ ॥ घृत पिंडोपमानस्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथः ॥ रोहितांश्चक्रतुंडांश्चनलमीनांश्चराघव ॥ १४ ॥ पंपायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्राभवरान्हतान् ॥ निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककंटकान् ॥ १५ ॥ तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः संप्रदास्यति ॥ भृशतान्वादतो मत्स्यानपंपायाः पुष्पसंचये ॥ १६ ॥ पद्मगंधिशिवं चारि सुखशीतमनामयम् ॥ उद्धृत्य सतदा छिद्रं हृदयस्फटिकसंनिभम् ॥ १७ ॥ अथ पुष्करपर्णेन लक्ष्मणः पाययिष्यति ॥ स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥ १८ ॥ सायाह्ने विचरन्नामदर्शयिष्यति लक्ष्मणः ॥ अपालोभादुपावृत्तान्वृभानिव नर्दतः ॥ १९ ॥ स्थूलान्प्रीतांश्च पंपायांश्च द्रक्ष्यसि त्वनरोत्तम ॥ सायाह्ने विचरन्नामविटपीमाल्यधारिणः ॥ २० ॥

और अग्निमें भुनकर आप पंपासर पर भक्षण कीजिये ॥ १५ ॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वरा होकर वहाँके कमलपुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपको देंगे ॥ १६ ॥ पंपाका जल कमलपुष्पोंकी सुगंधिते युक्त रोग विहीन स्वास्थ्यकर सुशीतल, चांदी और स्फटिक मणिके समान निर्मल है जिसके पीनेसे कोई भी जेरा नहीं होता ॥ १७ ॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरेके पत्रोंका दोना बना वह जल लेकर आपको पिलावेंगे और बड़े २ बन्दर पर्वतोंकी रुन्दराओं और वृक्षोंके रहनेवाले ॥ १८ ॥ सन्ध्याके समय घूमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखावेंगे, वह बड़े २ वानर जल पीनेके अर्थ बैलोंके समान शब्द करते हुए आते हैं ॥ १९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! फिर पंपापर बड़े छट छट पृष्ठ नीले पीले भी बहुतसे बन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिये हुये सन्ध्याके समय विचरते आप देखेंगे ॥ २० ॥

किं कारणं गिरते हैं कारणं कि
 ॥ २१ ॥ और रघुनन्दन वहाँपर भी
 आदिक गृह ॥ २१ ॥ वह फूल न कभी मुरझाते हैं, न अपने आपसे गिरते हैं फूल छेने जाते
 ॥ २२ ॥ वह सब शिल्प कपिलोग अपने गुरुजीके लिये वनके फूल फूल छेने जाते
 ॥ २३ ॥ वह सब शिल्प कपिलोग अपने गुरुजीके लिये वनके फूल फूल छेने जाते
 ॥ २४ ॥ वही स्वेदविन्दु उस कालमें उनके तपके प्रभासे पुष्प होगये हैं परन्तु
 ॥ २५ ॥ यद्यपि सब कपिलोग वहाँसे अन्तर्धान होगये हैं परन्तु
 ॥ २६ ॥ यद्यपि सब कपिलोग वहाँसे अन्तर्धान होगये हैं परन्तु
 ॥ २७ ॥ यद्यपि सब कपिलोग वहाँसे अन्तर्धान होगये हैं परन्तु
 ॥ २८ ॥ यद्यपि सब कपिलोग वहाँसे अन्तर्धान होगये हैं परन्तु
 ॥ २९ ॥ यद्यपि सब कपिलोग वहाँसे अन्तर्धान होगये हैं परन्तु

नता
 उत्पलानिचकुलानिपंकजानिचराव ॥ २१ ॥ उत्पलानिचकुलानिपंकजानिचराव ॥ २१ ॥
 मतंगशिव्यास्तत्रासृपयःसुसमाहिताः ॥ २२ ॥ मतंगशिव्यास्तत्रासृपयःसुसमाहिताः ॥ २२ ॥
 तानिमात्यानिजातानिमुनीनांतपसातदा ॥ २३ ॥ तानिमात्यानिजातानिमुनीनांतपसातदा ॥ २३ ॥
 त्वानुधर्मस्थि ॥ २४ ॥ त्वानुधर्मस्थि ॥ २४ ॥
 ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ २५ ॥ ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ २५ ॥
 ऋषेस्तस्यमतंगस्यविधानात्तचकाननम् ॥ २६ ॥ ऋषेस्तस्यमतंगस्यविधानात्तचकाननम् ॥ २६ ॥
 ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ २७ ॥ ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ २७ ॥
 ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ २८ ॥ ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ २८ ॥
 ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ २९ ॥ ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ २९ ॥

देवताओंकी समान सब लोगोंके नमस्कार करने
 ॥ २६ ॥ हे श्रीगमचन्द्रजी ! आप साक्षात् देवताओंकी समान सब लोगोंके नमस्कार करने
 ॥ २७ ॥ हे काकुत्स्थनन्दन ! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जायेंगे तब महर्षि
 ॥ २८ ॥ हे काकुत्स्थनन्दन ! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जायेंगे तब महर्षि
 ॥ २९ ॥ हे काकुत्स्थनन्दन ! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जायेंगे तब महर्षि

उममें अनेक प्रकारके पक्षी सुहावनी बोली बोलते हैं वहां प्रवेश करके आप अच्छी तरहसे विहार कर सकेंगे और पंफके सामनेही वृक्षसमूहसे सुशोभित ऋष्यमूक पर्व
त है ॥ ३१ ॥ इस कठिनसे आरोहण करनेके योग्य पर्वतकी रक्षा छोटे सर्प किया करते हैं और यह पर्वत उदार ब्रह्माजी करके पहले समयमें बनाया गया था ॥ ३२ ॥
उम उदारपर्वतके शृंगपर जो पुरुष शयन करके स्वप्नमें जो धन प्राप्त करें जागनेपरभी उसको वही धन मिलवाहे ॥ ३३ ॥ अर्धर्म कार्य करनेमें रत पापकर्म
करनेवाले पुरुषके उम पर्वतपर चढ़नेपर राक्षसलोग उसके शयन करनेके समय उसको पकड़कर वहीं संहार करते हैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! तिसके पीछे
आप मंत्रगाथम नियामी पंपातटविहारी हाथियोंके बचोंका घोर शब्द श्रवण करेंगे ॥ ३५ ॥ उन सबके सिवाय आप कुछ एक लाल वर्णकी मदधारा चुआतेहुए

नानाविहगमं कीर्णं रंस्यसेरामनिर्वृतः ॥ ऋष्यमूकस्तुपंथायाः पुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ॥ ३१ ॥ सुदुःखारोहणश्चैव शिशुनागाभिरक्षितः ॥ उदारो
ब्रह्मणानिचपूर्वकालेभिनिर्मितः ॥ ३२ ॥ शयानः पुरुषो रामतस्य शैलस्य मूर्धनि ॥ यः स्वप्ने लभते वित्तं तत्प्रबुद्धो धिगच्छति ॥ ३३ ॥ यस्त्वेनं विप
मानारः पापकर्मधिरोहति ॥ तत्रैव प्रहरं त्येनं सुप्तमादाय राक्षसाः ॥ ३४ ॥ ततोऽपि शिशुनागानामाक्रंदः श्रूयते महान् ॥ कीडतारामपंपायां मतंगाश्रम
वासिनाम् ॥ ३५ ॥ सक्ता रूधिरधाराभिः संहत्य परमद्विपाः ॥ प्रचरंति पृथक्कीर्णमिव वर्णास्तरस्त्रिनः ॥ ३६ ॥ ते तत्र पीत्वा पानीयं विमलं चारुशोभनम् ॥
अर्यंतं सुखं संप्रशंसं सर्वगं यमन्यितम् ॥ ३७ ॥ निवृत्ताः संविगाहं ते वनानि वनगोचराः ॥ ऋक्षांश्च द्वीपिनश्चैव नीलकोमलकप्रभान् ॥ ३८ ॥
रुक्मपेतानजयान् दृष्ट्वा शोकं प्रहास्यसि ॥ रामतस्य तु शैलस्य महती शोभते गुहा ॥ ३९ ॥ शिलापिधानाकाकुत्स्थदुःखं चास्याः प्रवेशनम् ॥ तस्या
गुहायाः प्राग्द्वारं महाश्वशीतोदकोद्भवः ॥ ४० ॥ बहुमूलफलोरम्यो नानागसमाकुलः ॥ तस्यां वसति धर्मत्मा सुग्रीवः सहवानरैः ॥ ४१ ॥

मंपवर्णं रंगयुक्तं हाथियोंके दलके दल इधर उधर घूमते हुए देखोगे ॥ ३६ ॥ वह हाथी पंपाका निर्मल सुन्दर और अत्यन्त सुखकारी सुवासित नीर पीकर है ॥
॥ ३७ ॥ पंपागोवरमें विहारमें निवृत्त हो वनमें विहार किया करते हैं हे श्रीरामचंद्रजी ! वहांपर आप रीछ, मंडे, व्याघ्र और नीलमणिवत् कोमल कान्तिवाले ॥ ३८ ॥
कोमल और सुन्दर वर्णके पशु रुक्म मृग देव शोक परित्याग करदेवोगे, हे श्रीरामचंद्रजी ! उस पर्वतकी कंदराभी अति शोभायमान है ॥ ३९ ॥ उस कंदराके द्वारपर
मदाही भारी शिला लगी रहती है इस कारण झल्लाते उसमें प्रवेश करना नहीं हो सकता उस गुफाके पूर्वद्वारपर एक बड़ा भारी अचल जलका कुंड है ॥ ४० ॥
उम कुंडके किनारपर चढ़तेमें मूल व फलोंमें युक्त अनेक २ भांतिके रमणीक वृक्ष लगे हैं और वहांपर धर्मत्मा सुग्रीवजी वानरोंके सहित वास करते हैं ॥ ४१ ॥

और वह सुग्रीवजी कभी २ उस पर्वतके शिखरपरभी बैठे रहते हैं, इस प्रकारसे वह कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीसे बताए ॥ ४२ ॥ फूलोंकी माला पहरे, मूयेंके ममान प्रकाशित आकाशमें दिखा हुआ गोभित होने लगा, उस बड़े भाग्यवालेको श्रीराम लक्ष्मणजीने देखकर ॥ ४३ ॥ उस कबंधसे कहा कि, अच्छा इस समय हम सुग्रीवके निकट जाते हैं, और तुमभी स्वर्गको जाओ, उसने भी दोनों भाइयोंसे कहा आप अपने कार्यकी सिद्धिके निमित्त जाइये ॥ ४४ ॥ तब कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीकी आज्ञा लेकर दसन्न होकर स्वर्गको चला ॥ ४५ ॥ उस कालमें कबंध अपना पहला रूप प्राप्त करके शोभा समन्वित और प्रदीप्त शरीर होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करके कहने लगा कि, आप सुग्रीवके साथ मित्रतास्थापन कीजिये ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकअंके भाषाटीकायां त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

कदाचिच्छिरं तस्य पर्वतस्य पितिष्ठति ॥ कबंधस्त्वनुशास्येवं तावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ स्रग्भीभास्करवर्णाभिः खेव्यरोचतवीर्यवान् ॥ तंतुखस्थंम हाभागं तावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ ४३ ॥ प्रस्थितौ त्वंच जस्येति वाचयमूचतुरंतिके ॥ गम्यतां कार्यसिद्धयर्थं मितावववीत्सच ॥ ४४ ॥ सुप्रीतो तावनुज्ञाप्य कबंधः प्रस्थितस्तदा ॥ ४५ ॥ सतत्कबंधः प्रतिपदरूपं वृतः ॥ त्रियाभास्वरसर्वदेहः ॥ निदर्शयन् राममवेष्ट्य खस्थः सख्यं कुरु चेतित दाभ्युवाच ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ऽरण्यकअंके त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥ तौ कबंधेन तं मागं पंपायादर्शितं वने ॥ आतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचो नुवरा तमजौ ॥ १ ॥ तौ शैलेष्वचितानेकान्सौद्रुष्यफलद्रुमान् ॥ वीक्षंतौ जग्मतुर्द्रुमुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥ कृत्वा तु शैलेषु तौ वासं रघुनंदनौ ॥ पंपायाः पश्चिमतं रं राचवायुपतस्थतुः ॥ ३ ॥ तौ पुष्करिण्याः पंपायास्तीरमासाद्य पश्चिमम् ॥ अपश्यतां ततस्तत्र शर्वारस्य माथमम् ॥ ४ ॥ तौ तमाथममासाद्य द्रुमे र्वद्रुभिर्गगनतम् ॥ मुरम्यमभिवीक्षंतौ शर्वरीमभ्युपेयतुः ॥ ५ ॥ तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धासमुत्थाय कृतांजलिः ॥ पादौ जग्राहरामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ ६ ॥

जब कबंध इन प्रकारसे कहकर स्वर्गको चला गया तब श्रीराम लक्ष्मणजी कबंधका बताया हुआ मार्ग लेकर पंपासरोवरकी ओर पश्चिम दिशाको चले ॥ ३ ॥ निम्न गमप श्रीराम लक्ष्मणजी सुग्रीवके देखनेको जा रहेये उस समय पर्वतोंके शिखरोंपर गधु समान स्वादयुक्त फल व फूलवाले अनेक २ वृक्ष उनके नयनगोचर होने लगे ॥ २ ॥ यह दोनों भाना मार्गमें एक रात्रि एक पर्वतके ऊपर रहकर प्रभात होतेही पंपाके पश्चिम किनारेपर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ पंपाके पश्चिम किनारे पर पहुँचकर गवरीका रमणीय आश्रम श्रीराम लक्ष्मणजीने देखा ॥ ४ ॥ और उस विविध वृक्षसमूहसे समाकीर्ण रमणीय आश्रमको देखते हुये उसमें प्रवेश करके गवरीके निरुद आये ॥ ५ ॥ तब निन्द गवरी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखतेही हाथ जोड़े हुये बुद्धिमान् दोनों भाइयोंके चरणोंमें प्रणाम करती हुई ॥ ६ ॥

और यथा विधिसे पाप आचमनीयभी शरीरने दिया, तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी धर्मनिरता शरीरसे बोले ॥ ७ ॥ कि, तुमने सुख व विद्वोको तो जीत लिया है, तुम्हारा तप पढ़ना गो दे और क्रोध तो तुम्हारे वशमें है, हे तपोधने ! ॥ ८ ॥ तुम्हारे सब नियम तो भली भाँतिसे चले आते हैं, तुम्हारे मनको तो सदा सुख रहता है ? हे चारुभाषिणी ! तुम्हारे गुरुकी सेवा करनी तो तुम्हें फलवती हुई है ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार पूछा तो सिद्ध लोगोंने की-अभिमत और तप सिद्धा शरीर सामने निकल कर उनसे निवेदन करती हुई ॥ १० ॥ आज आपके दर्शनोंसे मेरे तपकी सिद्धि हुई, जन्म सफल हुआ, गुरुगणोंकी पूजा भलीभाँतिसे होगई ॥ ११ ॥ और तपस्याभी सार्थक होगई. हे गुरुपोत्तम ! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं सबके अन्तरात्मा हैं सो इस समय आपकी पूजा करनेसे हमें ब्रह्मलोक

पाथमाचमनीयं च सर्वप्रादाद्यथाविधि ॥ तामुवाच ततोरामः श्रमणीधर्मसंस्थिताम् ॥ ७ ॥ कञ्चित्ते निर्जिता विद्याः कञ्चित्ते वर्धते तपः ॥ कञ्चित्ते नियतः क्रोप आहारश्च तपोधने ॥ ८ ॥ कञ्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कञ्चित्ते मनसः सुखम् ॥ कञ्चित्ते गुरुश्रूपा सफला चारुभाषिणि ॥ ९ ॥ रामे ण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसंमता ॥ शशंस शरीरवृद्धारामाय प्रत्यवस्थिता ॥ १० ॥ अद्याप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया ॥ अद्य मे सफलं जन्म गुरुवशमुपूजिताः ॥ ११ ॥ अद्य मे सफलं तप्तं स्वर्गैश्चैव भविष्यति ॥ त्वयि देवरे रामपूजिते पुरुषर्षभ ॥ १२ ॥ तवाहं चक्षुषा सौम्यपूता सौम्ये नमानद ॥ गमिष्याम्यन्तर्यालोकां स्वप्नसादादरिदम ॥ १३ ॥ चित्रकूटं त्वयि प्राप्तो विमानैरतुल्यभैः ॥ इतस्ते दिवमारूढायानहं पर्यचारिषम् ॥ १४ ॥ तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ॥ आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥ १५ ॥ स ते प्रतियहीतव्यः सौमित्रि स हि तोऽतिथिः ॥ तं च दृष्ट्वा परिलोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि ॥ १६ ॥ एवमुक्ता महाभागैस्तदाहं पुरुषर्षभ ॥ मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ ॥ १७ ॥

जात होगया ॥ १२ ॥ हे सौम्य ! हे मान देनेवाले ! हे शत्रुघाती ! आपके शुभकारी नेत्रोंकी दृष्टि पड़नेसे हम प्रवित्र होगई, अब आपके प्रसादसे हमको मय अक्षय लोकोकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १३ ॥ जिनकी हम सेवा करती थी वह ऋषि आपके चित्रकूट पर्वतपर पधारते ही अनुपम देदीप्यमान देवविमानोंमें चढ़कर हम आश्रममें स्वर्गको चले गये हैं ॥ १४ ॥ वह सब महाभाग्यवान् धर्मात्मा महर्षिलोक स्वर्ग जानेके समय हमसे कह गये कि, श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे इस पुण्यजनक आश्रममें आवेंगे ॥ १५ ॥ सो तुम उद्दमणजी की और उन श्रीरामचन्द्रजीकी अतिथिकी समान आदरसत्कारसे पूजा करना; उनके दर्शन करनेसे ही तुमको सर्वे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १६ ॥ हे गुरुपोत्तम ! उम समय वह महाभाग्यगाली महर्षिलोक हमसे इस प्रकार कह गये थे, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तभीसे हमने विविध भौतिके भले भले

कल दूँदकर ॥ १७ ॥ आपकी सेवाके लिये धर रखते हैं यह सब फल इसी पंपाके तीरवाले वृक्षोंके हैं धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी शबरी करके इस प्रकार कहे जाकर उमसे यह वचन बोले ॥ १८ ॥ कारण कि, श्रीरामचन्द्रजीने अपने मनमें विचारलिया कि, यह परमात्माकोभी भलीभांति जानती है यह समझ उससे कहा कि, हमने कवचने तुम्हारे महात्म्याका प्रभाव और आचारका माहात्म्य ॥ १९ ॥ श्रवण किया था सो तुम यदि उचित समझो तो हम प्रत्यक्ष उनका वृत्तान्त देखनेकी इच्छा करते हैं, श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे निकला हुआ ऐसा वचन सुन ॥ २० ॥ शबरी उन दोनों भ्राताओंको यह वडा वन दिखाकर कहने लगी कि, मृग और पक्षियोंसे परिपूर्ण कान्डे वादरकी समान श्यामरंगका यह वन देखिये ॥ २१ ॥ हे रघुनन्दन ! इस वनका नाम मतंगवन प्रसिद्ध है. हे महाश्रुतिमान् ! इस वनमें विशुद्धात्मा हमारे

तवार्थपुरुषव्याघ्रपंपयास्तीरसंभवम् ॥ एवमुक्तःसधर्मात्माशवयशर्वरीमिदम् ॥ १८ ॥ रावयःप्राहविज्ञानेतांनित्यमवहिष्कृताम् ॥ दनोः सकाशात्तत्तन्प्रभावंतमहात्मनाम् ॥ १९ ॥ श्रुतंप्रत्यक्षमिच्छामिसंद्रयदिमन्यसे ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वारामवक्रविनिःसृतम् ॥ २० ॥ शबरी इश्यामामातृभूतद्रनंमहत् ॥ पश्यमेववनप्रखंडंमृगपक्षिसमाकुलम् ॥ २१ ॥ मतंगवनमित्येवश्रुतंगुनंदन ॥ इहतेभावितात्मनोगुरवोमे मन्नाद्युते ॥ इहवाचक्रिरेनीडंमंत्रवनमंत्रपूजितम् ॥ २२ ॥ इयंप्रत्यक्षस्थलीवेदीयत्रतेमेसुसत्कृताः ॥ पुष्पोपहारंकुर्वतिश्रमादुद्रेपिभिःकरैः॥ २३ ॥ तेषानपःप्रभावेणपश्याद्यापिरूत्तम ॥ द्योतयंतीदिशःसर्वाःश्रियावेद्यतुलप्रभा ॥ २४ ॥ अशक्नुवद्विस्तेगंतुमुपवासथमालसैः ॥ चित्तिनाग तान्पश्यमंतान्मसमागरात् ॥ २५ ॥ कृताभिपेक्षैस्तेन्यस्तावल्कलाःपादपेष्विह ॥ अद्यापिनविशुष्यंतिप्रदेशेरघुनंदन ॥ २६ ॥ देवकार्याणि कुर्वेद्विर्यानीमानिकृतानिचै ॥ पुष्पैःकुवलयैःसार्धंम्लानत्वनंतुयान्तिचै ॥ २७ ॥

गुरु लोग मंत्र पूजित याग करनेके लिये वेदके मंत्रोंके काल हरण करतेथे ॥ २२ ॥ यह वही प्रत्यक्षयलनामक वेदीहै, जिस वेदीपर बैठकर हमारे परम पूजनीय गुरु लोग पुजात्रलि मलिन भग्युक्त हाथोंसे देवताओंकी पूजा करतेथे ॥ २३ ॥ हे रघुवर ! देखिये यह वही अनुपम प्रभुपुक्त वेदी उनके तपोबलसे आजभी अपनी दीपिने दगों दिगाओंको दिया रहीहै ॥ २४ ॥ जब वह ऋषि लोग उपवासोंके परिश्रमसे आलसी होकर स्नान करनेको जानेमें सामर्थ्यहीन होगये, तब उनके चिन्ता करनेही यह माल मनुष्य यहाँ आगये नो आप देखिये ॥ २५ ॥ हे रघुनंदन ! ऋषिलोगोंने स्नान करके यहाँ वृक्षोंपर जो अपने गीले वस्त्र टांग दिये हैं सो वह अटक नहीं मुगे हैं ॥ २६ ॥ उन्होंने देवताओंका कार्य माधन करनेके लिये नीले कमलोंके सहित यह जो समस्त पुष्प देवताओंको चढायेथे सो वह अब तक नहीं मुरझाये हैं ॥ २७ ॥

आप सब वन देख चुके और जो वात श्रवण करनेके योग्य थी वह श्रवणभी कर चुके अब हमने इस देहके छोड़नेका अभिप्राय किया है तो आप आज्ञा दीजिये ॥ २८ ॥ जिनका यह आश्रम है और जिनकी हम परिचारिका हैं उन विद्युत्प्रिया महर्षियोंके निकट जानेका हमारा अभिलाष हुआ है ॥ २९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तदन पणजीके सहित शबरीकी यह धर्मयुक्त बातों सुनकर अतिशय हर्षित हुये और बोले कि, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ३० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी दृढव्रतवाली शबरीसे बोले कि, हे भद्रे ! तुमने हमारी पूजा भलीभाँतिसे की अब तुम सुख सहित जहाँ जाना चाहती हो वहाँ चली जाओ ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकारसे आज्ञा दी तब जटा, चीर और कृष्णमृगचर्मके वस्त्र पहरी हुई शबरी अपने शरीरको अनलमें आहुति दे ॥ ३२ ॥ प्रज्वलित अग्निके समान स्वर्ग

कृत्स्नवनमिदं दृष्ट्रोत्तव्यं च श्रुतं त्वया ॥ तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्वक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥ २८ ॥ तेषामिच्छाम्यहंगंतुं समीपं भावितात्मनाम् ॥ सुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी ॥ २९ ॥ धर्मिष्ठं तु वचः श्रुत्वा राघवः सह लक्ष्मणः ॥ ग्रहर्षमतुलं लेभे आश्चर्यमिति चाब्रवीत् ॥ ३० ॥ तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम् ॥ अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छ कामं यथा सुखम् ॥ ३१ ॥ इत्येवमुक्ता जटिलाचीरकृष्णाजिनां वरा ॥ अनुज्ञात तु रामेण ह्रुत्वा त्मानं ह्रुताशने ॥ ३२ ॥ ज्वलत्पावकं संकाशास्वर्गमेव जगाम ह ॥ दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यमालया नुलेपना ॥ ३३ ॥ दिव्यां वररा तत्र बभूव प्रियदर्शना ॥ विराजयंती तद्देशं विद्युत्सौदमनीयया ॥ ३४ ॥ यत्र ते सुकृतात्मनो विहरंति महर्षयः ॥ तत्पुण्यं शत्रुरीत्यनंजनामात्मसमाधिना ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ऽरण्यकांडे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

को चली गई स्वर्गमें गमन करनेके समय उसके आभरण मालाएँ व चन्दनादि सुगन्धित लगानेके सब पदार्थ दिव्य होगये ॥ ३३ ॥ उस कालमें वह दिव्यही वस्त्र पहननेके कारण परम मनोहारिणी दृष्टि आती थी, और वह दीप्तिमान् विद्युत्की समान उस स्थानको प्रकाशित करने लगी ॥ ३४ ॥ उसके गुरु वह विशुद्धात्मा महर्षि गण जिस स्थानोंमें विराजमान थे श्रमणीभी आत्मसमाधिके प्रभावसे परम पवित्र उस पुण्यलोकको चली गई ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

ॐ भागिनि जो हैं मेह लगायो ॥ मुक्त गई सब काय पाशये मलालोक भल्लायो ॥ युगयुग कीरति पलिई सेती किया जायेन मन भावो ॥ प्रातःकाल सेते सुगिरन करेके रंगको पाप नशायो ॥ यो बलदेव प्रसाद बई प्रभु वेद विरर अस गाये ॥

जब शरीर अपनी तपस्याके प्रभावसे स्वर्गको चली गई तब ध्यात्मा श्रीराम चन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित चिन्तना करने लगे ॥ १ ॥ वह उन धर्मात्मा महर्षिगणोंका अद्भुत प्रभाव विचार एकही परमहितकारी अपने भ्राता श्रीलक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सौम्य ! हमने उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके आश्रययुक्त यह आश्रम देखे यहांपर मृग और व्याघ्रलोक वैराभाव छोड़कर विचरण करते हैं और अनेकप्रकारके पक्षीभी वास करते हैं ॥ ३ ॥ उनके स्थापन क्रिये द्युते इन सन सागर तीर्थोंमें हमने यथाविधानसे स्नान और विठ्ठलोगोंको तर्पणभी किया ॥ ४ ॥ इससे हमारे अशुभभी नष्ट होगये और कल्याणभी होगया है लक्ष्मण ! इससे हमारा मन इससमय बहुतही प्रफुल्ल हो रहा है ॥ ५ ॥ और हे नरव्याघ्र ! इस समय हमारा हृदयभी शुभभावसे प्रीति है मो अब

दिवंतुतस्यायातायाश्रयार्थस्वेनतेजसा ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचितयामासराघवः ॥ १ ॥ चितयित्वातुधर्मात्माप्रभावंतमहात्मनाम् ॥ हितकारिणमेकाग्रंलक्ष्मणंराघवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ दृष्टोमयाश्रमःसौम्यवह्नाश्रयःकृतात्मनाम् ॥ विश्वस्तमृगशार्दूलोनानाविद्गणसेवितः ॥ ३ ॥ सप्तानांचसमुद्राणतिपांतीथंपुलक्ष्मण ॥ उपस्पृष्टंचविधिवन्पितरश्चापितर्पिताः ॥ ४ ॥ प्रनष्टमशुभंयन्नःकल्याणंसमुपस्थितम् ॥ तेनत्वेतत्प्रहृष्टमेमनोलक्ष्मणसंप्रति ॥ ५ ॥ हृदयेमेनरव्याघ्रशुभमाविर्भविष्यति ॥ तदागच्छगमिष्यावःपंपांतांप्रियदर्शनाम् ॥ ६ ॥ ऋष्यमूकोगिरिर्यत्रनानातिदूरंप्रकाशते ॥ यस्मिन्वसतिधर्मात्मासुग्रीवोऽंशुमतःसुतः ॥ ७ ॥ नित्यंवालिभयात्रस्तश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ अहंत्वेरचतंद्रपुंग्रीवंवानरप्रेभम् ॥ ८ ॥ तदर्थानंहिमैकार्यंसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ इतिद्वुवाणंतवीरसोमित्रिदिमब्रवीत् ॥ ९ ॥ गच्छावस्त्वारितंतत्रममापित्वरतेमनः ॥ आश्रमाचुततस्तस्मान्निष्क्रम्यसविशंपतिः ॥ १० ॥ आजगामततःपंपालक्ष्मणेनसहप्रभुः ॥ समीक्षमाणःपुष्पाढ्यंसर्वतोविपुलद्रुमम् ॥ ११ ॥

ही होगा इस कारण हम उस मनोहर पंपासपर चले ॥ ६ ॥ जिस पंपाके निकटही ऋष्यमूक पर्वत प्रकाशित हो रहा है जहांपर धर्मात्मा सूर्यके पुत्र सुग्रीवजी बसते हैं ॥ ७ ॥ नित्य वालीके भयसे भीत चारों वानरों सहित वहांपर रहते हैं हम चारों वानरोंके सहित शीघ्रही उन वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीको वहांपर देखने चलेंगे ॥ ८ ॥ कारण कि, सीताजीको खोजना हमारा कार्य है वह उन्हीं सुग्रीवके हाथमें है जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी उनसे बोले ॥ ९ ॥ कि, हमारा मनभी शीघ्रता करता है इसकारण जल्दी चलिये यह सुन पृथ्वीश्वर दोनों भाई उस मंगलाश्रमसे चले ॥ १० ॥ और वहांसे चलकर

दोहा-रघुनंदन संकटहरन, विघ्न विनाशन आप । ब्रह्म सचिदानंदधन, दूर करो संताप ॥
गुणसागर नागर परम, नरतनु धारि खरार । लीला विस्तारी जगत, नित मंगल दातार ॥
जो नर नित सुमिरन करै, गुणगण प्रभुके गाय । ते विनु भ्रम संसारके, पार भये सुख पाय ॥
भक्तन हितकारण धरो, प्रभुने मनुज शरीर । ऋषि मुनियनकी दासकी, दूर करी सबपीर ॥
रूपा अनुग्रह अस्त करो, रहै तुम्हारे ध्यान । प्रभु ज्वालापरसादको, यह वरदान न आन ॥
जिमि २ ऋषियनसों भयो, प्रभुको शुभ संवाद । सो सब भाषामें कियो, बुध ज्वालापरसाद ॥
यदहि सन्तजन रूपा करि, सुमिराहि लक्ष्मणराम । यामें कुछ संशय नहीं, सिद्ध होत सब काम ॥



इदं श्रीचाल्मीकीयरामायणारण्यकाण्डं भापाटीकासमेतं मुम्बय्या
क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना स्वकीये “श्रीवेङ्कटेश्वर”-

(स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

संवत् १९६७, शके १८३२.

इति श्रीबाल्मीकीयरामायणेऽरण्यकाण्डं भाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥

